साहित्य अमृत
मासिक

वर्ष-२४ अंक-१ ❖ पृष्ठ १८२ | सावन-भाद्रपद-२०७५ | अगस्त २०१८

इस अंक में

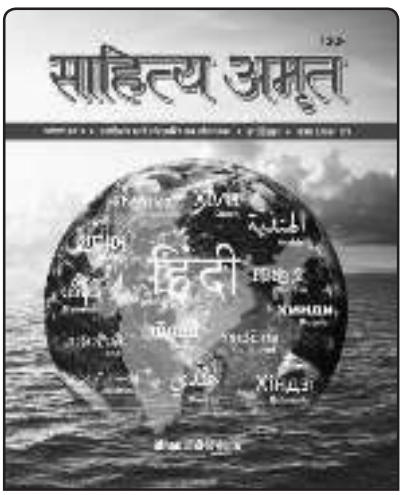

संपादकीय

राजनेताओं की नैतिकता? ७

प्रतिस्मृति

प्रादेशिक भाषाओं की पालना हिंदी से ही संभव/ *पं. मदनमोहन मालवीय* १२

स्मरण

नर्मदापुत्र अमृतलाल वेगड़/ *संतोष शुक्ला* ३०

राम झरोखे बैठ के

देश का नया सामान्य/ *गोपाल चतुर्वेदी* ८९

आलेख

हिंदुस्तान-अजरबैजान और हिंदी/ *रूपाली सिन्हा* २६

अमरीका में हिंदी की दशा एवं दिशा/ *आस्था नवल* २९

अमरीका में हिंदी : अतीत-वर्तमान-भविष्य/ *रेणु 'राजवंशी' गुप्ता* ३३

अर्मेनिया में हिंदी एवं भारतीय संस्कृति/ *कविता सिंह* ३६

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी की स्थिति/ *आमोदिनी नंदिता* ४०

संस्थापक संपादक
स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

पूर्व संपादक
स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

संपादक
त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

प्रबंध संपादक
श्यामसुंदर

संयुक्त संपादक
डॉ. हेमंत कुकरेती

कार्यालय
४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क
एक अंक —₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इटली के विश्वविद्यालयों में हिंदी/ *श्याम मनोहर पांडेय* ४३

कनाडा में हिंदी का विकास/ *रत्नाकर नराले* ४५

चीन में हिंदी की बिंदी/ *के.एन. तिवारी* ४८

योग व भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में हिंदी का योगदान/ *मृदुल कीर्ति* ५१

जापान में हिंदी, हिंदी में जापान/ *रीतारानी पालीवाल* ६१

डेनमार्क में हिंदी व भारतीय संस्कृति का स्वरूप/ *अर्चना पैन्यूली* ६४

थाईलैंड में हिंदी का प्रचार-प्रसार और भविष्य/ *तिप्पाबत्तिनि नरसिंहुलु* ६९

नार्वे में हिंदी जगत् : विस्तार एवं संभावनाएँ/ *सुरेशचंद्र शुक्ल* ७२

नीदरलैंड में हिंदी की स्थिति/ *मोहन कांत गौतम* ७६

नीदरलैंड में हिंदी भाषा और उसका स्वरूप/ *पुष्पिता अवस्थी* ८१

हिंदी की दशा-दिशा : नेपाल के संदर्भ में/ *श्रीप्रकाश शुक्ल* ८५

वारसा में हिंदी : पोलैंड तथा मध्य-यूरोप के संदर्भ में/ *दानूता स्ताशिक* ९२

पैसिफिक में हिंदी का द्वीप—फीजी/ *अनिल जोशी* ९५

बल्गारिया में हिंदी/ *देवेंद्र शुक्ल* १००

बांग्लादेश में हिंदी/ *योगेश वसिष्ठ* १०३

आप्रवासी गिरमिटिया देशों में हिंदी/ *उमेश कुमार सिंह* १०६

मॉरीशस में हिंदी की यात्रा/ *तनुजा पदारथ बिहारी* १०९

कैरिबियाई हिंदुस्तानी : सांस्कृतिक स्मृति और अस्मिता/ *दुर्गा प्रसाद सिंह* ११३

हिंदी की वैश्विकता यू.के. के संदर्भ में/ *कृष्ण कुमार* ११६

हिंदी-रूसी भाई-भाई/ *राजेश कुमार* १२२

हिंदी की वैश्विक यात्रा का अहम पड़ाव विश्व हिंदी सचिवालय/ *विनोद कुमार मिश्र* १२६

श्रीलंका में हिंदी का पठन-पाठन/ *शीरीन कुरैशी* १३०

संयुक्त अरब अमीरात में हिंदी/ *पूर्णिमा वर्मन* १३५

सिंगापुर में हिंदी की दशा, दिशा और भविष्य/ *संध्या सिंह* १३८

सूरीनाम में हिंदी की दशा और दिशा/ *ममता मिश्रा* १४२

सूरीनाम की हिंदी भाषा : स्वरूप, साहित्य और अस्मिता/ *अकरम हुसैन* १४८

स्विट्जरलैंड तथा अन्य देशों में हिंदी की स्थिति/ *मीरा जायसवाल* १५१

स्विट्जरलैंड में हिंदी की स्थिति/ *राहुल सिद्धार्थ* १५५

हंगरी में हिंदी की स्थिति/ *प्रमोद कुमार शर्मा* १५९

हिंदी नियुक्तियों के विविध आयाम/ *हरीश नवल* १६९

वैश्विक स्तर पर हिंदी की स्वीकार्यता का आग्रह क्यों ?/ *गीता शर्मा* १७१

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ १७५

वर्ग-पहेली १७६

साहित्यिक गतिविधियाँ १७७

साहित्य अमृत

भारत सरकार (गृह मंत्रालय) के राजभाषा विभाग के
पत्रांक ११०१४/८/९६-रा.भा. (प) द्वारा
केंद्रीय सरकार के मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों/
सार्वजनिक उपक्रमों/बैंकों/स्वायत्त निकायों/संस्थाओं आदि के लिए
एक विशिष्ट मासिक साहित्यिक पत्रिका के रूप में अनुशंसित एवं अनुमोदित।
एक प्रति का शुल्क : तीस रुपए
एक वर्ष का शुल्क : चार सौ रुपए
शुल्क मनीऑर्डर अथवा बैंक-ड्राफ्ट द्वारा 'साहित्य अमृत' के नाम
४/१९ आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२ के पते पर भेजा जा सकता है।
राजभाषा हिंदी तथा सत्साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए
संस्थाओं का सहयोग अपेक्षित है।

संपादकीय

राजनेताओं की नैतिकता?

१५ अगस्त प्रतिवर्ष पूरे देश में स्वतंत्रता दिवस के रूप में बड़े उत्साह और उल्लास के साथ आयोजित होता है। इस पावन अवसर की हम गद्‌गद हृदय से स्वतंत्रता सेनानियों, हुतात्माओं, स्थल और समुद्री सीमाओं की रक्षा करते हुए आत्माहुति देनेवाले शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की अनेक धाराएँ रहीं, स्वतंत्रता प्राप्त करने के ढंग के विषय में मतभेद भी रहे, पर उन सबका लक्ष्य एक ही रहा कि देश आजाद हो। सभी विचारधाराओं के स्वतंत्रता सेनानी हमारे आदर के पात्र हैं। उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं और जिस स्वराज्य संघर्ष में उन्होंने अपना बलिदान दिया, उसके आदर्शों की रक्षा के लिए प्रण करते हैं। स्वतंत्रता की लड़ाई के नेतृत्व को नमन करते हैं, साथ-ही-साथ लाखों अनजान, अनकहे शहीद भाई-बहनों को भी कृतज्ञतापूर्वक याद करते हैं, जिन्होंने नेताओं का अनुसरण किया। सब कठिनाइयों को झेलते हुए आज भी जो रात-दिन हर प्रकार की परिस्थितियों में सीमाओं की सुरक्षा में कर्तव्यरत हैं, उनकी सराहना करते हैं और आश्वस्त करते हैं कि देश उनके परिवारों की पूरी तरह से देखभाल करेगा। आंतरिक सुरक्षा में रत अन्य के असैन्य दल भी इसी प्रकार हमारी कृतज्ञता के पात्र हैं। बाह्य और आंतरिक सुरक्षा में ही देश प्रगति कर सकता है। विदेशियों का राज समाप्त होने के उपरांत ही राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति के द्वार खुल सके। स्वतंत्रता, भाईचारा, समता तथा मानव की गरिमा के लिए हम क्या कुछ कर सके, यह दिन हम सबके आत्मावलोकन का अवसर भी प्रदान करता है। इस दिन लालकिले से प्रधानमंत्री भारतवासियों को संबोधित करते हैं। प्रधानमंत्री का संबोधन विश्व के अन्य देशों को भारत की नीतियों से परिचित कराता है। भारत की प्राचीन काल से सांस्कृतिक आस्था और नीतियाँ विश्वबंधुत्व की पृष्ठभूमि पर आधारित रही हैं। अगले वर्ष भारत के आम चुनाव होनेवाले हैं, अतएव अवश्य ही प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी अपने कार्यकाल की सफलताओं और भविष्य की संभावनाओं की चर्चा करेंगे। उस आकलन को सुनने के लिए देश आतुर है। स्वतंत्रता दिवस के पुण्य दिवस पर देशवासियों को हमारी शुभकामनाएँ।

'साहित्य अमृत' का अगस्त माह का 'वैश्विक हिंदी विशेषांक' विश्व में हिंदी की स्थिति पर केंद्रित है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व का दूसरा बड़ा देश है। भारत की महत्त्वपूर्ण राजनीतिक स्थिति और एक प्रगतिशील अर्थव्यवस्था, जिसका आज विश्व में छठा स्थान है, यह स्वाभाविक है कि विभिन्न देशों में हिंदी के प्रति सम्मान, हिंदी शिक्षण की स्थिति तथा हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न संस्थाओं की क्या भूमिका है, यह जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करने का यह एक प्रयास है। विदेश में रह रहे भारतीय नागरिकों और भारतवंशी, दोनों का ही निरंतर हिंदी साहित्य को उल्लेखनीय अवदान हो रहा है। हिंदी के इतिहास लेखकों को भी शीघ्र ही इस अवदान की ओर ध्यान देना होगा। हिंदी पत्रिकाएँ निकल रही हैं, साहित्य सृजन हो रहा है। इसका सर्वेक्षण और आकलन कभी-न-कभी तो करना ही होगा। हिंदी के साथ भारतीय संस्कृति भी जुड़ी है। उसकी भी जानकारी हिंदी लेखन के द्वारा विदेशी भाइयों को होती है। भारत से बाहर रहनेवाले भारतीय नागरिकों और भारतवंशियों की भी अपनी संस्कृति के प्रति रुचि बनी रहती है। भारत की जनसंख्या को देखते हुए व्यापारिक दृष्टि से भारत एक बड़ा बाजार है, उसका लाभ उठाने के लिए चीन, रूस, जापान आदि अनेक देशों को हिंदी को जानना फायदेमंद लगता है। इससे विदेशों में भारतीय इतिहास, संस्कृति, प्राचीन उपलब्धियाँ जानने की भी उत्सुकता पैदा हो रही है। इस दिशा में शोध के प्रति कई देशों में रुचि पैदा हो रही है। इससे साहित्यिक शोध को बल मिलता है। विदेश में रहनेवालों को हिंदी के माध्यम से अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य के बारे में भी जानकारी सुलभ हो सकती है। 'साहित्य अमृत' की आकांक्षा है कि क्षेत्रीय भाषाओं से हिंदी का आदान-प्रदान निरंतर बढ़ता रहे तथा वे और अधिक समर्थ बनती रहें। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। अतएव एक प्रकार से समग्र भारतीय संस्कृति की संवाहिका हिंदी बन जाती है। यह ध्यातव्य है कि जिन विद्वान् लेखकों ने अपने लेख प्रेषित किए हैं, उन्हें व्यक्तिगत रूप से विषय की जानकारी है। हम उनका धन्यवाद करना चाहेंगे। हम यह भी आशा करते हैं कि इस विषय में समय-समय पर अन्य विद्वान् भी हमें अपने विचारों और नई-नई सूचनाओं से अवगत कराते रहेंगे।

एक विस्मृत इतिहासकार

सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली द्वारा तीन खंडों में 'काशी प्रसाद जायसवाल संचयन' प्रकाशित हुआ है। यह एक स्वागत योग्य प्रयास है। डॉ. रतनलाल ने, जो हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में एसोशिएट प्रोफेसर हैं, तीनों खंडों का संकलन और संपादन किया है। काशी प्रसाद जायसवाल कौन थे, आज की पीढ़ी उनके नाम और कृतित्व से अपरिचित ही है। जायसवाल, जैसाकि प्रकाशकीय में कहा गया है कि हिंदी नवजागरण काल के एक बहुआयामी प्रतिभासंपन्न लेखक थे। उनका जन्म २७ नवंबर, १८८१ में तत्कालीन बंगाल प्रेसीडेंसी के झालदा नगर में हुआ, जहाँ उनके पिता लाख का व्यापार करते थे। बाल्यकाल में ही उनके पिता उन्हें अपने गृह जिला मिर्जापुर ले आए और उनकी शिक्षा मिर्जापुर, तदुपरांत क्वीन्स कॉलेज बनारस में हुई। पिता ने उन्हें अपने बढ़ते हुए व्यापार में सहयोग देने के लिए अपने पास बुला लिया। व्यापार में सहयोग देने के साथ वे अपने लिखने-पढ़ने के काम में भी व्यस्त रहे। यही नहीं, उन्होंने प्रयास किया कि विदेशी प्रतिस्पर्धा में किस प्रकार छोटे

व्यापारियों के आर्थिक हितों की रक्षा की जा सकती है! उनके पिता अपने पिछड़े समुदाय कलवार के उत्थान के लिए प्रयत्नशील थे। यह युग देश में ऐसा था, जब स्थान-स्थान पर जाति आधारित संगठन बन रहे थे और उनके द्वारा समाजानुसार, शिक्षा प्रचार, विधवा विवाह आदि के कार्यों में क्रियाशील थे। अत: उसमें वे भी सक्रिय हुए। उन्होंने नागरी प्रचारणी पत्रिका, 'हिंदी', 'प्रदीप' और 'सरस्वती' में लिखना प्रारंभ किया। वर्ष १९०६ के करीब वे 'कलवार गजेट' के संपादक बने, किंतु इसी समय के.पी. जायसवाल ने उच्च शिक्षा प्राप्त करने और बैरिस्टरी पास करने के लिए इंग्लैंड जाना निश्चित किया। जीसस कॉलेज ऑक्सफोर्ड से उन्होंने स्नातक की डिग्री और चीनी भाषा सीखने का उन्होंने पारितोषिक प्राप्त किया। इतिहास में एम.ए. किया और लिंकन इंस से बैरिस्टर बने। विद्यालय में रहते हुए वे वी.डी. सावरकर, हरदयाल, वी.वी.एस. अय्यर, मदनलाल धींगरा आदि क्रांति में विश्वास रखने वाले भारतीय विद्यार्थियों के संपर्क में आए। कहा जाता है कि लंदन में १८५७ के स्वातंत्र्य संग्राम की पचासवीं जयंती के आयोजन में वे वीर सावरकर के निकट सहयोगी रहे। पोस्टर पैंफलेट आदि तैयार करने का बौद्धिक काम उन्होंने किया, अतएव वे ब्रिटिश खुफिया पुलिस की निगाह में आ गए। पुलिस दस्तावेजों में लिखा है कि सावरकर की गिरफ्तारी के बाद जब लंदन में मुकदमा चल रहा था तो जायसवाल वहाँ देखे गए। उसके बाद वे पुलिस की निगरानी में बराबर रहे। यह लंबी कहानी है। भारत में वापस आने के बाद उनका क्रांतिकारी आंदोलन से कोई संपर्क नहीं रहा। शायद उनको महसूस हुआ कि अब गांधी युग का प्रारंभ हो गया है और जनता को क्रांतिकारियों के प्रति आदर और सहानुभूति है, पर सहयोग नहीं, क्योंकि क्रांतिकारी ब्रिटिश सैन्यशक्ति का मुकाबला करने में असमर्थ हैं। यह एक लंबी कहानी है। पर सावरकर और लंदन के क्रांतिकारियों के संपर्क के कारण उन्हें ब्रिटिश सरकार का कोप सदैव भुगतना पड़ा।

भारत वापस आकर जायसवाल शिक्षा और शोध के क्षेत्र में कार्य करना चाहते थे। विलायत से भी वे 'सरस्वती' के लिए आलेख भेजते रहते थे। अंग्रेजी में 'मॉडर्न रिव्यू' के लिए भी लिखते थे। इंग्लैंड में उनका परिचय एक सिंधाली इंडोलॉजी के विद्वान् डॉन मार्टिनी डिसिल्वा विक्रमसिंह से हुआ और उनके संपर्क एवं निर्देशन में के.पी. जायसवाल की रुचि भारत के प्राचीन इतिहास, उसके विभिन्न अंगों, पुरातत्त्व, शिलालेख, पुरालेख के शोध की ओर मुड़ गई। उसी का सुखद फल उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिंदू पोलिटी' है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के अत्यंत प्रभावी वाइस चांसलर श्री आशुतोष मुकर्जी के बहुत प्रयत्नों के बाद भी तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने जायसवाल को विश्वविद्यालय में लैक्चरर नियुक्त नहीं होने दिया, उनकी लंदन में क्रांतिकारियों के संपर्क की पृष्ठभूमि के कारण। बैरिस्टर की डिग्री तो थी ही, के.पी. जायसवाल ने कानून की प्रैक्टिस कलकत्ता में शुरू कर दी। अच्छी सफलता मिली। कालांतर में उन्होंने पटना उच्च न्यायालय को अपने कार्यक्षेत्र के लिए चुना। उनको धन और यश दोनों ही प्राप्त हुए, किंतु उनकी रुचि इतिहास, प्राचीन भारत के शोध, हिंदी भाषा और साहित्य में कोई कमी नहीं आई। कलकत्ता में अपनी वकालत के साथ-साथ उनके ऐतिहासिक महत्त्व के कई आलेख 'इंडियन एंटीक्वोरी' और 'मॉडर्न रिव्यू' में प्रकाशित हुए। हाथी गुफा कारमाइकेल इनस्क्रिमशन या आलेख, जो अनेक कोशिशों के बावजूद अभी तक पढ़े न जा सके थे, जायसवाल ने राखलदास बनर्जी के सहयोग से दस वर्ष कार्य कर पटना में उसकी सही व्याख्या करने में सफलता पाई। बिहार के गवर्नर और बिहार-ओडिशा रिसर्च सोसाइटी के अध्यक्ष सर एडवर्ड गेट ने १९२० की वार्षिक रिपोर्ट में उनकी प्रशंसा की और कहा कि इस विषय में वे यूरोप में भी ख्याति अर्जित कर रहे हैं। प्रशासक और इतिहासकार बिनसेंट स्मिथ ने भी उनकी इस उपलब्धि को उल्लेखनीय कहा। सर आशुतोष मुकर्जी सदैव योग्य व्यक्तियों को अपने विश्वविद्यालय में लाना चाहते थे अथवा संबद्ध करना चाहते थे। उन्होंने प्रतिष्ठित टैगोर लॉ भाषणों के लिए उन्हें आमंत्रित किया। जब कारमाइकेल पीठ कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्थापित हो गई, तो सर आशुतोष ने उसके प्रोफेसर के पद उनको आमंत्रित किया, किंतु उनकी वकालत पटना में इतनी अच्छी जम चुकी थी कि जायसवाल ने असमर्थता प्रकट की। जायसवाल बड़ी उदार प्रवृत्ति के थे और शोधार्थियों आदि की सहायता खुले हाथ करते थे, इस प्रकार विद्वत्ता जगत् में उन्होंने एक विशेष स्थान बना लिया। जगह-जगह से विद्वत् आयोजनों के निमंत्रण आने लगे। भारतीय इतिहास परिषद् की स्थापना में उनका प्रमुख हाथ रहा। उनकी जन्मशती पर भारत सरकार ने एक डाक टिकट निकाली थी। बिहार सरकार ने उनकी स्मृति में डॉ. के.पी. जायसवाल शोध संस्थान की स्थापना की। वहाँ मूल्यवान शोध करने की उचित व्यवस्था की आवश्यकता है।

इतिहास परिषद् के द्वारा एक योजना बनाई गई थी कि भारत का एक विशद संपूर्ण इतिहास लिखवाने की व्यवस्था की जाए। डॉ. जायसवाल ने शासन के प्रति वफादारी दिखाने की कोशिश की, ताकि पुलिस निगरानी उठा ली जाए। उन्होंने 'पाटलिपुत्र' के संपादक होने के नाते प्रथम विश्वयुद्ध में पूर्ण समर्थन देने की अपील की। गदर आंदोलन, जिसके प्रणेता उनके लंदन के मित्र लाला हरदायल थे और कामागाटा मारू जहाज प्रसंग की आलोचना की। उच्च इंटेलीजेंस के अधिकारियों से संपर्क हुआ, पर अंत तक अंग्रेज सरकार शंकालु ही बनी रही और उन पर पूरा विश्वास कभी नहीं किया कि अब उनके कोई संबंध क्रांतिकारियों और उग्रवादियों से नहीं हैं।

संकलनकर्ता एवं संपादक रतनलाल ने काशी प्रसाद जायसवाल संचयन को तीन खंडों में विभाजित किया है। प्रथम खंड में उनके साहित्यिक लेख, कविताएँ, जीवन-चरित, यात्रा-वृत्तांत संकलित हैं। दूसरे खंड में उनके 'पाटिलपुत्र' के संपादकीय लेख कुछ अन्य विषयों पर तथा अशोक की धर्मलिपि पर लेख एवं कुछ व्याख्यान शामिल किए गए हैं। ऐतिहासिक लेख के संदर्भ में यह खंड महत्त्वपूर्ण है। तीसरे खंड में ऐतिहासिक लेख, विविध लेख एवं पत्र सम्मिलित किए गए हैं, प्रत्येक खंड के प्रारंभ में अपनी भूमिका में विवेचन किया है, जो सामग्री उन्होंने उस खंड में संकलित की है। संकलनकर्ता बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने अपनी डॉक्टरेट के लिए एकत्रत की गई सामग्री के कुछ भाग को पाठकों और शोधकर्ताओं के लिए सुगमता से उपलब्ध करा दिया

है। संकेत भी किया है, जो सामग्री वे प्राप्त नहीं कर सके, उसके लिए भविष्य में खोज की जा सकती है। सस्ता साहित्य मंडल से प्रकाशित तीनों खंड कॉलेजों और सार्वजनिक पुस्तकालयों में अवश्य होने चाहिए।

लेखक-संपादक के परिचय से पता चला कि उनका अंग्रेजी शोध-ग्रंथ 'काशी प्रसाद जायसवाल : द मेकिंग ऑफ नेशनलिस्ट हिस्टोरियन' प्रकाशित हो गया। यह डॉ. के.पी. जायसवाल पर लिखी प्रथम पुस्तक है, हमने प्रकाशक आकार बुक्स, दिल्ली से तुरंत मँगवाने की व्यवस्था की। इसके दो दशक पहले पटना से जो कमोमेटेशन वॉल्यूम (स्मरण ग्रंथ) छपा था, उसको पटना यात्रा में ले लिया था। वहीं एक ग्रंथ तब तक उनके विषय में उपलब्ध हुआ था। उसका उपयोग भी लेखक ने भलीभाँति किया है। डॉ. रतनलाल की पुस्तक उनके परिश्रम और विशद अध्ययन की परिचायक है। लेखक के विश्लेषण में कहीं-कहीं उनके अपने दृष्टिकोण का पता चलता है, जो स्वाभाविक है। यह संभव है कि पाठक की राय कुछ भिन्न भी हो सकती है। काशी प्रसाद जायसवाल पर यह पुस्तक लेखक की काफी खोज के बाद आई है, यह महत्त्व की बात है। हम अपने प्राचीन और पूर्व के इस लेखक को भूल-सा गए थे। हमारा विचार है कि पुस्तक और उत्तम होती, यदि प्रकाशक किसी योग्य संपादक से संपादन करा लेता। जब एक डिजर्टेशन एक अच्छे एडीटर के पास में पहुँचती है, तो वह परिमार्जित होकर लेखक और पाठक दोनों को परस्पर समझने में सहायक होती है। लेखक के अनुसार काशी प्रसाद जायसवाल पर दो डिजर्टेशन हुए हैं, पर वे अप्रकाशित रहे। अतएव रतनलाल की पुस्तक भारतीय इतिहास लेखन के एक बड़े अभाव की पूर्ति करती है। समग्र रूप से डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल के कृतित्व और व्यक्तित्व को समझने में सहायक है। लेखक बधाई के पात्र हैं।

राजनेताओं की नैतिकता

आशा है कि हमारे राजनेता हमारे मार्गदर्शक समाज के लिए, आज की पीढ़ी के लिए अपने व्यवहार और विचार द्वारा आदर्श प्रस्तुत करेंगे, उन्हें नई पीढ़ी द्वारा रोल मॉडल की मान्यता प्राप्त होगी। गीता में कहा है कि जैसा बड़े लोग करते हैं, उसका अनुसरण जनसाधारण करेगा। जिन जीवन-मूल्यों की हम दुहाई देते हैं, जिस नैतिकता पर हमें एक सांस्कृतिक धरोहर की तरह गर्व है, वे सब आज क्षार-क्षार होती दिखती हैं। यह विडंबना है कि जिनसे हम पथ-प्रदर्शन की अपेक्षा करते हैं, उन्हीं का नैतिक मार्गसूचक, मॉरल कंपास दूषित पाते हैं। राजनेताओं को हम हमाम में नंगा पाते हैं। उदाहरणस्वरूप हाल की एक घटना की चर्चा करना चाहेंगे। उत्तर प्रदेश में किसी समय सरकार ने निर्णय लिया कि जो भी मुख्यमंत्री रहेगा, थोड़े या अधिक समय के लिए, वह अपने चुनिंदा सरकारी आवास का अधिकारी आजीवन रहेगा यानी पद छोड़ने के उपरांत भी उनके पास लखनऊ में मकान हो या न हो, वे संपन्न हैं या नहीं और अपने रहने का प्रबंध करने में समर्थ हैं, ये सब बातें निरर्थक हैं। एक बार मुख्यमंत्री बने तो उसकी भनक जीवनपर्यंत रहेगी। अतएव विशेष सुविधाएँ चाहिए। जनसाधारण में इस नीति का हमेशा से घोर विरोध होता रहा है। जनता को घर-मकान के चुनावी आश्वासन देनेवाले चुनाव की इस परिपाटी के विरोध में 'जनप्रहरी' नामक जनता की एक एन.जी.ओ. ने शीर्ष न्यायालय में जनहित याचिका दायर की। बहुत दिनों मामला लटका रहा। राज्य सरकार ने औचित्य बताया कि पूर्व मुख्यमंत्रियों का एक अपना रुतवा होता है, सदैव जनता अपनी समस्याएँ लेकर उनके पास आती है, सुरक्षा की आवश्यकता होती, आदि-आदि। अतएव यह प्रथा बनी रहनी चाहिए। 'चोर-चोर मौसरे भाई'। पूर्व मुख्यमंत्रियों ने भी बड़े-बड़े वकील रखकर अपना पक्ष रखा, किंतु शीर्ष न्यायालय ने उनकी गुहार पर ध्यान न देकर निर्णय सुनाया कि पूर्व मुख्यमंत्री केवल साधारण नागरिक हैं, इनको आजीवन सरकारी आवास में रहने का कोई अधिकार नहीं और ऐसे लोगों से शीघ्र सरकारी मकान खाली करा लिये जाएँ। अब जब कोई उपाय न रहा तो राजनीतिक स्तर पर तिकड़में शुरू हुईं। मजे की बात है कि ऐसे लोग अन्य पदों पर हैं अथवा संसद् में, और उनके पास उस हैसियत से सरकारी मकान है, किंतु इनकी हवस का अंत नहीं। शीर्ष न्यायालय के निर्णय के बाद कुछ ने आदेशानुसार समय-सीमा में लखनऊ में सरकारी मकान खाली कर दिए। एक पूर्व युवा मुख्यमंत्री, जिनकी पत्नी संसद् सदस्य हैं और दिल्ली में सरकारी आवास की अधिकारी हैं, वे स्वयं विधान परिषद् के सदस्य हैं, और उसके कारण उनको उस हैसियत का निवास स्थान मिल सकता है, को यह बात पची नहीं; तोते की जान तो लखनऊ की बड़ी-बड़ी कोठियों में है और उनको कैसे खाली किया जाए, कहर टूट जाएगा। मुख्यमंत्री ने निवेदन किया कि उनको उसी मकान में रहने दिया जाए, उनके पास अपना कोई आवास नहीं है। यह अलग बात है कि उनकी सांसद पत्नी ने लखनऊ में एक आलीशान होटल बनाने की आवश्यक स्वीकृति का अधिकारियों से आवेदन किया है। साधारण जन का यह भी कहना है कि पता नहीं पूर्व मुख्यमंत्रियों के पास कितने बेनामी आवास हैं। जनता का मुँह बंद करना मुश्किल है। एक और वरिष्ठ पूर्व मुख्यमंत्री, जो स्वयं सांसद हैं, और उनके पास सरकारी कोठी है, प्रस्ताव किया कि विधानसभा और विधान परिषद् में उनके दल के प्रतिपक्ष के नेता हैं, अतएव एक के नाम उनका आवास आवंटित कर दिया जाए और पूर्व युवा मंत्री का आवास दूसरे को आवंटित कर दिया जाए। मतलब यह कि यथास्थिति बनी रहे। आवास सिर्फ नाम के लिए विधानसभा और विधान परिषद् के विरोधी दल के नेताओं के नाम रहेंगे। किंतु पूर्व के मुख्यमंत्री ने शीर्ष न्यायालय के आदेश के उल्लंघन के भय से यह प्रस्ताव स्वीकार किया। नतीजन दोनों को सरकारी आवास खाली करने पड़े। जुगाड़ चली नहीं। मीडिया में समाचार और तसवीरें आईं कि पूर्व युवा मुख्यमंत्री के घर को खाली करने के पहले खूब तोड़फोड़ हुई। उसकी भरपाई का उन्होंने आश्वासन दिया है। यह अलग मामला है। अगर नाक सीधी नहीं पकड़ी जा सकती है तो उलटी ही सही। कानून कहता है कि जो सीधे रास्ते से वाजिब नहीं है, वह परोक्ष रूप से भी अस्वीकार्य है। गांधीजी अच्छे उद्देश्य के लिए भी गलत माध्यम अपनाने को अनैतिक मानते थे। एक रचनाकार और विचारक एलडस हक्स्ले की एक प्रसिद्ध पुस्तक है (Ends and Means) 'साध्य और साधन'। यहाँ हमारे नेताओं की सोच साध्य और साधन, दोनों के विषय में ही अनुचित है। यह है आज की राजनीतिक नैतिकता का चेहरा।

एक और पूर्व मंत्री-मुंख्यमंत्री के पास दो सरकारी आवास थे। जब शीर्ष न्यायालय के आदेश के कारण उन्हें वह छोड़ना पड़ा तो उन्होंने एक आवास यह कहकर छोड़ दिया कि वह उन्हें मुख्यमंत्री की हैसियत से आवंटित हुआ था। मीडिया के लोगों को लेकर उसकी सैर करवाई। उसकी चाबियाँ संबंधित विभाग को डाक द्वारा भिजवा दीं। दूसरे आवास के बारे में उन्होंने कहा कि यह तो बसपा के संस्थापक कांशीरामजी का मेमोरियल है, और उसके लिए एक प्रस्ताव उनके कार्यकाल में कैबिनेट ने पारित किया था। यह सूचना उन्होंने राज्य सरकार को भेज दी। कांशीरामजी उसमें आकर ठहरते थे। उनकी एक मूर्ति भी वहाँ स्थापित कर दी गई। वे स्वयं तो केवल एक कमरे का इस्तेमाल करती थीं, यह निगरानी रखने के लिए कि मेमोरियल का रख-रखाव ठीक से हो रहा है ? उनकी एक धमकी भी थी कि यदि मेमोरियल के साथ कोई छेड़खानी की गई तो उससे देश भर में एक आंदोलन उठ खड़ा होगा। यही नहीं, उसके साथ ही तथाकथित मेमोरियलवाले आवास के बाहर मेमोरियल का नाम अंकित कर दिया गया। राज्य सरकार की कैबिनेट ने कब प्रस्ताव पारित किया था, यह सब जानकारी सरकारी विभाग इकट्ठी करेगा। यह आश्चर्य की बात है कि यदि मेमोरियल बनाने का निर्णय लिया गया था तो उसे तभी तुरंत सार्वजनिक क्यों नहीं किया था ? कांशीरामजी मेमोरियल की प्लेट तभी क्यों नहीं लगाई गई थी ? जब शीर्ष न्यायालय के निर्णय के अनुपालन का सवाल उठा, तभी यह सब काररवाई आनन-फानन में क्यों हुई ? जनता इन सब प्रश्नों का उत्तर जनना चाहेगी। आखिर फैसला तो अंत में शीर्ष न्यायालय को करना है। यहाँ पर भी वही राजनैतिक तिकड़म, निजी आवास को मेमोरियल का रूप दे देना, ताकि जन-भावनाओं को उभारा जा सके। जो कानून सीधे रास्ते से पालन नहीं किया जा सकता था, उसको गोलमोल तरीके से करने की कोशिश की गई। यह है हमारे कुछ राजनेताओं की नैतिकता। धीरे-धीर लोकतंत्र एक चोरतंत्र, किप्टोक्रेसी बनता दिखाई पड़ रहा है। इससे हमारी भावी पीढ़ियाँ कैसी शिक्षा ग्रहण करेंगी ! भला हो शीर्ष न्यायालय का, जिसको दायित्व लेना पड़ रहा है कि किसको सरकारी आवास मिले या न मिले, जो एक मामूली प्रशासनिक अधिकारी का साधारण दायित्व है। हम अनुचित और अवैध काम स्वार्थवश करते हैं और साथ-साथ न्यायपालिका को कोसते हैं कि वह कार्यपालिका के क्षेत्र में हस्तक्षेप कर रही है। पाठकों को जानकारी है कि इंग्लैंड में मंत्रियों को कोई सरकारी घर नहीं मिलता—केवल प्रधानमंत्री और वित्तमंत्री के अतिरिक्त। अपना कार्यकाल समाप्त होते ही वे तुरंत आवास खाली कर देते हैं। अमेरिका में भी राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के अतिरिक्त वहाँ के मंत्रिमंडल के सदस्य अपने निजी निवास में ही रहते हैं।

डॉ. सत्येंद्र चतुर्वेदी अनुभूति और अभिव्यक्ति की वैचारिक पत्रिका 'लोक शिक्षक' का संपादन-प्रकाशन पिछले चार दशकों से अधिक समय से कर रहे हैं। यह उनकी नैतिक मूल्यों को समर्पित व्यक्तित्व का प्रतीक है। इस कठिन दायित्व का भार बिना किसी प्रकार की सरकारी अथवा संस्थानीय सहायता के बगैर वे स्वयं वहन कर रहे हैं। वे राजस्थान के स्वयंशासी स्नातकोत्तर राजकीय महाविद्यालय के प्राचार्य रहे हैं और हिंदी भाषा एवं साहित्य विषयक समितियों से संबंधित भी रहे हैं। उनके अनेक प्रकाशन हैं। रचनाकार हैं। चिंतक हैं। उनकी कहानियों का भी एक संकलन प्रकाशित हो चुका है। उनकी अधिकतर कहानियाँ उद्देश्य प्रेरित होती हैं। मूलत: वे चिंतक हैं। देश और समाज की विकृतियाँ उनको बेचैन करती हैं। उनके आलेख और निबंध समाज की दिशाहीनता, राजनीतिक कुटिलता, अपसंस्कृति, बाजारवाद, अवसरवाद, अंधविश्वास आदि समस्याओं का निर्भीकता के साथ विश्लेषण करते हैं और इंगित करने का प्रयास करते हैं कि इस उथल-पुथल के युग में हम कैसे भटक गए हैं ! उनकी दृष्टि भारतीय संस्कार और संस्कृति पर सदैव केंद्रित रहती है। उनके विचार दकियानूसी नहीं हैं। वे भलीभाँति समझते हैं कि परंपरा का एक गुण गतिशीलता है, किंतु दिशाभ्रम नहीं होना चाहिए। उनके स्मरण भी अतीव सुंदर और सजीव होते हैं। पिछले दिनों उनकी रचनाओं के दो संकलन देखने का अवसर मिला। एक है 'लोक समाज, राजनीति मूल्यों के निकष पर'। समय-समय पर उनके कुछ आलेख, 'लोक शिक्षक' के संपादकीय और संस्मरण उसमें शामिल हैं। विषयों की विविधता चमत्कृत करती है। यह उनकी विशद समाजोन्मुखी दृष्टि और लोकहित सर्वोपरि रखने की प्रवृत्ति की परिचायक है। किस प्रकार हम स्वराज्य के आदर्शों को भूल गए और स्वार्थपरता की ओर बढ़ रहे हैं, यह बात उनको अत्यंत पीड़ा पहुँचाती है, जिसकी झलक देखने को मिलती है। 'अनुभूति और अभिव्यक्ति' उनकी दूसरी पुस्तक है। यह भी उनके विचारों की अभिव्यक्ति की एक और कड़ी है। उनके 'साहित्य का मर्म और धर्म' तथा 'साहित्य का स्वरूप' आलेख साहित्य के कई अनछुए पक्षों के गंभीर विवेचन प्रस्तुत करते हैं। तुलसी की 'कवितावली', 'बाणभट्ट की आत्मकथा' तथा 'उसने कहा था' कहानी की भावयात्रा पठनीय है। आचार्य रामकृष्ण शुक्ल 'शिलोमुख' और रांगेय राघव, जिनको हम बिल्कुल विस्मृत कर चुके हैं, सत्येंद्र चतुर्वेदी ने उनको भावभीनी श्रद्धांजलि दी है। वे गांधीवादी विचारधारा से ओतप्रोत हैं, अतएव उसका उदाहरण उनका आलेख है—'गांधीजी का दर्शन और साहित्य', जो गांधीजी की वैचारिक सरणी को समग्रता से प्रस्तुत करता है। सत्येंद्रजी के आलेख में उनके विचारों की परिपक्वता और ऊर्जा, दोनों परिलक्षित होती हैं। उनके दोनों संकलन जन-पुस्तकालयों और कॉलेजों में रखे जाने चाहिए, ताकि युवा पीढ़ी अपने संस्कार निर्मित करने में लाभान्वित हो सके।

भविष्य में 'आप'

आप की कार्यशैली के संबंध में हमने पिछले अंक में कुछ चर्चा की थी। राजनिवास में धरने पर बैठनेवाले दो मंत्री, उप मुख्यमंत्री सिसोदिया और सत्येंद्र जैन अस्वस्थ होकर अस्पताल में भरती हो गए। उपराज्यपाल ने मुख्यमंत्री केजरीवाल को मौका दिया कि वे अपना नाटक समाप्त करें। अधिकारियों से कहा कि वे मंत्रिमंडल को पूरा सहयोग दें, यद्यपि अधिकारियों का कहना था कि वे लगातार पूरा कार्य कर रहे हैं, केवल सुरक्षा के डर के कारण उनकी बैठकों में नहीं जा रहे हैं। उपराज्यपाल ने यह भी कहा कि मुख्यमंत्री अधिकारियों की बैठक बुलाएँ, बातचीत कर आश्वस्त करें कि अब कोई हादसा नहीं होगा, ताकि

पारस्परिक विश्वास का माहौल बने; लेकिन केजरीवाल ने अधिकारियों से बातचीत के लिए बैठक नहीं बुलाई। वे अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए बंगलुरु चले गए। यही नहीं, उन्होंने इसे अपनी जीत की संज्ञा दी। यह कथन एक संकुचित मनोवृत्ति का परिचायक है। उनकी कोशिश होनी चाहिए थी कि बातचीत कर सद्भाव और सहकार का वातावरण बनाएँ। शीर्ष न्यायलय ने अब निर्णय दे दिया है कि कानून व्यवस्था, पुलिस और जमीन के अलावा मंत्रिमंडल अपने निर्णय ले सकता है और उपराज्यपाल को सूचित करता रहे। निर्णय में उपराज्यपाल को छूट है कि यदि कोई मामला ऐसा है, जो उचित नहीं है तो उसे राष्ट्रपति को प्रेषित कर सकते हैं। शीर्ष न्यायालय के निर्णय के बाद अब केजरीवाल के पास बहाना नहीं है कि उन्हें काम नहीं करने दिया जा रहा है। अब उन्होंने मामला उठाया है कि उपरोक्त निर्णय के संदर्भ में सरकारी अधिकारियों की पोस्टिंग और स्थानांतरण उनके अधिकार में है, यद्यपि उपराज्यपाल के अनुसार यह अभी शीर्ष न्यायालय के विचाराधीन है। वे गृहमंत्री से भी मिले हैं। यह प्रश्न शीघ्र सुलझ जाए तो अच्छा होगा। कठिनाई यह है कि केजरीवाल का सकारात्मक और रचनात्मक कार्य करने का मन नहीं है। 'हम जो चाहें वह कर सकते हैं' वाली मनोवृत्ति उनकी है, इसलिए उनके विधायक भी उच्छृंखल हो जाते हैं। उनको समझना होगा कि कोई शासन केवल रोष से नहीं चलता है। अधिकारियों और मंत्रियों में परस्पर विश्वास का वातावरण होना चाहिए। अधिकारियों से परामर्श कर अपने लिखित आदेश नियमानुसार दें, ताकि आगे कोई भ्रांति न हो और अधिकारियों को उसका पालन करना चाहिए। खेद है कि एक अधिकारी रह चुकने के बाद भी वे यह बात नहीं समझ पा रहे हैं। उन्होंने उच्च अधिकारियों की बैठक अभी तक नहीं बुलाई है। इनका इरादा है कि 'विभाजित करो और राज करो।' उन्होंने सर्वॉर्डिनेट सेवाओं के लोगों की बैठक की और आश्वासन दिया कि उनकी दिक्कतों का निराकरण किया जाएगा। यह ठीक है कि यदि उनकी कुछ शिकायतें हैं तो उनको हल किया जाए, किंतु सुशासन की दृष्टि से विभाजित करने की नीति अंततोगत्वा आत्मघाती होती है। उन पर जनता के प्रतिनिधि होने का भूत इस प्रकार सवार है कि सुशासन की कुंजी क्या है, वे भूल गए हैं। अहं छोड़कर विनम्रता, संतुलित वाणी और धैर्य से नियमों के अनुसार कार्य करने की आवश्यकता है। हठ और दूसरों पर दोषारोपण तथा भाँति-भाँति के बहाने तलाशकर शासन में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। आखिर अरुण जेटली से बड़बोलेपन के कारण ही माफी माँगनी पड़ी थी। बेहतर होगा और जनहित में होगा, यदि वे अपनी कार्यशैली में सकारात्मकता को थोड़ा सा स्थान दे सकें।

आध्यात्मिक मनस्वी का निधन

दादा जे.पी. वासवानी का शुक्रवार १२ जुलाई को पुणे में साधु टी.एल. वासवानी मिशन में वृद्धावस्था संबंधित बीमारियों के कारण देहांत हो गया। ३० मई को राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद का साधु इंटरनेशनल स्कूल के उद्घाटन समारोह में स्वागत किया था और उनके सफलता के लिए शुभकामनाएँ व्यक्त की थीं। साधु वासवानी मिशन २ अगस्त को उनकी सौवीं वर्षगाँठ मनाने का भव्य आयोजन कर रहा था। प्रधानमंत्री आदि अनेक विशिष्ट व्यक्ति आयोजन में भाग लेनेवाले थे। उनका जन्म २ अगस्त, १९१८ को हैदराबाद (सिंध) में हुआ था। विधाता की कुछ और इच्छा थी, उन्हें पहले ही अपने पास बुला लिया। दादा जे.पी. वासवानी एक अत्यंत मेधावी छात्र थे और उन्होंने एम.एस-सी. तक की उच्च शिक्षा प्राप्त की। उनकी एस.एस-सी. की थीसिस के परीक्षक नोबल पुरस्कार विजेता श्री सी.वी. रमन थे। अपने कॅरियर की परवाह न कर अपने चाचा साधू टी.एल. वासवानी के पदचिह्नों पर चलने का निश्चय किया। अपनी अध्यात्म में रुचि के कारण साधु वासवानी के शुरू किए मीरा शिक्षा मिशन में सम्मिलित हो गए। साधु वासवानी भारतीय नवोत्थान या पुनर्जागरण के पुरोधाओं में ही थे। उन्होंने कलकत्ता (अब कोलकाता) में उस समय का परिदृश्य देखा था और उससे प्रभावित थे। उनके बारे में आज कम ही जानकारी है। इस विषय में आगे कभी चर्चा करेंगे। भारत विभाजन के पहले ही साधु वासवानी ने मीरा एजुकेशन आंदोलन का हस्तांतरण पूना में कर लिया। दादा वासवानी लड़कियों के मीरा कॉलेज के प्रिंसिपल भी रहे और साधु वासवानी मिशन की पत्रिका ईस्ट-वेस्ट का रूपांतर कर दिया, ताकि वह आज के समय नवयुवकों और युवतियों में संस्कार निर्माण में सहायक हो सके। साधु वासवानी मिशन का बहुत विस्तार किया। उनकी मान्यता एक आध्यात्मिक व्यक्तित्व और दार्शनिक के रूप में विश्व में फैल गई। यह कहना गलत होगा कि वे केवल सिंधियों के मार्गदर्शक या संत थे। हर धर्म और समुदाय के लोग उनसे मिलते थे, सुनते थे। उन्होंने बहुत सी पुस्तकें लिखीं एवं उनके भाषण भी संकलित हुए। उनकी वाणी और व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक थे। उनकी शिक्षाएँ मानवीय धर्म से ओतप्रोत हैं। गरीबों से सहानुभूति और उनकी सहायता उनकी शिक्षा के अंग हैं। वे जीव-जंतुओं के अधिकारों के हामी थे। वे शाकाहार का सदैव प्रचार करते थे। वे धर्म के मर्म को सीधे-सरल शब्दों में व्यक्त करते थे। वे सहिष्णुता, समताभाव और शिक्षा प्रसार पर जोर देते थे। शायद ही कोई ऐसा राजनेता हो, जो पूना जाने पर उनसे मिलने न जाता रहा हो। उन्होंने साधु वासवानी मिशन को विश्वव्यापी बना दिया। उनकी विनम्रता अद्भुत थी, बिल्कुल स्वाभाविक। हमें उनके दर्शन करने के कई अवसर दिल्ली, बेंगलुरु और पूना में मिले। उनके वार्त्तालाप और दर्शन से शांति महसूस होती थी। बिना किसी भेदभाव के वे सहिष्णुता, समता, न्याय और समन्वय के समर्थक थे। सबसे स्नेह, सौहार्द, प्रेम के संबंध बनें, यही उनका सीधा संदेश था। उनकी अपेक्षा थी कि वंचितों के लिए जो कुछ किया जा सकता है, हर एक को करना चाहिए। मानव सेवा ही भगवान् की सेवा है। उनके अंतिम संस्कार के समय पूर्व उपप्रधानमंत्री श्री एल.के. आडवाणी और पूर्व राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल भी उपस्थित थे। प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि दी। दादा वासवानी भारतीय ऋषि परंपरा के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। उनके देहावसान से देश ने एक मार्गदर्शक खो दिया है। उनकी पुण्य स्मृति के प्रति सादर नमन।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी)

प्रादेशिक भाषाओं की पालना हिंदी से ही संभव

• पं. मदनमोहन मालवीय

मुझको बहुत लोग जानते हैं कि मैं वाचाल हूँ, लेकिन मुझको जब काम पड़ता है तो मैं देखता हूँ कि मेरी वाणी रुक जाती है। यही दशा इस समय मेरी हो रही है। प्रथम तो जो अनुग्रह और आदर आप लोगों ने मेरा किया है, उसके भार से ही मैं दब रहा हूँ, इसके उपरांत मेरे प्रिय मित्रों और पूज्य विद्वानो ने जिन शब्दों में मेरे सभापतित्व का प्रस्ताव किया है, उसने मेरे थोड़े से सामर्थ्य को और भी कम कर दिया है। सज्जनों, मैं अपने को बहुत बड़भागी समझता, यदि मैं उन प्रशंसा-वाक्यों के सौवें हिस्से का भी अपने को पात्र समझता, जो इस समय इन सज्जनों ने मेरे विषय में कहे हैं। हाँ, एक अंश में मैं बड़भागी अवश्य हूँ। गुण न रहने पर भी मैं आपकी मंडली में गुणी के सम्मान पाता हूँ। इसी के साथ मुझको खेद होता है कि इतने योग्य और विद्वानों के रहते हुए भी मैं इस पद के लिए चुना गया। फिर भी मैं आपके इस सम्मान का धन्यवाद करता हूँ, जो आपने मेरा किया है। मेरा चित्त कहता है कि इस स्थान में उपस्थित होने के लिए हमारे हिंदी संसार में अनेक विद्वान् थे और हैं, जिनमें कुछ यहाँ भी उपस्थित हैं और जिनको यदि आप इस कार्य में संयुक्त करते तो अच्छा होता और कार्य में सफलता तथा शोभा होती। अस्तु, बड़ों से एक उपदेश मैंने सीखा है। वह यह है कि अपनी बुद्धि में जो आवे, उसे निवेदन कर देना। मित्रों की आज्ञा, मित्रों की मंडली की आज्ञा-पालन करना मैं अपना परम धर्म समझता हूँ। अनुरोध होने पर अंत में मैंने अपने प्यारे मित्रों से प्रेमपूर्वक निवेदन किया कि साहित्य-सम्मेलन, जिसका सभापति होने का सौभाग्य मुझे प्रदान किया गया है, उसके कर्तव्य का पालन मेरा परम धर्म है। मैं आपसे दूर रहता हूँ तो भी मैं कदाचित् निर्भय कह सकता हूँ कि हिंदी साहित्य का रसपान करने में मुझको अन्य मित्रों की अपेक्षा कम स्वाद नहीं मिलता। उसके स्वाद लेने में मैं अपने किसी मित्र से पीछे नहीं हूँ। किंतु अनेक कामों में रुका रहने के कारण मैं आपके बाहरी कामों का करनेवाला सेवक हूँ। इस काम के लिए मैं अपने को कदापि योग्य नहीं समझता हूँ और इस अवसर पर मैं जिसमें आपको पूर्व उन्नति के दृश्यों को देखना चाहिए था, जिसमें हिंदी की भावी उन्नति का पथ प्रशस्त करना चाहिए था, किसी और ही मनुष्य को इस स्थान पर बैठना चाहिए था, इसके योग्य मैं किसी प्रकार नहीं। अब यदि मैं इस स्थान में आकर आपकी आज्ञा पालन करने का यत्न न करूँ तो उससे अपरोध होता है। केवल इसी कारण मैं इस सम्मान का धन्यवाद देता हूँ और इस समय इस स्थान में आप लोगों की सेवा करने को तैयार हुआ हूँ।

हिंदी साहित्य-सम्मेलन के विषय में जो मतभेद हो रहा है, इसमें कोई संदेह नहीं, उसे स्वीकार करना चाहिए। हठधर्मी अच्छी नहीं। अनेक विद्वानों के मत से यह समय सम्मेलन के लिए उपयुक्त नहीं। नवरात्र दुर्गादेवी के पूजन का समय है, नवरात्र में सरस्वती शयन करती हैं। प्राचीन रीति के अनुसार तीन दिन सरस्वती शयन के दिन हैं। यह नियम आर्यजाति ने इसलिए रखा कि तीन सौ सत्तावन दिन संसार के व्यवहार करो, अपने मस्तिष्क को पीड़ा दे लो, किंतु जाति की रक्षा के लिए इन तीन दिनों में लेखनी मत उठाओ, पत्रा मत पढ़ो, इन दिनों सरस्वती शयन करती हैं। ऐसे समय में मेरे मित्रों ने आप महाशयों को इधर-उधर से खींचकर बुलाया है और इसके लिए मेरी बुद्धि में आता है कि मुझको आपके सामने उनकी ओर से उत्तर देना चाहिए। मैं इतना ही कहूँगा कि जितना मतभेद हो, उसे आपको स्वीकार करना चाहिए और जिन लोगों का मत नहीं मिलता, उनके मत का आदर करके उनसे यही कहना चाहिए कि अब से यह समय उन्नति का होगा।

इसके विचार में यह मेरी बुद्धि में आता है कि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के लिए यह समय बहुत ही उपयुक्त है। हिंदी की दशा इस समय शोचनीय हो रही है। हिंदी साहित्य के इस शयन की अवस्था में सरस्वती शयन कैसा? इस ध्यान से हमारे हिंदी-प्रेमियों में बहुत से लोगों का यदि यह विचार है कि सरस्वती शयन कर रही हैं तो इसमें क्या होता है? हम लोग इस सम्मेलन में उपयुक्त यत्न कर सरस्वती को जगाएँ। बात भी ऐसी ही है। जहाँ रात होती है, वहीं सूर्यनारायण की लालिमा दिखाई देती है। रात के अंधकार के पश्चात् प्रातःकाल होता है तो उसको देखना अच्छा लगता है। ऐसी अवस्था में इस सरस्वती शयन का समय मुझको आशा देता है कि हिंदी भाषा के शयन के समय में जब साहित्य-सम्मेलन होता है, तब इस सरस्वती शयन के समय के उपरांत जैसे विजयादशमी का दिन आता है, वैसे ही मुझको विश्वास है कि सोई हिंदी भाषा, हिंदी साहित्य के जागने का समय निकट है। प्राचीन समय से लोग दुर्गा अष्टमी में विद्या की वृद्धि के लिए देवी की उपासना करते

आते हैं। जिस तरह पहले, उसी तरह आज भी हिंदुस्तान में हिमालय के ऊँचे शिखर से लंका के छोर तक सहस्त्रों-करोड़ों हमारे भाई इस नवरात्र में दुर्गाजी की स्तुति करते हैं। एक ही विद्या है, एक ही भाव है, केवल भाषा इसे पृथक् करती है। तो इससे क्या हो सकता है? जब हम अपनी भाषा के साहित्य की उन्नति के दु:ख में पड़े हुए हैं, तब हमें क्या उचित नहीं कि इसकी उन्नति के लिए सब तरह के यत्न करें और उनके फल उपलब्ध कर उनका प्रकाश करें?

मुझे आशा और विश्वास है कि आपके चित्त में मेरी बातें आ गई होंगी। और बातों में यह बात भी मुझे निवेदन करनी है कि इसके उपरांत विजयादशमी का दिन आता है। यह विजयादशमी वही विजयादशमी है, जिसमें भगवान् रामचंद्रजी ने राक्षसों का नाश करके देश में फिर से सुख-शांति की मंदाकिनी बहाई थी। यह वही विजयादशमी है, जिसकी गूँज आज भी हिंदुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सुनाई पड़ती है, जिसकी प्रतिभा का अनुकरण आज भी हिंदुस्तान के नगर-नगर में लीलाओं द्वारा किया जाता है। देशी राज्यों में उसका अनुकरण किया जाता है, जो कुछ पहले होता था, वही आज भी हो रहा है। पुराने समय में भगवान् रामचंद्रजी ने जो किया, अब वह देशी राज्यों में होता है। वही मारू बाजा बजता है, वही आर्यों के राजा-मजाराजाओं के विजय का डंका बजता है। अब विजय नहीं है, उनका शब्द है, उसे तो सुन लीजिए। आज भी केसरिया जामा पहने राजे-महाराजे अपने-अपने गढ़ों से निकलते हैं। शक्ति के बढ़ाने में आज भी इस समय की प्रतिभा आपको दिखाई देती है। शक्ति ही ने यह बातें कीं और मेरे दुर्बल शरीर और चित्त में बल का संचार किया। मैं आशा करता हूँ कि मेरे और भाइयों के चित्त में भी इसी तरह बल का संचार हुआ होगा। हम सब यही आशा करते हैं कि संकट के समय में बड़े कार्य हो जाते हैं और इस दृष्टि से जो कुछ भूल-चूक हुई हो, उसको भुलाकर एक स्वर से, एक उद्देश्य से, हिंदी की उन्नति के विचार से सम्मेलन होना चाहिए।

सम्मेलन का उद्देश्य

सम्मेलन हुआ है सम्मेलन के लिए। इसमें विजयादशमी का उत्सव मनाने का कुछ प्रयोजन नहीं। इन दिनों जितनी लीलाएँ होती हैं, उनका उद्देश्य यही है कि एक दिन भारतवर्ष में ऐसा था कि विजय का डंका बजता था। इस दशहरे में इस सम्मेलन का भी यही उद्देश्य है और बहुत कुछ संभावना इस बात की होती है कि कोई रोग इस देश में आ गया हो तो सब एकत्र हो उसे मिटाने का प्रयत्न करें। गाँव-गाँव और जिले-जिले के लोग एक स्थान में बैठकर परामर्श करें कि किस प्रकार ऐसी बला टल सकती है। दूसरा सम्मेलन इस श्रेणी का होता है कि काम चल रहा है, लेकिन अच्छी तरह नहीं चल रहा है, इसलिए यद्यपि कुछ संतोष का विषय है तथापि विशेष रूप से एकत्र होकर इस बात का विचार किया जाता है कि कार्य कैसे चले। मेरी बुद्धि में तो हिंदी का ऐसा सौभाग्य नहीं है। हम लोग वर्तमान समय में जो मिले हैं, वह इस दूसरी श्रेणी का सम्मेलन है। कुछ लोगों के मत में हमारी उन्नति कुछ भी संतोषजनक नहीं है। अन्य लोगों के विचार ऐसे हैं कि यह कहना ठीक नहीं है। फिर भी प्रत्येक दशा में यह सम्मेलन आवश्यक हो गया है। यह आवश्यक है कि हम पहले हिंदी की दशा विचारें। किंतु इससे पहले कि हम इस बात का विचार करें, हमारे एक मित्र ने प्रश्न किया है कि पहले यह तो बताइए कि हिंदी है क्या? यह बड़ा टेढ़ा प्रश्न उठा है कि हिंदी क्या है ऐसी दशा में पहले मैं इसी को लेता हूँ। मुझको दु:ख है कि मैं न संस्कृत का ऐसा विद्वान् हूँ कि इस विषय में प्रमाण के साथ कह सकूँ, न भाषा का ऐसा विद्वान् हूँ कि जब प्रमाण की रीति से कोई कुछ न कह सके तो उसका धर्म है कि वह अपने विचारों को उपस्थित करके जो प्रमाण दे सकता हो, उन्हीं को दे।

हिंदी के विषय में बहुत सा विवाद है। हिंदी के संबंध मैं हमारे देश के लिखनेवालों में जो हुए तो हुए ही हैं, हमारे यूरोपियन लिखनेवालों में विलायत के डॉक्टर ग्रियर्सन एक बड़े शिरोमणि हैं। आपने हिंदी की बड़ी सेवा की है, हिंदी सन् १८०३ के लगभग लल्लूलालजी से लिखवाई गई। और भी लोगों ने इसी प्रकार की बात कही है। जो विदेशी हिंदी के विद्वान् हैं, वे तो यही कहते आए हैं कि हिंदी कोई भाषा नहीं है। इस भाषा का नाम उर्दू है। इसी का नाम हिंदुस्तानी है। ये लोग यह सब कहेंगे, किंतु यह न कहेंगे कि यह भाषा हिंदी है। विचार की बात है। सज्जनो! ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित कितने ही अंग्रेज अफसरों ने मुझसे पूछा था कि हिंदी क्या है? इस प्रांत की भाषा तो हिंदुस्तानी है। मैं यह प्रश्न सुनकर दंग रह गया। समझाने से जब उन्होंने स्वीकार नहीं किया तब मैंने कहा कि जिस भाषा को आप हिंदुस्तानी कहते हैं, वही हिंदी है। अब आप कहेंगे कि इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ यह है कि न हमारी कही आप मानें, न उनकी कही हम। इसमें न्यायपूर्वक विचार कीजिए। डॉक्टर ग्रियर्सन का क्या कहना है? मैं उनका सम्मान करता हूँ, किंतु उनकी बात पर न जाकर हमें यह देखना चाहिए कि यथार्थ तत्त्व क्या है। यहाँ इस मंडली में बड़े-बड़े विद्वान् और विचारवान पुरुष हैं। वे इस अच्छी रीति से कह सकेंगे। इसके विचारने में हमको अपने विचारों का दिग्दर्शन करना चाहिए। इसमें बहुत-कुछ अंतर हो सकता है। किंतु मूल में कोई अंतर हो नहीं सकता। हिंदी भाषा के संबंध में विचार करते हुए सबसे पहले संस्कृत की आकृति एक बार ध्यान में लाइए, इसके हिंदी भाषा को आकृति को ध्यान में लाइए। पीछे आप विचारिए कि हिंदी कौन भाषा है और उसकी उत्पत्ति कहाँ से है? संस्कृत की जितनी बेटियाँ हैं उनमें कौन सी बड़ी बेटी है। संस्कृत की बेटियों में हिंदी का कौन सा पद है। इसका संस्कृत से क्या संबंध है? संस्कृत, जैसा कि शब्द कहता है, नियमों से बाँध दी गई है। जो व्यर्थ बातें थीं, वे निकाली गईं, अच्छी-अच्छी बातें रखी गईं, नियमों और सूत्रों से बँधे शब्द रखे गए, जो शब्द नियम-विरुद्ध थे, उनके लिए कह दिया गया कि ये नियम से बाहर हैं। नियमबद्ध शब्दों का व्याकरण में उल्लेख हो गया। आप जानते हैं कि संस्कृत से प्राकृत हुई। जो लोग यह कहते हैं कि संस्कृत कभी बोली नहीं जाती थी, वे संस्कृत को नहीं जानते। वे थोड़ी प्राकृत पढ़ें तो उनको मालूम हो जाएगा कि पाकृत तो बोली जा नहीं सकती। संस्कृत के बोले जाने में कोई संदेह नहीं। संस्कृत से प्राकृत हुई। उसके पीछे

सौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री, कदाचित् आपके ध्यान से होगा कि दंडी आठवीं शताब्दी में थे। अपने समय में उन्होंने लिखा था कि भारत में चार भाषाएँ हैं—'महाराष्ट्री, सौरसेनी, मागधी और भाषा।' ये ही चार भाषाएँ चली आई हैं।

हिंदी भाषा का स्वरूप

अब आपको मालूम हो गया होगा कि जो महाराष्ट्री भाषा थी, मागधी भाषा थी, इनके बीच में बहुत भेद था। मेरे शब्दों पर ध्यान दीजिए। इन भाषाओं में संस्कृत भाषा के शब्दों के रूप का अनुरूप आपको मिलता है। यह जितना हिंदी भाषा में मिलता है। उतना दूसरी किसी भाषा में नहीं मिलता। संस्कृत से शब्दों को ले लीजिए। अब देखिए कि हिंदी में यह बात कहाँ से आई। संस्कृत से इन भाषाओं का क्या संबंध था? शकुंतला में 'तुक मणि दबे बलीयममणाणि' कहाँ से आया होगा। एक शब्द को आप लीजिए। उसको देखिए कि प्राकृत में उसका क्या रूप है और भाषा में क्या हुआ। इस प्राकृत को देखने से आपको मालूम होगा कि संस्कृत शब्दों का प्राकृत रूप क्या-से-क्या हो गया। भाषा के कितने ही रूप आपको मिल सकते हैं। परंतु यह बात मेरे कहने से न मानिए। मेरे सामने इस समय चंद कवि के रासो में बहुत से रूप ऐसे हैं, जिनको इस मंडली में पंडित सुधाकरजी और दो-तीन को छोड़कर बहुत कम लोग जानते हैं। मैं तो उसका चौथाई भी समझ नहीं सकता। मैं जो देखता हूँ, वह आपके सामने उपस्थित करता हूँ। आप ही देखकर यह कहें कि कौन ठीक है। संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत और प्राकृत से तीसरा रूप हिंदी दिखाई दिया। अब आप थोड़े से शब्दों पर विचार करें। अग्ग का आग और योग का याग हो गया। चंद के काव्य में तुलसीदास की एक चौपाई को बीच में यदि मैं रख दूँ तो बहुत सज्जनों को यह न मालूम होगा कि दोनों के बीच कितना अंतर है। संवत् ११२५ में चंद कवि ने इसको लिखा। उनकी भाषा में जितने रूप देखते हैं, वे रूप इस भारतवर्ष की किसी दूसरी भाषा के रूप से नहीं मिलते। मिलते हैं, हिंदी से और उतने ही, जितनी आज की अंग्रेजी चौसर की अंग्रेजी से मिलती है। ऐसी दशा में हिंदी भाषा क्या है, इसका उत्तर यह है कि हिंदी भाषा वह है, जिसमें चंद कवि से लेकर आज तक हिंदी के ग्रंथ लिख गए। यह सही है कि पहले इसका नाम भाषा था, हिंदी भाषा या सूरसेनी।

क्या आप भाषा की उत्पत्ति पूछते हैं? कितने ही लोगों को अपनी माँ का नाम नहीं मालूम। बहुत सी औरतें ऐसी हैं, जिनको अपने लड़कों का नाम नहीं मालूम। प्रयाग और बनारस के कितने ही बालकों का नाम सिर्फ बच्चा है। पिता दादा के नाम का पता लगाना और भी कठिन है।

सज्जनो! ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित कितने ही अंग्रेज अफसरों ने मुझसे पूछा था कि हिंदी क्या है? इस प्रांत की भाषा तो हिंदुस्तानी है। मैं यह प्रश्न सुनकर दंग रह गया। समझाने से जब उन्होंने स्वीकार नहीं किया तब मैंने कहा कि जिस भाषा को आप हिंदुस्तानी कहते हैं, वही हिंदी है। अब आप कहेंगे कि इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ यह है कि न हमारी कही आप मानें, न उनकी कही हम। इसमें न्यायपूर्वक विचार कीजिए। डॉक्टर ग्रियर्सन का क्या कहना है? मैं उनका सम्मान करता हूँ, किंतु उनकी बात पर न जाकर हमें यह देखना चाहिए कि यथार्थ तत्त्व क्या है।

नाम रखते हैं किंतु उसको याद नहीं रखते। अस्तु, देखना चाहिए कि चंद के समय से जो भाषा लिखी जाती है, वह एक है, उसी को हम हिंदी भाषा कहते हैं। कभी-कभी लोग उसका नाम बदल देते हैं। भीष्म को लीजिए। देवव्रत उनका नाम था। जब उन्होंने पिता की प्रसन्नता के लिए राज्य त्याग किया, तो ब्रह्मचर्य अंगीकार कर कहा कि हम विवाह न करेंगे, केवल इसलिए कि पिता प्रसन्न होंगे। उस दिन से उनका नाम भीष्म हुआ, छठी के समय नहीं हुआ था। इसी तरह भाषा का भी नाम बदलता है। पहले कुछ था, अब कुछ है। भाषा का नाम पहले और था पर अब तो हिंदी कहके इसे पूजते हैं, प्रेम करते हैं।

इस हिंदी भाषा का दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होगा कि हिंदी भाषा की और भाषाओं के साथ तुलना करने से क्या पता लगता है। इसमें भी मैं इतना कहूँगा कि हिंदी सब बहिनों में माँ की बड़ी और सुघर बेटी है। संस्कृत के वंश बेटयों के २२ करोड़ बोलनेवाले हैं, उनमें पाँच या छह करोड़ मंद्राज में तमिल और तेलुगु बोलते हैं। उनकी भाषा में संस्कृत का भंडार भरा हुआ है। उनके वाक्यों में संस्कृत की लड़ी-की-लड़ी आती है। फलतः संस्कृत की महिमा इस देश में गाज रही है और बहुत दिन तक गाजेगी। अब रहा कि इन बहनों में कौन बड़ी और कौन छोटी है। यह पक्षपात है कि हमारी भाषा हिंदी है और हम हिंदू हैं, हिंदी का पक्ष करें या हमारा यह विचार है कि (छोटे मुँह बड़ी बात होती है, मगर चित्त में जो कुछ है कह देंगे) दंडी कवि ने भी उसमें पक्षपात किया है। किंतु हिंदी भाषा को यदि मैं आपके सामने यह कहूँ कि यही सब बहनों में माँ की अच्छी पहली पुत्री है, अपने-अपने पिता और माता की होनहार मूर्ति है, तो अत्युक्ति न होगी। सौरसेनी में शब्द बँधे हुए हैं, महाराष्ट्री में उखड़ते-पुखड़ते नाचते-कूदते जाते हैं। आपको अनेक शब्द हिंदी भाषा में मिलते हैं, जिनके सात-सात रूप हैं।

भारतीय सभी भाषाओं में हिंदी की न्यूनाधिक झोली-की-झोली भरी पड़ी है। हाँ, यह मानना पड़ेगा कि इनके रूप में बड़ा परिवर्तन है। जैसे कि बनारस से नीचे बंगाल में चलिए तो आगे चलकर बिहार में बिहारी मिलेगी, बंगाल में जाइए तो लकारों का संगीत पाया जाता है, हरिद्वार से जब गंगा चलीं और उनके संग में जो पत्थर के टुकड़े बहते हुए चले तो हरिद्वार से काशी आते-आते रगड़ते-रगड़ते कोमल और चिकने हो गए। इसी प्रकार यह बिहार में गाजीपुर और बनारस से नीचे रगड़कर प्रिय कोमल स्वरों के हो गए। जब आप बंगाल में पहुँचे तब आपको कोमलता का घर मिला। वहाँ आपकी भाषा भी अधिक कोमल दिखाई दी। यहाँ की भाषा का रूप देख हमारे यूरोपियन विद्वान् भी भ्रम

में पड़ गए हैं कि क्या हिंदी महाराष्ट्री और सौरसेनी, पंजाबी और बँगला सब वस्तुत: एक हैं। हमें भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि इनके बीच बड़ा अंतर हो गया है।

संस्कृत शब्दों का हिंदी ही में कितना परिवर्तन हो गया है। जो कर्ण या वह कान, नासिका थी वह नाक है, जो हस्त था वह हाथ है, पानीय का पानी है। यह परिवर्तन सभी जगह दिखाई देता है। लक्ष्मी की भाषावालों ने लिखा लच्छमी या लक्खी। लच्छमी कहने में जो प्रेम आया वह लक्ष्मी कहने में नहीं। जैसे-जैसे भाषा बंगाल की ओर बढ़ी वैसे-वैसे कहा गया कि इसमें जितना कर्कशपन है, उसे काट दो। अब बेटियों में बड़ा रूपांतर हुआ। यहाँ तक यह कह दिया कि भाषा की उत्पत्ति क्या है। सिवाय इसके यह निवेदन करता हूँ कि जितने और प्रमाण हैं, जिनसे भाषा की अवस्था को जान सकते हैं, अब उसको जाँचना चाहिए। भाषा के रूप की शब्दमाला क्या है? इन दोनों के विचारों से हिंदी भाषा ही प्राचीन है। डॉक्टर ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि हिंदी संस्कृत की बेटियों में सबसे अच्छी और शिरोमणि है। आप कहेंगे कि इसमें कौन फूहड़ मालूम होती है? यह मेरा कहना आवश्यक भी नहीं है। यह समझा जा सकता है कि हिंदू हूँ और पक्षपात से कहता हूँ। आज मैं अपने बंगाली, हिंदुस्तानी, गुजराती भाइयों से पुकारकर कहता हूँ कि भाषा एक चली आई और संस्कृत भी एक है। जब प्राकृत हुई तब अंग की प्राकृत हो गई किंतु मूल में एक ही रही। जितनी भाषाएँ हैं, हमारी हैं। बंगाली हमारी भाषा, पंजाबी हमारी भाषा और गुजराती हमारी भाषा है। अब इसके विचार से कौन किसको कहे कि कौन बुरी है।

चंद कवि के रासो को ले लीजिए। लल्लूजी, कबीरदास, गुरु नानकजी, मलिक मोहम्मद जायसी, तुलसीदास, सूरदास, अष्टछाप, केशवदास, दादूदयाल, गुरु गोविंदसिंहजी, बिहारीलाल, किस-किसके नाम गिनाऊँ। मुझे सब गिनाना भी नहीं। बिहारीलाल को ले लीजिए। इन्होंने १६५० के लगभग ग्रंथ लिखा है। बहुत वृक्ष वाटिकाओं में उगते हैं, कितने ही आपसे आप उगते हैं, उनका झाड़ भी बड़ा फैला हुआ होता है।

हिंदी में ग्रंथ-रचना

हिंदी अपनी बहनों में सबसे प्राचीनतम और बड़ी बहन है और माता की रूप-आकृति इससे बहुत मिलती-जुलती है। यह सब जो बड़ी-छोटी बातें मैं आपसे निवेदन करता हूँ, इसका दूसरा प्रमाण मिलना चाहिए। शब्दमाला, शब्दों की रचना यह तो हो गया। दूसरा प्रमाण है ग्रंथमाला। अधिक हिंदी ग्रंथमाला का, भाषाओं की ग्रंथमाला का शिवसिंहजी ने, जैसा कि मालूम होगा, इन बातों को दिखाया है। प्रथम हिंदी भाषा का काव्य ७७० में हुआ। भाषा के ग्रंथों में राजा नाम की सहायता और आदेश से दूसरा जो हमें मिलता है, वह पूज्य कवि ८०२ में हुआ और तीसरा लेख जो मिलता है, वह राव खुमान सिंह ने एक ग्रंथ हिंदी में लिखा। ९०० में खुमान रासो प्रसिद्ध हुआ। चौथा ग्रंथ, जैसा कि मैं अभी आपसे निवेदन कर चुका हूँ, चंद कवि कृत रासो है। जो भाषा के विद्वान् हैं और जो भाषा की रूप-रचना जानते हैं, वे बिना शंका के यही कह देंगे कि जिस भाषा में चंद कवि ने ग्रंथ लिखा है, वह भाषा बहुत पहले से हुई है। यह नहीं हो सकता कि जिसकी भाषा प्रिय होने लगी, उसी में ग्रंथ लिख डाला। चंद कवि से पहले अनेक कवि हो चुके थे। हिंदुओं में ब्राह्मण और कायस्थ उर्दू अधिक पढ़नेवाले थे। पर हमारे क्षत्रिय भाइयों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। उनमें पढ़ने का प्रचार कम हुआ। वह इसके बदले जमींदारी और खेतीबारी में रहे और उसी से प्रेम रहा और विद्या को कम पढ़ा। वैश्य जो हमारे भाई हैं, उन्होंने कहा कि जिसको नौकरी करनी हो, वह पढ़ना जाए, उन्हें इतनी फुरसत कहाँ। वह दूसरी ओर उन्नति करते रहे। आपको उर्दू के ज्ञाता मिलेंगे—ब्राह्मण और कायस्थ। ब्राह्मणों में काश्मीरी ब्राह्मण बुद्धि में प्रखर, भाषा के विशेष योग्य थे। इनका प्रेम उर्दू की ओर बढ़ गया और वे इसी तरफ झुके। कायस्थ भाइयों का भी यही हाल हुआ कि सरकारी दफ्तरों में उर्दू गाज रही थी, हिंदी सभ्य भाषा भी नहीं समझी जाती थी।

हमारे पंडित मथुरा प्रसाद, राजा शिवप्रसाद कह गए हैं कि हिंदी भाषा को यह कहना कि हिंदी कोई भाषा ही नहीं, अनुचित है। यह दशा थी। इसी कारण से हिंदी की उन्नति न हुई। अब क्या होता है। बस बीच में और-और प्रांतों की उन्नति हुई। बंगाल में, जैसा कि मैं आपसे निवेदन कर चुका हूँ, भाषा का बड़ा सुधार हुआ। एक अंश में सर माइकल मधुसूदन को लीजिए। हेमचंद्र, बंकिमचंद्र इत्यादि बंगाली बड़े-बड़े कवि हुए हैं, उन्होंने उपन्यास, इतिहास और काव्य से अपनी भाषा को बनाया-सजाया। इसके उपरांत कबीरदास हुए, १५४० में मलिक मुहम्मद जायसी हुए। गोस्वामी तुलसीदास जी, श्री केशवदासजी, दादू दयालजी, गुरु गोविंद सिंह जी, बिहारीलाल को ही देखिए। हर एक की भाषा में हिंदी के पुष्ट रूप दिखलाई पड़ रहे हैं। यह सिद्ध है कि भाषाओं में मरहठी भाषा में, जो सबसे पुष्ट है, नामदेव १३वीं सदी में थे। बँगला भाषा में, जिसे आज देखकर हम आनंदित होते हैं और यदि सच कहूँ तो ईर्ष्या भी होती है, बड़े प्रसिद्ध चंडीदासजी १४वीं सदी में हुए। चंद के समय तक न मराठी में, न बँगला में, न गुजराती में इतना बड़ा काव्य नहीं था, जितना बड़ा काव्य चंद कवि का हिंदी में मिलता है। इस प्रकार से हिंदी भाषा आरंभ हुई।

भाषाओं की उन्नति

यदि यह जानना चाहते हैं कि किसका भंडार, किसका रूप और कौन अधिक थी, तो इसके देखने के लिए मैं आपके सम्मुख कुछ बातें उपस्थित करता हूँ। यह जो सन् १८५७ ई. में विप्लव हुआ, उस समय से भाषाओं की और उन्नति हुई। १८३५ ई. में बंगाल में और पंजाब में फारसी भाषा दफ्तरों में थी। अंग्रेजी गवर्नमेंट ने इसको मिटाकर मराठी, गुजराती, बंगाली और उर्दू को इनके स्थान पर किया। वहीं से देशी

भाषाओं की उन्नति की रेखा बँधी। अब इस बात का विचार कीजिए कि सन् १८३५ के पूर्व और १८५८ के उपरांत इन सब भाषाओं का कैसा भंडार था? इनमें ग्रंथमाला कैसी थी। ७७० से लेकर आप केवल बड़े-बड़े कवियों को लीजिए। उनके ग्रंथ आज तक हिंदी भाषा का भंडार भर रहे हैं। चंद कवि के रासो को ले लीजिए। लल्लूजी, कबीरदास, गुरु नानकजी, मलिक मोहम्मद जायसी, तुलसीदास, सूरदास, अष्टछाप, केशवदास, दादूदयाल, गुरु गोविंदसिंहजी, बिहारीलाल, किस-किसके नाम गिनाऊँ। मुझे सब गिनाना भी नहीं। बिहारीलाल को ले लीजिए। इन्होंने १६५० के लगभग ग्रंथ लिखा है। बहुत वृक्ष वाटिकाओं में उगते हैं, कितने ही आपसे आप उगते हैं, उनका झाड़ भी बड़ा फैला हुआ होता है। जैसे-जैसे वे ऊपर उठते हैं, वैसे-वैसे उनकी छाया अधिक होती जाती है। कुछ ऐसे होते हैं, जिनको आप काटकर मिट्टी को बनाकर किसी स्थान में लगाते हैं और अपनी वाटिकाओं में उगाते हैं। इसी तरह भाषा में जो बहुत शब्द हैं, जैसे कर्ण से कान, हस्त से हाथ संस्कृत से उत्पन्न हुए हैं, वे प्राकृत रूप में अपने आप उपजे। जो शब्द संस्कृत के उठाकर रख दिए हैं, वे वैसे ही हैं जैसे कि गुच्छा, कितने ही वृक्ष थोड़े समय में सूख जाएँगे, फिर उनमें शक्ति नहीं कि दूसरे फल उत्पन्न करें। जहाँ ये मुर्झाए, फिर इन्हें हटाना ही पड़ेगा। इसी प्रकार से हिंदी भाषा के तद्भव शब्द जो हैं, वे निज की संपत्ति हैं, उनके जिन के अवयव पुष्ट हैं, वे फूले-फलेंगे और अपने आप बढ़ते चले जाएँगे। ये सब प्रबल और पुष्ट होते हैं। किंतु जिन शब्दों में किसी का पैबंद लगा दिया जाता है, वे बनने को बन जाते हैं किंतु पुष्ट नहीं होते। जो लिये हुए शब्द हैं, उनमें भाषा की शक्ति नहीं। बच्चा माता के दूध से जितना पुष्ट होता है, ऊपरी दूध से उतना पुष्ट नहीं होता। जो बच्चा धीरे-धीरे माता का दूध पीता है, वह पुष्ट होता जाता है और अंत में संसार में काम करने योग्य होता है। फिर भी हरेक भाषा में हरेक तरह के शब्द मिलेंगे ही, जैसे भोजन में दाल, भात, रोटी इत्यादि। और संस्कृत की जितनी बेटियाँ हैं, वे सब भी माँ के गहनों को पहनेंगी, चाहे वह अच्छा हो चाहे बुरा। सब माँ का गहना है। उनमें एक गहना, दो गहना, चार गहना माँ का है। माँ के गहने से बड़ा प्रेम होता है। उस समय उनको धारण करने में विशेष आनंद होता है। किंतु जो सब गहने माँ के ही हों तो सब कहेंगे कि यह सब माँ की संपत्ति है। इस लिए हिंदी भाषा का यह सौभाग्य है कि उसके जो शब्द हैं, वे सब माता के ही प्रसाद हैं। किंतु माता ने कहा—हे बेटी! ये तेरे हैं, तू इनका व्यवहार करना।

बिहार में, बंगाल में विद्यापतिजी ने हिंद भांडार से फूल-पत्ते ले जाकर अपने काव्य-ग्रंथ को भरा है। इस प्रकार आप देखेंगे कि दक्षिण में मराठी में भी जो शब्दों का मेल है, उसमें जो कुछ तद्भव शब्द व्यवहार में लाए जाते हैं, वे यहीं के हैं। हम आप 'मुझ, तुझ' कहते हैं, मराठी में 'माझा, तुझा' कहते हैं। हाँ, यह मानना पड़ेगा कि इन शब्दों का उच्चारण बंगाल में और है, महाराष्ट्र में और। हमें इस बात की ईर्ष्या नहीं है, अगर वह सबकी माँ नहीं तो मौसी है। हम तो सबके बालक हैं, सबके पैरों पर लोटेंगे। माँ ने भोजन दे दिया तो ले लेंगे, मौसी ने दे दिया तो ले लेंगे। वह हमारी, हम उनके हैं। आप देखेंगे कि हिंदी भाषा में शब्दों का अधिक भांडार है, यह बड़ा प्रबल है और हिंदी की यह बड़ी संपत्ति है। इस प्रकार से आपकी ग्रंथमाला की शब्दावली का भांडार भरा हुआ है। सन् १८३४ से १८५८ तक महाभारत का प्रथम अनुवाद हुआ। इसके उपरांत एक विशेष दशा आई। आप जानते हैं कि रीति जो पड़ जाती है, वह छोड़े नहीं छुटती। जिस-जिस स्थान में आप देखेंगे, लता वृक्ष के सहारे फैलती पाएँगे। सबसे बड़ा सहारा प्रत्येक भाषा का राजा ही होता है। बिहारी ने जयपुर के महाराज के यहाँ जाकर अपनी कविताशक्ति का चमत्कार दिखाया। शिवाजी महाराज के आश्रय में भूषण कवि ने अपनी कविताशक्ति का परिचय दिया। एक ओर युद्ध में तलवार नाचती थी, दूसरी ओर उनकी कविता नाचती थी। राजा का आश्रय दो प्रकार का होता है। एक तो प्रत्यक्ष, दूसरा गुप्त। इन दोनों की आवश्यकता है, किंतु इस समय मैं प्रत्यक्ष को ही लूँगा। जब अँगरेजी गवर्नमेंट इस देश में आई, तब उसने बड़ी ही सुव्यवस्था की, जिसके लिए उसे सच्चे हृदय से धन्यवाद देना चाहिए। इसने इस देश में ऐसा नियम स्थापित किया, जिससे आज इतना बड़ा समारोह हो रहा है।

संस्कृति का प्रचार

याद रहे कि कोई व्यक्ति चाहे वह ऊँचे घर का बालक ही क्यों न हो, गिरता है, तब बुरा गिरता है। यह पवित्र आर्य जाति तो अपनी प्राचीन महिमा से गिरी तो ऐसी गिरी कि फिर से उसका पुनरुद्धार न हुआ। इस आर्य जाति के पतन के कारण इससे महाराष्ट्रों और सिक्खों का अलगाव हुआ। जबसे अँगरेजी गवर्नमेंट आई, तब से आप देखते हैं कि विद्या की चर्चा बढ़ गई। यंत्रालय आया, साथ-ही-साथ बड़ी भारी शिक्षा आई। आपने देखा होगा कि अँगरेज लोग अपनी भाषा की कैसी उन्नति करते हैं। अँगरेजी गवर्नमेंट ने यहाँ आ अँगरेजी विद्या के प्रचार का उपाय किया, साथ-साथ आपकी संस्कृति-भाषा की उन्नति का भी पथ प्रशस्त किया। इस काशीपुरी में सबसे पहले क्वींस कॉलेज और संस्कृति कॉलेज स्थापित हुआ, जिससे हिंदुओं की भाषा की रक्षा हुई। गवर्नमेंट के उत्तम कार्यों का धन्यवाद हम हिंदू किसी प्रकार कर नहीं सकते और आज जो आपके भारतवर्ष में कुछ जनों में संस्कृत का प्रचार देख पड़ता है—इस काशी ही में धुरंधर पंडित मिलते हैं, जिनका सम्मान बड़े-बड़े लोग करते हैं—उसका अन्यतम कारण अँगरेज सरकार का संस्कृत प्रचार है। इस नीति का फल है। मैंने आपके इसको सुनकर नहीं कहा है। डॉक्टर बालेष्टाइन जब प्रिंसिपल थे, तब उन्होंने लेख लिखा था कि हमको केवल संस्कृत के ग्रंथों का अनुवाद कर के हिंदी भाषा में प्रचार करना चाहिए, सो उन्होंने अपने समय में जो आवश्यक था, वह कर डाला। किंतु खेद की बात है कि इतना अवसर पाने पर भी हम जगाए जाने से आप नहीं जागे। गवर्नमेंट की सहायता से भी नहीं जागे। इस प्रांत में भाषा की उन्नति का बीज सबसे पहले बोया गया था किंतु उसी प्रांत की हिंदी भाषा अपनी और बहिनों के सामने मुँह मोड़ खड़ी है।

अब १८३५ के लगभग आ जाइए। उस समय गवर्नमेंट के सरकारी दफ्तरों में फारसी में काम होता था। गवर्नमेंट ने १८३५ में यह आज्ञा

दी कि हिंदुस्तान की भाषाएँ भी काम में लाई जाएँ। इस आशा के फल से इस प्रांत में उर्दू जारी हो गई, हिंदी जारी नहीं हुई, इसका फल यह हुआ कि हिंदी की बड़ी अवनति हुई। यह सत्य है कि सन् १९४४ में जब टामसन साहब लेफ्टिनेंट गवर्नर थे, सरकार ने हिंदी भाषा का पढ़ना-पढ़ाना आरंभ किया। यदि यह न हुआ होता, तो आज आपको हिंदी को जाननेवाले इतने भी न मिलते, जिनसे लोगों को पढ़ाने का अवसर मिलता। फिर भी, अदालतों में हिंदी के प्रवेश न करने से हिंदी की उतनी उन्नति नहीं हुई। उर्दू सरकारी दफ्तरों में जारी थी, उसी का प्रचार था। फिर भी उर्दू का वैसा प्रचार नहीं हुआ जैसा होना चाहिए था। उर्दू पुस्तकों की उतनी उन्नति नहीं हुई, जितनी बंगाली, महाराष्ट्री और गुजराती की। मैं जानता हूँ कि मुसलमान अब जागे हैं, किंतु पचास-साठ वर्ष तक उन्होंने उर्दू की वैसी उन्नति नहीं की, जैसी करनी चाहि थी। उर्दू की उन्नति में बाधा पड़ने का एक कारण यह है कि उर्दू, विशेष करके वह उर्दू, जिसे अधिकतर उर्दू के प्रेमी लिखते हैं, अरबी और फारसी के शब्दों से भरी होती है, जिसके जाननेवाले लोग कम हैं और जिसके लिखनेवाले लोग भी कम हैं। सन् १८५८ में जब गवर्नमेंट ने विद्या के विभाग के नियम बनाए, उन्हीं दिनों स्कूल के लिए हिंदी पुस्तकें छपवाईं और बहुतेरे विद्वानों की सम्मति ली। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ने सन् १८७३ के लगभग २३१ पुस्तकों का संचय किया। गवर्नमेंट की सहायता से आदित्य रामजी ने एक-दो अनुवाद अँगरेजी पुस्तकों के किए। राजा शिवप्रसादजी से सम्मति ली गई। लोगों को इस पर ध्यान देना चाहिए कि हिंदू-मुसलमान दोनों की तरफ से, जहाँ तक मुझको मालूम हुआ है, इन पुस्तकों के पढ़नेवाले आधिक नहीं थे, इसलिए दोनों की उन्नति नहीं हुई।

प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति

और प्रांतवालों ने जिन्होंने अँगरेजी पढ़ी, उनकी दूसरी भाषा मातृभाषा थी, बंगालियों ने अँगरेजी पढ़ी, उनकी दूसरी भाषा बँगला थी। बंगालियों को ले लीजिए, चार विद्वानों ने बंगाली भाषा को जन्म दिया। पचास वर्ष में बँगला ने ऐसी उन्नति की कि उसको देखकर न केवल संतोष ही होता है बल्कि ईर्ष्या भी होती है। मराठी में ऐसा ही हुआ कि जिन्होंने अँगरेजी पढ़ी, उन्होंने साथ-साथ अपनी भाषा भी पढ़ी। गुजरात में वर्नाक्यूलर सोसाइटी बनी। संस्कृत से अनुवाद करना आरंभ किया गया। उनकी भाषा की पुस्तकें जितनी बिकने लगीं, वह सभी को मालूम है। अनुवाद का अंत नहीं। आज ऐसा होता है कि अंग्रेजी भाषा में जो अच्छी पुस्तकें छपती हैं, उनका अनुवाद हो जाता है। इधर हिंदू, मुसलमान, काश्मीरी, कायस्थ, हमारे सब भाइयों ने सिर्फ उर्दू लिखना आरंभ किया। 'गुलजारे नसीम' पंडित दयाशंकर नसीम ने लिखी। हिंदुओं को यह तो शौक हुआ कि वह लिखें, लेकिन हिंदी में लिखने का शौक नहीं हुआ। पंडित रत्ननाथ सरशार ने 'फिसानये आजाद' लिखकर उर्दू भाषा को अनमोल हार पहना दिया। पर हिंदी जाननेवालों को उस हार का पता नहीं कि वह कैसा है—मूँज का हार है या किसका? यह सत्य है कि मुसलमान कवियों ने हिंदी भाषा की भी सेवा की है। मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत लिखा है, जब तक हिंदी भाषा रहेगी, उनका नाम रहेगा। किंतु मैं आपको यह दशा दिखलाता हूँ कि काश्मीरी भाइयों ने जो लिखा, वह उर्दू में। हमारे हिंदू भाइयों में कायस्थ भाइयों ने बहुत समय से बहुत कुछ लिखा किंतु वह भी उर्दू में। उन्होंने विज्ञान काव्य की कितनी ही पुस्तकें लिखीं। हिंदू मुसलमानों द्वारा उर्दू की उन्नति का यह यत्न किया गया सही, किंतु हमें तो बँगला की उन्नति और वृद्धि से संतोष होता है; मराठी, गुजराती से भी ऐसा ही होता है। वहाँ विद्या सरस्वती आप-ही-आप चली आई। इधर हिंदी के लिए काम करनेवाले नहीं। यह दशा आपकी है। १८३५ और ५८ से पहले आपकी हिंदी भाषा अपनी माँ की सुंदर छवि को लिये हुए अपने भांडार को भरे आनंद के साथ बैठी हुई आपको देखती है। १८३५ और ५८ के बाद इसकी और बहिनें आगे बढ़ गईं, यह जहाँ की तहाँ रह गई। कहते हुए दुःख होता है कि जिस हिंदी के लिखनेवालों में चंदकवि, तुलसीदास, सूरदास, बिहारीलाल हो गए हैं, बबुआ हरिश्चंद्र हो गए हैं, वह हिंदी आज अपनी बहनों के सामने आँखें नीची किए खड़ी है। हिंदी के प्रेमियो! तुम्हारे और हमारे लिए यह बड़ी ही लज्जा की बात है। यह सच है कि अंग्रेजी कार्यालयों में हिंदी का प्रचार अधिक नहीं। १८५८ में जब राजा शिवप्रसाद विद्यमान थे, उस समय अनेक सज्जनों ने इस बात को कहा था कि सरकारी दफ्तरों में हिंदीभाषा का प्रवेश हो, किंतु उस समय यह बात बातों ही में रह गई।

अदालतों में हिंदी

अंत में सर एंटनी मेकडानल का भला हो, उन्होंने यह आज्ञा दी कि कचहरियों में जो दरख्वास्तें दी जावें, हिंदी-उर्दू दानों में लिखी जावें। उस समय से हम लोग हिंदी भाषा की विशेष उन्नति करने लगे हैं। जब रोगी दुर्बल हो सन्निपात की दशा को पहुँच जाता है, तब पहले उसका ज्वर छुड़ाया जाता है, फिर उसका आहार आदि ठीक किया जाता है अंत में यह पहाड़ हट गया। किंतु बड़े धिक्कार और बड़े लज्जा की बात है कि यद्यपि यह हमारे मार्ग से काटकर हटा दिया गया तो भी हम लोगों ने आज तक इससे पूरा लाभ न उठाया है, हम वकील, हम मुख्तार, हम व्यवहार करनेवाले महाजन और वह लोग जो कचहरी में वकालत करते हैं और अपने हिंदू भाइयों के मुकदमे में उनका धन व्यय कराते हैं, वे लोग भी हिंदी भाषा की ओर से उदासीन हैं। कितने लोग हैं, जो जाति का उपकार करते हैं। कहते हैं कि जाति बिना भाषा जीवित नहीं रह सकती, जैसे कि नाल के बिना बालक नहीं जीवित रह सकता। किंतु क्या यह बात सत्य है? जरा बंगाली, मराठी आदि को देखिए। हिंदी भाषा के कितने लोग हैं, जिनको इस बात से दुःख और लज्जा होती है कि यह आर्यावर्त्त देश, जहाँ कि आप देखेंगे कि लाखों लोग ऐसे हैं, जो अपनी माँ की बोली से परिचय नहीं रखते। सब आशा-उन्नति को छोड़ दीजिए। उन्नति करनेवालों के सामने खड़ा होना छोड़ दीजिए। जब तक आप इस लज्जा को न मिटावें, अपनी माँ की बोली न सीखें, तब तक आप मुँह न दिखाएँ। मातृभाषा के सीखने में कौन लज्जा करता है? अब आप लोग अपने हृदय में आज से इस बात का प्रण कर

लें कि जब तक आप मातृभाषा को सीख ने लेंगे, तब तक आप मस्तक ऊँचा न करेंगे। कोई अंग्रेज को अंग्रेजी भाषा से परिचित न हो या कोई और देश का पुरुष, जो अपने देश की भाषा न जानता हो, क्या कभी गौरवान्वित हो सकता है? जब हमारी यह दशा है, तब क्यों ने इस भाषा की दुर्दशा होगी और क्यों न हम को औरों के सामने दुर्बलता स्वीकार करनी पड़ेगी? यह सत्य है कि कुछ लोग अपनी मातृभाषा का काम करते हैं, किंतु ऐसे लोग कितने हैं?

मेरा यह प्रस्ताव नहीं है, मेरा यह निवेदन है कि जो हुआ वह हुआ, अब क्या करना चाहिए। आपको यह आवश्यक है, कि सरकारी दफ्तरों से जो नकलें ली जाती हैं, उनको आप हिंदी में लें, जो डिग्रियाँ तजबीजें आदि मिलती हैं, उनको आप हिंदी में लें। यह सब आपके लिए आवश्यक है। गवर्नमेंट ने आपको जो अवसर दिया है, उसे आप काम में नहीं लाते। इसके उपरांत यह भी सत्य है कि आज तक इस कारण से आपके अंग्रेजी पढ़नेवालों में केवल उर्दू का अधिक प्रचार है। अब मैं यह आशा करता हूँ और सोचता हूँ कि जब तक यह प्रचार रहेगा, तब तक हिंदी भाषा को उन्नति में बड़ी रुकावट रहेगी। उर्दू भाषा रहे, कोई बुद्धिमान पुरुष यह नहीं कह सकता कि उर्दू मिट जाए। यह अवश्य रहे और इसके मिटाने का विचार वैसा ही होगा, जैसा हिंदी भाषा के मिटाने का। दोनों भाषाएँ अमिट हैं, दोनों रहेंगी। उर्दू भाषा के प्रेमी करोड़ों हैं और इस पचास वर्ष में उन्होंने बहुत कुछ उन्नति की है। मौलवी जकाउल्लह साहब, मुहम्मद हुसेन आजाद और देहली के नजीर अहमद को लीजिए, उस शब्दकोष को लीजिए, जो हैदराबाद दक्खिन में छपकर तैयार हो गया है। हैदाराबाद में मुसलमान भाई २५ वर्ष से उर्दू की उन्नति का बड़ा यत्न कर रहे हैं। हमको संतोष और सुख होता है कि मौलवी शिबली के काम से उसकी उन्नति में अधिकता हुई है और उसकी उन्नति हमारे देश की उन्नति है। हम इसकी भलाई चाहते है, किंतु इसी के साथ-साथ हमें यह जो कहना चाहिए, कि हिंदी जानने वाले इस प्रांत में बहुत हैं। पिछले मनुष्यगणना से जान पड़ा है कि एक उर्दू जाननेवाला है, तो चार हिंदी जाननेवाले। हमारे मुसलमान भाई, जिनको इसका प्रेम है और जो देशभक्त हैं, जिनसे हमारे देश की सब तरह की उन्नति है, वे उर्दू की उन्नति का यत्न करें और हिंदी जाननेवाले हिंदी की उन्नति का। इस देश में हिंदी जाननेवालों की कमी नहीं है, कोई दस-बारह करोड़ है। इनकी हिंदी-भाषा की उन्नति करने के लिए हमें क्या उपाय करना चाहिए? जितना अब विचार हो चुका है, उससे आपने यह देख लिया कि भाषाओं की अवस्था में कैसा उलटफेर हुआ और हिंदी ज्यों की त्यों रही। यह दशा जो हमारी है, उसमें क्या करने की आवश्यकता है? इस बात को विचारने में मैंने आपसे कहा कि राजा के सहारे से बड़ा सहारा होता है। यदि आपको, जैसा कि नागरी प्रचारिणी सभा के लिए गवर्नमेंट सहारा देती चली आई है, राज साहाय्य मिले तो काम बहुत बन जा सकता है। किंतु बड़े दु:ख की बात यह है कि अंग्रेजी गवर्नमेंट ने इसका कितना प्रचार करना चाहा था, हमारी उपेक्षा से उसका उतना प्रचार नहीं हुआ। हम लोगों को जितना करना चाहिए था, उसका सिर्फ कुछ अंश हमने किया। अब यह सम्मेलन ही विचार करे कि इसकी उन्नति का क्या उपाय होना चाहिए।

जरा बंगाली, मराठी आदि को देखिए। हिंदी भाषा के कितने लोग हैं, जिनको इस बात से दु:ख और लज्जा होती है कि यह आर्यावर्त्त देश, जहाँ कि आप देखेंगे कि लाखों लोग ऐसे हैं, जो अपनी माँ की बोली से परिचय नहीं रखते। सब आशा-उन्नति को छोड़ दीजिए। उन्नति करनेवालों के सामने खड़ा होना छोड़ दीजिए। जब तक आप इस लज्जा को न मिटावें, अपनी माँ की बोली न सीखें, तब तक आप मुँह न दिखाएँ। मातृभाषा के सीखने में कौन लज्जा करता है? अब आप लोग अपने हृदय में आज से इस बात का प्रण कर लें कि जब तक आप मातृभाषा को सीख ने लेंगे, तब तक आप मस्तक ऊँचा न करेंगे।

हिंदी की उन्नति-हमारा कर्तव्य

हिंदी-भाषा की उन्नति की साधना के लिए अब क्या करना चाहिए? हिंदी-भाषा की ऐसी स्थिति में इसका उन्नति का अब हमारा कर्तव्य क्या है, इसके विषय में राजा का सहारा है। यदि उसके लिए यत्न करेंगे तो वह भी मिलेगा। जो माँगा गया, वह मिला। हमने कहा था कि कचहरियों की भाषा हिंदी भी कर दी जाए, राजा ने हमारे प्रदेशों में कचहरियों की भाषा हिंदी भी कर दी। इन दिनों इस देश में कचहरियों की जो भाषा है, वह हिंदी है। यत्न और चेष्टा का प्रयोजन है, आदमी जिस बात के लिए यत्न और चेष्टा करता है, वह हो जाती है; आदमी के लिए क्या असंभव है? जो स्कूल, कॉलेज स्थापित किए गए हैं, उनमें लड़के हिंदी पढ़ें। यूरोपीय इतिहास, काव्य, कला-कौशल आदि की पुस्तकें हिंदी में अनुवादित हों। हिंदी में उपयोगी पुस्तकों की संख्या बढ़ाई जाए। सरकार ने स्कूलों में हिंदी जारी कर दी है, अब हमें चाहिए, कि हम हिंदी की उत्तमोत्तम पाठ्य-पुस्तकें तैयार करें। इस प्रदेश में अँगरेजी जाननेवालों की कमी नहीं। बहुतेरे लोगों ने शेक्सपियर के काव्य समझकर देख डाले हैं, कितने ही लोग हैं, जिन्होंने अंग्रेजी कविता की रचना को सीखा है। कितने ही लोग अंग्रेजी में इतिहास लिखते हैं। परमेश्वर के अनुग्रह से इस देश के लोगों को अंग्रेजी में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है। मैं चाहता हूँ कि वह ज्ञान अपने ही तक रखा न जाए, उसे हमें अपने भाइयों को भी देना चाहिए। उन भाइयों को भी देना चाहिए, जिनका अंग्रेजी से परिचय नहीं।

आप यह कह सकते हैं कि ऐसी पुस्तकों के पढ़नेवाले बहुत कम हैं। हिंदी पाठकों में ऐसी पुस्तकों के पढ़ने के नए अनुराग का संचार करना होगा, इसमें संदेह नहीं कि इस काम के लिए यत्न करना होगा।

पाठकों के सामने का एक तरह का भोजन हटा कि दूसरी तरह का भोजन परोसना होगा। क्षुधा उत्पन्न हो चुकी है, बिना भोजन के काम न चलेगा। ईश्वर के परमानुग्रह से पढ़ने का प्रेम और हिंदी का प्रेम बढ़ रहा है, हिदी पाठकों की संख्या अधिक हो रही है, पढ़ने का व्यसन बढ़ रहा है। लोगों को उचित है, कि वे अब पढ़ाने के लिए पुस्तकें बनाएँ। जो लोग सामर्थ्य रखते हुए भी यह काम नहीं करते, वे कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं।

पुस्तकों के लिखने में हमें भाषा की ओर ध्यान देना होगा। हमें उचित है कि भाषा में जो दोष आ गए हैं, उन्हें हम मिटाएँ। सरकार की ओर से जिन बातों के करने का हमें अवसर नहीं मिला है, उन्हें हम सामने से हटा दें, किंतु जिन बातों के करने का अवसर मिला है, उन्हें क्या न करें? हमें ऐसी भाषा लिखनी चाहिए, जिसे इस प्रांत के लोग समझ सकें। बंगाल में बगाली, उड़ीसा में उड़िया, मद्रास में मद्रासी (तमिल) चलती है, बंबई में मराठी और गुजरात में गुजराती चलती है। जिस भाषा में यहाँ अंधकार है, यहाँ वही भाषा चलानी चाहिए। कहते दु:ख होता है कि सरकारी विज्ञापनों की जो नकलें छपती हैं, वे हिंदी-भाषा में नहीं होतीं। हमीं लिखनेवाले हैं, हम जैसी भाषा लिखते हैं, वैसी ही भाषा चलती है। आपका कोई मुँह नहीं कि इसके संबंध में आप सरकार से कुछ कहें। आपकी यह दशा है और आपकी भाषा की यह अवस्था। ऐसी कोई बात नहीं, जो हिंदी में कही न जा सकती हो। ऐसी दशा में हमारी भाषा हिंदी होनी चाहिए। हिंदी में लिखे जिस वाक्य को देखिए, वह हिंदी में दिखाई दे। यहाँ बहुत बड़ा दोष यह है कि लिखने की भाषा और है बोलने की और। यह बहुत बड़ा दोष है। जैसी बातें कहिए, वैसी ही लिखिए।

कुछ लोगों का सिद्धांत है कि उर्दू कोई भाषा नहीं। उर्दू में 'परमेश्वर' न आएगा, 'खुदा' हो जाएगा। हिंदी में 'खुदा' की जगह 'परमेश्वर' आएगा। उर्दू भाषा हिंदी की एक शाखा है और उर्दू की एक शाखा तैयार होने पर भी हिंदी का प्रवाह ज्यों का त्यों है। हिंदीभाषा की शक्ति का प्रवाह बदला नहीं जा सकता। मौलवी मुहम्मद हुसेन आजाद कह गए हैं कि उर्दू जो है, वह हिंदी से बनी है। मौलवी साहब खूब समझाकर कह गए हैं कि उर्दू दूसरे देश की भाषा नहीं, हमारे ही देश की चीज है। हमें इस बात को समझ लेना चाहिए। सबसे पहले यह देखना चाहिए कि भाषा में कहाँ तक छेड़छाड़ होनी चाहिए। बहुतेरे शब्द ऐसे हैं, जो उर्दू में, हिंदी में, बहुतेरी भाषाओं में एक हैं। उसे हम भी कान कहेंगे, वह भी कान। किंतु कितने ही शब्द ऐसे हैं, जो हिंदी भाषा में काम में लाए नहीं जाते। जैसे 'बच्चा, हमको दान दे, पुण्य होगा' इसके बदले 'बाबा, हमको दान दे, सबाब होगा' कहना उचित नहीं। ऐसे शब्दों को छोड़ बने बनाए शब्दों को बिगाड़ना उचित नहीं। हिंदी में, फारसी-अरबी के बड़े-बड़े शब्दों का व्यवहार जैसे बुरा है, हिंदी को अकारण ही संस्कृत शब्दों से गूँथ देना भी वैसा ही बुरा है। जहाँ तक हो हिंदी में हिंदी ही रखी जाए, अनावश्यक शब्दों को हिंदी से अलग कीजिए। उर्दू और हिंदी, इन दोनों भाषाओं के रूप गँठ बन गए हैं। अब इन दोनों को यथासंभव एक स्थल में लाइए। इस बात के लिए यत्न करना जैसा हिंदुओं के लिए आवश्यक है, वैसा ही मुसलमानों के लिए भी आवश्यक है। दोनों ओर से यत्न होने से हम भाषा के क्रम को बहुत कुछ एक कर सकते हैं।

राष्ट्रभाषा का गौरव

सत्य कटु है, किंतु सत्य ग्रहण करना चाहिए। हिंदी-भाषा की योग्यता रखनेवाले बहुत थोड़े हैं। उर्दू की दशा बुरी है, किंतु हिंदी की और भी बुरी। कहीं-कहीं समासों के लच्छे-के-लच्छे लाए जाते हैं। कहीं-कहीं ऐसे शब्द भरे जाते हैं कि पढ़ने में तो भले हो, किंतु पढ़नेवालों को बेगाने जान पड़ते हैं। कहीं-कहीं ऐसे शब्द रखे जाते हैं, जो बहुत ही कठिन होते हैं, पढ़नेवालों की समझ में ही नहीं आते। ग्रीक बहुत अच्छी, किंतु ग्रीक मैं क्या समझूँ और जब समझूँगा ही नहीं तब उससे मुझे क्या लाभ? मालकोस के समय मालकोस गाया जाता है, वर्षा की बहती हुई धारा में मालकोस अच्छा नहीं लगा, उसका आनंद कम हो जाता है। जो शब्द भाषा में चलते हैं और जिन्हें हम जानते हैं, उन्हीं को हमें पुस्तकों और समाचार-पत्रों में लाना चाहिए।

इसलिए भाषा की उन्नति करने में हमारा सर्वप्रधान कर्तव्य यह है, कि हम स्वच्छ भाषा में हिंदी लिखें। पुस्तकें भी ऐसी ही भाषा में लिखी जाएँ। ऐसा यत्न हो, जिससे जो कुछ लिखा जाए, वह ऐसी ही भाषा में लिखा जाए। जब हम कोई काव्यमाला लिखें, तो आलंकारिक भाषा से काम लें। विज्ञानादि लिखने में पहले भाषा के शब्द लीजिए। जब भाषा में शब्द न मिलें, तब संस्कृत से लीजिए या बनाइए, भाषा का सुधार बड़ा ही प्रयोजनीय है। समाचार-पत्रों और स्कूल की पुस्तकों में ऐसी भाषा चल जाने पर उसके प्रसार की राह खुलेगी। एक दिन यह भाषा राष्ट्रभाषा हो सकेगी।

मद्रास, बंगाल, बंबई आदि के अनेक विद्वान् देश में एक ही भाषा चलाना चाहते हैं। देश के बहुतेरे लोगों को जब ऐसी रुचि है, तब आपका भी एक कर्तव्य है। आप भी ऐसा यत्न करें, जिससे आपकी भाषा राष्ट्रभाषा हाने का गौरव पाए। झगड़ों में फँसने के बदले उन्हें मिटाना चाहिए। उर्दू के प्रेमी कहते हैं कि हिंदी भाषा उर्दू भाषा है। यही सही। यदि आप झगड़ा मिटाना चाहते हैं, तो कह दें कि अच्छा यही सही। वह उसे एक नाम से यदि पुकारना चाहते हैं, तो पुकारने दीजिए, उसी में उन्हें संतोष करने दीजिए। और वह कीजिए कि हिंदी में जो उर्दू-फारसी शब्द आ गए हैं, उनका व्यवहार कर उर्दू वालों को और भी संतुष्ट कीजिए, आपकी हिंदी में कितने ही शब्द ऐसे हैं, जो देश की बहुतेरी भाषाओं में ज्यों के त्यों या कुछ बदले हुए रूप में काम में लाए जाते हैं। आप इन शब्दों के व्यवहार में संकोच न कीजिए। हमें यह देखना चाहिए कि हमारी भाषा के शब्द ऐसे हों, जिनसे सब प्रदेश के लोग लाभ उठाएँ।

देशी राज्य के निजाम चालीस हजार रुपए की लागत से एक उर्दू कोष तैयार करा रहे हैं। यह कोष शीघ्र ही तैयार हो जाने से लोगों का उत्साह बढ़ेगा और साहित्य बढ़ेगा। यह बड़े ही हर्ष का विषय है कि काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने भी बहुत बड़ा एक कोष तैयार कराने

का प्रशंसनीय कार्य आरंभ किया है। हमार कर्तव्य है कि इस काम में सभा को सहारा दें, सभा की विशेष उन्नति करें। सभा के संबंध में लोगों में जो मतभेद फैल रहा है, उसे मिटाएँ। सत्य का अवलंबन कर सभा को और भी हितैषिणी बनाएँ। बिना अधिक लोगों के एकत्र हुए बड़े-बड़े कार्य नहीं होते। ऐसी अवस्था में हमें उचित है कि सभा के सहायकों की संख्या बढ़ाएँ। सभा की शक्तियों को बढ़ाएँ। सभा ने जिस कोष के संपादन का कार्य प्रारंभ किया है, वह अधिक रूप से विचार करने योग्य है। यह सब काम शीघ्रता से नहीं होते, इसलिए इसमें शीघ्रता का प्रयोजन नहीं। कितने ही लोग बड़े परिश्रम के साथ इसका काम कर रहे हैं और इसके लिए उन्हें धन्यवाद है। हमें सिर्फ शब्दकोष की त्रुटि ही निकालनी न चाहिए, उसके बनाने में सहारा भी देना चाहिए। यह काम कोष के संपादक बाबू श्यामसुंदरदास या नागरी प्रचारिणी सभा का ही नहीं, यह काम समस्त हिंदी प्रेमियों का है। हम सब को इस काम में हृदय से लगकर इसे संपूर्ण करना चाहिए। यह काम बड़ा है। बड़े-बड़े काम बड़े श्रम से होते हैं। वेदव्यास का मंत्र यही है। भगवान् के उद्दश्यों को समझ, हमें उन्हीं के अनुसार कार्य करना चाहिए। हम सबके मिल-जुलकर यत्न करने से ही हिंदी के सब अंग पुष्ट होंगे। इसी से सब बातों की उन्नति होगी।

सभी भाषाओं में अनुवाद से कार्य आरंभ हुआ है। अंग्रेजी भाषा आज दिन बहुत ही उन्नत दिखाई देती है, इसके साहित्य के सभी अंग पूर्ण हैं। इसी अंग्रेजी भाषा की पुष्टि पहले जर्मन आदि भाषाओं के अनुवाद से हुई है। हमें जगह-जगह से और विभिन्न भाषाओं से अच्छे-अच्छे विचारों को चुनना चाहिए। हमें इस बात में अंग्रेजी को अपना गुरु बनाना चाहिए और उनसे सहारा भी लेना चाहिए। देखिए, अंग्रेजों ने आपके प्राय: कुल प्राचीन ग्रंथों के अनुवाद कर डाले हैं। अंग्रेजी भाषा का साहित्य अनुवादों से भरा हुआ है। आप अंग्रेजी भाषा और देशी भाषा दोनों भाषाओं के ग्रंथों से सहारा ले सकते हैं। यह दिन बड़ा ही शुभदिन है, परमेश्वर से प्रार्थना कीजिए कि अब से हिंदी-साहित्य पुष्ट हो, जिससे केवल हिंदी-भाषा ही जाननेवाले हिंदी भाषा में विविध विषय के ग्रंथ पढ़ें और उन्हें पढ़कर लाभ उठाएँ।

सम्मेलन जब होगा तब दो कामों के लिए होगा। एक तो इसमें देश भाइयों का मिलन होगा, दूसरे एक भाई दूसरे भाई की यथा साध्य सेवा करेगा। कितनी ही बातें हैं, जो निवेदन करने से ही फल उत्पन्न करती हैं, निवेदन कर दी गई। करना न करना आपके अधिकार की बात है। इसी के साथ-साथ और एक काम है।

× × ×

अधिवेशन के समापन के अवसर पर दिए गए भाषण के अंश, जिनमें विद्या, बुद्धि है, वह भाषा का भांडार भरने में कुछ-न-कुछ अपना समय लगाएँ। अधिक श्रम न करके लोग यदि अंग्रेजी, फारसी आदि भाषाओं से अनुवाद ही करें तो भाषा का भांडार भर जाएगा। उर्दू भाषा की बात कह चुका हूँ। उर्दू के कितने ही ग्रंथों का अनुवाद अबतक हिंदी में नहीं हुआ है। हमारी भाषा से लोग लेते हैं, किंतु हम आलस्य से दूसरी भाषाओं से नहीं लेते। जो संस्कृत के ज्ञाता हैं, उनके लिए अनुवाद करने को बहुतेरे ग्रंथ हैं। बाबू गजाधर सिंह के हम कृतज्ञ है कि उन्होंने संस्कृत कादंबरी का भाषा में अनुवाद किया। हमें ऐसे अनुवादकों का बड़ा प्रयोजन है। ऐसे अनुवादकों को संस्कृत में प्रवीण होना चाहिए। साथ-साथ इनमें भाषा का पूर्ण ज्ञान भी बड़ा ही आवश्यक है। पुस्तकें उठाइए, जिस भाषा को जानते हो, उस भाषा से अपनी भाषा में अनुवाद कीजिए। सुधाकरजी ने ठीक ही कहा है कि अनुवाद वह है, जिसमें प्राण आए, भाव आए। जब उन बातों में आप पंडित होंगे, तभी आपसे अच्छा अनुवाद होगा और ऐसे ही अनुवादों से हिंदी भाषा की श्रीवृद्धि होगी। अनुवाद में मूल पुस्तक का भाव, मूल पुस्तक की बातें अवश्य आएँ। मैं उन लोगों को कभी भूल नहीं सकता, जिन्होंने महाभारत, उपनिषदों आदि के अनुवाद से हिंदी भाषा का भंडार भरा है, उनका मैं हृदय से धन्यवाद करता हूँ। संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद की ओर ध्यान देना चाहिए। मौलाना हाफिज आदि की पुस्तकों का अनुवाद होना चाहिए। ऐसे अनुवादों से आपके भाई मूल ग्रंथकारों के ऊँचे विचारों का परिचय पा सकेंगे। याद रखिए कि जितने अच्छे विचार हैं, वे सब मानव जाति की संपत्ति हैं। बँगला, गुजराती पुस्तकों का अनुवाद करने से पहले उन पुस्तकों से अनुवाद करें, जिनसे बँगला, गुजराती में अनुवाद हुआ है। जीवन बहुत थोड़ा है, ऐसी अवस्था में हमें जो काम करना चाहिए, वह इस तरह करना चाहिए, जिससे चिरकाल तक जीएँ। गुजराती, बँगला की तरह हमें भी अंग्रेजी से हिंदी भाषा में अनुवाद करना चाहिए। श्री शुकदेवजी ने कहा कि शृंगाररस बहुत हो चुका, अब शृंगार की आवश्यकता नहीं है। अब तो वह रस हो, जिससे महत्त्व प्राप्त हो। पश्चिम ग्रंथों में बहुत सा सामान भरा पड़ा है। हिंदी साहित्य सम्मेलन से मासिक पचास पृष्ठों की पुस्तक निकले, जिससे लोगों के हृदय में सद्विचार उत्पन्न हों और भाषा का भंडार भरे। अब इस बात पर कटिबद्ध हो जाइए।

जहाँ से अच्छा उपदेश मिले, वहाँ से उसे लेना चाहिए। भँवरा जैसे फूलों से अच्छा रस लेता है, उसी तरह आप अच्छी-अच्छी पुस्तकों से अच्छा-अच्छा रस लें। उपन्यास बुरी चीज नहीं। उपन्यासों ने पाश्चात्य देशों में बड़े-बड़े काम किए हैं। उनमें देशभक्ति का प्रचार किया गया, कायरों में वीरता को लाया गया, हिंदी-भाषा में भी ऐसे उपन्यास बने, जो इन कामों के उपयुक्त हों। लोग कहते हैं कि यदि हम जोला, रिहेन आदि की पुस्तकों का अनुवाद करेंगे तो हमें उनके पढ़नेवाले न मिलेंगे। जो उपन्यास लिखे जाएँ, वे सत्पुरुषों, वीरता आदि को बढ़ाएँ, देशहितैषिता की बातें, देशप्रेम की बातें उपन्यासों में लिखी जाएँ। कविताएँ भी बनाई जाएँ तो ऐसी ही बनाई जाएँ। इतने दिनों से हम पुरानी लकीर पीटते आते हैं, अब हमें उन्हें छोड़ना चाहिए; किंतु इस मार्ग में अभी और श्रम तथा उत्साह का प्रयोजन है। इसे बढ़ाएँ, इसे बढ़ाने के लिए थोड़ा-थोड़ा समय दें। लोगों में साहित्य-सेवा का उत्साह बढ़ाना चाहिए, तभी पढ़नेवालों में भी उत्साह बढ़ेगा और तभी अच्छी-अच्छी पुस्तकों का भी अधिक प्रचार होगा। सा अ

नर्मदापुत्र अमृतलाल वेगड़

● संतोष शुक्ला

६ जुलाई, २०१८ को ९० वर्ष की आयु में अमृतलाल वेगड़जी का जबलपुर में निधन हो गया, मध्य प्रदेश के लिए यह अपूरणीय क्षति है। नर्मदा को कला-साहित्य और संस्कृति में पुनर्स्थापन के लिए उनका नाम प्रथम और अमिट है। नर्मदा के प्रति उनका अनुराग उनकी अमरकंटक से भरूच तक की गई यात्राओं से झलकता है। उन्होंने नई पीढ़ी के बीच भी नर्मदा माँ की परंपरा के बीज रोपे, साथ ही प्रकृति संरक्षण का पाठ पढ़ाया। ३ अक्तूबर, १९२८ को जबलपुर में जनमे स्व. वेगड़ ने प्रारंभिक शिक्षा तो जबलपुर में ग्रहण की, पर कला के अध्ययन के लिए वे १९४८ में शांति निकेतन चले गए थे। १९५३ में शांति निकेतन में नंदलाल वसु, विनोद बिहारी मुखर्जी, रामकिंकर बैज जैसे प्रख्यात कलाकारों के सान्निध्य में कला शिक्षा और संस्कार लेकर वापस जबलपुर लौटे। जबलपुर के कला निकेतन संस्थान में शिक्षक और फिर प्राचार्य पद पर भी रहे, इसी दौरान नर्मदा के प्रति आकर्षण और लगाव के चलते उन्होंने अपनी साहित्य और कला साधना नर्मदा को समर्पित कर दी।

(३.१०.१९२८—६.७.२०१८)

स्व. वेगड़ ने १९७७ में ५० वर्ष की आयु में नर्मदा पदयात्रा प्रारंभ की। नर्मदा भारत की एकमात्र ऐसी नदी है, जिसका उद्‌गम स्थल अमरकंटक से लेकर संगम स्थल भरूच तक दोनों किनारे पर चलते हुए परिक्रमा की जाती है। हर वर्ष हजारों साधु-संन्यासी, गृहस्थ साल भर नर्मदा परिक्रमा पर चलते रहते हैं, जो लगभग २६२४ कि.मी. की होती है। परिक्रमा के कुछ धार्मिक नियम हैं, जिनका पालन करना अनिवार्य है। परिक्रमा के समय न्यूनतम सामग्री साथ लेकर चलना प्रमुख नियम है। अमृतलाल वेगड़जी ने अपनी नर्मदा परिक्रमा पदयात्राएँ टुकड़ों-टुकड़ों में पूरी की, जो ८२ वर्ष की उम्र होने तक चलती रही। उन्हीं यात्राओं के दौरान हुए अनुभवों और देखे हुए दृश्यों पर उन्होंने लिखा तथा चित्र बनाए। नर्मदा व उनकी सहायक नदियों की यात्रा के वृत्तांत की तीन पुस्तकें हिंदी के साथ गुजराती, मराठी, बंगाली, अंग्रेजी और संस्कृत भाषाओं में प्रकाशित हुईं।

उन्होंने गुजराती और हिंदी में साहित्यिक अकादमी पुरस्कार, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, शरद जोशी सम्मान के साथ ही राष्ट्रीय स्तर के अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। पदयात्रा से संबंधित उनके चित्रों की प्रदर्शनी मुंबई, कोलकाता सहित देश के विभिन्न शहरों में लगाई गई। वेगड़जी ने नर्मदा के उस स्वरूप का चित्रण और कथन प्रस्तुत किया, जो पुरानी पीढ़ियों के हृदय में आज भी बसी है।

अंतिम दिनों में अपनी शेष इच्छाओं में अपने बनाए हुए स्केचों की एक किताब निकालना चाहते थे। शांति निकेतन में पढ़ाई के दौरान नंदलाल वसु, विनोद बिहारी मुकर्जी, रामकिंकर वैज ने अपने हाथों के बनाए हुई कई पोस्टकार्ड वेगढ़जी को उपहारस्वरूप दिए थे। ये सभी स्केच उस बुक में शामिल रहते, जो भारतीय कला की अमूल धरोहर भी है। अमृतलाल वेगड़जी ने गुजरात में छोटी-छोटी हास्यप्रद कहानियाँ लिखी थीं, उन्हें भी वे प्रकाशित कराना चाहते थे।

पर्यावरण के प्रति उनका लगाव कितना गहरा था, यह एक घटना से पता चलता है। अपनी देह छोड़ने के दो दिन पहले उन्होंने अपने बेटे से कहा, मुझे घर ले चलो, मुझे वे नीम के पेड़ देखने हैं, जो मैंने लगाए हैं। उनकी शारीरिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि उन्हें कहीं ले जाया जा सके, तो बच्चों ने उनके लगाए नीम के पेड़ों की फोटो खींचकर दिखाई, तब उन्हें संतोष हुआ।

वेगड़जी के शब्दों में नर्मदा यात्रा

'नर्मदा मेरे लिए सम्मोहन की किताब है, जिसे बार-बार पढ़ने का मन करता है। मेरी पहली पदयात्रा १९४७ में और अंतिम २००९ में हुई। ३३ वर्षों के दौरान ४ हजार कि.मी. से अधिक चला। यह मेरी गाढ़ी कमाई है। प्रथम यात्रा के समय ५० का था और अंतिम के समय ८२ का। आज तक उन यात्राओं के बारे में सोचता हूँ, तो खुद हैरान हो उठता हूँ कि इतनी सारी यात्राएँ मैंने कैसे कर लीं। मैं कोई हट्‌टा-कट्‌टा सूरमा नहीं, सूखे डंठल सा शरीर है मेरा। फिर भी इतना चला, लेकिन अब और अधिक यात्राएँ करना मेरे लिए संभव नहीं। इस शरीर से मुझे ज्यादा माँग नहीं करनी चाहिए। अपना काम मैं अब युवकों को सौंपता हूँ। नई पीढ़ी तैयार हो चुकी है। ऐसे कई लोग हैं, जो इन पुस्तकों को पढ़कर नर्मदा की खंड यात्राएँ कर रहे हैं। नर्मदा को संक्षिप्त यात्रा भी स्वीकार्य है। नर्मदा पदयात्राओं में नई कोपलें फूट रही हैं, अब मुरझाए हुए पत्तों को झड़ जाना चाहिए।'

प्रसिद्ध साहित्यकार ज्ञानरंजन का कहना

है कि वेगड़जी से मेरी गहरी मित्रता रही। वे मेरे घर पैदल ही आ जाया करते थे, उनके जीवन में सादगी थी। वे साहित्य में यात्रा विधा के अद्‌भुत रचयिता थे। उन्होंने नर्मदा के सौंदर्य को उकेरा, वह हिंदुस्तान में बहुत लोकप्रिय हुआ। नर्मदा के ट्रेवलाग की पहचान वेगड़जी की ही देन है। उन्होंने अपने जीवन में नर्मदा के सौंदर्य को देखा और उसी जीवन में सौंदर्य से खिलवाड़ होते हुए भी देखी।

अमृतलाल वेगड़ की कला

अमृतलाल वेगड़जी की कला शिक्षा शांति निकेतन ने वाटर कलर और ऑयल कलर के माध्यम से हुई। शिक्षा के बाद वे जबलपुर आकर आर्ट कॉलेज में पढ़ाने लगे। इसी दौरान उन्होंने नर्मदा की पहली यात्रा की। यात्रा के बाद कला में शिक्षित होने की बात जानकर किसी ने उन्हें अपना काम दिखाने के लिए कहा। उन्हीं दिनो उन्हें पेपर कटिंग से नर्मदा परिक्रमा के अनुभव कोलाज बनाने का विचार आया। उन्होंने कुछ कोलाज बनाकर कॉलेज में प्रदर्शित किए, बाद के सालों में उनके बनाए हुए पेपर कटिंग कोलाज उनकी पहचान बने।

'यह ठीक है कि मैं चित्रकार हूँ और लेखक भी हूँ, लेकिन मैं साधारण चित्रकार हूँ और लेखक भी साधारण ही हूँ। पहले मैं प्राय: सोचता था कि क्या ही अच्छा होता, भगवान् मुझे केवल चित्रकार बनाता, लेकिन उच्च कोटि का चित्रकार। या सिर्फ लेखक बनाता, लेकिन मूर्धन्य कोटि का लेखक। भगवान् ने मुझे आधा इधर और आधा उधर, आधा तीतर आधा बटेर क्यों बनाया। किंतु आज सोचता हूँ कि यदि भगवान् ने मुझे केवल चित्रकार बनाया होता—भले ही श्रेष्ठ चित्रकार, तो नर्मदा के बारे में लिखता कौन? और केवल लेखक बनाया होता, भले ही प्रकांड लेखक, तो नर्मदा के चित्र कौन बनाता? नर्मदा को असाधारण लेखक या असाधारण चित्रकार के बजाय एक ऐसे आदमी की जरूरत थी, जिसमें ये दोनों बातें हों—फिर चाहे वह साधारण ही क्यों न हो।'

वेगड़जी ने बताया था कि प्रकृति और सौंदर्य से प्रेम करने की प्रकृति उन्हें उनके पिता से मिली थी। अपने चित्र बनाने के लिए वे नर्मदा तट के आस-पास जाते रहते थे। चित्र और स्केच के लिए बेहतर दृश्य की खोज में वे पहले आसपास फिर दूर-दराज के गाँव-देहात तक पहुँचे। इस तरह उन्हें नर्मदा किनारे का सौंदर्य दिखाई दिया। नर्मदा परिक्रमा करते लोग मिले तो परिक्रमा को लेकर जिज्ञासा जागी। ऐसे ही दृश्यों से यह संकल्प दृढ़ हुआ कि नर्मदा की परिक्रमा की जाए। वे अपनी प्रथम पुस्तक 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' में लिखते हैं—'कभी-कभी मैं अपने आप से पूछता हूँ, यह जोखिम भरी यात्रा मैंने क्यों की? और हर बार मेरा उत्तर होता है अगर मैं यह यात्रा न करता तो मेरा जीवन व्यर्थ जाता। जो जिस काम के लिए बना हो, उसे वह काम करना ही चाहिए और मैं नर्मदा पदयात्रा के लिए बना हूँ। किंतु, जब तक इस सत्य का पता मुझे चलता, मैं ५० के करीब पहुँच चुका था। प्रथम पदयात्रा मैंने १९७७ में की और अंतिम १९८७ में।

'अगर सौ या दो सौ साल बाद किसी को एक दंपती नर्मदा परिक्रमा करता दिखाई दे, पति के हाथ में झाड़ू हो और पत्नी के हाथ में टोकरी और खुरपी पति घाटों की सफाई करता हो और पत्नी कचरे को ले जाकर दूर फेंकती हो और दोनों वृक्षारोपण भी करते हों, तो समझ लीजिए कि हम ही हैं—कांता और मैं (वेगड़जी)। कोई वादक बजाने से पहले देर तक अपने साज का सुर मिलाता है, उसी प्रकार इस जन्म में तो हम नर्मदा परिक्रमा का सुर ही मिलाते रहे। परिक्रमा तो अगले जन्म से करेंगे।'

शहडोल जिले के निवासी श्री संतोष शुक्ल पिछले १८ वर्षों से पत्रकारिता के क्षेत्र में सक्रिय हैं। आपने स्थानीय चैनल से लोगो को रूबरू करने के बाद ई. टी.वी. न्यूज में काफी अरसे तक रिपोर्टर का काम किया; और आदिवासी बहुल जिले की सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं को सामने लाया। वर्तमान में आप आजतक चैनल के संवाददाता हैं।

वेगड़जी ने बहुत पीड़ा के साथ कहा था, 'हम हत्यारे हैं, अपनी नदियों के हत्यारे। क्या हाल बना दिया है हमने नदियों का? नर्मदा तट के छोटे-से-छोटे तृण और छोटे-से-छोटे कण न जाने कितने परिव्राजकों, ऋषि-मुनियों और साधु-संतों की पदधूलि से पावन हुए होंगे। यहाँ के वनों में अनगिनत ऋषियों के आश्रम रहे होंगे। वहाँ उन्होंने धर्म पर विचार किया होगा, जीवन-मूल्यों की खोज की होगी और संस्कृति का उजाला फैलाया होगा। हमारी संस्कृति आरण्यक संस्कृति रही। लेकिन अब? हमने उन पावन वनों को काट डाला है और पशु-पक्षियों को खदेड़ दिया है या मार डाला है। धरती के साथ यह कैसा विश्वासघात है।'

'सौंदर्य की नदी नर्मदा' के कुछ अंश

इस पुस्तक की सबसे बड़ी बात यह है कि यह महज जलधारा की बात नहीं करती, उसके साथ जीवन पाते जीव, वनस्पति, प्रकृति, खेत, पक्षी, इनसान सभी को इसमें गूँथा गया है और बताया गया है कि किस तरह नदी महज एक जल संसाधन नहीं, बल्कि मनुष्य के जीवन से मृत्यु तक का मूल आधार है। इसकी रेत भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी जल धारा और इसमें मछली भी उतनी ही अनिवार्य है, जितना उसके तट पर आनेवाले मवेशियों के खुरों से धरती का मथना।

'पर अब चलना चाहिए। धूप तेज हो रही है। आगे का मार्ग कठिन है। थोड़ी देर के लिए किनारा छोड़ना होगा। चलते-चलते एक टीले पर आ गए। इस ऊँचे झरोखे से सहस्रधारा के नन्हे-मुन्ने प्रपात एक साथ दिखाई दे रहे थे। नन्हे-मुन्ने क्या, एकदम दुधमुँहे। इनके मुँह से दूध अभी छूटा ही कहाँ! ढालखेड़ा में राघवानंदजी के आश्रम में रहे। यहाँ किसी ने बताया कि नर्मदा में वह जो टापू

दिखाई दे रहा है। एक फ्रेंच युगल उसमें छह महीने तक रहा। बरसात में उस तट पर चला गया। कुछ समय पहले फ्रांस लौट गया।

'ऐसी कौन सी डोर होगी, जो सात समंदर पार के फ्रेंच नौजवान पति-पत्नी को नर्मदा के इस सुनसान टापू में खींच लाई होगी— सौंदर्यपिपासु मन, एकांत साधना की चाह या पश्चिम के आपाधापी से विलग होकर पूर्व की शांति में डुबकी लगाने की प्रबल इच्छा?

'रात को बाहर खुले में सोए। इस बार की यात्रा में नर्मदा में इतने टापू देखे हैं कि रात को आकाश-गंगा में भी मुझे अनेक टापू दिखाई दिए। सुबह चल दिए। आज दीवाली है। दोपहर तक साटक-संगम पहुँच जाएँगे, वहाँ नर्मदा का प्रसिद्ध खलघाट पुल है। वहीं इस बार की यात्रा समाप्त करेंगे। थोड़ी देर में साटक-संगम पहुँच गए। साटक एक छोटा सा झरना है, लेकिन इसे पार करने में एक नाटक हुआ। साटक में एक नन्हा प्रपात था, उसे देखते हुए मैं पानी में उतरा। उतरते ही काई लगे पत्थर पर से फिसलकर गिरा। किसी तरह उठा कि दुबारा गिरा। साटक ने अपने अंक में मुझे दो बार लिया, इसलिए यह नाटक एकांकी न रहकर द्विअंकी हो गया!

'पास ही एक मंदिर है। मंदिर की देखभाल एक महाराष्ट्रियन महिला करती है। माता के स्नेह से हमें मंदिर में ठहराया। मैंने कहा, 'हमारी इस बार की यात्रा यहाँ समाप्त हो रही है। कल सुबह घर लौट जाएँगे। अगले साल फिर यहाँ आएँगे और दशहरे से आगे बढ़ेंगे।'

'आगे शूलपाण की झाड़ी पड़ेगी। उसके बारे में तो आपने सुना ही होगा।'

'सुना क्यों नहीं! कितने ही परकम्मावासियों से कितनी ही बातें सुनी हैं। झाड़ी में तीर-धनुष लेकर भील आते हैं और सबकुछ लूट लेते हैं। अंत में परकम्मावासी के पास बच जाती है केवल लँगोटी और तूँबी। लेकिन इन्हीं बातों ने हमारे अंदर झाड़ी के प्रति विशेष आकर्षण जगा दिया है। राजघाट (बड़वानी) से झाड़ी शुरू होगी। आपके पास यह जो सामान है न, इसमें से कुछ न बचेगा। कपड़े और चश्मा तक उतार लेंगे।'

'लँगोटी लगाकर रह लूँगा, लेकिन मेरी स्केच-बुक ले ली, चश्मा

ले लिया तो समझिए मेरे कवच-कुंडल ही उतार लिये।'

'नंगे बदन ठंड कैसे बरदाश्त होगी?'

मुझे कुछ सोच में देखकर उसने कहा, 'एक काम करो। झाड़ी में से मत जाओ, बाहर-बाहर से निकल जाओ।'

'नहीं, हरगिज नहीं! झाड़ी में से ही जाएँगे, चाहे जो हो। हाँ, एक काम कर सकते हैं। दीवाली की छुट्टी की बजाय गरमी की छुट्टी में चलें। गरमी में नंग-धडंग रह लेंगे, ठंड बरदाश्त न होगी।'

रात का अँधेरा जल में उतर आया था और काजल-सा काला हो चला था। बिस्तर में पड़ा-पड़ा तारों को निहारता मैं गुनगुना रहा था। जटाजूट बढ़ाएँगे, भिक्षा मागँकर खाएँगे, निर्धन-निर्वस्त्र हो जाएँगे, पर झाड़ी में से जाएँगे!

नर्मदा यात्रा-वेगड़जी के शब्दो में

सन् १९८८ के दौरान मैं १८०० किलोमीटर पैदल चला था। इसका वृत्तांत मैंने अपनी पुस्तक 'सौंदर्य की नदी नर्मदा', 'नर्मदा के किनारे-किनारे' १९७७ में दिया है। नर्मदा की लंबाई १३१२ किलोमीटर है। दोनों तट मिलाकर परक्म्मावासी (परिक्रमावासी) को २६२४ किमी. चलना चाहिए। मैं १८०० किमी. चला था। किंतु उत्तर तट के अभी ८०० किमी. बाकी रह गए थे। नौ बरस बीत गए। नौ वर्षों के लंबे अंतराल के बाद नर्मदा पदयात्री के रूप में मानो मेरा पुनर्जन्म हुआ। १९९६ से १९९९ के दौरान मैंने नर्मदा के उत्तर तट की बाकी बची परिक्रमा भी पूरी की। उत्तर तट की इन्हीं यात्राओं का वृत्तांत है 'अमृतस्य नर्मदा'। एक प्रकार से यह उत्तरनर्मदाचरित है।

विशाल आकार की मूर्तियों की ढलाई खंडों में की जाती है। फिर उन्हें सफाई से जोड़ दिया जाता है। मेरे लिए नर्मदा-परिक्रमा के ढाई हजार कि.मी. से अधिक एक साथ चलना संभव नहीं था, इसलिए मैंने ये यात्राएँ खंडों में कीं। टुकड़ों में बँटी इस लंबी यात्रा को मैंने इन किताबों में जोड़ दिया है। वैसे खंड-यात्राओं का यह तरीका मेरे लिए बिल्कुल सही था। घर आकर मैं यात्रा-वृत्तांत लिख लेता, कोलाज बना लेता, विश्राम पाकर तरोताजा हो जाता और आगे की यात्रा के लिए नई शक्ति पा लेता।

इन यात्राओं में मैंने अकूत सौंदर्य बटोरा। उसी को व्यक्त करने का मेरा प्रयास रहा है—कभी रेखाओं में, कभी रंगों में, तो कभी शब्दों में।

नई पीढ़ी के लिए वेगड़जी का संदेश

'याद रखो, पानी की हर बूँद एक चमत्कार है। हवा के बाद पानी ही मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है। किंतु पानी दिन-पर-दिन दुर्लभ होता जा रहा है। नदियाँ सूख रही हैं। उपजाऊ जमीन ढूहों में बदल रही है। आए दिन अकाल पड़ रहे हैं। मुझे खेद है, यह सब मनुष्यों के अविवेकपूर्ण व्यवहार के कारण हो रहा है। अभी भी समय है। वन विनाश बंद करो। बादलों को बरसने दो। नदियों को स्वच्छ रहने दो। केवल मेरे प्रति ही नहीं, समस्त प्रकृति के प्रति प्यार और निष्ठा की भावना रखो। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि मुझे तुमसे बेहद प्यार है। खुश रहो मेरे बच्चो!'

कथावाचक जैसी रोचक शैली में नर्मदा-परिक्रमा के अनुभव वास्तव में साहित्य और पर्यावरण हितैषी समाज की धरोहर है। वेगड़ ने एक मुलाकात में बताया था कि उनके गुरु ने उन्हें कहा था, ''जीवन में सफल मत होना, यह बेहद आसान है। तुम अपने जीवन को सार्थक बनाना।'' आज जब ९० वर्षीय वेगड़ के अवसान पर यह बात याद करते हैं तो महसूस होता है कि उन्होंने अपने गुरु को सार्थक जीवन की ही गुरु दक्षिणा प्रदान की है। वे बार-बार कहते रहे हैं, ''नर्मदा को समझने-समझाने की मैंने ईमानदार कोशिश की है और मेरी कामना है कि सर्वस्व दूसरों पर लुटाती ऐसी ही कोई नदी हमारे हृदयों में बह सके तो नष्ट होती हमारी सभ्यता और संस्कृति शायद बच सके।''

उन्होंने अपनी किताब 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' की भूमिका में ही लिखा है—''नर्मदा-तट की भूगोल तेजी से बदल रही है। बरगी बाँध, इंदिरा सागर बाँध और सरदार सरोवर बाँध तथा अन्य बाँधों के कारण अनेक गाँवों का तथा नर्मदा के सैकड़ों किमी. लंबे किनारों का अस्तित्व समाप्त हो गया। जब मैंने ये यात्राएँ की थीं, तब एक भी गाँव डूबा नहीं था। नर्मदा कुछ हद तक वैसी ही थी, जैसी हजारों वर्ष पूर्व थी। मुझे इस बात का संतोष रहेगा कि नर्मदा के उस विलुप्त होते सौंदर्य को मैंने सदा के लिए इन किताबों के पन्नों में सँजोकर रख दिया है। इसमें जो कुछ अच्छा है, वह नर्मदा का है। सौंदर्य उसका, भूल-चूक मेरी।

मेरी इस यात्रा के सौ साल बाद तो क्या २५ साल बाद भी कोई इसकी पुनरावृत्ति नहीं कर सकेगा। २५ साल में नर्मदा पर कई बाँध बन जाएँगे और इसका सैकड़ों मील लंबा तट जलमग्न हो जाएगा। न वे गाँव रहेंगे, न पगडंडियाँ। पिछले २५ हजार वर्षों में नर्मदा-तट का भूगोल जितना नहीं बदला है, उतना आनेवाले २५ वर्षों में बदल जाएगा।

उनकी किताबें और रेखांकन नर्मदा के सौंदर्य को हमें और हमारी आनेवाली पीढ़ियों को भी

नदियों के प्रति हमारे व्यवहार को सुधारने और उनका निरादर करने से रोकते रहेंगे। उन्होंने कहा था कि जीवन में रोटी से पहले पानी जरूरी है। हमारे लिए पानी का मतलब नर्मदा से है। नर्मदा को हमारी जरूरत नहीं, बल्कि हमें नर्मदा की जरूरत है। नर्मदा किनारे हर शहर-गाँव के गंदे नाले-नालियाँ नदी में मिल रहे हैं, इन्हें रोकना शासन की प्रमुखता में शामिल होना चाहिए। बिना शोधन के नर्मदा में मिल रहा कारखानों का पानी प्रतिबंधित होना चाहिए। नर्मदा का पानी इतना दूषित नहीं है, जितना गंगा-यमुना जैसी बड़ी नदियों का। जैविक गंदगी, जैसे फूल-पत्ती बहाना उतना घातक नहीं है, जितना रसायन उड़ेलना। किसान रासायनिक खाद डालकर खेती को नशेड़ी बना रहे हैं, वहीं यह बरसाती पानी के साथ बहकर नदी को भी प्रदूषित कर रहा है। हमें जैविक खेती की ओर लौटना होगा।

दुबली-पतली काया, करीब पाँच फीट का सामान्य कद-काठी, आँखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा पहने इस व्यक्ति ने अपनी पत्नी के साथ हजारों किलोमीटर नर्मदा के साथ-साथ पहाड़ों, जंगलों और ऊबड़-खाबड़ रास्तों को अपने मजबूत इरादों से यात्रा करते हुए इसके अलौकिक सौंदर्य को हमारे सामने रखा है, इसका बड़ा अभिप्राय नदियों के सिर्फ आध्यात्मिक दृष्टि से ही पूजने या सम्मान की पैरवी नहीं करता बल्कि उसे पर्यावरण संपन्न दृष्टि से देखने और बिगड़ते हुए स्वरूप पर गहरी चिंता के साथ उसे बचाने के लिए समाज को सचेत और सजग बनाने की नजर भी साफ है। उन्होंने अपना पूरा जीवन नर्मदा को समर्पित कर दिया था।

नर्मदा समग्र के अध्यक्ष के रूप में वेगड़जी के मार्गदर्शन में हुए कार्य

सन् २००८ में पूर्व केंद्रीय मंत्री नर्मदा प्रेमी पर्यावरणविद् स्व. अनिल माधव दबेजी ने नर्मदा नदी के लिए कुछ काम करने का विचार किया। और 'नर्मदा समग्र' नामक संस्था का गठन किया। अमृतलाल वेगड़जी को मार्गदर्शक और पितृपुरुष का

स्थान दिया। वेगड़जी ने नर्मदा समग्र संस्था का अध्यक्ष पद स्वीकार किया। उनके मार्गदर्शन में नर्मदा समग्र ने नर्मदा संरक्षण और संवर्धन के क्षेत्र में पहल करके पूरे देश का ध्यान नर्मदा की वर्तमान स्थिति की ओर खींचा, साथ ही २००८ से २०१८ तक पाँच नदी महोत्सवों का आयोजन कर देश-विदेश में नदियों और पर्यावरण पर कार्य करनेवाले लोगों को एक साथ नर्मदा-तट पर इकट्ठा किया। इन सभी लोगों ने देश-विदेश में नदियों पर हो रहे कार्यों के अनुभवों को आपस में साझा किया और भविष्य में नदियों के लिए क्या किया जाना चाहिए, इसकी योजना बनाई। इन्हीं प्रयासों से लोगों, संस्थाओं और सरकारों का ध्यान नर्मदा की ओर गया, इसके बाद नर्मदा के संरक्षण और संवर्धन के लिए लोगों ने निजी तौर पर कार्य शुरू किया तथा सरकार ने नर्मदा के लिए कई योजनाएँ शुरू कीं।

अमृतलाल वेगड़जी के मार्गदर्शन में नर्मदा समग्र ने पिछले १० वर्षों में नर्मदा संरक्षण और संवर्धन के लिए कई योजनाओं पर कार्य किया।

• देश में नदियों का संरक्षण व संवर्धन आम लोगों का विषय बना।

• पहली बार नदियों पर कार्य कर रहे लोगों से संवाद कर एक मंच उपलब्ध कराया। इन प्रयासों से नर्मदा के किनारे नर्मदा को प्रदूषण मुक्त करने के लिए लोगों ने सक्रिय समूह का गठन किया। यह समूह वर्तमान में कार्यरत है।

• नर्मदा समग्र के प्रयासों से नदी जलग्रहण क्षेत्र में वृक्षारोपण की अवधारणा जन-जन तक पहुँची। चुनरी चढ़ाने के स्थान पर हरियाली चुनरी बुनने का भाव विकसित हुआ।

• नदी में मूर्ति विसर्जन के स्थान पर कुंड बनाकर मूर्ति विसर्जन की प्रथा की शुरुआत की, साथ ही पी.ओ.पी. के स्थान पर स्व निर्मित मिट्टी की मूर्ति बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्यशालाएँ आयोजित कीं, जिसे लोगों द्वारा सराहा गया।

• २००८ से नर्मदा समग्र ने नदी को उद्गम से संगम तक एक जीवन मान इकाई मानने और उसके अधिकार सुनिश्चित करने का दर्शन दिया, जिसे समाज और सरकारी स्तर पर भी मान्यता मिली।

• नदी के उद्गम से संगम तक स्वास्थ का नियमित परीक्षण और उसके प्रकाशन की पहल, भारत सरकार को नदी आयुर्विज्ञान संस्थान बनाने के लिए परिकल्पना प्रस्तुत की। नदी के जल परीक्षण कार्यक्रम में नदी किनारे से विद्यार्थियों, नर्मदा सेवकों को सहयोगी बनाकर सामाजिक भागीदारी से नदी के जल परीक्षण की पहल की, जिससे समाज में और नई पीढ़ी में जागरूकता बढ़ी।

• देश में नदी या जल नीति की कड़ी को ध्यान में रखकर नदी महोत्सव २०१३ में नदी नीति के लिए आवश्यक व महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को शामिल कर 'बांद्रामान दृष्टि-पत्र' का प्रकाशन किया गया,

जिसे केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय जल नीति बनाने हेतु चल रही प्रक्रिया में स्वीकार किया गया।

• नदी महोत्सव २०१५ में मध्य प्रदेश की ३१ नदियों का प्रतिनिधित्व रहा। नर्मदा जल ग्रहण क्षेत्र में प्राकृतिक कृषि करनेवाले कृषकों व उपभोक्ताओं के बीच कड़ी का निर्माण हुआ।

• जलवायु परिवर्तन की वैश्विक चिंता के समाधान हेतु देश भर की संस्थाओं संगठनों विद्वज्जनों धर्मगुरुओं व विशेषज्ञों को एक मंच पर एकत्र कर भारतीय जीवन-दर्शन में उपलब्ध पर्यावरण चिंतन और उसकी वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता पर व्यापक चर्चा व मंथन के लिए मध्य प्रदेश विधानसभा परिसर में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ।

• इस कड़ी में उज्जैन सिंहस्थ के दौरान अंतरराष्ट्रीय वैचारिक महाकुंभ के आयोजन में नर्मदा समग्र की महती भूमिका रही। वैधानिक महाकुंभ में परिपूर्ण मानव जीवन के लिए प्रासंगिक मार्गदर्शी सिद्धांतों को 'सिंहस्थ २०१६ के सार्व मौन अमृत संदेश' के रूप में जन-जन तक पहुँचाया।

• नदी महोत्सव २०१८ में सहायक नदियों और परिवेश विषय पर दो दिवसीय विचार मंथन किया गया, जिसमें प्रमुख्यत: नदी किनारे का संभाग, संस्कृति दृष्टि और आजीविका का परस्पर संबंध, नदी का अस्तित्व व जैव विविधता, सहायक नदियों का संरक्षण, नीति नियम व संभावनाएँ आदि विषयों पर बात की गई।

• नदी संरक्षण का अभियान स्कूल/कॉलेज के छात्र-छात्राओं तक पहुँचे, इस दिशा में नर्मदा समग्र ने नर्मदा की पंचकोशी यात्रा को पर्यावरण से जोड़कर पर्यावरण पंचकोशी यात्राओं का आयोजन कर छात्र-छात्राओं की सहभागिता बढ़ाई।

सा.अ.

बाणगंगा पेट्रोल पंप के पीछे
शहडोल (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५३२१०४१

हिंदुस्तान–अजरबैजान और हिंदी

● रूपाली सिन्हा

अजरबैजान और भारत के रिश्ते सदियों पुराने हैं, जो आज भी गर्मजोशी और मजबूती के साथ आगे बढ़ रहे हैं। दोनों देशों के बीच व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध शुरू से ही बहुत घनिष्ट रहे हैं। ईसा पूर्व पहली–दूसरी शताब्दी से ही अजरबैजान सिल्क रूट का एक मुख्य केंद्रबिंदु हुआ करता था। चीन, भारत और मध्य एशिया से गुजरते हुए यह मार्ग पूर्वी कैस्पियन सागर तक पहुँचता था। अतीत में अजरबैजान की राजधानी बाकू में पंजाब के व्यापारियों का व्यावसायिक अर्थव्यवस्था पर अच्छा–खासा नियंत्रण हुआ करता था। उस समय लकड़ी के बहुत से काम जैसे कि नाव बनाना, भारतीय कारीगरों द्वारा किए जाते थे। दोनों देशों के बीच के प्राचीन सांस्कृतिक संबंधों के गवाह के रूप में अतीत के कुछ अवशेष अभी भी देखे जा सकते हैं। दोनों देशों के बीच अतीत के रिश्तों के दस्तावेज के रूप में यहाँ स्थित आतेशगाह को देखा जा सकता है। यह मंदिर राजधानी बाकू से लगभग १५ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह एक बहुधर्मी मंदिर रहा है, जो अलग–अलग समय में हिंदू, सिख और जोरास्ट्रियन धर्मों का पूजा–स्थल रहा। आतिश एक फारसी शब्द है, जिसका प्रयोग आग के लिए किया जाता है। यह मंदिर संभवत: १७वीं–१८वीं सदी में आए भारतीयों द्वारा बनाया गया, जो १९वीं सदी के समय तक परित्यक्त हो गया। कारण था, यहाँ की हिंदुस्तानी आबादी का लगातार घटते जाना। इस मंदिर पर देवनागरी और गुरमुखी में अभिलेख हैं। कुछ लोग इसे हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा में स्थित ज्वालाजी मंदिर से समानता बताते हैं। कुछ लोग इसे सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक के दैवी आशीर्वाद के रूप में देखते हैं। इस प्राचीन स्थान को यूनेस्को की विश्व विरासत सूची में भी नामांकित किया गया है।

विश्वप्रसिद्ध अजरबैजानी कवि निजामी गांजवी का भारतीय कवि अमीर खुसरो पर गहरा प्रभाव रहा है। आपको जानकर यह आश्चर्य होगा कि लैला–मजनूँ की प्रसिद्ध प्रेमकथा का आधार शेक्सपियर की रोमियो–जूलियट नहीं है बल्कि अजरबैजानी कवि निजामी गंजवी द्वारा १२वीं सदी में लिखित एक 'देसी' कथा है, जो दुनियाभर में जानी जाती है। हिंदुस्तानी राग और गजल गायन तथा अजरबैजानी मुगल परंपराओं में अद्‌भुत समानताएँ देखने को मिलती हैं। अगर आधुनिक काल की बात करें तो राशिद बेहबुदोव, जो अजरबैजान के एक प्रसिद्ध गायक और अभिनेता थे, वे राजकपूर के बहुत घनिष्ट मित्र थे। उन्होंने अजेरी, रूसी, तुर्की के अतिरिक्त हिंदी, उर्दू और बांग्ला में भी गाया। राशिद बेहबुदोव, एलमिरा रहिमोवा तथा अन्य कलाकारों ने भारतीय गीत–संगीत को लोकप्रिय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। एलमिरा रहिमोवा ने सन् १९५० के आरंभिक वर्षों में भारत में रहकर नृत्य और संगीत की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने प्रसिद्ध शांतिनिकेतन में रहकर शिक्षा प्राप्त की। पूर्व राष्ट्रपति श्री एस. राधाकृष्णन और पंडित जवाहर लाल नेहरू जैसे प्रसिद्ध लोगों ने यहाँ की यात्रा की थी।

गोरखपुर विश्वविद्यालय से त्रिलोचन की कविता पर पी-एच.डी.। दिल्ली में बीस वर्षों तक अध्यापन करने के बाद वर्तमान में बाकू, अजरबैजान यूनिवर्सिटी ऑफ लैंग्वेजेज के हिंदी केंद्र में अध्यापनरत। साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों पर लगातार लेखन। कविताएँ, लेख, समीक्षाएँ और अनुवाद विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और ब्लॉग्स में सतत प्रकाशित।

अजरबैजान के लोग आरंभ से ही हिंदी सिनेमा के मुरीद रहे हैं। आज भी वह परंपरा कायम है। टेलीविजन पर हिंदी फिल्में दिखाई जाती रही हैं। सूचना क्रांति ने इस काम को अब और सुगम बना दिया है। आज भी पुरानी पीढ़ी, जहाँ राजकपूर, अमिताभ बच्चन, मिथुन चक्रवर्ती को याद करती है, वहीं नई पीढ़ी शाहरुख खान, आमिर खान, ऐश्वर्या राय आदि लोकप्रिय और मशहूर कलाकारों को पसंद करती है। पुरानी पीढ़ी के बहुत से लोगों का कहना है कि वे तो हिंदी फिल्में देखते हुए ही बड़े हुए हैं। मुझे इंडिया हाउस में आयोजित नवरोज के समारोह में विज्ञान के एक बुजुर्ग प्रोफेसर मिले, जिन्होंने मुकेश के कई गीत सुनाए, जो राजकपूर से मिल चुके हैं और वे उन्हें अजरबैजान का मुकेश कहते थे। गीतों के साथ अभी भी पुरानी यादों को उन्होंने सँजोकर रखा है। अपनी डायरी में उन्होंने आज भी वे सारे गीत सँभालकर रखे हैं। अकसर यहाँ टैक्सी ड्राइवर यह जानते ही कि हम हिंदुस्तान से हैं, बड़े ही प्रेम और सम्मान से राजकपूर का नाम तो जरूर लेते हैं। नवरोज के अवसर पर ही मेरे एक छात्र ने मुझे अपने घर आमंत्रित किया। उसके परिवार ने हमारी खूब आवभगत की। उसकी माँ ने राजकपूर की फिल्म का कोई गीत सुनने की इच्छा रखी। मैंने उन्हें 'आवारा' फिल्म का एक गीत जैसे ही सुनाना शुरू किया, उनकी आँखों से झर–झर आँसू बहने लगे।

यहाँ भावनाएँ भाषा की सारी सीमाएँ तोड़कर अपना नाता जोड़ लेती हैं। हिंदुस्तान के प्रति लोगों के दिलों में बहुत प्यार और इज्जत है। राह चलते भी यह जानने पर कि आप हिंदुस्तान से हैं, उस व्यक्ति की आँखों में प्रेम, स्नेह और सम्मान की एक मिली-जुली चमक आपको दिख जाएगी। हिंदुस्तान को यहाँ के लोग 'हिंदिस्तान' कहते हैं। भारतीय सीरियल यहाँ बड़े चाव से देखे जाते हैं तथा नए से नया गीत भी यहाँ पहुँचने में वक्त नहीं लगाता। गीतों के अर्थ नहीं जानते हुए भी युवा पीढ़ी इन गीतों पर थिरकती नजर आती है। चाहे कविता, साहित्य, गीत, संगीत, नृत्य, सिनेमा कुछ भी हो, इनका दोनों देशों पर गहरा प्रभाव है। इनके अलावा हिंदुस्तानी भोजन यहाँ खूब पसंद किया जाता है।

सन् १९९२ में अजरबैजान के साथ भारत के राजनयिक संबंध स्थापित हुए और यहाँ मिशन की स्थापना हुई तथा अजरबैजान ने वर्ष २००४ में भारत में अपना मिशन खोला। वर्ष २०१७ में दोनों देशों ने अपने कूटनीतिक संबंधों की २५वीं सालगिरह मनाई। अजरबैजान में भारत के राजदूत श्री संजय राणा के अनुसार दोनों देशों के बीच व्यापारिक, सांस्कृतिक और पारस्परिक मित्रता लगातार प्रगाढ़ हो रही है। संस्कृति विभिन्न माध्यमों से एक जगह से दूसरी जगह यात्रा करती है। शिक्षा के क्षेत्र में दोनों देशों के बीच का आदान-प्रदान विगत वर्षों में बढ़ा है। यहाँ भारत से शिक्षा प्राप्त करने छात्र आ रहे हैं। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा यहाँ के छात्रों को हिंदी कोर्स के लिए छात्रवृत्ति प्रदान करता है। यहाँ से तकनीकी और अन्य पेशेवर शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी छात्र भारत जाते हैं। अजरबैजान में कई योग विद्यालय है तथा योग संघ की अध्यक्षता अजरबैजान के राष्ट्रपति की पुत्री सुश्री लैला अलियेवा कर रही हैं।

वर्ष २०१० में अक्तूबर से यहाँ की प्रसिद्ध यूनिवर्सिटी अजरबैजान यूनिवर्सिटी ऑफ लैंग्वेज में हिंदी केंद्र की स्थापना हुई और हिंदी शिक्षण आरंभ हुआ। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (ICCR) द्वारा गठित और प्रायोजित यहाँ की हिंदी पीठ पर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (ICCR) के द्वारा ही चयनित शिक्षक भारतीय दूतावास के अधीन रहकर कार्य करता/करती है। छात्र हिंदी को द्वितीय विषय के रूप में पढ़ते हैं, जो उनके पूर्व स्नातक कोर्स (इंडोलोजी) के अंतर्गत होता है। अभी तक यहाँ के कई विद्यार्थियों ने केंद्रीय हिंदी संस्थान से हिंदी में विशेष विदेशी कोर्स पूरा किया है। उनमें से सबसे पहली छात्रा सुश्री सईदा मिर्जाएवा ही अब यहाँ के हिंदी केंद्र की प्रमुख हैं और एक अन्य छात्र वुसाल गुलियेव भी हिंदी केंद्र में अंशकालिक रूप में कार्यरत हैं। वे हिंदी केंद्र में कार्य करने के साथ बाकू में अपनी एक एकेडमी भी चलाते हैं जिसका नाम 'यस एकेडमी' है। उनकी इस सस्था का उद्देश्य यहाँ के छात्र-छात्रों को विदेशी भाषाओं की शिक्षा देना है। साथ ही उन्हें विदेश में शिक्षा प्राप्त करने में सहायता पहुँचाना है। वे अन्य विदेशी भाषाओं के साथ हिंदी शिक्षण का कार्यक्रम भी चला रहे हैं। यह ६ महीने का सर्टिफिकेट कोर्स होता है। संभवत: आनेवाले समय में यहाँ के कुछ स्कूल भी तीसरे विषय के रूप में हिंदी का शिक्षण आरंभ कर सकते हैं। आई. सी.सी.आर. प्रति वर्ष अजरबैजान के दो चुने गए छात्रों को भारत में केंद्रीय हिंदी संस्थान में हिंदी पढ़ने के लिए पूर्ण छात्रवृत्ति प्रदान करता है। हिंदी के अतिरिक्त अन्य विषयों की पढ़ाई के लिए भी यहाँ से छात्र भारत जाते हैं। हिंदुस्तान के प्रति यहाँ के छात्रों में बहुत आकर्षण है।

इसी उद्देश्य को और मजबूती से आगे बढ़ाने और इसे और व्यापक रूप देने के लिए मैंने हिंदी क्लब 'संगत' की स्थापना की। क्लब के इस विचार को राजदूत श्री संजय राणाजी के उत्साहवर्धन और सहयोग ने मूर्त रूप लेने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही विश्वविद्यालय प्रशासन ने भी इसे आरंभ करने में भरपूर सहयोग दिया। इस क्लब का उद्देश्य भारतीय संस्कृति, जिसमें साहित्य, कला, गीत-संगीत सभी कुछ समाहित है, से यहाँ के छात्रों को परिचित कराना है, साथ ही सांस्कृतिक गतिविधियों तथा विचारों के आदान-प्रदान के लिए मंच प्रदान करना है। इस क्लब से वे भी छात्र जुड़ रहे हैं, जो विषय के रूप में हिंदी नहीं पढ़ रहे हैं, परंतु भारतीय संस्कृति में उनकी गहरी रुचि है।

यहाँ लगभग १००० की संख्या में भारतीय समुदाय निवास करता है। सभी प्रमुख भारतीय त्योहार मनाए जाते हैं, जिनमें यहाँ के स्थानीय लोगों की भी भागीदारी रहती है। समय-समय पर भारतीय दूतावास द्वारा कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। जिनमें विश्व हिंदी दिवस, गणतंत्र दिवस, अंबेडकर जयंती, प्रवासी भारतीय दिवस आदि प्रमुख हैं। वर्तमान भारतीय राजदूत श्री संजय राणा विशेष रूप से हिंदी के प्रचार-प्रसार से जुड़े कार्यक्रमों में व्यक्तिगत रुचि लेते हैं तथा पूरा समर्थन, सहयोग और उत्साहवर्धन करते हैं। उनके उत्साहवर्धन और सक्रियता के कारण ही हिंदी से जुड़े कार्यक्रम नियमित रूप से आयोजित होते रहते हैं। लंबे समय से बाकू में निवास कर रही डॉ. शुचिता सेठ के संपादन में इंडियन एसोशिएशन ऑफ अजरबैजान और भारतीय दूतावास के सहयोग से पिछले कई वर्षों से 'नमस्ते बाकू' पत्रिका का प्रकाशन हो रहा है। यह पत्रिका दोनों देशों के बीच एक सांस्कृतिक सेतु का काम कर रही है। यहाँ आपको कुछ ऐसे भी लोग मिल जाएँगे, जिन्होंने हिंदी में औपचारिक शिक्षा नहीं प्राप्त की, परंतु वे अपने प्रयासों से हिंदी की थोड़ी-बहुत जानकारी रखते हैं। यहाँ की एक और युवा महिला हैं, जो कुछ वर्षों पहले केंद्रीय हिंदी संस्थान से हिंदी का कोर्स कर चुकी हैं। उनके ऊपर भारत का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे अपने को पूरी तरह भारतीय ही मानती हैं तथा उन्होंने अपना हिंदुस्तानी नाम रख लिया और वे अपने आपको अपने उसी नाम से ही संबोधित करना पसंद करती हैं। उनकी इच्छा है कि वे अपनी आखिरी साँस भारत में लें। एक समारोह के दौरान यहाँ की एक अन्य प्रतिष्ठित यूनिवर्सिटी

अजरबैजान डिप्लोमेटिक एकेडमी (ADA) में एक छात्रा से किसी ने परिचय कराया, उसने हिंदी में बात की, जो एक सुखद आश्चर्य था। यह पूछने पर कि उसने कहाँ से हिंदी सीखी, उसका जवाब था बॉलीवुड। हिंदी फिल्में देख-देखकर उसने कामचलाऊ हिंदी सीख ली है। इस तरह हिंदी फिल्मों ने भी यहाँ हिंदी को प्रचारित-प्रसारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मैं अजरबैजान यूनिवर्सिटी ऑफ लैंग्वेजेज के हिंदी केंद्र में पिछले वर्ष अध्यापन के लिए आई। यहाँ हिंदी पढ़ने के साथ-साथ छात्र अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों में भी सक्रियता से भाग लेते हैं। इसी उद्देश्य को और मजबूती से आगे बढ़ाने और इसे और व्यापक रूप देने के लिए मैंने हिंदी क्लब 'संगत' की स्थापना की। क्लब के इस विचार को राजदूत श्री संजय राणाजी के उत्साहवर्धन और सहयोग ने मूर्त रूप लेने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही विश्वविद्यालय प्रशासन ने भी इसे आरंभ करने में भरपूर सहयोग दिया। इस क्लब का उद्देश्य भारतीय संस्कृति, जिसमें साहित्य, कला, गीत-संगीत सभी कुछ समाहित है, से यहाँ के छात्रों को परिचित कराना है, साथ ही सांस्कृतिक गतिविधियों तथा विचारों के आदान-प्रदान के लिए मंच प्रदान करना है। इस क्लब से वे भी छात्र जुड़ रहे हैं, जो विषय के रूप में हिंदी नहीं पढ़ रहे हैं, परंतु भारतीय संस्कृति में उनकी गहरी रुचि है। इसी कड़ी में ३ मई को विश्वविद्यालय में टैगोर जयंती का आयोजन किया गया। जिसमें छात्र-छात्राओं ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। पूरा कार्यक्रम उनके द्वारा संचालित किया गया, जिसका माध्यम हिंदी और अजेरी था। उन्होंने टैगोर के गीत और कविता की प्रस्तुति दी, नृत्य प्रस्तुत किया, क्लब ने हाल ही में 'महाभारत' पर एक सेमिनार किया, जिसमे लोगों की बहुत रुचि थी। संभावना है कि इसे शृंखला के रूप में आगे बढ़ाया जाए। इस प्रकार प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में भाषा और संस्कृति से परिचित कराने का काम यहाँ निरंतर चल रहा है। अनौपचारिक रूप से भी कई छात्र हिंदी सीखने का प्रयास करते हैं, जिनकी पूरी सहायता की जाती है। इनमें से कुछ छात्र अनुमति लेकर कभी-कभी कक्षा में भी बैठकर भाषा सीखने में रुचि लेते हैं। समय-समय पर अर्थपूर्ण हिंदी फिल्मों के शो भी रखे जाते हैं, जिनमें छात्र रुचि लेते हैं। भारतीय दूतावास की ओर से भी समय-समय पर विशेष अवसरों पर कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं जिनमें यहाँ के छात्र-छात्राएँ और अन्य स्थानीय लोग भी शामिल होते हैं।

भाषा संस्कृति को अभिव्यक्त करने का एक माध्यम है। भाषा के अतिरिक्त अन्य बहुत से माध्यम हैं, जो किसी भी संस्कृति को अभिव्यक्त करते हैं, दर्शाते हैं। जैसा कि लेखक क्लेयर क्राम्स अपनी पुस्तक 'लैंग्वेज एंड क्ल्चर' में लिखते हैं—''भाषा वह प्रमुख माध्यम है, जिसके द्वारा हम अपने सामाजिक जीवन का संचालन करते हैं। जब संप्रेषण के संदर्भ में इसका उपयोग किया जाता है तो यह कई और जटिल तरीकों से संस्कृति के साथ बँधा होता है।'' वे आगे लिखते हैं—''अंतत: भाषा संकेतों की एक प्रणाली है, जो स्वयं में एक सांस्कृतिक मूल्य धारण किए रहता है।'' भाषा और संस्कृति के अंतर्संबंध को स्पष्ट करने के लिए ये उद्धरण महत्त्वपूर्ण हैं। समग्रता में में देखें तो अलग-अलग माध्यमों से हिंदुस्तानी संस्कृति यहाँ अपनी मौजूदगी दर्ज कराती है। भाषा उनमें से एक माध्यम है। एक परिभाषा के अनुसार संस्कृति भाषा, धर्म, व्यंजन, संगीत, कला और सामाजिक आदतों के एक विशेष समूह की विशेषताओं का ज्ञान है।

अजरबैजानी और हिंदी दोनों भाषाओं पर फारसी का गहरा प्रभाव है। इसलिए दोनों में ढेरों ऐसे शब्द मिल जाएँगे, जो समान हैं। जैसे दीवार, दरवाजा, ताजा, कैंची, बाग, दोस्त, दुश्मन, कीमत, ताजा इत्यादि। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वाक्य संरचना भी दोनों भाषाओं में एक समान है। अत: छात्रों के लिए समझना आसान होता है। हिंदी व्याकरण पढ़ते समय भी छात्र दोनों भाषाओं में बहुत सी समानताएँ बताते हैं। इस प्रकार अजरबैजान में भाषा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के अन्य तत्त्वों के साथ एक अनोखा रिश्ता दिखाई देता है। यह रिश्ता लगातार फलता-फूलता दिखाई दे रहा है। भविष्य में यह रिश्ता और प्रगाढ़तर हो, ऐसी दोनों देशों के निवासियों की सदिच्छा है।

The Embassy Of India,Baku,Azerbaijan
302 Jeyhun Hajibeyli Street,
Gandjilik,Narmanov District, Baku AZ 1069
e-mail : rssinharoopali@gmail.com

हिंदी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्रोत है। —सुमित्रानंदन पंत

राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की उन्नति के लिए आवश्यक है। —महात्मा गांधी

हिंदी ज्ञान मेरे लिए अमृतपान है, जितनी बार उसे पीता हूँ, उतनी बार लगता है पुनः जीता हूँ।—डॉ. ओदेलेन स्मैकल

इस विशाल प्रदेश के हर भाग में शिक्षित-अशिक्षित, नागरिक और ग्रामीण सभी हिंदी समझते हैं।—राहुल सांकृत्यायन

अमरीका में हिंदी की दशा एवं दिशा

• आस्था नवल

मैं दिल्ली शहर में पली-बढ़ी, इसलिए हिंदी बोलना स्वाभाविक था, लेकिन हिंदी भाषा के प्रति प्रेम विरासत में मिला। परिवार में हिंदी साहित्य से जुड़े नामों की कमी नहीं थी। प्रोफेसर विजयेंद्र स्नातक को नाना के रूप में पाना मेरा सौभाग्य था। बचपन से उनके निजी पुस्तकालय में छोटी-बड़ी असंख्य किताबों को देखा। माता-पिता दोनों हिंदी के अध्यापक थे, इसलिए कबीर, सूर, रहीम, महादेवी, प्रसाद जैसे नामों की चर्चा भी आए दिन सुनी। सौभाग्यवश हिंदी साहित्य के कई दिग्गजों को घर में आते-जाते भी देखा। यही सब देखकर बचपन से हिंदी पढ़ाने का सपना देखा, जो २००५ में पूरा भी हो गया। दिल्ली के इंद्रप्रस्थ महाविद्यालय में जब हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़ाने का अवसर मिला तो हर्ष से फूली न समाई। अप्रैल २००६ में जब मिरांडा हाऊस महाविद्यालय में नौकरी लगी, तब हिंदी कहानी और अनुवाद की कक्षाओं में पढ़ाने में बहुत आनंद आया।

लेकिन इसी बीच जब शादी की बात हुई और शादी के बाद मेरा अमरीका आना तय हुआ तो एक बार तो लगा कि हिंदी से लगाव छोड़ना पड़ेगा। कई लोगों ने कई प्रकार के कोर्स करने का सुझाव दिया। कई सहकर्मियों ने, सहपाठियों ने मजाक भी उड़ाया कि अमरीका में हिंदी का क्या करूँगी! कुछ शुभचिंतकों ने चिंता जताई।

मैंने २००४ में अमरीका में हिंदी का वर्चस्व देखा था। एक अंतरराष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस में 'संस्कृत नाटकों की प्रासंगिकता' पर परचा पढ़ा था, तब हिंदी प्रेमियों की झलक मिली थी। श्री हरि बिंदलजी ने तब अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति की जानकारी दी थी और साथ ही दो हिंदी कवि-सम्मेलनों का आयोजन भी किया था। दोनों ही कवि-सम्मेलनों में अमरीका की राजधानी और उसके आसपास रहनेवाले कवि आए थे। भाषा की समझ रखनेवालों की और साहित्य को सराहने वालों की कमी नहीं है, यह समझ आ गई थी। तब मुझे ज्ञात न था कि एक दिन मैं इस हिंदी समिति की सदस्य बनूँगी, पर आज मैं अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति से जुड़ी हूँ और इसके कई कार्यक्रमों में भाग भी लेती रहती हूँ। इसी समिति द्वारा 'विश्वा' पत्रिका का प्रकाशन भी होता है।

सन् २००६ में न्यूजर्सी में स्थित हिंदी यू.एस.ए. के संस्थापक दंपती श्रीमती रचिता सिंह और श्री देवेंद्र सिंहजी से मिलना हुआ,

उन्नीस वर्ष की आयु में प्रथम पुस्तक 'आस्था की डायरी' का लोकार्पण बल्गेरिया के सोफिया विश्वविद्यालय में हुआ। दूसरी पुस्तक 'लड़की आज भी' (काव्य-संकलन) है। पत्र-पत्रिकाओं में कविता और लेख प्रकाशित। संप्रति वर्जीनिया में रहती हैं और मोंटगमरी कॉलेज, मैरीलैंड, अमेरिका में हिंदी पढ़ाती हैं।

जिन्होंने पाँचवें हिंदी महोत्सव में मुझे कवयित्री के रूप में बुलाया। हिंदी का वर्चस्व और उसके प्रति प्रवासी भारतीयों का लगाव देखते ही बनता था। हजारों की संख्या में छोटे-छोटे भारतीय मूल के अमरीकी बच्चे हिंदी बोल रहे थे। मंच पर हर उम्र के बच्चे नाटक, कविता, संगीत, नृत्य आदि हिंदी में ही प्रस्तुत कर रहे थे। मैं मन-ही-मन सोच रही थी कि सरल हिंदीवाली कविता सुनानी होगी या कुछ शब्दों का अनुवाद करना होगा, पर खचाखच भरे भवन में सभी ने भावुक और गहरी कविताओं का स्वागत किया। उसी दिन मैं आश्वस्त हो गई थी कि मुझे हिंदी को त्यागना नहीं होगा, बल्कि नए देश में हिंदी मेरा सहारा बनेगी।

इससे पहले कि मैं अपनी बात करूँ, पाठकों को बता दूँ कि हिंदी-यू.एस.ए. एक नॉन प्रोफिट संस्था है, जिसके बीस से अधिक हिंदी पढ़ानेवाले स्कूल हैं। न्यू जर्सी के स्कूलों में हिंदी को मान्यता दिलाने में इस संस्था का बड़ा योगदान है।

सन् २००७ में शादी के बाद पति के साथ हिंदी का हाथ थामे मैं अमरीका बसने आ गई। हिंदी ने मुझे एक पल के लिए भी अकेला नहीं होने दिया। प्रवासी भारतीयों के लिए मानो बहुत सारी इ-पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी बाँहें खोल रखी हैं। विदेश में आने के बाद मैंने भी इ-पत्रिकाओं में अपनी कविताएँ भेजनी आरंभ कीं। सबसे पहले कनाडा की इ-पत्रिका 'साहित्य कुंज' ने प्रोत्साहन दिया। उसके बाद 'विश्वा', 'प्रवासी दुनिया' आदि में मेरी कविताएँ छपने लगीं। उसी वर्ष न्यू जर्सी के षष्ठम हिंदी महोत्सव में भाग लेने का फिर से अवसर मिला। संयोगवश आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयॉर्क में हुआ। उस सम्मेलन में विश्व भर से जो हिंदीसेवी आए सो आए, उनसे मेरा मिलना हुआ तथा अमरीका के कोने-कोने में बसे हिंदी प्रेमियों से भी। वहीं मिलना हुआ प्रसिद्ध साहित्यकार व गीतकार पंडित नरेंद्र शर्माजी

की सुपुत्री लावण्या शाहजी से, जो स्वयं भी साहित्य से जुड़ी हैं, सुषम बेदीजी, सुनीता जैनजी, गुलाब खंडेलवालजी के परिवार से, रेणु राजवंशी, अनूप भार्गव व उनकी पत्नी रजनी भार्गवजी से। मैं नवविवाहिता, नए शहर में ही नहीं, नए देश में भी थी। मिली तो ऐसे कई प्रवासियों से थी, जो हिंदीसेवा में मग्न हैं, लेकिन सभी के नाम आदि याद न रख सकी। कई नामों का बार-बार उल्लेख सुना, जैसे विजय गंभीर और सुरेंद्र गंभीर, लेकिन मिलना न हो पाया।

इन सभी हिंदी-सेवियों का हिंदी प्रेम इतना अधिक था कि इन्होंने मुझे भी बिना जाने-पहचाने अपना लिया तथा हिंदी के प्रति मेरे लगाव को और गहरा किया। उसी सम्मेलन में पता चला कि अमरीका के हर बड़े शहर में जहाँ भारतीय हैं, वहाँ हिंदी भी है। उन्होंने जानकारी दी कि प्रतिवर्ष अमरीका में हिंदी से जुड़े कई सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं, जिनमें से कवि-सम्मेलन सर्वाधिक पसंद किए जानेवाला कार्यक्रम है। अमरीका में रहनेवाले हिंदी कवियों के दिन-त्योहारों पर तो कवि-सम्मेलन होते ही हैं, लेकिन इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष भारत से कवियों को बुलाया जाता है। कविगण पूरे अमरीका में घूमते हैं, जिनका भरपूर स्वागत किया जाता है।

कविता, कहानी सुनना-सुनाना कला का हिस्सा है, पर फिर भी आम जिंदगी में ये सब आय का साधन नहीं बन सकते। जब गृहस्थी नई हो तो धनार्जन की चिंता भी काफी होती है। एक बार फिर अमरीका में हिंदी प्रेम को छोड़ने की सलाह मुझे थोक में मिली। चाहे परिवार के लोग हों या पड़ोस के, बूढ़े हों या हमउम्र, सभी ने हिंदी में कविता की तो सराहना की, लेकिन हिंदी को नए घर की बागडोर सँभालने लायक न समझा। हिंदी-प्रेम डगमगाने ही वाला था कि 'वॉइस ऑफ अमेरिका' में कार्यरत सुमन गुप्ताजी से मिलना हुआ। पता चला कि हिंदी का रेडियो है, जो केवल शौकिया नहीं, आय का साधन भी हो सकता है। सुमनजी ने मुझे हिंदी को आजीविका का साधन कैसे बनाएँ, इस मूल्यवान जानकारी से अवगत कराया।

इस जानकारी से तय हो गया कि हिंदी की कविता अमरीका में जीवित है। धीरे-धीरे मैं भी कवि-सम्मेलनों का हिस्सा होने लगी। जो समाज कविता को समझ सकता है, वह भाषा को अवश्य ही प्यार करेगा। इसी से आप अमरीका में हिंदी भाषा के स्थान का अनुमान लगा सकते हैं।

कविता, कहानी सुनना-सुनाना कला का हिस्सा है, पर फिर भी आम जिंदगी में ये सब आय का साधन नहीं बन सकते। जब गृहस्थी नई हो तो धनार्जन की चिंता भी काफी होती है। एक बार फिर अमरीका में हिंदी प्रेम को छोड़ने की सलाह मुझे थोक में मिली। चाहे परिवार के लोग हों या पड़ोस के, बूढ़े हों या हमउम्र, सभी ने हिंदी में कविता की तो सराहना की, लेकिन हिंदी को नए घर की बागडोर सँभालने लायक न समझा। हिंदी-प्रेम डगमगाने ही वाला था कि 'वॉइस ऑफ अमेरिका' में कार्यरत सुमन गुप्ताजी से मिलना हुआ। पता चला कि हिंदी का रेडियो है, जो केवल शौकिया नहीं, आय का साधन भी हो सकता है। सुमनजी ने मुझे हिंदी को आजीविका का साधन कैसे बनाएँ, इस मूल्यवान जानकारी से अवगत कराया।

मुझे तो लगता था कि हिंदी कवि-सम्मेलनों, भारतीय खाद्य पदार्थों और हिंदी सिनेमा तक ही सीमित होगी; लेकिन हिंदी एक अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में अपना बलशाली प्रभाव और स्थान रखती है। हिंदी भाषा तो प्रवासी भारतीयों के कारण अमरीका में फैली हुई है, पर इसके साथ-साथ हिंदी भाषा का पठन-पाठन अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में अमरीका के कई भाषा संस्थानों में किया जाता है। हिंदी के मानक रूप का ज्ञान, बोलचाल की हिंदी का ज्ञान, सभी कुछ तन्मयता से सीखा व सिखाया जाता है। इस बात की जानकारी बहुत कम प्रवासी भारतीयों और स्वदेश में बसे भारतीयों को होती है। अफसोस की बात है कि जिस भाषा को विश्व में इतना सम्मान मिलता है, उस भाषा के मूलभाषी ही उसका सम्मान नहीं करते। कई बार जब मैं यह सब जानकारी हिंदी भाषियों को देती हूँ तो न जाने क्यों, उन्हें गर्व के स्थान पर केवल संदेह या आश्चर्य होता है।

जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं तो साल-दर-साल अमरीका में हिंदी की दशा और दिशा से प्रभावित ही होती रही। अभी मुझे अमरीका में रहते केवल दो साल ही हुए थे कि मेरी नौकरी ऐसे संस्थान में लगी, जहाँ चार हिंदी भाषियों को मिलकर अमरीकी सेना के लिए हिंदी का इ-कोर्स बनाना था। पाठकों को जानकर शायद आश्चर्य हो कि अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के कई इ-कोर्स यानी ऑनलाइन पढ़ाए जानेवाले कोर्स उपलब्ध हैं। अब तो स्मार्ट फोन पर हिंदी प्रश्नोत्तरी, हिंदी अभिवादन, हिंदी के प्रसिद्ध शब्दों के लिए एपलिकेशन भी हैं।

'डिफेंस लैंग्वेज इंस्टीट्यूट' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, एक ऐसा संस्थान है, जो अमरीकी जल, थल और नौसेना के अफसरों को अलग-अलग भाषाएँ सिखाता है। अमरीका में इस संस्थान के लिए कई छोटे-बड़े संस्थान कार्य करते हैं। ऐसे ही एक वाशिंगटन डी.सी. के इंटरनेशनल सेंटर फॉर लैंग्वेज स्टडीज में मैंने चार साल लगातार कार्य किया और प्रथमिक से उच्च स्तरीय हिंदी के ऑनलाइन पाठ बनाए। हिंदी के ज्ञान के कारण ही मैं अपने नवजीवन में बराबर का साथ निभा सकी। पति की नौकरी के साथ-साथ मेरी नौकरी ने हमें अपना घर और गाड़ी खरीदने का साहस दिया।

मुझे हिंदी पर कभी भी संदेह नहीं था, लेकिन आस-पड़ोस के लोगों को बहुत संदेह था। हिंदी को न जाने क्यों, कई लोग शक की

नजर से देखते हैं। पर मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकती हूँ कि अमरीका में हिंदी का ज्ञान हमें मनोरंजन और साहित्य की दुनिया के साथ-साथ आजीविका भी दे सकता है। सप्ताह के पाँच दिन मैं वाशिंगटन डी.सी. जाती रही और सप्ताहांत में लगभग छह साल तक एक भारतीय स्कूल में पढ़ाया, जिसका नाम है—इंडिया इंटरनेशनल स्कूल। जब हम अपने देश से दूर होते हैं तो अपने साथ-साथ अपने बच्चों को अपनी संस्कृति से जोड़ना चाहते हैं। ऐसे में मैंने अनुभव किया कि अलग-अलग प्रांत से आए हुए भारतीयों को जोड़ती है हिंदी भाषा। भारत से गुजराती, तेलुगु, कन्नड़, मराठी, बंगाली आदि भाषा बोलनेवाले माता-पिता अपने बच्चों को हिंदी सिखाना चाहते हैं। पूरे अमरीका में जहाँ-जहाँ भारतीय बसे हैं, वहाँ-वहाँ भारतीय संस्कृति को बढ़ावा देनेवाली छोटी-बड़ी पाठशालाएँ हैं। इनमें भारतीय संगीत, नृत्य, योग आदि के साथ-साथ हिंदी अवश्य सिखाई जाती है। मैंने जिस पाठशाला में कई वर्ष पढ़ाया, वहाँ के संस्थापकों में लेखक व योगाचार्य धनंजय कुमार हैं। प्रमुख अध्यापिकाओं में वाशिंगटन डी.सी. की प्रख्यात कवयित्री मधु महेश्वरी, प्रख्यात रंगकर्मी पुष्पा अग्निहोत्री कई वर्षों से वहाँ अध्यापन कार्य में रत हैं।

योग और पर्यटन भी हिंदी भाषा को यहाँ बढ़ावा दे रहे हैं। भारत हमेशा से ही पर्यटकों के लिए आकर्षक स्थल रहा है। कई अमरीकी भारत आने से पहले हिंदी सीखना चाहते हैं। २०११ में मुझे वाशिंगटन स्थित अमरीकी सरकार के कॉमर्स विभाग में हिंदी पढ़ाने का सुअवसर मिला। यह कक्षा उन वयस्कों के लिए थी, जो लगातार भारत के साथ व्यापार आदि करते हैं। इन लोगों को हिंदी लिपि की नहीं, पर भारतीय त्योहारों और खान-पान की हिंदी में जानकारी चाहिए थी। सभी छात्र बड़े-बड़े पदों पर थे और हिंदी में नमस्कार से लेकर धन्यवाद बोलने में बहुत आनंद लेते थे।

देश से बाहर आकर हम भारतीय अपने पड़ोसी देशवासियों के करीब हो जाते हैं। देश का बँटवारा, लाइन ऑफ कंट्रोल की सीमाएँ यहाँ अमरीका में मायने नहीं रखतीं। भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों का खान-पान, पहनावा, रिवाज आदि सभी मिलते-जुलते हैं, जिनके कारण हम सब विदेश में एक हो जाते हैं। इसमें भी हिंदी का बहुत बड़ा योगदान है। चाहे भाषाविद् माने या न मानें, हिंदी के प्रति लोगों के प्रेम का श्रेय हिंदी सिनेमा को दिए बिना हम नहीं रह सकते। भारतीय हिंदी फिल्मों का प्रचार अमरीका में बहुत अधिक है। पाकिस्तानी, नेपाली, बांग्लादेशी और श्रीलंकाई मूल के लोगों के विवाह में ६० प्रतिशत हिंदी के गाने ही चलते हैं। केवल फिल्में ही नहीं, हिंदी के केबल चैनल पर प्रसारित होनेवाले हिंदी कार्यक्रम भी यहाँ लोकप्रिय हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों के साथ-साथ रूसी, यूरोपीय, अफ्रीकी लोगों में भी भारतीय फिल्में प्रसिद्ध हैं। मेरी एक रूसी सहेली ने बाताया कि उसकी मनपसंद फिल्म 'सीता-गीता' है। वह राजकपूर और मिथुन की फिल्मों की बात अकसर किया करती है। उसे ऐश्वर्या रॉय खासी पसंद है।

वर्ष २००९ में मैंने एक अनोखी वर्कशॉप (स्टारटॉक वर्कशॉप) में भाग लिया। अनोखी इसलिए, क्योंकि इसमें हमें सिखाया गया कि हिंदी को एक विदेशी भाषा के रूप में कैसे पढ़ाया जा सकता है। जब भाषा की बारीकियों के बारे में जाना और भाषा के सामान्य प्रयोग से जुड़े सवालों से जूझना पड़ा तो साहित्य पढ़ाना प्राथमिक हिंदी पढ़ाने से सरल लगा। यह वर्कशॉप न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी में हुई, तभी पता चला कि मिडल ईस्टर्न एंड इसलामिक स्टडीज विभाग के तहत न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय में हिंदी और उर्दू पढ़ाई जाती हैं। इस विभाग की मुख्य प्रोफेसर गेब्रीएला निक मूलत: बल्गेरियन महिला हैं, जो हिंदीसेवी हैं। गेब्रीएलाजी को २०१७ में श्री प्रणब मुखर्जी द्वारा हिंदी सेवी सम्मान से सम्मानित किया गया था। इन्हीं के संपर्क में आकर पता चला कि हिंदी को आधुनिक तरीकों से कैसे पढ़ाना चाहिए।

कई वर्षों से अमरीका में हूँ, इसलिए भारत में हिंदी पढ़ाने के तरीकों के विषय में अधिक जानकारी नहीं रखती। लेकिन अमरीका के सबसे बड़े शहर में स्थित विश्वविद्यालय ने मेरे जैसे कई हिंदी अध्यापकों को तकनीक एवं आधुनिक सोच के साथ हिंदी पढ़ाने के तरीके सिखाए। इसी वर्कशॉप द्वारा पता लगा कि केवल न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय ही नहीं, बल्कि अमरीका के कई विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। कुछ विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों से मेरा मिलना निजी तौर पर हुआ। टेक्सास विश्वविद्यालय के जिश्नू शंकरजी, (टेक्सास विश्वविद्यालय ने हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप कार्यक्रम चलाया है, जो यहाँ भाषा सीखनेवालों में प्रसिद्ध है।) कोलंबिया विश्वविद्यालय की सुषम बेदी (सुषम बेदीजी को साहित्य से जुड़े जन तो जानते ही हैं, साथ ही सुषमजी हिंदी टेस्टिंग की भी ट्रेनिंग देती हैं।) कॉरनेल विश्वविद्यालय की सुजाता सिंहजी, जिनके साथ २०११ में मुझे रहने का और सीखने का अवसर मिला। येल विश्वविद्यालय की सीमा खुराना और स्वप्नाजी। न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय की बिंदेश्वरी अग्रवाल और रजनी भार्गवजी से भी बहुत कुछ सीखने को मिला।

इसके अतिरिक्त कुछ और विश्वविद्यालयों में हिंदी की चहलकदमी के किस्से भी सुने। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय, पैनसिलवेनिया विश्वविद्यालय, शिकागो विश्वविद्यालय, प्रिंसटन विश्वविद्यालय और हार्वर्ड विश्वविद्यालय में भी हिंदी पढ़ाई जाती है। सभी विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक हिंदी सेवा में संलग्न हैं और उसे संस्कृति से जोड़ते हुए आधुनिक रूप प्रदान कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त कई अमरीकी महाविद्यालयों में भाषा विभाग के अंतर्गत हिंदी अध्यापन भी होता है। जिनमें से मोंटगमरी महाविद्यालय में आजकल मैं हिंदी पढ़ा रही हूँ।

कोई भी भाषा सीखना सरल नहीं है, फिर भी हिंदी को विदेशी भाषा की तरह बहुत से लोग सीखना चाहते हैं; यही हिंदी के वर्चस्व का बखान करती है। आप यह न समझें कि अमरीका में हिंदी पढ़ने-

पढ़ानेवाले केवल अध्यापकगण हैं। मेरी तरह भारत में हिंदी शिक्षक रहे बहुत कम लोग हैं। यहाँ हिंदी का आकर्षण कुछ ऐसा है कि पेशे से वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर, सी.ए. आदि सभी हिंदी को बढ़ावा देने के लिए एकजुट हैं।

मैंने यहाँ रहकर कुछ ऐसे भी लोगों को जाना, जिन्होंने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अपनी लगी लगाई नौकरी छोड़ दी। २०११ में जब मैंने पुन: स्टारटॉक वर्कशॉप की, तब कैलीफोर्निया स्थित अंशु जैनजी से मेरा मिलना हुआ। वे पेशे से इंजीनियर हैं, लेकिन अमेरिका में रहकर अपने बच्चों को हिंदी सिखाते हुए उन्हें अपना दायित्व लगा कि वे नई सोच से हिंदी सिखाने का कार्य करें। उन्होंने हिंदी पढ़ाने में तकनीकी जानकारी का सहारा लिया। आज कैलीफोर्निया में 'इंडस हेरीटेज सेंटर' की कई शाखाएँ हैं, जो मुख्यत: बच्चों को हिंदी सिखाती हैं। साथ ही अमरीका और अन्य देशों में भी अंशुजी और उनके द्वारा नियुक्त अन्य हिंदी अध्यापक वयस्कों और बच्चों को ऑनलाइन हिंदी सिखाते हैं।

योग और पर्यटन भी हिंदी भाषा को यहाँ बढ़ावा दे रहे हैं। भारत हमेशा से ही पर्यटकों के लिए आकर्षक स्थल रहा है। कई अमरीकी भारत आने से पहले हिंदी सीखना चाहते हैं। २०११ में मुझे वाशिंगटन स्थित अमरीकी सरकार के कॉमर्स विभाग में हिंदी पढ़ाने का सुअवसर मिला। यह कक्षा उन वयस्कों के लिए थी, जो लगातार भारत के साथ व्यापार आदि करते हैं। इन लोगों को हिंदी लिपि की नहीं, पर भारतीय त्योहारों और खान-पान की हिंदी में जानकारी चाहिए थी। सभी छात्र बड़े-बड़े पदों पर थे और हिंदी में नमस्कार से लेकर धन्यवाद बोलने में बहुत आनंद लेते थे।

वर्ष २०१३ में मैंने वाशिंगटन डी.सी. स्थित मिडल ईस्टर्न साउथ एशियन लैंग्वेज इंस्टीट्यूट में सायंकाल कक्षा में पढ़ाया, जहाँ सभी विद्यार्थी अपनी नौकरी के बाद पढ़ने आते थे। अधिकांश छात्र २५ से ३५ वर्ष के बीच के थे। उनसे पता चला कि हिंदी सीखने का कारण प्रेम भी हो सकता है। कई भारतीय मूल के लोगों की तीसरी, चौथी, पाँचवीं पीढ़ी यहीं बड़ी हो रही है। तीसरी-चौथी पीढ़ी के लोगों में प्रेम-विवाह सामान्य बात है, इसलिए इस कक्षा में मुझे अधिकांश छात्र ऐसे मिले, जो अपने साथी के परिवारवालों को खुश करने के लिए हिंदी सीखना चाहते थे।

हिंदी का वर्चस्व इतना बढ़ रहा है कि आए दिन हिंदी भाषा जाननेवालों के लिए नौकरियाँ बन रही हैं। बहुत से सरकारी दफ्तरों में हिंदी का एक इम्तिहान पास करने पर पदोन्नति मिलती है। अस्पतालों में, कचहरियों में, हवाई अड्डों पर, यहाँ तक कि कई मेक डॉनल्ड जैसे रेस्टोरेंट में भी हिंदी जाननेवालों की माँग है।

मुझे बचपन से बताया गया है कि सोच को सकारात्मक रखना चाहिए, इसीलिए मैंने हिंदी के उज्ज्वल पहलुओं की बात पहले की है। ऐसा नहीं है कि हर जगह गुलाब-ही-गुलाब खिले हैं। हिंदी के भविष्य को लेकर कई प्रकार की चिंताएँ भी हैं। सबसे बड़ी चिंता है लिपि की। नए बच्चे हिंदी लिखने से कतराते हैं। बोलना, सुनना और पढ़ना सभी को ठीक लगता है। मेरे अधिकांश छात्र हिंदी बखूबी पढ़ लेते हैं, पर लिखने में उनकी हिचक स्पष्ट नजर आती है। स्मार्ट फोन में हिंदी लिपि आने से इस हिचक में बदलाव आना आरंभ हुआ है। हिंदीवालों को तकनीक से जुड़ने की आवश्यकता है। हिंदी अपने आप में सशक्त है, आवश्यकता है इस पर भरोसा करने की। हिंदी भाषा में तो कोई कमी मुझे नहीं दिखाई देती, लेकिन हिंदी भाषियों में बहुत बड़ी कमी है। हिंदी भाषी चाहे अमरीका में हों या स्वदेश में, अपनी भाषा का सम्मान नहीं करते। दूसरी भाषाएँ सीखना अच्छी बात है, पर अपनी भाषा का निरादर करना ठीक नहीं है।

प्रवासी भारतीयों में कई ऐसे लोग हैं, जो स्वयं हिंदी का पठन-पाठन करते हैं। दुनिया में हिंदी का परचम फैलाने की घोषणा भी बार-बार करते हैं, लेकिन अपने परिवार में, अपने बच्चों को हिंदी नहीं सिखा पाते। मेरे कई शिष्यों के माता-पिता बच्चों को हिंदी सिखाना चाहते हैं, पर घर पर हिंदी में बात नहीं करते। वैसा ही वातावरण मैं जब-जब दिल्ली जाती हूँ तो देखती हूँ। बच्चे घर में, स्कूल में केवल अंग्रेजी में बोलते हैं। अपनी भाषा को छोड़ दूसरी भाषा के पीछे भागना बताता है कि कहीं-न-कहीं आज भी हम मन से अंग्रेजों के पराधीन हैं।

मैं फिर भी आशावान हूँ कि मेरी हिंदी, हम सबकी हिंदी का भविष्य उज्ज्वल ही है। मैंने इसका वर्चस्व अमरीका में देखा है। प्रतिवर्ष मैं ५-६ हिंदी काव्य गोष्ठियों में भाग लेती हूँ। कम-से-कम दो या तीन हिंदी के नाटक देखती हूँ, जिनमें एक भी सीट खाली नहीं रहती। ४-५ हिंदी फिल्में सिनेमाघर में देखती हूँ, जो खचाखच भरे होते हैं। अमरीका से निकलनेवाली कई हिंदी की इ-पत्रिकाएँ पढ़ती हूँ और उनमें योगदान भी देती हूँ।

जिन्होंने मुझे हिंदी-प्रेम त्यागने की सलाह कई बार दी थी, उन सभी को बताना चाहती हूँ कि विदेश में हिंदी मेरी सखी की तरह है, जिसने मेरा हाथ कसकर थामे रखा। मैं आशावान हूँ और आप सभी से आग्रह करती हूँ कि हिंदी के लिए शंकित न हों। अपने बच्चों को हिंदी के प्रति उदासीन न होने दें। हिंदी में पत्रकारिता, अभिनय हिंदी की जानकारी के साथ सीक्रेट सर्विस आदि हर जगह लाभ होता है।

हर भाषा में इतिहास छिपा होता है। हिंदी हमारी संस्कृति का हिस्सा है। जितना विदेश में सहेजने की आवश्यकता है, उतना ही देश में सँवारने की भी। अन्य भाषाएँ सीखिए, लेकिन हिंदी से मुँह न फेरिए। कभी अमरीका आएँ तो 'नमस्ते' की ताकत को स्वयं अनुभव कीजिए। मैं तो पिछले ११ वर्षों से अनुभव कर रही हूँ और इसी अनुभव से कह सकती हूँ कि हिंदी की दशा और दिशा अमरीका में आशावान है।

23042 Weybridge Sq
Ashburn, VA 20148
USA
e-mail : asthanaval@gmail.com

अमरीका में हिंदी : अतीत-वर्तमान-भविष्य

• रेणु 'राजवंशी' गुप्ता

अमरीका में हिंदी तभी से फल-फूल रही है, जब से इस धरा पर भारतीयों ने कदम रखे थे। इतिहास कहता है कि प्रथम भारतीय अमरीका में १९वीं सदी में कभी पहुँचा था। हिंदी भी अवश्य उस समय अमरीका में बोली गई होगी। वर्ष १८९३-९४ में स्वामी विवेकानंद ने अमरीकी भूमि पर भारतीय वाङ्मय एवं अध्यात्म का परचम अवश्य लहराया, परंतु हिंदी के चिह्न कम ही मिलते हैं। उस समय अमरीका में भारतीय न्यूनतम संख्या में रहते थे। वैसे भी जब एक वर्ग की संख्या बहुत कम होती है तो वह मूलधारा में रच-बस जाता है, अपनी अलग पहचान नहीं बना पाता है।

अमरीका में हिंदी का प्रवेश वर्ष १९१३ में गदर पार्टी के माध्यम से आधिकारिक रूप से हुआ था। प्रसिद्ध क्रांतिकारी रास बिहारी बोस, लाला हरदयाल, सोहन सिंह बरवाना, युवा क्रांतिकारी शहीद करतार सिंह सराबा ने कैलिफोर्निया राज्य में गदर पार्टी की स्थापना की थी। तत्कालीन भारतीय छात्र एवं बुद्धिजीवी वर्ग ने भी भाग लिया था। 'गदर की गूँज' नामक मुख्य पत्रिका पंजाबी, हिंदी एवं उर्दू में प्रकाशित हुई थी। इसमें अनेक कविताएँ प्रकाशित होती थीं। १९ वर्ष की आयु में फाँसी पर लटकनेवाले अमर शहीद करतार सिंह सराबा की कविता यहीं अमरीका में लिखी गई थी, उसके कुछ अंश यहाँ दे रही हूँ—

''यहीं पाओगे महशर में जबां मेरी··बयां मेरा,
मैं बंदा हिंदवालों का हूँ, है हिंदुस्तान मेरा।
मैं हिंदी, ठेठ हिंदी, खून हिंदी, जात हिंदी हूँ,
वही मजहब, वही फिरका, यही है खानदान मेरा।''

अमरीका में प्रकाशित वर्तमान आँकड़ों के अनुसार अंग्रेजी तो मुख्य भाषा है ही, उसके पश्चात् स्पैनिश भाषा द्विभाषी वर्ग में सबसे अधिक बोली जाती है, परंतु उसके पश्चात् हिंदी ५.८ प्रतिशत लोग बोलते हैं। यह सुखद समाचार है। मैंडरिन (चीनी भाषा) भी हिंदी के बाद तीसरे नंबर पर है। अमरीका में ९.५ लाख डॉक्टर हैं, इसमें से एक लाख मेडिकल डॉक्टर भारतीय हैं, इनमें से लगभग ५० हजार डॉक्टर हिंदी बोलते हैं। अस्पताल में नर्सें हिंदी बोलती दिखाई देती हैं। परंतु जैसे-जैसे दूसरी पीढ़ी के भारतीय आगे आएँगे हिंदी भाषा का प्रयोग थोड़ा कम हो जाएगा। परंतु भारतीयों का आगमन निरंतर होता रहेगा और अमरीका में हिंदी अवश्य फलती-फूलती रहेगी। हमारी अगली पीढ़ी में हिंदी-गुजराती एवं पंजाबी भाषा जाननेवाले लोग मिल जाते हैं। मेरा बेटा, जो कि हृदय चिकित्सक है, अच्छी हिंदी बोलता है। इससे बहुधा हिंदीभाषी बुजर्ग रोगी लाभान्वित होते हैं एवं उन्हें डॉक्टर को भी अपनी बात समझाने में आसानी होती है। मेरा सभी भारतीय माता-पिता से आग्रह है कि अपने बच्चों को हिंदी का ज्ञान अवश्य कराएँ।

सुपरिचित रचनाकार। अब तक कविता-संग्रह, कहानी-संग्रह एवं उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। विगत सैंतीस वर्षों से अमेरिका में बसी है। भारत उनके हृदय में बसता है। सोच में बसता है। अमेरिका उनकी दिनचर्या एवं व्यवहार में रचता-बसता रहता है।

वर्तमान समय में अमरीकी सरकार द्वारा हिंदी के साथ-साथ अन्य विदेशी भाषाओं के प्रचार-प्रसार पर काफी धनराशि आवंटित कर रही है। सेना में, खुफिया सेवा में, अस्पताल, एयरपोर्ट एवं सरकारी कार्यालयों में अब हिंदी दुभाषियों की व्यवस्था उपलब्ध है। कभी-कभी हास्यास्पद परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, चूँकि भारतीय कामचलाऊ अंग्रेजी बोल लेते हैं, ऐसे में हिंदी दुभाषियों डॉक्टर से सीधे काम चलाऊ बात करने लगते हैं, परंतु दुभाषियों को तो अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना होगा।

मैरीलैंड विश्वविद्यालय ने सरकार के साथ मिलकर विदेशी भाषाओं के प्रचार के लिए 'स्टार टॉक' कार्यक्रम आरंभ किया है। इसके अंतर्गत गरमियों के अवकाश के समय दो से तीन सप्ताह का हिंदी पढ़ाने का कैंप लगाया जाता है, इसमें दूसरी कक्षा से बारहवीं कक्षा के छात्र भाग लेते हैं। 'स्टार-टॉक' के नियम एवं प्रशिक्षण बहुत कड़े होते हैं। वर्तमान में बीस से अधिक हिंदी के 'स्टार-टॉक' के कैंप विश्वविद्यालयों, स्थानीय केंद्रों में एवं हिंदी पाठशालाओं में चल रहे हैं। यह अत्यंत उत्साहवर्धक समाचार है। इसके अतिरिक्त आपको अमरीका के नगर-नगर में हिंदी पाठशालाएँ एवं घरों में हिंदी कक्षाएँ मिल जाएँगी।

अमरीका के विशिष्ट ख्यातिप्राप्त विश्वविद्यालयों में हिंदी पठन-

पाठन की बहुत प्राचीन परंपरा रही है। यह सत्य है कि अध्यात्म दर्शन एवं धर्म के अध्यापन-स्वाध्याय के लिए हिंदू धर्म का ज्ञान तथा संस्कृत भाषा का ज्ञान अति आवश्यक है। मेरी राय में अमरीका को I.V. Lage, जैसे हावर्ड, स्टैनफर्ड, येल, कोलंबिया आदि विश्वविद्यालयों में सर्वप्रथम संस्कृत अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की गई। अत: अमरीका के विश्वविद्यालयों में हिंदी का संस्कृत के माध्यम से प्रवेश हुआ है। कुछ विश्वविद्यालयों में हिंदी की चार वर्ष की कॉलेज डिग्री दी जाती है। इसमें शिकागो विश्वविद्यालय अग्रणीय है।

परंतु इस समय विश्वविद्यालयों 'हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप' कार्यक्रम का प्रावधान आरंभ हुआ है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत हिंदी एवं उर्दू को कॉमन पाठ्यक्रम के साथ पढ़ाया जाता है। चूँकि हिंदी एवं उर्दू बोलने में एक ही लगती है, अत: यह विकल्प सोचा गया है। मेरी राय में यह विकल्प हिंदी के प्रसार में अवरोध उत्पन्न करता है। दोनों भाषाओं की लिपि अलग-अलग है। हिंदी भारत की प्रमुख भाषा है एवं उर्दू अन्य देश की भाषा है और दोनों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भिन्न है तथा सबसे बड़ी बात कि क्या छात्र दोनों भाषाओं को एक साथ पढ़ना चाहेंगे? ऐसे अध्यापक भी मुश्किल से मिलते हैं, जो दोनों भाषा जानते हैं। हिंदी अपने आप में पूर्ण भाषा है एवं विश्व में चौथे नंबर पर सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा है। मेरी राय में हिंदी को उचित सम्मान मिलना चाहिए। अन्य भाषाओं के साथ हिंदी को मिलाकर खिचड़ी बनाना उचित नहीं है।

अमरीका में समय-समय पर हिंदी की संस्थाएँ भी बनी हैं एवं यहाँ हिंदी पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती रही हैं। अमरीका में अन्य कॉमनवेल्थ देशों की तरह हिंदी भाषा के प्रचार हेतु संस्थाओं को आर्थिक अनुदान नहीं मिलता है, जिसके परिणामस्वरूप ये संस्थाएँ ठीक से नहीं चल पाती हैं या पत्रिकाएँ नियमित रूप से प्रकाशित नहीं हो पाती हैं। वर्ष १९८१ में मैरीलैंड अमरीका में 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समीति' की स्थापना हुई, यह अमरीका में पहली हिंदी संस्था है। इसी संस्था में से आगे निकलकर सदस्यों में अलग-अलग हिंदी की संस्थाएँ बना ली हैं, जो आधी-अधूरी चल रही हैं। 'विश्वा', 'सौरभ' एवं 'हिंदी-जगत्' आदि कुछ और भी होंगी, प्रमुख हिंदी पत्रिकाएँ हैं।

अमरीका में आनेवाले या रहनेवाले अधिकतर भारतीय अंग्रेजी जानते हैं एवं बोलते हैं···तो कौन हिंदी जानना चाहता है? किसको हिंदी पढ़ने की आवश्यकता महसूस होती है? अमरीका में दो करोड़ से अधिक भारतीय मूल के लोग रहते हैं एवं हमारी नई पीढ़ी भी आगे बढ़ रही है···सामने आ रही है। इसके अतिरिक्त अमरीका में २.५ लाख अमरीकन हिंदू धर्म का अपने जीवन में पालन करते हैं।

(१) ये हिंदू धर्मावलंबी अमरीकी हिंदी पढ़ना चाहते हैं।

(२) हमारी दूसरी पीढ़ी के बहुसंख्या में छात्र अमरीकी विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे हैं। हमारी नई पीढ़ी में अपनी मातृभाषा जानने की स्वाभाविक जिज्ञासा होती है।

(३) कुछ अमरीकी लड़के-लड़कियाँ भारतीय मूल के लड़के-लड़कियों को 'डेट' करते हैं या शादी करना चाहते हैं, ऐसे लोगों में हिंदी जानने की लालसा रहती है।

(४) मेरे अनुभव में अनेक ईसाई मिशनरी भारत में सक्रिय हैं। भारत में पैर जमाने के लिए मिशनरी हिंदी पढ़ते हैं।

(५) ग्लोबल व्यवसाय से जुड़े भारत में काम करनेवाले विदेशी हिंदी पढ़ना चाहते हैं।

(६) वर्तमान सरकार के मंत्री-अधिकारी विदेशी भूमि पर आकर हिंदी भाषा का खूब उपयोग करते हैं। जब हमारे प्रधानमंत्री यू.एन.ओ. (संयुक्त राष्ट्र संघ) में हिंदी में अभिभाषण करते हैं या मैडिसन स्क्वायर गार्डन के विशाल स्टेडियम से हिंदी में गर्जना करते हैं तो प्रवासी भारतीयों के मन में हिंदी के प्रति सम्मान बढ़ जाता है।

अमरीका में हाई स्कूल के छात्र अंग्रेजी के साथ-साथ विदेशी भाषाओं का भी अध्ययन करते हैं, जिनमें लैटिन-स्पैनिश, फ्रेंच एवं जर्मन आदि भाषाएँ हैं। इस क्षेत्र में हिंदी को बहुत आगे बढ़ाया जा सकता है। बहुत बड़ी संख्या में प्रवासी भारतीय छात्र या हमारी दूसरी पीढ़ी के बच्चे हाई स्कूल में पढ़ाई कर रहे हैं तथा उनमें अपनी माँ की भाषा (मातृभाषा) को जानने की बहुत इच्छा रहती है एवं ये छात्र बहुत प्रसन्नता से हाई स्कूल में हिंदी पढ़ना चाहते हैं, परंतु हमारे उदासीन रवैए और हिंदी शिक्षकों के अभाव में इस क्षेत्र में बहुत कम प्रगति हुई है। वर्तमान में न्यूजर्सी, टेक्सास एवं मैरीलैंड के स्कूल में हिंदी पढ़ने की व्यवस्था है। वास्तव में हिंदी को हाई स्कूल में पत्राचार-माध्यम से पढ़ाई जानी चाहिए। मुझे आशा है कि समय के साथ हम हिंदीप्रेमी छात्रों के बीच हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था होगी।

अमरीका में हिंदी लेखकों एवं कवियों की संख्या भी तेजी से बढ़ रही है। अमरीका में नगर-नगर में कवि-गोष्ठी एवं कवि-सम्मेलन आयोजित होते रहते हैं। लेखक अपनी पुस्तकें—काव्य-संग्रह, कहानी-संग्रह या उपन्यास प्रकाशित करवाते रहते हैं। यह संख्या सैकड़ों में हो सकती हैं। मैं यहाँ लेखकों की लंबी सूची नहीं देना चाहिती हूँ। हम यहाँ हिंदी लेखकों को दो भागों में बाँट सकते हैं। कुछ लेखक जीवन का लंबा समय भारत में बिताकर अमरीका में विस्थापित हो गए हैं। उनके विचार-सोच-अनुभव का आधार भारत है, उनके विषय भिन्न हैं, अमरीकी अनुभव से कम, भारत के परिवेश से अधिक जुड़े हुए हैं। इन्हें हम प्रवासी हिंदी लेखक नहीं मान सकते हैं। दूसरे पक्ष में हम जैसे लेखक आते हैं, जिनका पूरा लेखन अमरीका में पल्लवित

हुआ है। इन लेखकों के लेखन में अमरीकी संघर्ष, अमरीका-भारत के बीच संवाद एवं एक नवीन सांस्कृतिक सोच की उपज दिखाई देती है। मानवीय संबंध, अमरीका के अटपटे अनुभव, नवीन-अनजानी परंपराएँ, संतान से संबंधित उलझनें, प्रकृति एवं सामाजिक व्यवस्था जैसे विषयों का बोलबाला रहता है। प्रवासी हिंदी लेखकों के माध्यम से नई संस्कृति का जन्म हो रहा है, जो भारत एवं अमरीका के बीच सेतु का काम करेगा।

अमरीका में हिंदी का भविष्य क्या है? हिंदी भी हिंदू धर्म की तरह सनातन है, क्योंकि संस्कृत हिंदी की जननी है तो पिता (पालक) हिंदूधर्म है। हिंदी में अनेक भाषाओं की घुसपैठ होती रहती है, परंतु हिंदी हिंदी ही बनी रहती है। यदि हम कहें कि 'ट्रेन लेट चल रही है' तो यह हिंदी भाषा का वाक्य माना जाएगा, भले ही इसमें अंग्रेजी की सेंध लगी हुई है।

अमरीका में समय-समय पर हिंदी की संस्थाएँ भी बनी हैं एवं यहाँ हिंदी पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती रही हैं। अमरीका में अन्य कॉमनवेल्थ देशों की तरह हिंदी भाषा के प्रचार हेतु संस्थाओं को आर्थिक अनुदान नहीं मिलता है, जिसके परिणामस्वरूप ये संस्थाएँ ठीक से नहीं चल पाती हैं या पत्रिकाएँ नियमित रूप से प्रकाशित नहीं हो पाती हैं। वर्ष १९८१ में मैरीलैंड अमरीका में 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समीति' की स्थापना हुई, यह अमरीका में पहली हिंदी संस्था है। इसी संस्था में से आगे निकलकर सदस्यों में अलग-अलग हिंदी की संस्थाएँ बना ली हैं, जो आधी-अधूरी चल रही हैं। 'विश्वा', 'सौरभ' एवं 'हिंदी-जगत्' आदि कुछ और भी होंगी, प्रमुख हिंदी पत्रिकाएँ हैं। इंटरनेट पर हिंदी कविताएँ खूब फल-फूल रही हैं, जहाँ लेखक एक-दूसरे को भी पढ़ते हैं, परंतु मुख्यत: स्वयं को ही पढ़ते-पढ़ाते हैं।

अमरीका में हिंदी का भविष्य क्या है? हिंदी भी हिंदू धर्म की तरह सनातन है, क्योंकि संस्कृत हिंदी की जननी है तो पिता (पालक) हिंदूधर्म है। हिंदी में अनेक भाषाओं की घुसपैठ होती रहती है, परंतु हिंदी हिंदी ही बनी रहती है। यदि हम कहें कि 'ट्रेन लेट चल रही है' तो यह हिंदी भाषा का वाक्य माना जाएगा, भले ही इसमें अंग्रेजी की सेंध लगी हुई है।

हिंदू धर्म का सम्मान एवं हिंदी भाषा की अस्मिता भारत से जुड़ी हुई है। यदि भारत में हिंदी मजबूत होगी तो भारत से बाहर भी उसका स्वागत होगा। हमारे नेता, दूतावास के कर्मचारी, हिंदी जगत् के अभिनेता आदि यदि भारत से बाहर आकर हिंदी में बोलेंगे तो हमारे बच्चों में हिंदी के प्रति सम्मान बढ़ेगा। यदि हमारे बच्चे अपनी भारत-यात्रा के दौरान हिंदी पढ़ेंगे, उन्हें बाजार में हिंदी दिखाई देगी, नाम पट्ट हिंदी में दिखेंगे तो उनमें हिंदी पढ़ने की जागरूकता बढ़ेगी। भारत में हिंदी की चमक से ही अमरीका में भी निश्चित चमकती मिलेगी, इसमें संदेह नहीं है।

हिंदीभाषियों की समस्या यह है कि हम हिंदी का उपयोग सुविधानुसार करते हैं। प्रयोग करके कोने में पटक देते हैं, हिंदी को यथोचित मान-सम्मान नहीं देते हैं।

जो हिंदी की रोटी खाते,
हिंदी फिल्मों में करोड़ों कमाते,
परंतु हिंदी बोलने में शरमाते?

ऐसे लोगों को अपनी मानसिकता बदलने का समय आ गया है। हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है, चाहे उसके लिए कितना ही संघर्ष क्यों न करना पड़े।

वेस्ट चेस्टर ओहायो,
अमरीका
e-mail : renurajvanshigupta@gmail.com

हिंदी राष्ट्रभाषा है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को, प्रत्येक भारतवासी को इसे सीखना चाहिए —रविशंकर शुक्ल

हिंदी भाषा ही ऐसा भाषा है, जो सभी प्रांतों की भाषा को सकती है। —रंगनाथ पिललयार

जब हम हिंदी की चर्चा करते हैं तो वह हिंदी संस्कृति का एक प्रतीक होती है —शांतादंन नाथ

हिंदी में जो गुण है, उनमें से एक यह है कि हिंदी मर्दानी जबान है। —सुनीति कुमार चटर्जी

बानी हिंदी भाषन की महरानी। चंद्र, सूर, तुलसी से जामैं भए सुकवि लासानी। —पं. जगन्नाथ चतुर्वेदी

अर्मेनिया में हिंदी एवं भारतीय संस्कृति

• कविता सिंह

हिंदी अध्यापिका, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख व कविता प्रकाशित। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली द्वारा चयनित होकर नवंबर २०१४ से जून २०१७ तक वाई.एस.एस.एल. यू, येरेवान, अर्मेनिया में हिंदी अध्यापन व पुनः उपर्युक्त संस्था द्वारा विदेश में हिंदी अध्यापन के लिए चयनित।

वैश्विक हिंदी की सार्थकता विश्व हिंदी के बोध आदर्श वाक्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में ही निहित है और यही हिंदी भाषा के विश्वभारती होने का कारण और उद्देश्य दोनों ही है। जिस भाषा का आदर्श ही समस्त वसुधा या विश्व को अपना परिवार मान लेना हो तो यह स्वभाविक है कि वह भाषा भारत तक सीमित न रहकर संपूर्ण वसुधा के जन-जन और कोने-कोने तक निरंतर प्रवहमान होकर वैश्विक भाषा के रूप में गौरवान्वित होगी। हिंदी भाषा की व्यापकता की पुष्टि के लिए दिल्ली के असिस्टेंट रेजिडेंट सी.टी. मेटकॉफ का जे.बी. गिलक्रिस्ट को २९ अगस्त, १८०६ का लिखा पत्र उद्धृत करना चाहती हूँ, जिसमें उन्होंने लिखा है, ''हिंदुस्तानी एक ऐसी जुबान है, जो आम तौर पर उपयोगी साबित होती है और मेरी समझ में संसार की किसी भाषा के मुकाबले उसका व्यवहार बहुत बड़े पैमाने पर होता है।'' (१) सी.टी. मेटकॉफ ने हिंदी अध्यापक गिलक्रिस्ट को सन् १८०६ में हिंदी भाषा को संसार की किसी भी अन्य भाषा के मुकाबले सबसे अधिक प्रयुक्त होनेवाली भाषा के रूप में उल्लिखित किया था और उसके दो सौ नौ वर्ष बाद यानी कि सन् २०१५ में डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल ने अपनी शोध रिपोर्ट में यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व में बोली जानेवाली सभी भाषाओं में हिंदी भाषा को सर्वप्रथम स्थान प्राप्त हो गया है। (२) वैश्वीकरण और विश्व ग्राम की चर्चा पिछले बीस पच्चीस वर्षों से हो रही है लेकिन हिंदी भाषा की वैश्विक हिंदी की संकल्पना को प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन सन् १९७५ से साकार करने का निरंतर प्रयास किया जा रहा है। वैश्वीकरण के इस युग में सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रकिया अति आवश्यक, महत्त्वपूर्ण व सहज-स्वाभाविक हो गई है। सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भाषा है और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कड़ी भी भाषा ही है। आज के डिजिटल संसार में विभिन्न भाषाओं के बीच यह भविष्यवाणी की जा रही है कि डिजिटल संसार में तीन भाषाओं का वर्चस्व होगा—अंग्रेजी, चाइनीज और हिंदी। डिजिटल संसार में भाषा का आधिपत्य निश्चित ही उस भाषा की महत्ता को स्वत: ही स्थापित कर देता है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा भारतीय योग को 'अंतरराष्ट्रीय योग दिवस' (२१ जून, २०१५ प्रथम योग दिवस) के रूप में मान्यता और विश्व के बहुसंख्यक देशों द्वारा भारतीय योग का अनुगमन एवं स्वीकरण हिंदी भाषा अध्ययन के उत्प्रेरक की भूमिका अदा कर रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जन्मदिवस २ अक्तूबर को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सन् २००७ से 'विश्व अहिंसा दिवस' के रूप में घोषित किया जाना भी भारत और हिंदी भाषा के प्रति सम्मान और गरिमा में अभिवृद्धि करता है। वैश्विक पटल पर हिंदी भाषा की अभिव्यक्ति और प्रसार का व्यावहारिक प्रयास 'विश्व हिंदी सम्मेलन' के रूप में प्रत्यक्षीकृत है, जिसका आदर्श वाक्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है। हिंदी भाषा की इस आदर्श गरिमामय मानवीय संस्कृति के प्रति अगाध आस्था और विश्वास ही उसे विदेशियों के हृदय में अपना स्थान बनाने के लिए विवश कर देते हैं और विश्व में हिंदी भाषा के अध्ययन की पृष्ठभूमि का सशक्त आधार तैयार हो जाता है। जब भाषा एक ही भाषायी परिवार से संबंधित हो तो भाषा के प्रति रुचि और आकर्षण स्वत: बढ़ जाता है।

हिंदी और अर्मेनियन दोनों भाषा 'इंडो यूरोपियन समुदाय' से संबंधित हैं। हिंदी भाषा में हिंदी, हिंदुस्तानी और हिंदुस्तान की तरह अर्मेनिया भाषा में भी हाइरिन (अर्मेनियन भाषा) हाई (अर्मेनियनवासी) और हयस्तान (अर्मेनिया देश) कहा जाता है।

अर्मेनिया में हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन के प्रयास के संदर्भ में 'अर्मेनियन हिंदी शब्दकोष' मानवतावादी संस्थान द्वारा प्रकाशित (सन् २००६ में, लगभग ४००० शब्द) शब्दकोश भी महत्त्वपूर्ण है। यह त्रिभाषी शब्दकोश है, जिसमें अर्मेनियन, रूसी और हिंदी भाषा में शब्द-अर्थ दिए गए हैं। जो हिंदी भाषा पढ़नेवाले अर्मेनियन विद्यार्थियों के लिए अति उपयोगी है। भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम का उदाहरण यहाँ पर श्रीमद्भगवतगीता, महाभारत और पंचतंत्र की कहानियों का अर्मेनियन भाषा के अनुवाद से भीमिलता है, जिनका अध्ययन अरमेनियन बुद्धिजीवी वर्ग बड़ी तन्मयता से करते हैं। हिंदी संस्थान, आगरा से

हिंदी भाषा का अध्यन करके लौटी कु. रिपसिमे द्वारा कुछ बाल हिंदी कविताओं का अर्मेनियन भाषा में अनुवाद किया गया है, जो हिंदी सीखनेवाले अर्मेनियन छात्रों के लिए प्रारंभिक स्तर पर सहायक होने के साथ अति लोकप्रिय भी है। हमसे पहले इस विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण कार्य करने वाले श्री बलदेव सीकरवार ने 'Hindi English Armenian Simple Conversation' नाम से एक छोटी पुस्तक तैयार की है, जो पठन-पाठन के लिए उपयोगी है। हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा प्रकाशित 'विदेशों में हिंदी शिक्षण हेतु निर्धारित मानक पाठ्यक्रम' पुस्तक के कुछ सरल व महत्त्वपूर्ण पाठों का मेरे द्वारा अर्मेनियन भाषा में अनुवाद किया गया है, ये सारे प्रयास अर्मेनिया में अर्मेनियन हिंदी प्रेमी छात्रों को हिंदी सीखने में सहायक सिद्ध होंगे। कुछ सुंदर बाल हिंदी कविताओं का भी हमने अर्मेनियन भाषा में अनुवाद किया है। इस कड़ी में भारतीय मूल की, लेकिन अर्मेनिया में निवास करनेवाली डॉ. संतोष का उल्लेख भी आवश्यक हो जाता है, जो अपने सुझावों से हिंदी प्रेमी अर्मेनियन छात्रों को लाभान्वित करती रहती हैं। भारतीय संस्कृति एवं यहाँ की वस्तुओं के प्रति आकर्षण को देखते हुए राजधानी येरेवान और उसके आस-पास के शहरों में भारतीय व्यापारियों द्वारा भारतीय प्रदर्शनी का आयोजन किया जाता है और इस Indian Exhibitions में उमड़ी भीड़ भी भारतीय संस्कृति के प्रति अर्मेनियन के लगाव को प्रदर्शित करती है। विशेष रूप से भारतीय संगीत-नृत्य, सहारनपुर की लकड़ी की नक्काशी की वस्तुएँ, भारतीय प्राकृतिक सौंदर्य उत्पाद व इन सबकी वे अच्छी खरीदारी भी करते हैं। भारतीय मेहँदी, जिसे वे इंडियन टेंटू कहते हैं, अर्मेनियावासियों में अति लोकप्रिय है मेहँदी लगवाने के लिए बच्चों से लेकर बड़ों तक की लाइन लग जाती है। कुछ अर्मेनियन युवतियाँ भी मेहँदी लगाने में धीरे-धीरे निपुण हो गई हैं और यह उनके धन उपार्जन का एक अच्छा साधन बन गया है। भारतीय योग से प्रभावित होकर कुछ अर्मेनियन भारत आकर योग सीखकर वहाँ योग की कक्षाएँ भी चलाते हैं। भारत सरकार द्वारा भी एक योग प्रशिक्षक को योग सिखाने के लिए वहाँ भेजा गया है, जिससे वहाँ योग की महत्ता सिद्ध हो जाती है। येरेवान मेडिकल कॉलेज में भारत सरकार द्वारा एक होमियोपैथिक चिकित्सक को भी नियुक्त किया गया है, जो दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक संबंधों की सशक्तता का महत्त्वपूर्ण पहलू है। यह तो भारत और अर्मेनिया के बीच सांस्कृतिक-संबंधों की चर्चा हुई अब हम हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन पर प्रकाश डालते हैं।

हिंदी भाषा का अध्ययन जिज्ञासु व उत्साहवर्धक होते हुए भी कड़ी मेहनत की माँग करता है। अर्मेनियन भाषा में स्वर व व्यंजन मिलाकर कुल ३३ अक्षर हैं और मात्राओं का प्रयोग नहीं होता है। अतः हिंदी की संपूर्ण वर्णमाला व मात्राएँ प्रारंभिक दौर में छात्रों को कठिन लगती हैं, लेकिन हिंदी भाषा की वैज्ञानिकता, मधुरता व स्पष्टता के कारण धीरे-धीरे हिंदी भाषा छात्रों के लिए सरल हो जाती है। विदेशी छात्रों को हिंदी सीखने में सर्वाधिक सहायक हिंदी भाषा की वैज्ञानिकता है, जैसे उच्चारण और लेखन की एकरूपता, जैसा बोलते हैं वैसा ही लिखते हैं। स्वर और व्यंजनों का क्रमिक उच्चारण स्थान (कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दंत्य, ओष्ठ) एक वर्ण के लिए एक ही ध्वनि और मात्राओं का तर्कसंगत प्रयोग आदि।

अर्मेनिया देश की राजधानी येरेवान के केंद्र में स्थित 'येरेवान स्टेट सोशल साइंस एंड लिंग्विस्टिक विश्वविद्यालय' में स्नातक स्तर पर हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। इस विश्वविद्यालय के चार वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम में द्वितीय वर्ष से चतुर्थ वर्ष तक अर्थात् ३ साल विद्यार्थी हिंदी भाषा के अध्ययन का सुअवसर प्राप्त करते हैं। विश्वविद्यालय के 'विदेशी भाषा विभाग' के अंतर्गत एशियाई भाषाओं (हिंदी, चीनी, जापानी, अरबी, फारसी, कोरियन और रूसी) के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। स्नातक स्तर के द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ वर्ष में विद्यार्थी हिंदी भाषा का अध्ययन करते है। हिंदी भाषा समूह के अतिरिक्त विश्वविद्यालय के अन्य भाषा समूह जैसे चीनी, फारसी आदि भाषा समूह के कुछ विद्यार्थी भी भारतीय संस्कृति के प्रति जिज्ञासा व प्रेम के कारण हिंदी भाषा की हमारी कक्षा में पढ़ने आते थे। भाषायी विश्वविद्यालय के अतिरिक्त येरेवान स्टेट विश्वविद्यालय के 'इंटरनेशनल पॉलिटिक्स' विभाग में अध्ययनरत विद्यार्थी भी भारतीय राजदूतावास में हिंदी भाषा अध्ययन के लिए आते थे। इनके अतिरिक्त भी भारतीय संस्कृति से सहज लगाव रखनेवाले अन्य विद्यार्थी भी भारतीय राजदूतावास में हिंदी भाषा का अध्ययन तन्मयता से कर रहे थे। भारत स्थित 'आगरा हिंदी संस्थान' से हिंदी भाषा का अध्ययन करके वापस लौटी कु. मान्या भी भारतीय राजदूतावास के सहयोग से अर्मेनिया के इजेवान गॉलिक कॉलेज, इजेवान शहर में अर्मेनियन छात्रों को हिंदी भाषा पढ़ाने का कार्य कर रही हैं। कु. सोना पेतरोस्यान हिंदी संस्थान आगरा में हिंदी भाषा का अध्ययन कर स्वदेश लौट आई हैं। इस तरह हिंदी संस्थान, आगरा भारत से हिंदी भाषा सीखकर आई हुई छात्राएँ भी अपने देश के दूरदराज इलाकों में हिंदी भाषा का अध्यापन कार्य करती हैं। अर्मेनिया में हिंदी भाषा के अध्यापन का सर्वाधिक दिलचस्प पहलू यह रहा कि यहाँ भारतीय राजदूतावास में दक्षिण भारतीय छात्र-छात्राओं को भी हिंदी पढ़ाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। येरेवान मेडिकल कॉलेज व येरेवान आर्किटेक्ट कॉलेज में पर्याप्त संख्या में भारतीय विद्यार्थी अध्ययनरत हैं, जिसमें अधिकांश दक्षिण भारतीय हैं, जिनमें से कुछ हिंदी भाषा सीखने के लिए उत्सुक रहते हैं।

हिंदी भाषा का अध्ययन जिज्ञासु व उत्साहवर्धक होते हुए भी कड़ी मेहनत की माँग करता है। अर्मेनियन भाषा में स्वर व व्यंजन मिलाकर कुल ३३ अक्षर हैं और मात्राओं का प्रयोग नहीं होता है। अत: हिंदी की संपूर्ण वर्णमाला व मात्राएँ प्रारंभिक दौर में छात्रों को कठिन लगती हैं, लेकिन हिंदी भाषा की वैज्ञानिकता, मधुरता व स्पष्टता के कारण धीरे-धीरे हिंदी भाषा छात्रों के लिए सरल हो जाती है। विदेशी छात्रों को हिंदी सीखने में सर्वाधिक सहायक हिंदी भाषा की वैज्ञानिकता है, जैसे उच्चारण और लेखन की एकरूपता, जैसा बोलते हैं वैसा ही लिखते हैं। स्वर और व्यंजनों का क्रमिक उच्चारण स्थान (कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दंत्य, ओष्ठ) एक वर्ण के लिए एक ही ध्वनि और मात्राओं का तर्कसंगत प्रयोग आदि। अर्मेनियन भाषा में उच्चारण और लेखन में अनुरूपता नहीं है, बहुत सारे शब्दों में वर्ण अंग्रेजी भाषा की तरह 'साइलेंट' अनुत्तरित (मौन) हैं। इस दृष्टिकोण से उन्हें हिंदी भाषा सीखना आसान लगता है। लेकिन उनके लिए 'टवर्ग' (मूर्धन्य) और तवर्ग (दंत्य) उच्चारण स्थान समूह के वर्णों का उच्चारण और अंतर करना बहुत कठिन होता है विशेष रूप 'ट-त', 'ट-ठ', 'त-थ', 'द-ड', 'ड-ढ', 'ड-र' आदि। इन वर्णों के बीच अधिकांश छात्रों द्वारा (कठोर) वर्णों का उच्चारण उनके द्वारा कोमल वर्णों के रूप में ही किया जाता है। अर्मेनियन छात्र श, ष, स, श्र का उच्चारण बड़ी ही शुद्धता, स्पष्टता और सरलता से करते हैं। भाषायी विश्वविद्यालय के छात्र होने व विभिन्न भाषाओं का अध्ययन करने के कारण उनके लिए हिंदी भाषा सीखना कठिन नहीं होता, दूसरे अर्मेनियन वर्णमाला के करीब २७-२८ वर्ण, जैसे अ, आ, ग, द, ऐ, ल, क, ख, छ, प, म, न आदि वर्णों का उच्चारण हिंदी भाषा के अक्षरों के समान ही है। अत: छात्र कुछ वर्णों के उच्चारण में कठिनाई के अलावा अन्य वर्णों का उच्चारण आसानी से करते हैं। हिंदी भाषा में जैसा बोलते हैं वैसा ही लिखते हैं, अत: लेखन में भी छात्रों को कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। कारक प्रकरण का अच्छा ज्ञान कराने के बाद उन्हें वाक्य संरचना में भी आसानी हो जाती है, क्योंकि हिंदी भाषा में कारकों के क्रम (कर्ता, कर्म, करण आदि) के अनुसार ही वाक्य संरचना होती है। भारत सरकार द्वारा हिंदी भाषा के अध्ययन के लिए भेजी गई पुस्तकें भी सुगम और आकर्षक हैं, जो हिंदी भाषा को सरलता से सिखाने में महत्त्वपूर्ण हैं। हिंदी भाषा व व्याकरण का ज्ञान कराने के बाद हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा प्रकाशित विदेशी छात्रों के लिए 'मानक हिंदी पाठ्यक्रम' की पुस्तक में उपलब्ध पाठों का अध्ययन प्रारंभ होता है। इस पुस्तक में उल्लिखित सभी पाठ, जैसे भारत यात्रा की तैयारी, मॉल में सब्जी की खरीदारी, मेरा परिवार, घर में मेहमान आदि बहुत उपयोगी व सार्थक हैं। इसमें दिया गया पाठ-परिचय, उद्देश्य, अभ्यास आदि भी सराहनीय हैं, अत: स्नातक होने के साथ ही छात्र हिंदी भाषा बोलने, लिखने, समझने और सामान्य वार्त्तालाप में सक्षम हो जाते हैं, जो कि शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हो जाती है। हिंदी भाषा शिक्षण में भारतीय नामों की व्याख्या भी महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक नाम सार्थक होता है, अर्थात् हर नाम का अर्थ होता है बिना अर्थ के कोई नाम नहीं होता है। भारतीय अभिवादन 'नमस्ते' का अर्थ व इसकी भाव-भंगिमा की पूर्ण व्याख्या और वैज्ञानिकता, स्वागत, अतिथि शब्द का अर्थपूर्ण अध्यापन भी हिंदी भाषा अध्ययन का अभिन्न अंग है।

हिंदी भाषा की जानकारी के साथ ही भारतीय संस्कृति के बारे में जानने की छात्रों में बहुत जिज्ञासा और उत्सुकता है। इस विश्वविद्यालय की विशिष्ट बात यह है कि यहाँ पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में ९० प्रतिशत छात्राएँ हैं, जिनका भारतीय वेशभूषा जैसे साड़ी, लहँगा, चूड़ीदार पाजामा कुरता व अन्य परंपरागत परिधानों के प्रति व भारतीय आभूषणों व विशेष रूप से माथे की बिंदी के प्रति अत्यधिक आकर्षण है। विश्वविद्यालय द्वारा प्रतिवर्ष 'Educational Expo' का आयोजन किया जाता है, जिसमें सभी देशों के अध्यापक अपने एक व दो विद्यार्थियों के साथ 'राष्ट्रीय परिधान' पहनते हैं व अपने देश की भाषा व संस्कृति की विशिष्टता को प्रस्तुत करते हैं। मेरे लिए यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि हमारी वेशभूषा व आभूषणों का आकर्षण इतना जबरदस्त था कि सबसे ज्यादा आगंतुक छात्र भारतीय संस्कृति व हिंदी भाषा के केंद्र में एकत्र थे और सबसे खुशी और आश्चर्य की बात यह थी कि मेरे माथे पर लगी बिंदी को देखकर सभी आगंतुक छात्राओं को अपने माथे पर बिंदी लगानी थी, मैं अपने साथ १५-२० पत्ते बिंदी के लेकर गई थी, वे सब खत्म हो गए, इसके बाद भी इनकी माँग बनी ही रही और कुछ छात्राएँ अपने माथे पर बिंदी लगाने से वंचित रह गईं। उन सबके लिए जरी की सुंदर कढ़ाई की हुई चटक रंग की सिल्क की साड़ी अति सुंदर और आकर्षक थी। इस एक्सपो में आए छात्रों को हिंदी भाषा में अपना नाम लिखना सीखने की भी बड़ी तमन्ना रहती है और अपनी नोटबुक में वे विभिन्न भाषाओं के साथ हिंदी भाषा में अपना और अपने परिवार के सदस्यों का नाम बड़े शौक से लिखते-लिखाते हैं।

भारतीय धर्म, विशेष रूप बहुदेववाद, बुद्ध धर्म व भारतीय जाति व्यवस्था के बारे में जानना उनके लिए बहुत रुचिकर होता है। भारतीय देवी-देवताओं की पूजन की व्याख्या जैसे गणेश भगवान् सर्वप्रथम पूज्य क्यों है? क्योंकि हाथी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्राणी है, हंस नीर-क्षीर विवेकी होने के कारण विद्या की देवी सरस्वती का वाहन है इत्यादि देवी देवताओं की व्याख्या अर्मेनियन हिंदी विद्यार्थियों के लिए अति रोचक व ज्ञानवर्धक सिद्ध होती है। भारतीय राजदूतावास व 'Indo Armenian Friendship' द्वारा आयोजित 'भारतीय सांस्कृतिक सप्ताह' में भारतीय योग, आयुर्वेद, मसालों का उपयोग, भारतीय आभूषण, शृंगार-प्रसाधन व उनकी वैज्ञानिकता के बारे में जब हमने बताया तो इन सबके प्रति अर्मेनियन की मंत्रमुग्धता गौरतलब थी। भारतीय सांस्कृतिक पर्व, विशेष रूप से होली, दीवाली के बारे में जानना और उनकी भौगोलिक संबद्धता व वैज्ञानिकता की जानकारी भारतीय संस्कृति के स्थान को विशिष्ट बना देती है। रंग-बिरंगी होली व प्रकाश-पर्व दीपावली के उत्सव को हम सबके साथ मनाते हुए उनकी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता।

आगरा स्थित ताजमहल की सुंदरता से न केवल हिंदी सीखनेवाले छात्र बल्कि अधिकांश अर्मेनियनवासी अभिभूत हैं और एक पर्यटक के रूप में आगरा, जयपुर, दिल्ली, कोलकाता और हैदराबाद आदि स्थानों को देखने और घूमने की हार्दिक अभिलाषा रखते हैं। बॉलीवुड सिनेमा, उसके गाने, नृत्य के प्रति इनकी दीवानगी चरम सीमा पर है, घर-घर में हिंदी चलचित्र लोग बड़े शौक से देखते हैं।

मास दिसंबर २०१६ से अर्मेनियन टी.वी. चैनल पर छोटे परदे के सीरियल 'उतरन' व 'इस प्यार को क्या नाम दूँ' आदि सीरियलों के प्रसारण से छात्रों में हिंदी भाषा सीखने की ललक और उत्साह और अधिक बढ़ गया है। जिन शब्दों का अर्थ वे नहीं समझ पाते, उसको वे उसे अपनी नोट बुक में नोट करके रखते हैं और कक्षा में आकर उनका अर्थ पूछते हैं। इसी तरह भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं, रीति-रिवाजों, जैसे मेहँदी, कुंकुम, हल्दी, आरती, प्रसाद आदि के बारे में उनके जिज्ञासापूर्ण प्रश्न बड़ी खुशी और आत्मीयता से पूछे जाते हैं, जिसका उत्तर पाकर और उसमें निहित सुंदर भावों को सुनकर व समझकर हिंदी भाषा के अध्ययन के प्रति उनका रुझान बढ़ जाता है। भारतीय राष्ट्रगान 'जन-गण-मन' भी यहाँ की छात्राओं को अतिप्रिय है, सभी छात्राओं ने राष्ट्रगान बड़े शौक से सीखा और भारतीय राजदूतावास में आयोजित स्वतंत्रता दिवस (१५ अगस्त) व गणतंत्र दिवस (२६ जनवरी) समारोह में हम सबके साथ राष्ट्रगान का गायन भी करती है, जो उनके भारत के प्रति लगाव को भी दर्शाता है। भारतीय राष्ट्रीय पर्व पर भारतीय राजदूतावास में आयोजित समारोह में छात्राओं ने हमारे द्वारा सिखाए गए हिंदी राष्ट्रभक्ति गीत जैसे 'भारत हमको जान से प्यारा है', 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा', 'मेरा मुल्क मेरा देश मेरा ये वतन', 'हिंद देश के निवासी सब जन एक है', आदि आदि गीतों को सुमधुर स्वर में गाया भी है, जिसकी वीडियो रिकॉर्डिंग कर सहेजकर रखी है।

भारतीय राजदूतावास द्वारा विश्वविद्यालय में प्रतिवर्ष आयोजित 'विश्व हिंदी दिवस समारोह' के आयोजन के लिए भी सांस्कृतिक कार्यक्रम की हमने तैयारी करवाई, जिसमें छात्राओं ने सरस्वती-वंदना— हे शारदे माँ, वर दे वीणावादिनी वर दे, गणेश-वंदना, स्वागत गीत आदि का गायन व बालीवुड के गानों पर, जैसे नगाड़ा संग ढोल बाजे, दीवानी मस्तानी आदि-आदि गानों पर सुंदर नृत्य प्रस्तुति कर दर्शकों का मन मोहने के साथ समारोह की शोभा दुगुनी कर दी। विश्व हिंदी दिवस पर आयोजित कविता पाठ प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय, तृतीय व दो सांत्वना पुरस्कार और सभी प्रतिभागियों को भारतीय राजदूतावास द्वारा प्रतिभागिता का प्रमाण-पत्र भी प्रदान किया जाता है, जिसे प्राप्त कर विद्यार्थी गौरवान्वित महसूस करते हैं, अत: अर्मेनिया में हिंदी भाषा शिक्षण निश्चय ही सुखद होते हुए इस बात का एहसास भी कराता रहा कि भारतीय संस्कृति के प्रति लोगों की जिज्ञासा असीम और आकर्षण अत्यधिक है। वर्तमान में डिजिटल क्रांति के कारण अपने देश में रहते हुए भी यहाँ के निवासी भारतीय-संस्कृति के सुंदर व गरिमामय पहलुओं को देखते हैं, जिससे भारतदर्शन की उनकी लालसा और प्रबल हो जाती है, जो कि दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक संबंध को प्रगाढ़ बनाने तथा पर्यटन को बढ़ावा देने की दृष्टि से भी अति महत्त्वपूर्ण है और यही संस्कृति की संवाहिका भाषा का श्रेष्ठतम पक्ष व महत्त्वपूर्ण उपलब्धि भी है।

हमने इस विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा अध्यापन के प्रथम दिन ही विद्यार्थियों से सहज भाव से हिंदी भाषा अध्ययन का कारण पूछा था तो विद्यार्थियों ने भारतीय संस्कृति के प्रति आकर्षण और बालीवुड से प्रभावित होकर ही हिंदी भाषा सीखने का स्वाभाविक कारण अंग्रेजी भाषा में बताया था, क्योंकि उस समय उनको हिंदी नहीं आती थी, अत: मैं अपने इस लेख का समापन हिंदी भाषा सीखनेवाली अपनी एक छात्रा कु. अमालिक मिखितारयान के उद्‌गार से करना चाहती हूँ, जो उसने हिंदी की कक्षा में प्रथम दिन व्यक्त किए थे—''Indian deserves that foriegners learn their language and reveal Incredible India. My great wish is to talk with them in their national language, understand them fully without help of dictionaries and to know very well all their states, regions, towns on the map. I want to learn hindi beacuse of nice people close to me. I want to learn hindi beacuse of their rich culture, unique sights of view, wonderful letters...I want to learn hindi finally to talk easily to my lovely people." अत: विदेश में हिंदी भाषा का अध्ययन-अध्यापन रोचक होने के साथ ही उपनिषद् के आदर्शों की दिशा की ओर पथ-प्रदर्शन भी करता है, 'ऊँ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवाव हे तेजस्विनावधीत मस्तु मा विद्विषाव हे।' जो आज मानवता के हित में सर्वाधिक न्यायसंगत है। सा.अ

पूर्व हिंदी अध्यापिका
वाई.एस.एल.यू.येरेवान, अर्मेनिया
e-mail : kavitasinghabcd@gmail.com

हिंदी भाषा हमारे लिए किसने बनाई—प्रकृति ने, हमारे लिए हिंदी प्रतिसिद्ध है। **—पं. गिरिधर शर्मा**

हिंदी भाषा उस समुद्र जलराशि की तरह है, जिसमें अनेक नदियाँ मिली हों। **—वासुदेवशरण अग्रवाल**

हिंदी के पौधे को हिंदू-मुसलमान दोनों ने सींचकर बड़ा किया है। **—जहूरबख्श**

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी की स्थिति

● आमोदिनी नंदिता

प्रस्तुत आलेख की पृष्ठभूमि में हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार अज्ञेयजी की प्रेरणा है। अज्ञेयजी ने मेरा नाम नंदिता रखा था, पर मेरे नाना ने मेरा नाम आमोदिनी रखा। मेरी प्रारंभिक शिक्षा आई.आई.टी., नई दिल्ली के केंद्रीय विद्यालय में हुई थी। मुझे याद है कि अज्ञेयजी मेरे नाना से मिलने आई.आई.टी., नई दिल्ली आए थे और उन्होंने बातों-बातों में अपना विचार व्यक्त किया कि अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में भी हिंदी लोकप्रिय हो रही है। हिंदी का सम्मान भारत में भले ही न हो, पर भविष्य में हिंदी अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में सम्मानित होगी। उनके कथन का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा, तभी से मेरे मन में संस्कार के रूप में हिंदी-प्रेम जगा।

यद्यपि मैंने स्नातकोत्तर अंग्रेजी साहित्य से किया था, पर मेरे शोधकार्य का क्षेत्र 'हिंदी का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप' एवं विश्व में (हिंदी-अँगरेजी के संदर्भ में) साहित्य-अनुवाद को समझने के लिए प्रति-काव्यशास्त्र की आवश्यकता पर ही केंद्रित रहा। इसी क्रम में मैंने विश्व-भाषा के रूप में हिंदी की संभावना को भी अपने शोध-अध्ययन में शामिल किया। प्रयोक्ताओं की संख्या की दृष्टि से हिंदी विश्व की तीन प्रमुख भाषाओं में से एक है। विश्व के लगभग ६० देशों में और १५० विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है।

भारत से इतर जिन देशों में हिंदी बोली जाती है, उनके प्रयोजन के आधार पर अनेक पक्ष हैं—

१. प्रवासी भारतीय—मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना आदि देश, जहाँ हिंदी एक ओर सामाजिक, सांस्कृतिक प्रतीक-चिह्न बनकर गई और साथ ही उनके आपसी व्यवहार का साधन भी बनी।

२. भारत के पड़ोसी देश—पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, म्याँमार, भूटान आदि।

3. ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका, एशिया महाद्वीपों में हिंदी की स्थिति।

विश्व के दृश्य फलक पर हम अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पैनिश, पुर्तगाली आदि भाषाओं को भी विश्व-भाषा के रूप में व्यवहृत पाते हैं। पर विश्व-भाषा बनने की इनकी प्रक्रिया और प्रवृत्ति हिंदी से भिन्न है। ये भाषाएँ साम्राज्यवाद की उस नींव के आधार पर फैलीं, जिसके मूल में प्रभुता, शक्ति और विद्वेष की रक्त-रंजित प्रवृत्ति थी।

हिंदी का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ

ऑस्ट्रेलिया अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी के दो और पक्ष हैं—

हिंदी काव्य भाषा एवं अंग्रेजी काव्य भाषा के तुलनात्मक अध्ययन पर शोध-कार्य। संप्रति भारतीय काव्यशास्त्र : अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में। भारतीय परंपरा विश्व की प्राचीन संस्कृतियों के मूल पाठों के अनुवाद की समस्याओं पर शोध एवं सर्जनात्मक लेखन।

इंडोनेशिया, मलयेशिया और कंबोडिया आदि देशों के लिए हिंदी सांस्कृतिक-सामाजिक प्रेरणा प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त अमेरिका, इंग्लैंड, ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस आदि देशों में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का कार्य हो रहा है। ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, इंग्लैंड और जर्मनी आदि देशों में हिंदी की स्थिति एवं भूमिका बिल्कुल अलग है। इन देशों में संप्रेषण के रूप में या आदान-प्रदान के रूप में हिंदी की कोई सामाजिक भूमिका नहीं है और न ही हिंदी का कोई सामाजिक संदर्भ ही इन देशों में है। इन देशों में व्यक्ति अपनी निजी रुचि और आवश्यकता के अनुसार ही हिंदी सीखता है।

प्रस्तुत आलेख 'ऑस्ट्रेलिया में हिंदी' पर केंद्रित है। ऑस्ट्रेलिया मुख्य रूप से आप्रवासियों का देश है। यहाँ के आदिवासी मूलत: इंडोनेशिया से लेकर यूरोप के विभिन्न देशों से आए जन-समूहों के रूप में बसे हुए हैं। ब्रिटिश लोगों की ऑस्ट्रेलिया में सरकार की 'रंग-भेद' नीति के कारण भारतीयों और एशिया, अफ्रीका आदि देशों के व्यक्तियों को ऑस्ट्रेलिया में बसने पर प्रतिबंध था। सन् १९४७ में भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत में पैदा हुए एंग्लो-इंडियन तथा अंग्रेजों को ऑस्ट्रेलिया आने की अनुमति प्रदान की गई। सन् १९६० से ऑस्ट्रेलिया के सामाजिक परिदृश्य में परिवर्तन हुआ। छठे दशक के बाद भारत से डॉक्टरों, इंजीनियरों और शिक्षकों आदि को ऑस्ट्रेलिया में स्थायी रूप से निवास करने की अनुमति दी गई। आठवें दशक के बाद १९८० से ऑस्ट्रेलिया में बसे हुए भारतीयों के रिश्तेदारों का भी आवागमन आरंभ हो गया।

ऑस्ट्रेलिया की २००६ में हुई जनगणना के अनुसार २,३५००० भारतीय मूल के लोग थे, जिनमें लगभग ८०,००० हिंदी भाषी थे, तमिल भाषी ३३,०००, पंजाबी लगभग २३,००० हैं और बांग्ला भाषी लगभग २०,००० हैं। इधर हिंदी भाषियों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। अन्य देशों के हिंदी भाषी भी ऑस्ट्रेलिया में बसना पसंद कर रहे हैं। ऑस्ट्रेलिया आने के मूल में व्यापार और रोजगार की संभावना की तलाश ही है।

८० प्रतिशत घरों में अंग्रेजी

पर्याप्त समय तक इंग्लैंड का उपनिवेश होने तथा लगभग सवा दो करोड़ की आबादी में ब्रिटेन से आए लोगों की संख्या सबसे अधिक होने के कारण 'अंग्रेजी' यहाँ की प्रमुख भाषा है। यहाँ लगभग ८० प्रतिशत घरों में अंग्रेजी का ही व्यवहार किया जाता है। घर में अंग्रेजी बोलनेवाले वे भी हैं, जिनकी मातृभाषा अंग्रेजी नहीं है।

शिक्षण में समानता

ऑस्ट्रेलिया में जहाँ हिंदी शिक्षण का प्रशन है तो यहाँ के हाई स्कूल तक की शिक्षा अनिवार्य है—सरकारी स्कूलों में नि:शुल्क और निजी स्कूलों में सशुल्क। पर एक विशेष बात यह है कि स्कूल के भवन, शिक्षा संबंधी उपकरण, खेलकूद के सामान, विभिन्न गतिविधियों के आयोजन में कोई अंतर नहीं है। सरकारी स्कूलों की संख्या अधिक है और निजी स्कूल प्राय: विभिन्न ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित हैं, पर जहाँ तक पाठ्यक्रम का संबंध है, वह पूरे राज्य में एक समान होता है। ध्यातव्य है कि मिशनरी स्कूलों में हिंदी शिक्षण अनिवार्य था। मेलबर्न में 'रैकबैंक प्राथमिक विद्यालय' नामक सरकारी स्कूल है, जो ऑस्ट्रेलिया का सबसे पहला सरकारी स्कूल है। वहाँ भारतीय या गैर-भारतीय मूल के सब बच्चे पढ़ सकते हैं।

भारत की भाषाई नीति

ऑस्ट्रेलिया सरकार की भाषाई नीति के अनुसार सोमवार से शुक्रवार तक लगनेवाले सामान्य स्कूलों में केवल ८ चुनी हुई भाषाओं (४ यूरोपीय) तथा (४ एशियाई) को पढ़ाए जाने का प्रावधान है। इनमें हिंदी सम्मिलित नहीं है, इसीलिए हिंदी कक्षाएँ अधिकतर सप्ताहांत में लगती हैं। ये कक्षाएँ हिंदी में प्रचार के रुचि रखनेवाले व्यक्तियों अथवा संगठनों द्वारा चलाई जाती हैं। हिंदी तथा अन्य भाषाओं के विद्यालयों को बहुधा ऑस्ट्रेलिया की केंद्रीय सरकार से अनुदान प्राप्त होता है। इसे 'सामुदायिक भाषा विद्यालय' का नाम दिया गया है। ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश प्रदेशों विद्यालयों में हिंदी इसी प्रकार से पढ़ाई जाती है।

हिंदी माध्यमिक स्तर पर

विक्टोरिया की सरकार ने सन् १९९३ में ११वीं तथा १२वीं कक्षा में हिंदी को हाई स्कूल में मान्यता प्रदान की। आज ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश प्रदेशों के छात्र उच्च माध्यमिक स्तर पर हिंदी पढ़ सकते हैं और १२वीं कक्षा की राष्ट्रीय हिंदी परीक्षा में भाग ले सकते हैं। डॉ. दिनेश श्रीवास्तव के प्रयत्न से 'हिंदी-प्रवेश' तथा 'हिंदी-परिचय' पाठ्य-पुस्तकें चालू की गईं।

सन् १९८६ में विक्टोरिया में मेलबर्न के उपनगर में प्राथमिक स्तर पर सबसे पहली हिंदी कक्षाएँ शिक्षक डॉ. रमाशंकर पांडेय के द्वारा आरंभ की गईं। १९९३ में हिंदी को ११वीं तथा १२वीं कक्षाओं में पठन-पाठन को सरकारी मान्यता शिक्षण में उनका भारी योगदान रहा है।

मेलबर्न के हिंदी निकेतन के वार्षिक समारोह के कार्यक्रम में हर वर्ष हिंदी विषय को लेकर १२वीं कक्षा में उत्तीर्ण करनेवाले विद्यार्थियों को पुरस्कार देकर सम्मानित किया जाता है। इसी प्रकार पर्थ के हिंदी समाज द्वारा आयोजित 'फुलवारी' कार्यक्रम में बच्चों को अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर प्रदान करता है। ऑस्ट्रेलिया के प्रमुख शहरों में कवि-गोष्ठियाँ तथा कवि-सम्मेलन इन संस्थाओं द्वारा आयोजित की जाती हैं तथा हिंदी और भारतीय संस्कृति के उत्थान में विशेष योगदान देनेवाले व्यक्तियों को सम्मानित किया जाता है।

हिंदी समाज

सिडनी में 'हिंदी समाज' की स्थापना १९८९ में हुई थी। इसका उद्देश्य है—हिंदी भाषा, साहित्य तथा संस्कृति को बढ़ावा देना, आगामी पीढ़ियों को हिंदी संस्कृति की रक्षा के लिए सचेत करना, युवाओं में सांस्कृतिक जागरूकता लाना और अपनी अस्मिता की पहचान कराना। हिंदी समाज के पास प्रशिक्षित हिंदी शिक्षक हैं, जो हिंदी पढ़ाते हैं। शिक्षकों के साथ विद्यार्थियों के माता-पिता मिल-जुलकर काम करते हैं। सिडनी समाज की प्रबंधक समिति में कुशल तथा उत्साही लोग हैं। हिंदी कक्षाएँ सुबह १० से १२ बजे तक सप्ताहांत में लगती हैं। ४ वर्ष की आयु के बच्चों से लेकर १७ वर्ष के किशोरों को शिक्षा प्रदान की जाती है।

हिंदी प्रचारक संस्थान और कार्यक्रम

सन् १९९० के दशक में आरंभिक वर्षों में ऑस्ट्रेलिया के विविध शहरों में हिंदी भाषा और संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए कई संस्थाएँ स्थापित हुईं। ऊपर कथित हिंदी समाज के अतिरिक्त मेलबर्न में 'हिंदी निकेतन', हिंदी संस्थाओं की गतिविधियों में काफी समानताएँ हैं, जैसे—होली, दीवाली आदि भारतीय त्योहारों को मनाना, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना, हिंदी कक्षाओं का प्रबंध करना। मेलबर्न के हिंदी निकेतन के वार्षिक समारोह के कार्यक्रम में हर वर्ष हिंदी विषय को लेकर १२वीं कक्षा में उत्तीर्ण करनेवाले विद्यार्थियों को पुरस्कार देकर सम्मानित किया जाता है। इसी प्रकार पर्थ के हिंदी समाज द्वारा आयोजित 'फुलवारी' कार्यक्रम में बच्चों को अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर प्रदान करता है। ऑस्ट्रेलिया के प्रमुख शहरों में कवि-गोष्ठियाँ तथा कवि-सम्मेलन इन संस्थाओं द्वारा आयोजित की जाती हैं तथा हिंदी और भारतीय संस्कृति के उत्थान में विशेष योगदान देनेवाले व्यक्तियों को सम्मानित किया जाता है।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी पत्रिकाएँ

ऊपर हमने लिखा कि ऑस्ट्रेलिया में आर्य समाज हिंदी शिक्षण के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। जहाँ ऑस्ट्रेलिया में वहाँ के आर्य समाज की ओर से 'आर्य ऑस्ट्रेलियन' शीर्षक से हिंदी पत्रिका वार्षिकी पत्रिका पं. चंद्रिका सिंह और श्री जगदीश चंद्रजी की देख-रेख में निकलती है, जो हिंदी और अंग्रेजी भाषा में होती है।

मेलबर्न से निकलनेवाली लगभग १५ पत्रिकाओं में पाँच-छह

पत्रिकाएँ तो केवल पंजाबी, गुजराती, मलयालम, तेलुगु आदि की हैं, शेष अंग्रेजी की हैं। खेद है कि हिंदी की पत्रिका ही नहीं है। हिंदी समाज द्वारा चेतना शीर्षक से एक वार्षिकी का प्रकाशन होता है, जिसके जरिए हिंदी प्रेमियों में छिपी सृजनात्मकता को मंच प्रदान किया जाता है। मेलबर्न में पिछले १० वर्ष से प्रकाशित 'हिंदी-पुष्प' निकलता है, जिसके संपादक श्री दिनेश श्रीवास्तव हैं। साथ है साऊथ एशिया टाइम्स का प्रकाशन है। हाल ही में सिडनी से 'हिंदी गौरव' नामक हिंदी समाचार-पत्र प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ है।

हिंदी दिवस और कवि-सम्मेलन

ऑस्ट्रेलिया में बड़ी धूमधाम से हिंदी दिवस मनाने की परिपाटी चल पड़ी है। पिछली जनगणना के अनुसार ऑस्ट्रेलिया में करीब चालीस हजार व्यक्तियों की भाषा हिंदी है। जहाँ हाई स्कूल के विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षा उपलब्ध है, वहाँ कैनबरा और मेलबर्न विश्वविद्यालय में हिंदी पत्राचार से भी सीखी जा सकती है।

हिंदी दिवस के अवसर पर एक कवि-सम्मेलन लोकप्रिय कवयित्री रेखा राजवंशी के प्रधानत्व में आयोजित हुआ था, जिसमें अनेक कवि-कवयित्रियाँ उपस्थित थी। भारतीय कौंसलावास से श्री विवेक कुमार ने दीप जलाकर कवि-सम्मेलन का शुभारंभ किया। कवियों ने अपनी रचनाओं से श्रोताओं को भाव-विभोर कर दिया, जैसे अनिल वर्मा की स्वरबद्ध सरस्वती स्तुति, शैलजाजी का गीत, सुभाषजी की कविता, किशोरजी के व्यंग्य, रेखा के 'बचपन गीत' आदि। इसमें कुछ सिख कवियों ने भी भाग लिया और हिंदी के प्रति अपना प्रेम दिखाया।

इस कवि-सम्मेलन की विशेषता यह थी कि युवा पीढ़ी के उभरते कवियों ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। सुभद्रा कुमारी चौहान द्वारा रचित कविता 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी' सुनकर श्रोतागण गद्‌गद हो गए। कुल २१ कवि-कवयित्रियों ने भाग लिया। सम्मेलन से ऐसा लग रहा था कि प्रवासी अपने मूल देश से जुड़े रहना चाहते हैं। कविता उनके हृदय को छू लेती है और वे कुछ क्षण के लिए ही अपने पूर्वजों की भूमि में लौट जाते हैं।

एक दूसरे हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में कैनबरा ऑस्ट्रेलिया ऐसोसिएशन द्वारा नोटारस बहुसांस्कृतिक समारोह केंद्र में आयोजित कवि-सम्मेलन में सिडनी, मेलबर्न एवं कैनबरा से आए कवियों ने हास्य-कविताओं से समाँ बाँध दिया और नृत्य-गान भी हुए। कैनबरा के हिंदी समाज, हिंदी पाठशालाएँ, रेडियो मनपसंद एफ.एम. तथा भारतीय सीनियर सिटीजन के विशेष सहयोग से कार्यक्रम सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

निष्कर्ष के रूप में हम देख सकते हैं कि ऑस्ट्रेलिया में एक ऐसा समाज विकसित हो रहा है, जो हिंदी में अपनी बातें संप्रेषित करना चाहता है और भाषाई व्यवहार में उसके दो छोर हैं—एक छोर वह है, जहाँ भारतीय जडों से जुड़े लोग हैं, उनके लिए हिंदी सामाजिक अस्मिता का उपकरण है। ये भारतीय अपने घरेलू जीवन में पंजाबी, तमिल, गुजराती, भोजपुरी, उड़िया बोलते हैं। दूसरे छोर पर अमरीका, यूरोप और अन्य महाद्वीपों से आए मूल आदिवासी इंडोनेशिया के प्रवासी लोग हैं, जिनकी जड़ें इंडोनेशिया से लेकर यूरोप एवं विश्व के अन्य भू-भागों से जुड़ी हैं।

निष्कर्षत: ऑस्ट्रेलिया में हिंदी प्रयोक्ताओं के निम्नलिखित कार्य हैं—

१. भारतीय मूल के लोग, जो समस्त भाषाई भेद (तमिल, तेलुगु, कन्नड़, पंजाबी, गुजराती, हिंदी आदि समस्त भारतीय भाषा-भाषी) भुलाकर हिंदी को सर्वनिष्ठ मानते हैं। ऑस्ट्रेलिया के ये भारतवंशी सभी भारतीय त्योहार, हिंदी दिवस और अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम बड़ी ही उमंग से मनाते हैं।

२. विदेशी भाषा के रूप में हिंदी पढ़नेवाला वर्ग, जो हिंदी भाषी क्षेत्र को एक बड़े बाजार के रूप में देखता है, उनके लिए हिंदी व्यावसायिक क्षेत्र में लोकप्रिय होने का माध्यम है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिंदी की इस लोकप्रिय और जनप्रिय भूमिका ने भारत और ऑस्ट्रेलिया के बीच राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संबंध को अधिक सशक्त बनाया है, साथ ही ऑस्ट्रेलिया में बसे भारतीय मूल के लोग स्वाभाविक रूप से भारत को अपनी सांस्कृतिक अस्मिता का मूल स्रोत मानते हैं। उनके मन में हिंदी की अंतरराष्ट्रीय भूमिका एक स्वप्नमात्र नहीं है, बल्कि उपनिषद् के उस ऋषि परंपरा की सशक्त माँग है, विश्वमानव की माँग है, जिसने वैदिक भारत में विश्व को एक बड़े कुटुंब के रूप में देखा था। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में हिंदी व्यापक संदर्भ में आज का वैश्वीकरण और इसकी भारतीय दृष्टि ऑस्ट्रेलिया में साकार हो रही है।

साअ
७ ए/२०३, न्यू म्हादा,
अँधेरी पश्चिम,
मुंबई-४०००५३
e-mail : aamodini@yahoo.com

हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है, इसमें कोई संदेह नहीं। —अनंत गोपाल शेवड़े

हिंदी को ही राजभाषा का आसन देना चाहिए। —शचींद्रनाथ बख्शी

मेरे लिए हिंदी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है। —राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडनु

इटली के विश्वविद्यालयों में हिंदी

● श्याम मनोहर पांडेय

सन् १७५७ में इटली से एक कैथोलिक धर्म प्रचारक बिहार में बेतिया गया था, वह पटना और बनारस भी गया, पर मुख्य रूप से उसका कर्मक्षेत्र बेतिया बना रहा। उस धर्म प्रचारक का नाम मार्को देल्ला तोंबा था, उसने भारत के धर्म, समाज, राजनीति और साहित्य का अध्ययन अपनी दृष्टि से किया। उसकी रचनाओं का एक संग्रह 'फादर देल्ला तोबा की रचनाएँ' (gli scrittidel Padre della Tomba) के नाम से पलोरेंस से छपा था। इसमें एक विशद, अध्याय संत कबीर पर है। इस अध्ययन में कबीर की प्रक्षिप्त रचनाएँ भी हैं, पर यह अध्ययन यूरोप में कबीर का प्रथम अध्ययन था। ग्रंथ इटालियन में था। अत: हिंदी में इसकी चर्चा कम हुई।

सन् १९०० के आसपास इटली के ही एल.पी. टेस्सीटोरी ने भारत में रहकर राजस्थानी साहित्य-कला और भाषा का गंभीर अनुशीलन किया था, राजस्थानी के व्याकरण के अतिरिक्त उन्होंने राजस्थानी के विपुल साहित्य को प्रकाश में लाने का प्रयास किया। १९१६ में राठौर पृथीराज कृत 'वेलि क्रिस्न रुकमणी' का पाठ संपादन उन्होंने आठ प्रतियों के आधार पर किया, जिसका प्रकाशन एशियाटिक सोसाइटी बंगाल (कलकत्ता) से हुआ था। १६१४-१५ में तुलसीदास कृत रामचरित मानस के व्याकरण पर भी एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखी और एक अलग लेख में मानस की मौलिकता पर भी प्रकाश डाला। इन दोनों विद्वानों का उल्लेख किए बिना इटली में हिंदी का कोई विवरण अपूर्ण माना जाएगा।

इटालियन विश्वविद्यालयों में संस्कृत के पठन-पाठन की परंपरा प्राचीन है, पर इधर लगभग ५० वर्षों में हिंदी का अध्ययन भी विकसित हुआ है। यहाँ सात विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन होता है, पर इनमें पाँच ऐसे हैं, जहाँ गंभीरता से हिंदी की पढ़ाई होती है और हिंदी में अनुसंधान का कार्य भी चल रहा है। यहाँ के विश्वविद्यालयों में लगभग सौ विद्यार्थी हैं।

ओरियंटल विश्वविद्यालय नेपुल्स में हिंदी

ओरियंट विश्वविद्यालय नेपुल्स में आजकल लगभग २० विद्यार्थी हैं। प्रथम वर्ष में व्याकरण के अतिरिक इटालियन में वे हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़ना शुरू कर देते हैं। इससे विद्यार्थी परिचित हो जाते है कि हिंदी में क्या-क्या सामग्री पठनीय है। उसका साहित्य कितना विस्तृत है। पृथ्वीराज रासो से लेकर आधुनिक काल के हिमांशु जोशी, चित्रा मुद्गल के उपन्यासों के अतिरिक्त ममता कालिया, मन्नू भंडारी की कहानियाँ भी पढ़ाई जाती हैं। प्रेमचंद का 'गोदान' और रेणु का 'मैला आँचल' भी मैं पढ़ाता था। कबीर के दोहे और तुलसी रामायण से सीता-हरण का प्रसंग भी पाठ्यक्रम का अंग था। विदेशी छात्रों को पहले व्याकरण का ज्ञान कराया जाता है, उसके बाद चयन किया हुआ पाठ विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए दिया जाता है। दूसरे-तीसरे साल में छायावादी कविता भी पढ़ाता रहा। छायावादी कविता की प्रतीक योजना प्रेम और सौदर्य, शब्दचित्र तथा कलात्मक बिंब-विधान में विद्यार्थियों का मन रमता है। मुझे प्रसन्नता है कि मेरी एक भूतपूर्व छात्रा जयशंकर प्रसाद और उनकी कामायनी पर काम कर रही है। ओरियंटल विश्वविद्यालय के सहयोग से लोकमहाकाव्य लोरिकी चनैनी तथा लोरिकायन के मेरे पाँच भाग प्रकाशित हुए हैं, जिन पर मैं वर्षों से काम कर रहा हूँ। यहाँ की शोध पत्रिका 'अन्नाली' में चंदायन कुतुबन, मीराबाई, तुलसीदास जैसे विषयों पर अनेक निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। ओरियंटल विश्वविद्यालय में हिंदी की पुस्तकों का एक वृहद् संग्रह है। आदिकाल, भक्तिकाल के अतिरिक्त आधुनिक साहित्य पर भी पुस्तकालय में प्रचुर सामग्री है। मेरे अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद स्तेफानिया कावलियेरे हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सँभाल रही हैं। 'जहाँगीर जसचंद्रिका' तथा तुलसीदास पर उनके निबंध भी प्रकाशित हो चुके हैं। उनका केशवदास कृत 'जहाँगीर जसचंद्रिका' का एक आलोचनात्मक संस्करण ओरियंटल विश्वविद्यालय प्रकाशित कर चुका है; यह साहित्य ही नहीं इतिहास के विद्यार्थियों के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसकी सांस्कृतिक टिप्पणियाँ उपयोगी हैं, इसका मूल पाठ हिंदी में है।

सुपरिचित लेखक। अब तक पंद्रह पुस्तकें प्रकाशित। शिकागो, विस्कांसिन में हिंदी विभाग में पूर्व अध्यापक। साहित्य अकादमी तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सम्मान प्राप्त। संप्रति इटली के ओरियंटल विश्वविद्यालय से सेवा-निवृत्त होकर लंदन में निवास।

रोम विश्वविद्यालय

रोम विश्वविद्यालय में हिंदी लगभग ५० सालों से पढ़ाई जा रही है यहाँ आजकल प्रोफेसर मिलानेत्ती हिंदी का कार्य सँभाल रहे हैं। 'पद्मावत' का उन्होंने हिंदी से इटालियन में अनुवाद किया है। श्रीमती तान्या गुप्त के सहयोग से उन्होंने प्रारंभिक विद्यार्थियों के लिए एक व्याकरण तय पाठ तैयार किया है, जो यहाँ के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। हिंदी पाठ्यक्रम के अंतर्गत रोम में हिंदी सिनेमा पर भी व्याख्यान दिए जाते हैं। यहाँ मेरी एक भूतपूर्व छात्रा मारा मात्ता आधुनिक हिंदी साहित्य पढ़ा रही है।

रोम में ही पोप की नगरी वेटिकन है। यहाँ से वेटिकन रेडियो में हिंदी में प्रसारण होता है। वेटिकन रेडियो एक धार्मिक संस्थान है, जो ईसामसीह और उनके संदेशों का प्रचार करता है। कुछ सामान्य खबरें भी इसमें प्रसारित होती रहती हैं। भारत में भी वेटिकन रेडियो के श्रोता हैं। उनके द्वारा भेजे गए पत्रों से यह ज्ञात होता है।

रोम में एक दूसरी संस्था इसमेओ नाम से प्रख्यात थी। इसकी स्थापना प्रोफेसर टूच्ची ने ओरियंटल विषयों में अनुसंधान और प्रकाशन के लिए की थी, यहाँ हिंदी पढ़ाई जाती थी।

अफ्रीका संस्थान से जोड़कर इसे इसिआओ कर दिया गया था। यहाँ से 'ईस्ट एंड वेस्ट' पत्रिका निकलती है। इस संस्थान का पुस्तकालय समृद्ध था, इसमें हिंदी की पर्याप्त पुस्तकें थीं, यह संस्थान मेरे द्वारा संपादित हिंदी इटालियन कोश प्रकाशित कर रहा था, कोश में मुहावरों को भी सम्मिलित किया गया था, इसमें 'दाल में काला है', 'उसकी नानी मरने लगी', 'वह नौ-दो ग्यारह हो गया' ये सभी मुहावरे विदेशी विद्यार्थियों के लिए टेढ़ी खीर हैं। ऐसे मुहावरों का प्रयोग और अर्थ भी इस कोश में मिलेगा। खेद है कि यह संस्थान इटली सरकार द्वारा बंद कर दिया गया। इटली के कुछ विद्वान् संस्थान को जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं, आशा है उनका प्रयास सफल होगा।

वेनिस विश्वविद्यालय

वेनिस विश्वविद्यालय हिंदी का अच्छा केंद्र रहा है, यहाँ लक्ष्मण प्रसाद मिश्र बहुत दिनों तक हिंदी के निदेशक रहे। हिंदी पठन-पाठन का यहाँ प्रारंभ १६६० के आसपास हो गया था। मिश्रजी के असामयिक स्वर्गवास के बाद भी यहाँ हिंदी का अच्छा काम होता रहा। हिंदी के कुछ उपन्यासों का अनुवाद यहाँ हुआ। मारिओला आफ्रेदी ने प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' का इटालियन में अविकल अनुवाद किया है। अलका सरावगी का 'कलिकथा वाया बाई पास' के अलावा हिंदी की आधुनिक कविताओं का भी अनुवाद उन्होंने किया है। फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' का अनुवाद डॉ. चिचिलिया ने किया था। मारिओला आफ्रेदीजी अवकाश प्राप्त कर बरगेमों में रहती हैं। श्रीमती चिचिलियाजी समय से पूर्व ही स्वेच्छा से हिंदी विभाग से अवकाश लेकर घर पर रहती हैं। प्रो. जान फिलिप्पीजी भी अवकाश प्राप्ति के बाद भी पालोसा जीतया उनके सहयोगी हिंदी के पठन-पाठन का कार्य सुचारू रूप से चला रहे हैं।

टूरिन विश्वविद्यालय

इटली में आजकल सबसे अधिक व्यवस्थित हिंदी विभाग टूरिन विश्वविद्यालय का है। यहाँ प्रोफेसर पिनूच्चा कराक्की हिंदी विभाग का कार्य सँभाल रही हैं। यहाँ विद्यार्थी हिंदी का अध्ययन और अनुसंधान कर रहे हैं। प्रो. कराक्की का एक शोध-ग्रंथ संत रामानंद पर है। यह रामानंद पर अध्ययन के लिए यह एक मानक ग्रंथ है। कराक्कीजी ने एक व्याकरण लिखा है, जो इटालियन विद्यार्थियों के लिए एक संदर्भ ग्रंथ है। हिंदी के छात्र और छात्राएँ इसका उपयोग करते हैं। श्रीमती कोंसोलारो उनकी सहयोगी हैं, जो आधुनिक हिंदी साहित्य पढ़ाती हैं। बनारस पर इनका एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है, जिसमें बनारस की सांस्कृतिक और साहित्यिक परंपराओं की विस्तृत समीक्षा की गई है। इन्होंने हिंदी की कुछ कहानियों का अनुवाद भी किया है। भारतीय विभाग के भूतपूर्व निदेशक प्रो. स्तेफनो पियानो ने जो संस्कृत और हिंदी दोनों भाषाओं में निष्णात है, हिंदी कहानियों का इटालियन में एक संग्रह प्रो. कराक्की के साथ किया है। इसकी एक विस्तृत भूमिका कराक्कीजी ने लिखी है, जिससे हिंदी कथा साहित्य का इतिहास ही नहीं, कहानियों की विशिष्टता भी उजागर हो जाती है। विभाग मे गंभीर अनुसंधान की परंपरा है। यहाँ एक विद्यार्थी ने नाभादास के भक्तमाल पर भी काम किया है। यहाँ एक भाषा सहायक है—टूरिन विश्वविद्यालय में हिंदी पुस्तकों का एक अच्छा संग्रह है।

मिलान विश्वविद्यालय

मिलान विश्वविद्यालय में प्रोफेसर दोलचीनी हिंदी का कार्य सँभाल रही थीं। वे राजनीति की फैकल्टी के साथ-साथ 'फैकल्टी ऑफ लेटर्स' में हिंदी पढ़ाती थीं। एक भाषा सहायक भी विभाग में है। दोलचीनी भारतेंदु युग तथा फोर्ट विलियम्स कॉलेज की विशेषज्ञ हैं। इंशा अल्लाह खाँ की कहानी 'रानी केतकी की कहानी' का अनुवाद उन्होंने इटालियन में किया है। यह कहानी १७७५ और १७८१ के बीच लिखी गई थी। बहुत पहले लक्ष्मण प्रसाद मिश्रजी के कार्यकाल में वेनिस में वे रहीं। बाद में मिलान चली आई थीं। दोलचीनीजी को न्यूयॉर्क के विश्व हिंदी सम्मेलन में सम्मानित भी किया गया था। दोलचीनीजी ने अभी हाल में आकेदेमिया अंब्रोजियानों में एशिया विभाग में हिंदी को सम्मिलित कराने का प्रयास किया। उसका एक समारोह २९-३१ अक्तूबर, २००६ को हुआ, जिसमें प्रस्तुत लेखक के साथ एशिया के कुछ विद्वानों को सम्मानित किया गया और उनकी सेवाओं के लिए विशेष प्रमाण-पत्र दिए गए। बनारस के राणा बी. सिंह भी सम्मानित किए गए, भारतीय दूतावास के मिलान शाखा के सर्वोच्च अधिकारी चक्रवर्ती भी इसमें शामिल हुए थे। दोलचीनीजी अवकाश प्राप्ति के बाद आकेदेमिया अब्रोजियानों में हिंदी के कार्य के लिए तत्पर रहती हैं। मिलान विश्वविद्यालय में आजकल मारिया एंजिलिको हिंदी पढ़ाती हैं। आकेदमियाँ अंब्रोजियानो में भी वे सहायिका हैं, संस्थान में हिंदी की भी पुस्तकें हैं।

इन प्रमुख केंद्रों के अतिरिक्त कुछ अन्य स्थानों में भी हिंदी पढ़ाई जाती है। मुझे लगता है कि इटली में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है। विश्वविद्यालयों में आर्थिक संकट होते हुए भी हिंदी उपेक्षित नहीं है, पर जिस लगन अरि रुचि से चीनी, जापानी, इरानी सरकारें अपनी भाषाओं के लिए तत्परता से काम करती हैं, वह तत्परता भारतीय राजतंत्र में नहीं है। इंगलैंड और अमेरिका की भाँति ऐसे प्रवासी भारतीय यहाँ नहीं हैं, जो कहानी, लेख, कविता आदि लिखते हों और जिनको हिंदी-संसार जानता हो।

Midmoor Road
Wimbledon
London S.W 19 49D
e-mail : smpandey@hotmail.co.uk

कनाडा में हिंदी का विकास

● रत्नाकर नराले

हिंदी तथा पंजाबी बोलने वाले लोगों का कनाडा में आना बीसवीं शती के प्रथम चौथाई भाग में आरंभ हुआ। वह प्रवाह बढ़ता-बढ़ता तीन चौथाई तक एक समुद्र की तरह विशाल हो गया। इस भारतीय संस्कृति तथा हिंदीप्रेमी जल में भारत की महानदी के साथ-साथ ही वेस्ट इंडीज, गुयाना, फिजी, मॉरीशस, अफ्रीकी तथा अन्य देशों से निकली हुई नदियों का सुपवित्र नीर भी समाने लगा। परिणामत: बीसवीं शती के अंत तक कनाडा के पश्चिमी नगर वैंकुवर से लेकर मध्य नगर टोरंटो और पूर्वी हैलिफैक्स तक सभी इलाकों में हिंदी की जड़ें फैल गईं। इन हिंदीप्रेमियों में से कुछ महाभागों ने स्वयंस्फूर्ति से ही कनाडा की सुफल भूमि पर हिंदी के प्रचार-प्रसार व विस्तार के काम का बीड़ा उठा लिया।

इस दिशा में सौभाग्य की सर्वप्रथम घटना थी महानगरों में विविध हिंदू मंदिरों की स्थापना और उनके कार्यकर्ताओं में पूजा के व्यतिरिक्त, युवकों को भारतीय संस्कृति तथा भाषाओं का प्रारंभिक नि:शुल्क अभ्यास कराने की सुबुद्धि।

फिर चलते-चलते मध्य कनाडा के ओंटैरियो प्रांत की सरकार ने १९६६ में हेरिटेज-लैंग्वेज-प्रोग्राम की स्थापना करके हिंदी को गैर-शासकीय भाषा के रूप में स्कूल-बोर्डों में भी पढ़ने की अनुमति दी, जो कि पंजाबी व गुजराती को पहले ही मिल चुकी थी। इसके लगभग पाँच वर्ष बाद १९७१ में कनाडा का सर्वप्रथम नियमबद्ध एवं नियमित रूप में मुकुलित हुआ ओटावा का मुकुल विट्टलय। उसके दस साल बाद टोरंटो में श्री जगदीश चंद्र शारदाजी ने स्कूल-बोर्ड में हिंदी पढ़ना आरंभ किया और फिर एक हिंदी सीखने का केंद्र खोला, जो कि आगे चलकर बना प्रसिद्ध हिंदू इंस्टीट्यूट ऑफ लर्निंग। शारदाजी के साथ फिर रत्नाकर नराले ने संस्था का प्राध्यापक बनकर, विशेषतया गैर-हिंदियों को हिंदी, संस्कृत व गीता पढ़ने का कार्य आरंभ किया, जिसका लाभ वेस्ट इंडीज, गुयाना, फिजी, मॉरीशस, अफ्रीका तथा अन्य देशों से आए हुए अभारतीयों ने और डायस्पोरा अभारतीय भारतीयों ने खूब उठाया तथा उठा रहे हैं। यह एकमात्र संस्था मुख्य रूप से अभारतीय भारतीयों के हिंदी, संस्कृत तथा गीता के प्रति प्रेम और प्रेरणा से अभी भी चल रही है और आगे बढ़ रही है। वेस्ट इंडीज, गुयाना, फिजी, मॉरीशस तथा अन्य अफ्रीकी भारतीयों में जो भारतीय संस्कृति के प्रति दृढ़ निष्ठा पाई जाती है, वह यहाँ के भारतीयों में नहीं पाई जाती, भारत के भारतीयों में तो कतई नहीं।

भारत से कनाडा में आकर अपने बच्चों को पैसे देकर हिंदी सिखाने का उत्साह और स्वहित आम भारतीय हिंदी भारतीयों में नहीं था। अत: मंदिरों के बाहर जहाँ भी हिंदी वर्ग शुरू किया गया, वह विद्यार्थियों के अभाव से बंद ही होता गया और यह आत्मघातक अभी भी हिंदी भाषा के लिए त्यों ही चल रहा है और शायद अखंड चलता ही रहेगा।

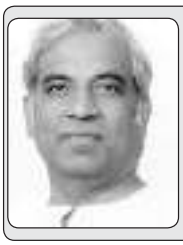

सुपरिचित लेखक। कविता, भारतीय संस्कृति, साहित्य और इतिहास में उनकी गहरी रुचि है। कंप्यूटर, मुद्राशास्त्र, चित्रकारी और अध्ययन उनके शौक हैं। संप्रति यॉर्क यूनिवर्सिटी, टोरंटो में अंतरराष्ट्रीय एम.बी.ए. कार्यक्रम के लिए उच्च हिंदी पाठ्यक्रम का निर्देशन और अध्यापन।

टोरंटो में १९८२ में रघुवीर सिंहजी ने स्थापित की हिंदी परिषद्, जिसमें टोरंटो के हिंदी भाषियों का हिंदी भाषियों के साथ परस्पर समागम चलता रहा। फिर १९८३ में हिंदी लिटरेरी सोसायटी ऑफ कनाडा शुरू की थी ग्वेल्फ नगर के प्रो. ओम प्रकाश द्विवेदीजी ने। १९९७ के आस-पास प्रो. हरिशंकर आदेश तथा प्रो. श्याम त्रिपाठी ने उसी उद्देश से आरंभ की हिंदी प्रचारिणी सभा और उसके तुरंत बाद ही वह विभाजित होकर डॉ. भारतेंदु श्रीवास्तव ने चलाई हिंदी साहित्य सभा। फिर श्री त्रिपाठीजी ने 'हिंदी चेतना' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित की, जिसके द्वारा हिंदी कवियों व लेखकों को अपनी रचनाओं को प्रदर्शित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अब इस लोकप्रिय पत्रिका का लाभ विश्व के कई देशों के लेखक-पाठक उठा रहे हैं।

पश्चिम कनाडा के ब्रिटिश कोलंबिया प्रांत के बर्नबी शहर में १९७५ में विश्व हिंदू परिषद् ने हिंदी सिखाने का काम आरंभ किया। वैंकुवर शहर के महालक्ष्मी मंदिर ने १९९१ में हिंदी कक्षा शुरू की, फिर सरी के वैदिक हिंदू कल्चरल सोसायटी ने १९९७ में हिंदी शुरू की और रिचमंड के वैदिक कल्चरल सोसायटी ने २००४ में हिंदी वर्ग प्रारंभ किए। १९९८ में श्री श्रीनाथ द्विवेदीजी ने हिंदी लिटरेरी सोसाइटी ऑफ कनाडा वैंकुवर में भी स्थापना की थी।

उत्तरी कनाडा के अल्बर्टा प्रांत के कैलगरी शरह के वैदिक हिंदू सोसायटी और रामायण भजन मंडली ने १९८० से हिंदी कक्षाएँ चलाई थीं। इडमिंटन के हिंदू परिषद् ने १९८५ से हिंदी वर्ग चलाए थे।

पूर्व कनाडा के नोवा-स्कोशिया प्रांत के हैलिफेक्स शहर में १९७२ में हिंदी पाठन आरंभ हुआ और १९८० में प्रो. सिंह ने मेमोरियल यूनिवर्सिटी कैंपस पर हिंदी शिक्षा प्रचलित की। १९७५ में श्री कुमुद त्रिवेदी ने हिंदी समागम हेतु प्रस्थापित किया था क्विबेक हिंदी संघ। मैनिटोबा प्रांत के विनिपेग शहर में १९८२ में प्रो. वेदानंद झा ने चलाई

थी अल्पजीवी मैनिटोबा हिंदी परिषद्। हिंदू सोसायटी ने १९९८ में हिंदी वर्ग आरंभ किए।

कनाडा में भारतीय दूत बनकर हिंदी व भारतीय संस्कृति प्रसारित करने का बीड़ा उठा लिया। कनाडा में टोरंटो, मांट्रियल, वैंकुवर, ओटावा, कैलगरी, एडमिंटन, हैलिफैक्स, आदि मुख्य नगर हैं, उनमें टोरंटो महानगर व्यावहारिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से सबसे बड़ा, प्रगतिशील एवं प्रमुख है। यहाँ टोरंटो महानगर में १९६९ में हमने हिंदी व भारतीय संस्कृति विकसित-प्रसारित करने के उद्देश्य से 'पुस्तक भारती' नामक गैर-सरकारी संस्था आरंभ की। उस जमाने में कंप्यूटर वगैरह अस्तित्व में न होने के कारण हम हस्तलिखित या टंकलिखित शैक्षणिक सामग्री साइक्लेस्टाइल या ब्लूप्रिंट माध्यम से पुस्तकें बनाकर हिंदी, संस्कृत व गीता की कक्षाएँ चलाने लगे।

कनाडा की सबसे अधिक क्रियाशील एवं प्रगतिशील हिंदी सांस्कृतिक संस्था 'हिंदी राइटर्स गिल्ड' २००८ में स्थापित हुई और दस वर्ष में उस संस्था का हिंदी वाङ्मयीन और सांस्कृतिक योगदान आदर्श और सराहनीय है। कवि सम्मेलन, गोष्ठी, नाट्य, संगीत, पुस्तक प्रकाशन-विमोचन, अतिथि सत्कार आदि सभी कार्यक्रम नियम से प्रतिमास केवल इसी संस्था के होते हैं।

फिर जेरोक्स तंत्र आ गया और हमारी गति उन्नत हो गई। धीरे-धीरे आई.बी.एम. के कंप्यूटर्स, डेटा-प्रोसेसिंग और सी.डी, रॉम उपलब्ध हुई और हमारी कार्यक्षमता की सीमा न रही। हमने अपने हिंदी-संस्कृत डेटा-प्रासेसिंग पर्सनल कंप्यूटर्स, हिंदी-संस्कृत फांट, हिंदी सीखने की सी.डी. और देवनागरी के अनुपम चार्ट के साथ हिंदी-संस्कृत का प्रचार आरंभ कर दिया। रत्नाकर नराले द्वारा अभिकल्पित देवनागरी के फोनेटिकली कलर-कोडेड चार्टस् प्राथमिक छात्रों के लिए अमूल्य देन हो गई। कई क्रियाशील संस्थाओं ने इन चार्टस् के बड़े-बड़े पोस्टर बनवाकर हिंदी तथा संस्कृत के प्रारंभिक विद्यार्थियों के लिए कक्षाओं में लगाए और उनका लाभ उठाने लगे। गंभीरता व गहराई से परिष्कृत हिंदी और संस्कृत सीखनेवालों के लिए इनसे अच्छा तकनीकी साधन और कोई नहीं। ये केवल रंगीन चार्टस् मात्र नहीं बल्कि व्याकरणबद्ध फोनेटिक पथदर्शक गुरु हैं। मूल स्वर, संयुक्त स्वर, अर्ध व्यंजन, मृदु व्यंजन, कठोर व्यंजन, अनुनासिक व्यंजन, महाप्राण व्यंजन, वर्ग व्यंजन, अवर्ग व्यंजन, संयुक्त व्यंजन, व्यंजनाकार वर्गीकरण, वर्णोच्चार के इंद्रियस्थान, आदि का स्पष्टीकरण व विज्ञान रंगों के माध्यम से विद्यार्थियों को दिखाता है, सिखाता है।

पुस्तक भारती के रत्नाकर नराले द्वारा बनाए हुए 'सरस्वती' और 'रत्नाकर' नामक देवनागरी, हिंदी, संस्कृत, मराठी, (तमिळ, उर्दू और गुरुमुखी) टी.टी.एफ. फॉण्टस इतने सुंदर और आसान थे कि कनाडा के 'हिंदी एब्राड', 'हिंदी टाइम्स' आदि अखबार, कई मीडिया संस्थाएँ, कई लेखक और हमारी सभी पुस्तकें इन्हीं उत्कृष्ट फॉण्टस का प्रयोग करने लगीं। हमारे फॉण्टस सर्वश्रेष्ठ होने का कारण है, बनाते समय हमने यह पूर्ण रूप से ध्यान में रखा कि फॉण्ट के अक्षर, अनुस्वार, विरामादि विधान और मात्रा के चिह्न छोटे आकार में भी फॉण्ट स्पष्ट, साफ और लिखने-पढ़ने में आसान होना चाहिए। प्रत्येक अक्षर का आकार सुंदर, कलायुक्त और शानदार होना आवश्यक है। विशेष रूप से मात्राएँ साफ-सुथरी और अलंकृत होनी चाहिए। फॉण्ट न बहुत गाढ़ा, न अधिक पतला हो।

फिर १९८९ में वर्ल्ड-वाइड-वेब इंटरनेट आ गया। हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु पुस्तक-भारती ने एक विशेष सुविधा शुरू की बिना मूल्य ऑन-लाइन हिंदी शिक्षा। पुस्तक भारती की वेब साइट बन गई और उस पर विश्व के सभी हिंदी प्रेमियों के लिए नि:शुल्क हिंदी पाठ उपलब्ध किए गए। इस अहम सुविधा का लाभ दुनिया की सभी दिशाओं से, देशों से अनगिनत लोग उठाने लगे।

सन् १९९१ में प्रो. रत्नाकर नराले की अध्यक्षता में टोरंटो कनाडा में पुस्तक भारती (Books-India) का पंजीकरण करके प्रकाशन, प्रचार व प्रसार करने वाली संस्था बनाई। जनवरी २००६ में पुस्तक भारती को Library and Archives of Canada की ओर से ISBN पंजीकरण मिल गया (Registration No 978-1-897416) और ISBN इशू करने की मान्यता प्राप्त हो गई। तब से पुस्तक भारती हिंदी-संस्कृत और भारतीय संस्कृति के विश्व प्रचार व प्रसार के लिए संशोधन आधारित उत्तमोत्तम साहित्य बिना किसी शोर-शराबे के सेवावृत्ति से प्रकाशित कर रही है। आज तक पुस्तक भारती ने लगभग ५० उत्तम पुस्तकें प्रकाशित की हैं, उनमें से ३५ पुस्तकें रत्नाकर नराले की लिखी हैं।

यह भरोसे के साथ कहा जा सकता है कि भारत के बाहर किसी भी देश में हिंदी, संगीत, संस्कृत, भारतीय संस्कृति और अन्य भारतीय भाषाओं के विकास के लिए जितना उत्तम व विशाल वाङ्मय डॉ. रत्नाकर नराले ने लिखा है, उतना शायद ही किसी प्रवासी लेखक या अभारतीय संस्था ने लिखा होगा।

विश्वविद्यालयीन स्तर पर १९७० में ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय में डास। सुरेश कर्ल ने स्नातक स्तर पर हिंदी वर्ग आरंभ किए। १९७२ में टोरंटो विश्वविद्यालय ने, १९८४ में माद्यायल के मगिल युनिवर्सिटी ने, २००४ में टोरंटो के यॉर्क विश्वविद्यालय ने हिंदी वर्ग शुरू किए। २००४ में इस विद्यालय में प्रो. रत्नाकर नराले ने इंटरनेशनल एम.बी.ए. के लिये एडवांस-हिंदी की कक्षा चलाई। उन्होंने २००७ में रायरसन यूनिवर्सिटी में हिंदी लेवल १, २ और ३ की कक्षाएँ आरंभ कीं। तथा २००८ में टोरंटो विश्वविद्यालय में हिंदी लेवल १ और २ कक्षाएँ चलाईं। इन वर्गों तथा अन्य प्रारंभिक हिंदी वर्गों को चलाने के लिए उन्होंने विशेष पुस्तकें लिखीं, जो कि अंग्रेजी मातृभाषी विद्यार्थियों के लिए खास लिखी गई हैं। उन्होंने समान स्तर की पुस्तकें संस्कृत व गीता सीखने-सिखाने के लिए भी लिखी है।

कनाडा की सबसे अधिक क्रियाशील एवं प्रगतिशील हिंदी सांस्कृतिक संस्था 'हिंदी राइटर्स गिल्ड' २००८ में स्थापित हुई और

दस वर्ष में उस संस्था का हिंदी वाङ्मयीन और सांस्कृतिक योगदान आदर्श और सराहनीय है। कवि सम्मेलन, गोष्ठी, नाट्य, संगीत, पुस्तक प्रकाशन-विमोचन, अतिथि सत्कार आदि सभी कार्यक्रम नियम से प्रतिमास केवल इसी संस्था के होते हैं।

हिंदी प्रचार-प्रसाररत संस्थाओं व पत्रिकाओं के निर्माण का मुख्य उद्देश्य रहा हिंदीभाषी कवि, लेखकों व प्रेमियों के सम्मेलन, विचार-विमर्श, गोष्ठी, पुस्तक विमोचन आदि का कार्य व सेवा। मंदिर पाठशालाओं का काम रहा भगत जनों के बच्चों को हिंदू संस्कृति, संगीत व भारतीय भाषाएँ सिखाना। और मंदिर व्यतिरिक्त संस्थाओं का काम रहा हिंदी न जाननेवालों में हिंदी के बीज बोना और भारतीय अभारतीय हिंदी प्रेमियों को हिंदी व भारतीय कलाएँ सिखाना।

हिंदी अखबारों में विशेष लोकप्रिय हैं श्री राकेश तिवारी का हिंदी टाइम्स और श्री रवि रंजन पांड्यद्ग का 'हिंदी एब्राड'। अंग्रेजी बोलनेवालों के लिए अंग्रेजी माध्यम के द्वारा हिंदी सीखने-सिखाने के विशेष हेतु लिखी गई अच्छी पुस्तकों के लेखकों में एकमात्र नाम है प्रो. रत्नाकर नराले का। इनकी किताबें टोरंटो के विश्वविद्यालयों में, स्कूल बोर्ड में तथा कई मंदिरों की पाठशालाओं में अभ्यास पुस्तक के रूप में प्रचलित हैं। उनकी वेब-साइट पर उनकी संस्कृत-रिसर्च-इंस्टीट्यूट के लिए लिखी हुई लगभग पंद्रह हिंदी अभ्यास पुस्तकें अमेजोन.कॉम पर विश्व में सभी के लिए उपलब्ध हैं।

हिंदी प्रचार-प्रसार हेतु वेब-साइट में कनाडा से रत्नाकर नराले की 222.books-india.com और श्री सुमन घई की 222.anubhuti.hindi.org उपलब्ध हैं। हिंदी प्रचार-प्रसार का काम कनाडा की रेडिओ व दूरदर्शन मिडिया भी कर रही हैं। लगभग १९७० से टोरंटो में लोकप्रिय हुए चिन रेडियो पर श्री लाली विज के कार्यक्रम थे। फिर श्री ज्ञान सिंह का भजनावली और श्री अनील श्रींगी के विविध कार्यक्रम थे। दूरदर्शन के ए.टी.एन. पर श्री चंद्रशेखर व श्रीमती जया चंद्रशेखर के कार्यक्रम। फिर ए.टी.एन. पर होस्ट बनीं श्रीमती कांता अरोरा। ओमनी टेलीविजन पर 'बधाई हो' कार्यक्रम की होस्ट बनीं श्रीमती गीतिका भारद्वाज। हिंदी पुस्तक प्रकाशकों में एक मात्र है रत्नाकर नराले की पुस्तक भारती।

'हिंदी संभाषण समागम' नामक योजना डॉ. रत्नाकर नराले ने २००७ में आरंभ की थी, जिसमें अहिंदी भाषी विद्यार्थी हर मंगलवार शाम को समवेत होकर आपस में दो घंटे तक हिंदी में बातचीत करते हैं। इसमें प्रत्येक वर्ग के आरभ में पंद्रह मिनट के लिए अंग्रेजी माध्यम में उस दिन के हिंदी विषय का व्याकरण व शब्द-प्रयोग बताए जाते हैं। फिर केवल हिंदी में टूटी-फूटी जैसी भी हो मगर हिंदी में चर्चा। विद्यार्थियों को गाड़ी आगे बढ़ने के लिए जब चाहे किताब खोलकर शब्द या व्याकरण टिप्पणी देखने का स्वातंत्र्य अवश्य होता था और जब चाहे 'इसका मतलब क्या है, फिर से कहिए, मैं समझा-समझी नहीं आदि' कहने के लिए प्रोत्साहन होता था।

रागबद्ध भारतीय संगीत शिक्षण में कनाडा में उच्चतम है श्री देव बंसराजजी ने चलाई हुई अकादमी ऑफ इंडियन म्यूजिक, जहाँ तबला, पेटी, सितारवादन की कक्षाएँ चलती हैं। साथ ही रत्नाकर नराले ने रागबद्ध हिंदी बंदिशों के लेखन की प्रक्रिया आरंभ की है। शीघ्र ही रत्नाकरजी की लिखी हुई व बंसराजजी ने संगीतबद्ध की हुई साठ से अधिक भजन बंदिशों पर संगीत सीखने की पुस्तक नई संगीत रोशनी प्रकाशित हुई। इस संस्था का लाभ अभारतीय हिंदी प्रेमी ही अधिक प्रतिशत में उठा रहे हैं।

इतने सब दीर्घ प्रयासों का सभी ओर से योगदन होते हुए भी हिंदी लोकप्रियता के बारे में जो एक अति दुखद बात मुझ चिकित्सक को हरदम खटकती है—हिंदियों का हिंदी के प्रति अधूरा प्रेम और अंग्रेजी के आगे मानी हुई हार। इसमें पहले क्रम पर है बॉलीवुड, दूसरे क्रम पर हैं हिंदी कोशकार, तीसरे क्रम पर हैं हिंदी पत्रकार आदि। जैसा कि आरंभ में कहा हुआ है, कनाडा में सबसे पहले आए पंजाबी व हिंदी भाषी भारतीय, फिर आए गुजराती भाषी, फिर अन्य भाषी। इनमें से पंजाबी, गुजराती आदि ने तो अपनी भाषा गौरव व अभिमान के साथ सँभाली, मगर हिंदियों ने अंग्रेजी को अपनाकर हिंदी को व्यवहार में दूसरे दरजे पर पीछे रखा।

आज कनाडा में पंजाबी व हिंदी भाषियों के बहुत अधिक संख्या में व्यवसाय तथा दुकानें हैं। पंजाबी दुकानों पर, कार्यालयों पर और जहाँ-तहाँ आम तौर पंजाबी में लिखे संकेतफलक लगे होते हैं, मगर हिंदी भाषी व्यापारी का ऐसा एक भी कार्यालय या दुकान नहीं है, जिस पर हिंदी में फलक लगा हो, अंग्रेजी के साथ-साथ ही सही परिणाम यह कि कनाडा में जहाँ भी सरकारी बहुभाषी सूचना-पत्र या पत्रिका निकलती हैं, उसमें पंजाबी, गुजराती व अन्य भारतीय भाषाएँ होती हैं, मगर हिंदी को स्थान नहीं मिलता। अधिकतर कनेडियन जनता तो समझती है कि भारत की राष्ट्रभाषा पंजाबी ही है। और यह पंजाबी भाषियों के लिए गौरव की बात है। हिंदीवाले इस भूल में हैं कि हिंदी ने अंग्रेजी को आत्मसात् कर लिया है। चूहा बिल्ली को क्या आत्मसात् करेगा? चाहे चूहा बिल्ली को या बिल्ली चूहे को आत्मसात् करे, मरना तो चूहे ने ही है।

इसी भूल में आजकल भारत में प्रकाशित हुए लगभग सभी हिंदी शब्दकोशों मे ३०-४० प्रतिशत शब्द अंग्रेजी के मिलते हैं। बॉलीवुड तो अंग्रेजी के बिना जी ही नहीं सकता। भारतीय-अभारतीय हिंदी पत्रिकाएँ शुद्ध हिंदी में, बिना अंग्रेजी के एक सफा तो क्या एक अनुच्छेद भी नहीं लिख सकतीं। सभी 'प्योर' हिंदी का प्रयोग करते हैं, मगर शुद्ध हिंदी का प्रयोग कोई भी नहीं करता। यह स्थिति होते हुए यहाँ की जनता यू.एन. तक सवाल करती है कि हिंदी को विश्वभाषा का स्थान व सम्मान प्राप्त क्यों नहीं है? पते की बात तो यह है कि स्वयं हिंदीभाषियों को ही हिंदी के प्रति दृढ सम्मान और अविचलित अभिमान नहीं है, तो फिर अन्य कोई भी हिंदी भाषा व हिंदीभाषियों का सम्मान भला क्यों करे?

180 Torresdale Ave.
Toronto, Canada
M2R 3E4
e-mail : rnarale@yahoo.ca

चीन में हिंदी की बिंदी

● के.एन. तिवारी

संस्कृति किसी भी देश की आत्मा होती है और भाषा उस संस्कृति की वाहक, अर्थात् किसी देश की संस्कृति को समझने के लिए उस देश, समाज की भाषा को समझना आवश्यक होता है , जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण प्रसिद्ध चीनी बौद्ध संत ह्वेन सांग हैं, जो आज से १४०० वर्ष पूर्व भारत की संस्कृति रूपी आत्मा को समझने के लिए पाँच हजार किलोमीटर से ज्यादा की लंबी यात्रा कर दुर्गम मार्गों से होते हुए ज्ञानभूमि भारत के प्रसिद्ध नालंदा विश्वविद्यालय पहुँचे और वर्षों तक संस्कृत-पाली भाषा का विधिवत् अध्ययन कर दुर्लभ संस्कृत-पाली ग्रंथों के साथ स्वदेश वापस लौटे और उनका चीनी भाषा में अनुवाद किया, जो आज भी चीनी भाषा में संगृहीत है, परंतु वर्तमान में भारत में उनमें से अधिकांश ग्रंथों का संस्कृत-पाली संस्करण दुर्दांत मुसलिम आक्रमणकारी बख्तियार खिलजी के द्वारा नालंदा विश्वविद्यालय को जला देने के कारण अप्राप्त है।

भारत हमेशा से चीनी विद्वानों की ज्ञान-पिपासा को शांत करने की भूमि रही है, समय-समय पर अनेक चीनी विद्वान् भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिए भारत आते रहे हैं, जिनमें ह्वेन सांग के आलावा फाह्यान, इत्सिंग आदि प्रमुख हैं। प्राचीन काल में भारत की राज-काज की भाषा संस्कृत थी, तब चीनी विद्वान् संस्कृत सीखने पर अपना ध्यान लगाते थे, वर्तमान भारत में संस्कृत अप्रासंगिक हो गई है, सत्य कहें तो संस्कृत को अप्रासंगिक कर दिया गया है, इसलिए चीन में अब संस्कृत-पाली की पढ़ाई केवल तीन विश्वविद्यालयों तक सिमटकर रह गई है, लेकिन हिंदी, तमिल, बंगाली, पंजाबी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं की पढ़ाई चीनी विश्वविद्यालयों में हो रही है, जिसमें हिंदी भाषा में स्नातक से लेकर शोध तक अध्ययन बड़े स्तर पर हो रहा है, बाकी भारतीय भाषाओं में १-२ वर्ष का डिप्लोमा पाठ्यक्रम चल रहा है। अभी चीन के लगभग ग्यारह विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा का पाठ्यक्रम चल रहा है तथा दस विश्वविद्यालयों में भारत अध्ययन केंद्र हैं, जहाँ हिंदी भाषा पाठ्यक्रम तो नहीं है, लेकिन चीनी भाषा के माध्यम से वहाँ भारत की सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक संरचना पर शोध होता है। चार विश्वविद्यालयों में हिंदी में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम चल रहे हैं। एक दशक पूर्व चीन में हिंदी की स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी, तब केवल २-३ विश्वविद्यालयों में ही हिंदी पाठ्यक्रम था, ध्यातव्य यह है कि वर्तमान में चीन में हिंदी के पठन-पाठन में वृद्धि का कारण क्या है? वैसे तो चीन सदियों से भारत को जानने को उत्सुक रहा है और अपनी उत्सुकता को शांत करने के लिए भारतीय भाषाओं का अध्ययन करता आ रहा है। प्राचीन भारत को समझने के लिए संस्कृत का ज्ञान जितना आवश्यक था (है), वैसे ही वर्तमान भारत को जानने के लिए हिंदी का ज्ञान उतना ही अपेक्षित है, अंग्रेजी के माध्यम से मूल भारत को नहीं जाना जा सकता। यह ध्रुव सत्य चीनी लोग जानते हैं, अत: चीनी लोग हिंदी का समुचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए बड़े स्तर पर प्रयत्नशील हैं। आज हिंदी लोक बोल-चाल, साहित्य की भाषा से निकलकर ज्ञान और बाजार की भाषा बन रही है, जो हिंदी को चीन में लोकप्रिय बना रही है। वर्तमान में चीन भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार है। तथा भारत चीन का दसवाँ सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार है। वर्तमान मोदी सरकार के 'मेड इन इंडिया' के तहत बहुत सारी चीनी कंपनियों ने भारत में निवेश किया है, चीनी कंपनियाँ उन चीनी युवकों को ज्यादा तरजीह देती हैं, जो हिंदी से स्नातक हैं, क्योंकि वे चीनी-अंग्रेजी के अलावा हिंदी भाषा का भी ज्ञान रखते हैं। आज भारत के मोबाइल बाजार में चीनी मोबाइल ब्रांडों की हिस्सेदारी पचास प्रतिशत से ज्यादा हो गई है। चीनी निवेशक यह बात बखूबी जानते हैं कि भारतीय बाजार में अंदर तक पैठ बनानी है तो वह हिंदी के माध्यम से ही संभव है। विदुरजी ने कहा है—'अर्थकरी च विद्या' अर्थात् विद्या वह हो, जिससे नौकरी भी मिले। आज हिंदी के माध्यम से चीनी युवा औसत से ज्यादा सैलरी की नौकरी पा रहे हैं, जिससे हिंदी के प्रति चीनी युवाओं का रुझान बढ़ता जा रहा है।

कोई भी भाषा राज प्रश्रय के अभाव में पुष्पित पल्लवित नहीं हो सकती। यह बहुत ही सुखद है कि वर्तमान भारतीय सरकार हिंदी के विकास के लिए हरसंभव कदम उठा रही है। २०१५ में प्रधानमंत्री मोदी के चीन दौरे पर दोनों देशों के नेताओं के बीच तीन फिल्मों के

सुपरिचित रचनाकार। काशी हिंदू विश्वविद्यालय से चीनी भाषा एवं साहित्य में स्नातकोत्तर। चीन के शनयांग नार्मल विश्वविद्यालय से चीनी भाषा एवं साहित्य में स्नातकोत्तर। गांधीनगर तथा मगध विश्वविद्यालय में चीनी भाषा एवं साहित्य के व्याख्याता रहे। चीन में योग और आयुर्वेद, भारत-चीन व्यापारिक संबंध, चीनी मीडिया में भारत-चीन संबंध, हिंदी-चीनी साहित्य जैसे विषयों पर आलेख प्रकाशित। संप्रति चीन के क्वान्तोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी) के रूप में कार्यरत।

सह निर्माण तथा चीन में एक योग कॉलेज खोलने पर सहमति बनी, २०१५ में चीन के पहले योग महाविद्यालय का उद्घाटन भी हुआ, जिसमें भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में जनरल वी.के. सिंह उपस्थित थे। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा चीन में चार भारतीय पीठों की स्थापना की गई है, जो क्रमश: पेइचिंग विश्वविद्यालय, क्वांग्तोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, शनचन विश्वविद्यालय और शंघाई अंतरराष्ट्रीय अध्ययन विश्वविद्यालय में है। हाल ही में शंघाई सहयोग संगठन के शिखर सम्मलेन में भाग लेने चीन आईं भारतीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज पेइचिंग विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ रहे विद्यार्थियों से मिलीं। चीनी बच्चों के यह कहने पर कि वे भारत से बहुत प्यार करते हैं और भारत जाना उनका सपना है लेकिन पता नहीं उनका सपना कब पूरा होगा, विदेश मंत्री ने उन २५ विद्यार्थियों का सपना पूरा करने के लिए भारत आने का न्योता दिया और इसे शीघ्र पूरा करने के लिए चीन के भारतीय राजदूत को आवश्यक निर्देश भी दिया। सुषमा स्वराज ने यह भी कहा, 'यहाँ तक कि दो विदेश मंत्री भी हमारे देशों की दोस्ती उतनी प्रगाढ़ नहीं बना सकते, जितनी चीन के छात्र, जो हिंदी से प्यार करते हैं।' विदेश मंत्री का यह कथन बहुत हद तक सही भी है, आज जब देशी-विदेशी मीडिया भारत में बलात्कार के समाचार से भरी पड़ी है, विदेशी लोग भारत आने में डर रहे हैं, इन परिस्थितियों में चीन में हिंदी पढ़नेवाले विद्यार्थी अखबारों में बढ़ा-चढ़ाकर लिखी गई नकारात्मक खबरों की परवाह किए बिना भारत में हिंदी पढ़ने आ रहे हैं। स्नातक तृतीय वर्ष में चीन के हिंदी विद्यार्थी एक साल के लिए भारत अध्ययन हेतु जाते हैं, वापस चीन आकर वे भारत की एक सकारात्मक छवि पेश करते हैं, बहुत सारे चीनी युवा हिंदी में स्नातक होने के बाद भारत को अपने कर्मक्षेत्र के रूप में भी चुन रहे हैं। कह सकते है कि चीन में हिंदी पढ़नेवाले विद्यार्थी दोनों देशों के मध्य दूत का काम कर रहे हैं और हिंदी के माध्यम से दो देशों के मध्य सांस्कृतिक-आर्थिक संबंधों को और प्रगाढ़ बना रहे हैं।

भारत-चीन संबंध को प्रगाढ़ करने में हिंदी सिनेमा भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। हिंदी फिल्में सीमाई और भाषाई भेद के अंतर को दूर करते हुए चीन में लोकप्रिय हो रही हैं। भारत-चीन के मध्य सीमा विवाद दोनों देशों के बीच के सांस्कृतिक आदान-प्रदान को प्रभावित नहीं कर पाया है। भारत-पाकिस्तान सीमा विवाद के कारण पाकिस्तान में भारतीय फिल्में प्रदर्शित नहीं हो रहीं हैं, इसके उलट पिछले साल भारत-चीन-भूटान के मध्य ७० दिन से ज्यादा चलनेवाले डोकलाम विवाद के बाद भी चीन में भारतीय फिल्मों पर बैन नहीं लगा, बल्कि 'दंगल' फिल्म ने भारत से ज्यादा चीन में कमाई की, इस साल २०१८ में पाँच हिंदी फिल्में चीन में प्रदर्शित हुई हैं, 'सीक्रेट सुपरस्टार', 'हिंदी मीडियम', 'बजरंगी भाईजान', 'बाहुबली-२' और 'टॉयलेट : एक प्रेम कथा'। इन सारी फिल्मों ने चीन में जबरदस्त कमाई तो की ही, साथ ही चीनी जन के हृदय को छूने में सफल रहीं। 'टॉयलेट' फिल्म चीनी बॉक्स ऑफिस पर विदेशी फिल्मों की श्रेणी में लगातार एक सप्ताह तक पहले स्थान पर बनी रही। चीन में हिंदी फिल्में प्रसिद्ध होने के कारण क्या हैं? जबकि चीनी फिल्में तकनीक और एक्शन के मामले में हिंदी फिल्मों से बेहतर होती हैं। इसके लिए हमें चीनी इतिहास एवं समाज को समझना पड़ेगा। आज चीन में महिलाओं को समानता का अधिकार प्राप्त है, परंतु प्राचीन चीन में ऐसा नहीं था, महिलाओं का सामाजिक स्थान बहुत ही निम्न एवं दयनीय था, प्रसिद्ध दार्शनिक कन्फ्यूशियस के अनुसार महिलाएँ शादी से पहले पिता, शादी के बाद पति और बुढ़ापे में पुत्र के संरक्षण में रहें। चीन में महिलाओं के छोटे पैर शुभ माने जाते थे, इसलिए महिलाओं को छोटी उम्र में ही लोहे के जूते पहना दिए जाते थे, ताकि उनके पैर बड़े न हों, महिलाओं को शिक्षा का भी पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं था। भारतीय फिल्में भावना प्रधान होती हैं। वर्तमान समय में सामाजिक मुद्दों एवं सत्य घटनाओं पर फिल्में ज्यादा संख्या में बन रही हैं—दंगल, टॉयलेट : एक प्रेम कथा, हिंदी मीडियम आदि फिल्में जो हाल ही में चीन में प्रदर्शित हुई हैं, इनमें महिलाओं के संघर्ष की कहानी है, जन सामान्य की कहानी है, गाँव की कहानी है, जो चीनी दर्शकों के मर्मस्थल को छूने में सफल हो रही हैं। आज चीन का जो विकास पूरी दुनिया को अचंभित कर रहा है, वह पिछले ३० सालों का है। चीन की वर्तमान पीढ़ी ने अपने जिन संघर्षों को जिया है, हिंदी फिल्में में दिखाई

भारतीय फिल्में भावना प्रधान होती हैं। वर्तमान समय में सामाजिक मुद्दों एवं सत्य घटनाओं पर फिल्में ज्यादा संख्या में बन रही हैं–दंगल, टॉयलेट : एक प्रेम कथा, हिंदी मीडियम आदि फिल्में जो हाल ही में चीन में प्रदर्शित हुई हैं, इनमें महिलाओं के संघर्ष की कहानी है, जन सामान्य की कहानी है, गाँव की कहानी है, जो चीनी दर्शकों के मर्मस्थल को छूने में सफल हो रही हैं। आज चीन का जो विकास पूरी दुनिया को अचंभित कर रहा है, वह पिछले ३० सालों का है। चीन की वर्तमान पीढ़ी ने अपने जिन संघर्षों को जिया है, हिंदी फिल्में में दिखाई गई कहानी उन्हें अपनी कहानी लगती है। भारत-चीन विश्व की महान् सभ्याताएँ हैं, दोनों देशों की संस्कृति में बहुत सारी समानताएँ हैं, दोनों ने समान दु:खों को भोगा है, वर्तमान समय में भी दोनों देश विकास की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं और जनसंख्या, गाँवों में व्याप्त गरीबी, आतंकवाद जैसे समान समस्याओं से जूझ रहे हैं।

गई कहानी उन्हें अपनी कहानी लगती है। भारत-चीन विश्व की महान् सभ्यताएँ हैं, दोनों देशों की संस्कृति में बहुत सारी समानताएँ हैं, दोनों ने समान दु:खों को भोगा है, वर्तमान समय में भी दोनों देश विकास की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं और जनसंख्या, गाँवों में व्याप्त गरीबी, आतंकवाद जैसे समान समस्याओं से जूझ रहे हैं। ये सारी समस्याएँ हिंदी फिल्मों के विषय बन चुकी हैं, हिंदी के इस फिल्मी पक्वान्न का चीन में दर्शक चीनी चटनी के साथ चटकारे के साथ आनंद ले रहे हैं।

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी चीन में व्यापक कार्य हुआ है, केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा किसी विदेशी विद्वान् को उसकी हिंदी सेवाओं के लिए प्रदान किया जानेवाला २०१८ का डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन पुरस्कार चीन के पेइचिंग विश्वविद्यालय के हिंदी विद्वान् प्रो. चियांग चिंग खुई को देने की घोषणा की है। प्रोफेसर चियांग ने 'सूरसागर' का चीनी अनुवाद किया है, साथ ही 'चीनी-हिंदी शब्दकोष' सहित हिंदी भाषा एवं साहित्य पर दर्जनों पुस्तकों का लेखन किया है। चीन में आदिकवि वाल्मीकि रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, अभिज्ञानशाकुंतल से लेकर फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' तक का चीनी अनुवाद हो चुका है।

२०१६ में भारत एवं चीन की सरकार ने आपसी सांस्कृतिक समझ को एक नई दिशा देने के लिए ५० साहित्यिक कृतियों के अनुवाद कार्यक्रम के समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसमें भारत सरकार चीन की २५ प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों का चीनी भाषा से हिंदी में अनुवाद करेगी, और चीनी सरकार भारत की २५ प्रतिनिधि साहित्यिक कृतियों का हिंदी से चीनी भाषा में अनुवाद करेगी। हिंदी से चीनी में अनुवादित होनेवाली साहित्यिक रचनाओं में सूरदास-ग्रंथावली, मुंशी प्रेमचंद रचना संचयन (गोदान उपन्यास और लघु कथाएँ), अज्ञेय रचना संचयन (उनकी कविताएँ और लघु कहानियाँ), भीष्म साहनी रचना संचयन (तमस उपन्यास और लघु कथाएँ), महादेवी वर्मा रचना संचयन (कविताएँ) आदि हिंदी साहित्यिक कृतियाँ शामिल हैं। भारत-चीन सरकार के इस कदम से निश्चित रूप से दोनों देशों के मध्य सांस्कृतिक संबंध और प्रगाढ़ होंगे और इसमें हिंदी अपनी महती भूमिका निभाएगी। हम कह सकते हैं कि आज से दो हजार साल पहले भारत-चीन संबंध को प्रगाढ़ करने में योगज्ञान एवं बौद्ध धर्म ने जो महान् योगदान दिया था, इक्कीसवीं सदी में वही काम हिंदी कर रही है। हिंदी न केवल भारतीय संस्कृति को समझने में चीनी लोगों की सहायता कर रही है बल्कि चीनी युवाओं को अच्छी नौकरी भी उपलब्ध करा रही है, साथ ही भारत के हिंदी विद्वानों को भी चीन में नौकरी उपलब्ध करा रही है। हिंदी भारत-चीन के राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत करने में अपनी महती भूमिका निभा रही है। निष्कर्षत: चीन में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है, आशा है कि भारत भी अंग्रेजी के कोढ़ से मुक्त होगा और हिंदी के महत्त्व को समझते हुए हिंदी के विकास पर ज्यादा ध्यान देगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिंदी रूपी सेतु से होकर भारत-चीन मैत्री संबंध अगली कई शताब्दियों तक निर्बाध रूप से जारी रहेंगे।

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)
क्वान्तोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, क्वान्तोंग, चीन
e-mail : kailashnarayantiwaridu@gmail.com

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

योग व भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में हिंदी का योगदान

• मृदुल कीर्ति

हिंदी केवल भाषा नहीं, आध्यात्मिक भाष्य है। हिंदी की वर्णमाला का प्रत्येक वर्ण अथवा अक्षर एक संपूर्ण दर्शन है, जो भाषा के किसी-न-किसी सूत्र का संवहन करता है।

नाद ब्रह्म है, ब्रह्म अक्षर (अक्षय) है—वाणी नाद है, अत: वाणी में प्रयुक्त अक्षर भी अक्षर (जिसका क्षय नहीं होता) है और प्रत्येक अक्षर की अपनी ऊर्जा तथा अपनी ही शक्ति है। प्रत्येक अक्षर का अपना पृथक् अर्थ-गांभीर्य है। 'अक्षराणाम् अकारोस्मि; भगवद्गीता १०/३३—श्रीकृष्ण का गीता में यह उद्घोष 'अकार' को गरिमा और संप्रभुता देता है और 'अकार' की सत्ता संस्कृत और हिंदी दोनों में समान है। संस्कृत देवभाषा है और हिंदी संस्कृत से ही नि:सृत है।

हम श्रुति परंपरा के वाहक हैं। वेद सुनकर ही हम तक आए हैं अर्थात् भाषा ही वेदों और ज्ञान की संवाहक है। भाषा भाख का संवर्धित स्वरूप है, 'भाख' का अर्थ है 'बोलना'। किसी काल की संस्कृति भाषा के गर्भ में ही छुपी होती है। संस्कृति एक जीवन पद्धति है, जिसे भाषा के माध्यम से जाना जाता है।

ऋग्वेद की ऋचाएँ भी परम व्योम में रहती हैं, जो अक्षर शब्दों की काया धारण कर नीचे उतरती हैं। यही हमारी भाषा का गहन दर्शन है।

इसी भाषा में भारतीय संस्कृति का वाङ्मय, वेद, उपनिषद्, ऋषि पतंजलि का योग दर्शन और ऋषि धन्वंतरि का आयुर्वेद शास्त्र निरूपित हैं। अनंतकाल से इन ग्रंथों की सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की शाश्वती से मनुष्यमात्र लाभान्वित होता रहा है। ऋषियों के उदारमना चित्त ने समस्त विश्व का कल्याण चाहा है, 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' सभी स्वस्थ रहें 'सर्वे सन्तु निरामया' चरक संहिता इसी भाव का विस्तार है। समस्त विश्व को परिवार माना है।

अयं निज: परो वेति गणना लघुचेतसाम,
उदारमनसानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

—महोपनिषद् ६/७१/७३

यह ऋषियों के चेतनाकाश की विराट् अनुभूति है। ऋषियों की अनुभूति आकाश की तरह होती है, यथा असंग, अभंग और अनंत। यही हमारी संस्कृति का प्रांजल और विराट् परिचय है। अध्यात्म और योग का ज्ञान पाने को पूरा विश्व भारत की ओर ही ताकता आया है, इस तथ्य का इतिहास साक्षी है। बीते दशकों से भौतिकता और जड़ता अपने चरम पर हैं। भौतिकता, सांसारिकता और इंद्रियों के सुखों का आकर्षण आज

ख्यातिलब्ध लेखिका। वेद, उपनिषद्, हरिगीतिका आदि का पद्यात्मक रूपांतरण। वेदों पर शोध कार्य; अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भागीदारी।

परम चरम स्तर पर है। धन और इंद्रिय सुख के लिए नैतिकता की सभी सीमाएँ पार हो चकी हैं। पदार्थों से सुविधा मिल सकती है किंतु आंतरिक शांति, आनंद नहीं, और न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य: (कठोपनिषद्)। धन से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता। धन-धन करते निधन हो जाता है, किंतु चारित्रिक दृढ़ता अंदर से सम्राट् बनाती है। स्मरणीय सूक्त है, 'पतन में वासनाएँ साथ देती हैं और उत्थान में आत्मा साथ देती है।'

विकृत जीवन शैली, खान-पान की बुरी आदतों के परिणामस्वरूप अवसाद, निराशा, दिशाहीनता, असाध्य रोग, चरित्रहीनता जैसे मनोविकारों ने सभी देशों को ग्रसित कर लिया है। जैसे विश्व में 'नैतिक प्रलय' आ गया हो। मन की वृत्तियों के भटकाव से उद्विग्न मानवता को जब 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:' और असाध्य रोगों से ग्रस्त को 'हितभुक, मितभुक, ऋतुभुक' का संदेश मिला, योग का शंखनाद हुआ, आयुर्वेद की प्राकृतिक उपचार शैली से विस्मयकारी परिचय हुआ तो पुन: योग और भारतीय संस्कृति की ओर विश्व के लोग आमुख हुए। मन की शांति और स्वस्थ जीवन शैली के लिए पुन: भारत की ओर आकर्षित होकर योग और अध्यात्म को आत्मसात् करने को आतुर हुए। मूल्यांकन इतना गहरा था कि भारत की भाषा हिंदी में रुचि लेकर योग के मूल शब्दों को ही आत्मसात् किया। भारत का योग और अध्यात्म आज विश्व का सर्वाधिक चर्चित विषय है, अत: इसके मूल और मौलिक शब्दों को भी यथावत् स्वीकार किया गया, इस रूप में हिंदी आज वैश्विक स्वरूप लेती जा रही है।

मैं अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में विगत बारह वर्षों से हूँ। योग और ध्यान के शिविर, अध्यात्म ध्यान केंद्रों में प्रति रविवार को जाती हूँ। वहाँ नमस्ते, गायत्री मंत्र, त्वमेव माता च पिता त्वमेव, प्रार्थनाएँ, अहं ब्रह्मास्मि, अष्टांग योग के आठों नाम बड़ी सहजता से लेते हैं। कुछ मंत्रों का अपनी उच्चारण शैली में उच्चारण भी करते हैं। हमारी हिंदी की वार्त्ता को कुछ-

कुछ समझते हैं। कितने ही आर्ष गुरुकुल आश्रम विश्व के अनेक देशों में स्थापित हैं, वे सब मंत्र, सूक्त और श्लोकों को मूल संस्कृत में ही उच्चारित करते हैं। वहाँ उपस्थित जन अनुसरण करते हुए उनका उच्चारण करते हैं। शब्दों की शक्ति की व्याख्या भी करते हैं।

योग में संस्कृत और हिंदी का वैश्विक समावेशी स्वरूप

योग, ध्यान और आयुर्वेद विषय पर हिंदी का विशेष प्रभाव न्यूयार्क, फ्लोरिडा, कैलिफोर्निया और अन्य अनेकों राज्यों से योग की अनेक मासिक और पाक्षिक पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं, जिनमें विभिन्न आसनों और मुद्राओं के नाम वैसे ही लिखे होते हैं, जो उनका मूल नाम हैं, उदाहरण के लिए सिद्धासन, वज्रासन इसको रोमन लिपि में siddhasan-vajrasan—om-namastay—gayatri mantr—yog darshan ke sookt—(how to move from) urdhva hastasana to adho mukha vraksasana. trikonasana, setubandh, padangushthasana, virabhadrasana, shalbhasana आदि को मूल संस्कृत और हिंदी के उच्चरित आधार पर रोमन लिपि में लिखते हैं। ध्यान में गायत्री मंत्र और नमस्ते तथा मूल यौगिक और ध्यान विधि का अनुसरण करते हैं। पतंजलि योग सूत्र के सूत्रों को भी रोमन में यथास्वरूप लिखकर इंग्लिश में विस्तार से लिखते हैं। आयुर्वेद में कफ, वात और पित्त दोषों को आयुर्वेद की भाषा में ही बोलते हैं। आयुर्वेद के बड़े ही विशाल और व्यवस्थित केंद्र हैं, जहाँ ऑर्गेनिक सब्जी उगाकर, स्वयं की गायों को पालकर, सारी व्यवस्था भारतीय पद्धति से करते हुए भारतीय शब्दावली का ही प्रयोग करते हैं—जैसे नाड़ी शोधन, नौली क्रिया, सात्त्विक आहार जैसे शब्दों से ही वार्त्ता करते हैं। यह भारतीय संस्कृति और भाषा का योग तथा संस्कृति के माध्यम से, वैश्विक पसारे का संकेत और शुभ लक्षण है। सुखद आश्चर्य की बात है कि आज पाश्चात्य देशों में भारतीय संस्कृति और भाषा के प्रति आकर्षण तीव्र गति से बढ़ रहा है। मैं यह परिवर्तन अनुभव करती हूँ। योग ने तो पूरे पाश्चात्य देशों को आकर्षित कर विमोहित सा कर दिया है।

पतंजलि योग सूत्र के सूत्रों को भी रोमन में यथास्वरूप लिखकर इंग्लिश में विस्तार से लिखते हैं। आयुर्वेद में कफ, वात और पित्त दोषों को आयुर्वेद की भाषा में ही बोलते हैं। आयुर्वेद के बड़े ही विशाल और व्यवस्थित केंद्र हैं, जहाँ ऑर्गेनिक सब्जी उगाकर, स्वयं की गायों को पालकर, सारी व्यवस्था भारतीय पद्धति से करते हुए भारतीय शब्दावली का ही प्रयोग करते हैं—जैसे नाड़ी शोधन, नौली क्रिया, सात्त्विक आहार जैसे शब्दों से ही वार्त्ता करते हैं। यह भारतीय संस्कृति और भाषा का योग तथा संस्कृति के माध्यम से, वैश्विक पसारे का संकेत और शुभ लक्षण है। सुखद आश्चर्य की बात है कि आज पाश्चात्य देशों में भारतीय संस्कृति और भाषा के प्रति आकर्षण तीव्र गति से बढ़ रहा है। मैं यह परिवर्तन अनुभव करती हूँ। योग ने तो पूरे पाश्चात्य देशों को आकर्षित कर विमोहित सा कर दिया है।

न्यूयॉर्क से प्रकाशित योग की मासिक पत्रिका मेरे हाथ में है। लगता ही नहीं, यह अमेरिकन पत्रिका है। सूक्ष्म शरीर के चार अंग—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को पत्रिका में कैसे व्याख्यायित किया है, वैसा ही लिखती हूँ—dharma/duty, artha/prosperity, kama/pleasure, moksha/freedom patanjali yoga darshan sookt/ sadhan paad, gayatri mantr—om bhoor bhuvah—prachodayat. etc.

हिंदी एक भाषा का नाम नहीं अपितु आज हिंदी भारत के दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान, कला, संस्कृति और सभ्यता का समुच्चय उद्‌बोधन है। आज तकनीकी प्रगति अपने चरम पर है, जिसने भारत क्या, विश्व की सभी संस्कृतियों का परिचय सुगम कर एक-दूसरे के प्रति आकर्षण और रुचि का विकास किया है। योग और अध्यात्म के कारण भारत का स्थान प्रथम है, उसके कारणों के प्रबल साक्ष्य आज विश्व के सामने हैं। मन की शांति और आरोग्य जीवन के आधार है, जिन्हें योग, सात्त्विक भोजन और स्वस्थ जीवन-शैली से ही पाया जा सकता है, जिसके सूत्र योग, ध्यान और आयुर्वेद में हैं, जिसके आगे विश्व नतमस्तक है।

वस्तुत: भौतिकता और धन के प्रति अंधी दौड़ से विक्षुब्ध चित्त आंतरिक शांति के लिए व्याकुल है। शारीरिक व्याधियों से अधिक आज मानसिक और आंतरिक उत्पीड़न से त्रस्त होकर अवसाद के शिकार होकर अर्धविक्षिप्त अवस्था में हैं, वे ज्ञान के इस सूत्र का महत्त्व जान गए हैं—

नास्ति साख्यं समं ज्ञानं, नास्ति योगं समं बलं।

विदेशों में अपनी संस्कृति को बनाए रखने का सबसे व्यावहारिक आधार भाषा है। हिंदी देश की प्रगति और संस्कृति की वाहक है। विविधता में एकत्व की डोर भाषा और संस्कृति है। भाषा और संस्कृति के सेतु से ही हम अपने देश से जाने-अनजाने अवचेतन रूप से प्रवास में रहते हुए भी अंतस से जुड़े रहते हैं और भारत की संस्कृति और यौगिक ज्ञान से विश्व को भारत से जोड़े भी रखते हैं। योग करते हुए हिंदी के शुद्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग इस लिंक में दृष्टव्य है, जो योग और भारतीय संस्कृति के वैश्विक प्रचार-प्रसार में हिंदी के योगदान की पुष्टि है। विदेशों में जगह-जगह योग के केंद्र, योग की चटाई, योग के शिविर, ध्यान और प्राणायाम की पत्र-पत्रिकाओं में प्रधानता, योग और ध्यान से शांति पाए आश्वस्त लोगों के टी.वी. पर साक्षात्कार आदि-आदि देखने को मिलते हैं। योग और ध्यान अधिकांश लोगों की जीवन शैली बन चुका है, जिसे व्यवहार में लाते हुए हिंदी और संस्कृत के तत्सम शब्दों को बोलने से एक अद्‌भुत आनंद और पूर्णता का अनुभव करते हैं।

4854 Kentwood Drive
Marrietta GA 30068
e-mail : mridulkirti@gmail.com

जापान में हिंदी, हिंदी में जापान

• रीतारानी पालीवाल

जापान से भारत के ऐतिहासिक-सांस्कृतिक संबंध रहे हैं। चीन और कोरिया के रास्ते बौद्ध धर्म ही नहीं और भी बहुत कुछ भारत से जापान पहुँचा है, जो निकट संपर्क के दौरान पकड़ में आता है। भाषाई संबंध इनमें से एक है। जापानी वर्णमाला की स्वर-व्यंजन ध्वनियाँ हिंदी ध्वनियों से काफी कुछ मिलती-जुलती हैं। हालाँकि जापानी बिल्कुल भिन्न और कठिन भाषा है। बौद्ध मंदिरों के अनुष्ठानों में मंत्रोच्चार का नाद और लय बिल्कुल संस्कृत मंत्रोच्चार जैसा प्रतीत होता है, जबकि मंत्रपाठ जापानी भाषा में ही हो रहा होता है। क्योतो, नारा अथवा तोक्यो के पुराने बौद्ध मंदिरों के परिसर में मौजूद शिलालेखों में कभी-कभार कोई अक्षर देवनागरी का भी दिखाई दे जाता है। मध्यकालीन जापानी साहित्य में कभी कोई कथा भारतीय कथा से मिलती-जुलती दिखाई दे जाती है।

आधुनिक जापान खास तौर पर विश्व-युद्धोत्तर जापान ने नए सिरे से अपना पुनर्निर्माण किया और विभिन्न देशों से अपने को जोड़ा। इसी प्रक्रिया में भारत से राजनयिक और सांस्कृतिक संबंध स्थापित किए। जापान ऐसा देश है, जो जातीय अस्मिता को भाषाई अस्मिता से जोड़ कर देखता है। अत: दुनिया के विभिन्न देशों से उनकी अपनी भाषाओं के माध्यम से जुड़ना चाहता है, अंग्रेजी के माध्यम से नहीं। राजनयिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक, सामाजिक संपर्क के लिए अपने नागरिकों को विभिन्न देशों की भाषा का शिक्षण देकर तैयार करता है। यह शिक्षण जापान में भी उपलब्ध कराता है और छात्रों को विदेश जाकर भाषा साहित्य, संस्कृति, समाज के अध्ययन की सुविधा प्रदान करके भी। इसी प्रक्रिया में जापान में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था हुई। भारत के बहु भाषिक महत्त्व को समझते हुए जापान में हिंदी के अलावा संस्कृत, तमिल, बांग्ला आदि भारतीय भाषाओं के शिक्षण की भी व्यवस्था है। तोक्यो और ओसाका राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त अन्य अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है।

तोक्यो गाइकोकु दाइगाकु (तोक्यो विदेशी अध्ययन विश्व विद्यालय), दाइको गुनका, एशिया यूनिवर्सिटी तथा ओसाका विश्व विद्यालय में हिंदी के विभाग हैं। इनके आलावा कई प्राइवेट संस्थाओं में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है। निजी स्तर पर भी लोग हिंदी सीखते हैं। तोक्यो गाइकोकु दाइगाकु में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था का श्रेय स्वर्गीय प्रोफेसर क्यूया दोई को है। उनके द्वारा बनाया गया पाठ्यक्रम कई मायने में मॉडल पाठ्यक्रम रहा है। अन्य विश्वविद्यालयों ने भी अपनी सुविधा से उसे अपनाया है।

सुपरिचित लेखिका। 'रंगमंच : नया परिदृश्य', 'अनुवाद प्रक्रिया', 'अनुवाद की सामाजिक भूमिका', 'अनुवाद और भाषिक संस्कृति', 'जापानी रंग कला : नोह, काबुकी और बुनराकु', 'जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश की रंग दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन' एवं प्रेमचंद के उपन्यास 'कर्मभूमि' का अंग्रेजी में अनुवाद। प्रोफेसर एवं निदेशक, मानविकी विद्यापीठ इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय।

क्यूया दोई का भारत-जापान संबंधों में ऐतिहासिक महत्त्व है। वे सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिंद फौज में सिपाही रह चुके थे। विश्व-युद्ध में जापान की पराजय और उसके परिणामस्वरूप मित्र राष्ट्रों द्वारा जापान पर आधिपत्य से मुक्त होने के बाद जापान ने अपना पुनर्निर्माण किया। हालाँकि आधिपत्य में रहने की टीस और आक्रोश जापानी चित्त में कसक पैदा करते थे। इस वेदना को जापान ने सर्जनात्मक ऊर्जा में ढाला। अपने नागरिकों को राष्ट्र-निर्माण में सम्मानपूर्वक भागीदारी का अवसर प्रदान किया। क्यूया दोई इसी प्रक्रिया में हिंदी पढ़ने भारत आए। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिंदी की पढ़ाई पूरी करके स्वदेश लौटने के बाद उन्होंने जापान में हिंदी की शिक्षा शुरू कराई। हिंदी अध्ययन-अध्यापन करते-कराते वे अंतरतम तक भारत के हो गए। हिंदी लेखकों, अध्यापकों, साहित्य-प्रेमियों से निरंतर संपर्क में रहे। हिंदी भाषियों को जापानी भाषा सिखाने के उद्देश्य से जापानी की एक परिचयात्मक पुस्तक हिंदी में तैयार की। अपने छात्रों को बौद्धिक और भावनात्मक रूप से हिंदी से जुड़ने की सीख दी। प्रोफेसर तोषियो तनाका सही मायने में उनकी परंपरा के वाहक शिष्य हैं।

हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की व्यवस्था दुनिया के अनेक देशों में है। लेकिन जापान इस मामले में अपने ढंग का विशेष है। जापानियों ने भाषा शिक्षण को महज व्याकरण और भाषाशास्त्र केंद्रित न रखते हुए उसे समाज, संस्कृति, लोक-जीवन, इतिहास, पुराकथा से संपृक्त किया है, ताकि छात्र भाषा के साथ-साथ समाज के विभिन्न पक्षों से जुड़ सकें। भाषा शिक्षण में जापान 'देशी अध्यापक', यानी नेटिव टीचर को विशेष महत्त्व देता है, जिससे छात्र भाषा के मौखिक परिवेश से जुड़ सकें, उसकी बारीकियों से परिचित हो सकें। उच्चारण, लहजा, उतार-चढ़ाव, बोलचाल का मुहावरा पकड़ सकें। सांस्कृतिक विविधताओं को जान

सकें। तोक्यो गाइकोकु दाइगाकु (तोक्यो विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय) तथा ओसाका विश्वविद्यालय में विभिन्न देशों के विजिटिंग प्रोफेसरों को नियुक्त किया जाता है। हिंदी पढ़ाने के लिए लगभग तीन दशकों से भारत से लोग विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में वहाँ जाते रहे हैं।

हिंदी के जापानी अध्यापकों से भाषा की बुनियादी जानकारी और प्रयोग विधि, संरचना और स्वरूप का परिचय पाने के बाद छात्र नेटिव टीचर के संपर्क में आते हैं। भारतीय समाज, साहित्य—रामायण और महाभारत, पंचतंत्र की कथाओं तथा आधुनिक हिंदी साहित्य—कविता, कहानी, नाटक आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं। स्नातकोत्तर छात्र अपने शोध संबंधी परामर्श लेते हैं। दिलचस्प बात यह है कि भाषा शिक्षण की इस प्रक्रिया में अंग्रेजी को माध्यम भाषा के रूप में इस्तेमाल बिलकुल नहीं किया जाता। हमारे यहाँ जर्मन, फ्रेंच, रूसी, चीनी आदि भाषाओं के शिक्षण की प्रक्रिया में अंग्रेजी को माध्यम भाषा की तरह इस्तेमाल किया जाता है। किंतु जापान पहुँचे भारतीय हिंदी अध्यापक को पहली सलाह यह दी जाती है कि अंग्रेजी में न बोले, हिंदी में ही समझाए, ताकि छात्रों को हिंदी से जुड़ने का अधिकाधिक अवसर मिले। हिंदी दूसरी भाषा के रूप में सिखाई जाती है। इसका शिक्षण स्नातक स्तर पर शुरू होता है। शिक्षा जापानी भाषा के माध्यम से दी जाती है। कक्षा में अध्यापक हिंदी की विशेषताओं को जापानी में समझाते हैं, ताकि शुरू-शुरू में छात्र उसे सहजता से समझ पाएँ और हिंदी पढ़ना उन्हें रोचक लगे। ये छात्र आपस में अथवा अपने जापानी अध्यापकों से जापानी में ही बातचीत करते हैं। उन्हें अपनी भाषा पर गर्व है। वे कभी औपनिवेशिक दासता में नहीं रहे। अत: बौद्धिक गुलामी के शिकार नहीं रहे।

शिक्षण की प्रक्रिया में छात्रों को अनुवाद और लिप्यांकन दोनों का अभ्यास कराया जाता है, ताकि वे लिखित और मौखिक दोनों रूपों में हिंदी भाषा के संपर्क में रहें। हिंदी पाठ को ध्यान से पढ़-समझकर जापानी में उसे प्रस्तुत कर सकें। हिंदी वाक्यों और अनुच्छेदों का जापानी में अनुवाद सीखने के बाद वे हिंदी अखबार के अंशों का अनुवाद करते हैं। आगे चलकर यदि वे भारत और हिंदी से जुड़े रहते हैं तो स्वप्रेरणा से अनुवाद कार्य करते हैं। प्रेमचंद, जैनेंद्र, मोहन राकेश के अनुवाद में उनकी विशेष रुचि रही है।

प्रोफेसर कृष्णदत्त पालीवाल के तोक्यो गाइकाकु दाइगाकु में विजिटिंग प्रोफेसर रहने के दौरान मुझे जापान के हिंदी अध्यापकों से मिलने का अवसर मिला। प्रोफेसर तोषियो तनाका उस समय हिंदी के विभागाध्यक्ष थे। वे हमें न केवल हिंदी भाषा और साहित्य बल्कि भारतीय समाज एवं संस्कृति में अंतरतम तक रँगे दिखाई दिए। उनसे मित्रता ने हमें जापान और जापानियत के बारे में बहुत कुछ जानने का अवसर प्रदान किया। जल्दी ही हमें अन्य हिंदी प्रोफेसरों से संपर्क का अवसर मिला, जिनमें तोक्यो गाइकोकु दाइगाकु के प्रो. फुजिइ, प्रो. योशिफुमी मिजनु, प्रो. तेजी सकाता, ओसाका विश्वविद्यालय के प्रो. तोमियो मिजोकामी, अकीरा ताकाहाशि, दाइको गुनका के प्रो. हिदेइकी इशिदा प्रमुख थे। ये सभी अपने विद्यार्थी जीवन में भारत में रहकर हिंदी पढ़ चुके हैं और अब भी अपने छात्रों को भारत में आकर पढ़ने की प्रेरणा देते हैं।

इन सभी में जो चीज विशेष रूप से आकृष्ट करती, वह थी जापानियत का स्वाभिमान और हिंदी के प्रति निष्ठा का भाव। अध्यापन के अलावा वे अपने-अपने ढंग से किसी-न-किसी रूप में भाषा, साहित्य, नाट्य कर्म, सिनेमा, मीडिया, अनुवाद से सक्रिय रूप में जुड़कर हिंदी की सेवा करते रहे हैं। हिंदी रचनाओं का जापानी में अनुवाद, सिनेमा और टी.वी. सीरियलों को देख-सुनकर उनका लिप्यांकन इस सक्रियता का एक बड़ा हिस्सा है। प्रो. तनाका ने ही मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक' तथा अन्य कहानियों, मुक्तिबोध की लंबी कविता 'अँधेरे में', भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' और संस्मरण 'मेरे भाई बलराज' का जापानी में अनुवाद किया है। इसके अलावा उन्होंने महात्मा गांधी की आत्मकथा और 'हिंद स्वराज' का भी गुजराती से जापानी में अनुवाद किया है। वे अपने छात्रों को भी अनुवाद की प्रेरणा देते रहते हैं। निर्मल वर्मा की भाषण शृंखला के आयोजन के दौरान उन्होंने अपनी शोध छात्रा मीवा सुजुकी को निर्मल वर्मा के 'अपने देश वापसी' का जापानी अनुवाद करने की प्रेरणा दी। साथ ही निर्मल का एक साक्षात्कार हिंदी में लिया, जिसका जापानी में अनुवाद मीवा से कराया।

तनाकाजी द्वारा जापानी पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी साहित्य संबंधी लेखन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नरेंद्र शर्मा, हरिशंकर परसाई, भीष्म साहनी, मोहन राकेश, इलाचंद जोशी, राहुल सांकृत्यायन, राही मासूम रजा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, यशपाल, अज्ञेय, अमृतलाल नगर, भगवतीचरण वर्मा पर उन्होंने 'इंदो गकु बुक्क्यो गकु केंक्यू', 'तोक्यो गाइकोकु दाइगाकु रोंशू', 'गेनदाइ इंदो-पाकिस्तान बुंकाकु केंक्यू' पत्रिकाओं में आलोचनात्मक लेख प्रकाशित किए हैं। अपने छात्र जीवन में भारत में रहते हुए उन्होंने हाइकू पर लेख हिंदी में लिखा, जो तत्कालीन प्रतिष्ठित पत्रिका 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में छपा।

प्रो. तोमियो मिजोकामी ने रामायण टी.वी. सीरियल तथा प्रो. मिजनु ने कई हिंदी फिल्मों का लिप्यांकन किया है। अपने विद्यार्थियों से भी वे दृश्य-सामग्री का लिप्यांकन कराते हैं। मिजोकामीजी ने भारत-जापान संबंधों पर हिंदी में एक वीडियो तैयार किया है, जिसमें कमेंट्री वे स्वयं देते हैं। उनके इस प्रयास का ऐतिहासिक-सांस्कृतिक महत्त्व है।

शिक्षण की प्रक्रिया में छात्रों को अनुवाद और लिप्यांकन दोनों का अभ्यास कराया जाता है, ताकि वे लिखित और मौखिक दोनों रूपों में हिंदी भाषा के संपर्क में रहें। हिंदी पाठ को ध्यान से पढ़-समझकर जापानी में उसे प्रस्तुत कर सकें। हिंदी वाक्यों और अनुच्छेदों का जापानी

में अनुवाद सीखने के बाद वे हिंदी अखबार के अंशों का अनुवाद करते हैं। आगे चलकर यदि वे भारत और हिंदी से जुड़े रहते हैं तो स्वप्रेरणा से अनुवाद कार्य करते हैं। प्रेमचंद, जैनेंद्र, मोहन राकेश के अनुवाद में उनकी विशेष रुचि रही है।

फिल्मों, टी.वी. सीरियल आदि से भाषा सीखना दिलचस्प होता है। अभिनेताओं की हिंदी बातचीत और कार्य-कलाप को ध्यानपूर्वक देखते-सुनते हुए लिपिबद्ध करना भाषा अर्जन का एक कारगर तरीका है। इसमें छात्र हिंदी के भाषाई परिवेश का लाभ सहज ही उठा लेते हैं।

जापान में हिंदी नाट्य-मंचन को बढ़ावा देने में प्रो. मिजोकामी की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। उन्होंने अपने छात्रों का अभिनय ग्रुप तैयार किया, जो देश-विदेश में जाकर प्रस्तुतियाँ करता रहा है। तोक्यो में तथा भारत के कई शहरों में प्रस्तुति के अलावा इसने लंदन में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में भी नाट्य प्रस्तुति की। मूल हिंदी नाटकों के अलावा इसने एक जापानी नाटक का हिंदी रूपांतर भी प्रस्तुत किया है।

हिंदी नाटक का मंचन भी जापान में हिंदी शिक्षण का एक दिलचस्प अंग है। पाठ्यक्रम के दूसरे वर्ष में पहुँचकर छात्र अपने-अपने अध्यापकों की सहायता से हिंदी नाटक की प्रस्तुति करते हैं। यह तय हो जाने के बाद की कौन सा नाटक करना है, वे सब मिलकर उसका जापानी में अनुवाद करके अपने जापानी हिंदी प्रोफेसर से उसकी जाँच करा लेते हैं। यह अनुवाद नाट्य संवेदना को ग्रहण करने और पात्र की भूमिका को आत्मसात् करने में उनकी सहायता करता है। नाट्य प्रस्तुति के समय इसका उपयोग दर्शकों की सुविधा के लिए किया जाता है। मंच के दाईं ओर एक स्क्रीन टाँग लिया जाता है। अभिनेताओं के हिंदी संवादों का जापानी रूपांतर इस स्क्रीन पर उपलब्ध होता है। इससे हिंदी कम जाननेवाले या न जाननेवाले दर्शक भी नाटक का आनंद उठा लेते हैं। नाट्य प्रस्तुति के माध्यम से जापानियों को हिंदी भाषा-साहित्य-संवेदना और संस्कृति से जुड़ने का अवसर मिलता है।

जापान में हिंदी नाट्य-मंचन को बढ़ावा देने में प्रो. मिजोकामी की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। उन्होंने अपने छात्रों का अभिनय ग्रुप तैयार किया, जो देश-विदेश में जाकर प्रस्तुतियाँ करता रहा है। तोक्यो में तथा भारत के कई शहरों में प्रस्तुति के अलावा इसने लंदन में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में भी नाट्य प्रस्तुति की। मूल हिंदी नाटकों के अलावा इसने एक जापानी नाटक का हिंदी रूपांतर भी प्रस्तुत किया है।

एन.एच.के. (जापानी रेडियो-टेलीविजन विभाग) में भी हिंदी की स्थिति उत्साहवर्धक रही है। हिंदी कार्यक्रमों के लिए वहाँ अलग विभाग है। इसमें आकाशवाणी से हिंदी प्रोड्यूसर प्रतिनियुक्ति पर बुलाया जाता है। इसके कार्यक्रमों में हिंदी जाननेवाले जापानी लोगों, हिंदी पढ़नेवाले छात्रों के अलावा हिंदीभाषी भारतीय भी भागीदारी करते हैं।

जापान फाउंडेशन, एशिया सेंटर जैसी सांस्कृतिक आदान-प्रदान से जुड़ी संस्थाएँ भी समय-समय पर भारतीय कला, साहित्य, संस्कृति संबंधी कार्यक्रमों का आयोजन करती रहती हैं। हिंदी के लेखक, आलोचक, पत्रकार, नाट्य विशेषज्ञ इनमें आमंत्रित किए जाते रहे हैं। उनके भाषण, परिचर्चाएँ, नाट्य प्रदर्शन जापानी समाज के बीच होते रहे हैं। इनके माध्यम से हिंदी को भी जापान विषयक लेखन से समृद्ध होने का अवसर मिला है। हिंदी लेखकों में अज्ञेयजी का जापान प्रवास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वहाँ रहते हुए उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण कविताएँ लिखीं, हाइकू के अनुवाद किए, जो 'अरी ओ करुण प्रभामय' में संकलित हैं। अपनी सुप्रसिद्ध लंबी कविता 'असाध्य वीणा' के सूत्र भी उन्हें जापान से ही मिले।

जापान में रह चुके अन्य अनेक भारतीयों ने जापानी संस्कृति साहित्य विषयक लेखन हिंदी में किया है। साहित्यिक रचनाओं को हिंदी में प्रस्तुत किया है।

मानविकी विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,
मैदानगढ़ी, नई दिल्ली-११००६८
e-mail : rrpaliwal@hotmail.com

हिंदी साहित्य की नकल पर कोई साहित्य तैयार नहीं होता —सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

हिंदुस्तान को छोड़कर दूसरे मध्य देशों में ऐसा कोई अन्य देश नहीं है, जहाँ कोई राष्ट्रभाषा नहीं हो।
—सैयद अमीर अली मीर

हिंदी में हम लिखें-पढ़ें, हिंदी ही बोलें। —पं. जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

हिंदुस्तान के लिए देवनागरी लिपि का ही व्यवहार होना चाहिए, रोमन लिपि का व्यावहार यहाँ हो ही नहीं सकता।
—महात्मा गांधी

डेनमार्क में हिंदी व भारतीय संस्कृति का स्वरूप

• अर्चना पैन्यूली

डेनमार्क उत्तरी यूरोप में बसा एक नन्हा सा देश है। नॉर्वे और स्वीडन के साथ मिलकर एक सांस्कृतिक क्षेत्र स्केंडेनेवियन बनाता है और यूरोपीय संघ में आता है। यहाँ भारतवासियों का आना साठ के दशक से शरू हो गया था और दो हजार के बाद तो ग्लोबलाइजेशन की वजह से मल्टीनेशनल कंपनियों, विशेषकर आई.टी. फील्ड में इंडियन एक्सपर्ट की यहाँ बहार सी आ गई। १९९८ से २०१८, यानी पिछले दो दशकों में जहाँ डेनमार्क की जनसंख्या ४६ मिलियन से बढ़कर ५३ मिलियन हुई, वहीं भारतीयों की जनसंख्या ढाई हजार से बढ़कर पंद्रह हजार हो गई।

हिंदी की स्थिति डेनमार्क में इन दशकों में कैसी बनी या बिगड़ी इस पर प्रकाश डालते हैं—

• गौरतलब है साठ से अस्सी के दशक में उत्तरी भारत के किसी भी प्रांत से आए सभी भारतीयों की संतानें धाराप्रवाह हिंदी बोलती हैं। नई पीढ़ी के अभिभावकों को अधिक रुचि नहीं कि उनकी संतानें हिंदी जानें, लिहाजा आजकल के बच्चों में हिंदी बोलना कम हो गया।

• कंपयून की तरफ से बच्चों के लिए हिंदी में चलनेवाला स्कूल बंद हो गया।

• बॉलीवुड हिंदी गीतों और फिल्मों के प्रति देशी-विदेशियों का रुझान बढ़ा।

• विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग अधिक सक्रिय हुआ और हिंदी छात्रों की संख्या में बढ़ोतरी।

• इंटरनेशनल स्कूलों में मातृभाषा के तहत हिंदी कक्षाएँ शुरू हुईं।

• भारतीय आध्यात्मिक और सांस्कृतिक संस्थाओं का प्रभाव बढ़ा है।

आज की वैश्विक दुनिया में लोगों को अन्य संस्कृतियों में रुचि उत्पन्न को रही है, लेकिन उनके बारे में कैसे सीखें, भाषा सीखकर संस्कृति के बारे में व्यापक रूप से सीखने को मिलता है। भाषा सीखना साहित्य को समझने में मदद करता है—कविता, संगीत और अन्य संस्कृति की फिल्में। इसके अलावा, यदि आप एक यात्री हैं और आप स्थानीय लोगों को जानना चाहते हैं, तो भाषा आवश्यक है।

व्यापार के लिए भी क्षेत्रीय अंतर्दृष्टि का होना अनिवार्य है, जिसमें स्थानीय भाषा की जानकारी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सो विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में एक विशेषज्ञता हासिल और विकसित करने की हमेशा से माँग रही है। यह अलग-अलग वर्गों व परिवेश को समझने में तथा भौगोलिक क्षेत्र की दृष्टि से भी प्रासंगिक है।

सुपरिचित लेखिका। 'परिवर्तन', 'वेयर डू आई बिलांग' (उपन्यास) एवं प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी तथा अंग्रेजी में कथा साहित्य, लेख, कविताएँ आदि प्रकाशित। छोटे-बड़े कई पुरस्कार तथा सम्मानों से सम्मानित। संप्रति एन.जी.जी. इंटरनेशनल स्कूल, डेनमार्क में अध्यापन।

हिंदी क्यों सीखें?

हरेक देश की एक निजी भाषा होती है। ऐसे में कोई भी भाषा चाहे कितनी ही विशिष्ट क्यों न हो, विदेशी भूमि में बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त नहीं कर सकती। फिर हम हिंदुस्तानी तो विभिन्न भाषाओं में बँटे हैं। हिंदी की विदेशी भाषाओं से तुलना क्या करें, उसकी तो अन्य भारतीय भाषाओं के साथ ही कड़ी प्रतियोगिता रहती है।

विदेशों में जिनका स्थानांतरण हुआ, उनमें पंजाबी एवं गुजराती बहुतायत में हैं। वे अपनी भाषा पंजाबी व गुजराती मानते हैं। बंगाल व दक्षिण भारतीयों की अपनी अलग भाषाएँ हैं। यहाँ तक कि हिंदी भाषी भी हिंदी पर उतने निर्भर नहीं रहते, जितने कि चीन, जापान, स्पेन, पुर्तगाल व अरब आदि देशों के नागरिक अपनी भाषाओं पर रहते हैं। यह देखने में आया कि डेनमार्क में अस्पताल जैसे केंद्रों में मरीज व डॉक्टर के मध्य संदेश-संवाद के लिए चीनी अनुवादक हैं। अराबिक अनुवादक हैं। यहाँ तक कि पंजाबी व उर्दू अनुवादक हैं। मगर हिंदी अनुवादक की कोई आवश्यकता नहीं। इमीग्रेशन आदि राजसेवा विभागों में सूचनाएँ हिंदी को छोड़कर विश्व की कई भाषाओं में अनुवादित रहती है। जब किसी अंतरराष्ट्रीय सूचना-पट पर विश्व की प्रमुख भाषाओं का जिक्र होता है, वहाँ हिंदी का नाम अकसर नहीं होता।

किसी विदेशी पर्यटक या एक मल्टीनेशनल कंपनी के कार्यकर्ता को अगर अपने कार्य के सिलसिले में हिंदुस्तान जाना है तो उसे हिंदी

सीखने की क्या आवश्यकता, वहाँ सब नगरीय लोग अंग्रेजी जानते हैं। वहाँ सरकारी संस्थानों से संचार-संवाद करने लिए स्थानीय भाषा की कोई आवश्यकता नहीं। अंग्रेजी से काम चल जाता है। इन सब तथ्यों ने हिंदी के उपयोग को सीमित किया है। विश्व में इतनी बड़ी तादाद में हिंदी बोलनेवाले होने के बावजूद हिंदी भाषा सीखना उतना बड़ा व्यापार नहीं है, जितना कि चाइनीज, रशियन व अरबियन आदि भाषा सीखना। कोपनहेगन यूनीवर्सिटी के हिंदी प्रोफेसर एल्मार रेनर का कहना है कि 'भारत में हिंदी की स्थिति विदेशी भूमि में हिंदी की माँग पर अहम भूमिका निभाती है। जब तक हिंदुस्तान में हिंदी को उचित सिला नहीं मिलेगा, विदेश में अधिक सम्मान नहीं पा सकती।'

हिंदी-अनौपचारिक परिप्रेक्ष्य

किसी देश की भाषा की माँग विश्व में उस देश की राष्ट्रीय शक्ति को चित्रित करती है। हिंदी हमारी मातृभाषा ही नहीं, हमारी संस्कृति और परंपराओं की संवाहिका भी है। हिंदी के प्रति लोगों का सीधे रुझान तो नहीं है, किंतु हिंदी फिल्मों, भारतीय अध्यात्म, योग, दर्शन, धर्म, संगीत, नृत्य-नाट्य, भोजन एवं भारतीय संस्कृति के प्रति लोगों के रुझान ने हिंदी को अपरोक्ष रूप से बढ़ावा दिया है। सो अगर हिंदी के स्वरूप को एक विस्तृत रूप में परखें तो हिंदी का एक परिवेश विदेश में अवश्य नजर आता है। हिंदी के वैश्विक प्रचार-प्रसार में देश-विदेश में होनेवाले सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक क्रियाकलापों एवं गतिविधियों की अहम भूमिका है। इस संदर्भ में हिंदी सिनेमा व संगीत का योगदान भी उल्लेखनीय है। बॉलीवुड फिल्में हिंदी के अस्तित्व को बनाए हुए हैं। विदेशों में आए दिन आयोजित होते भारतीय धार्मिक, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों को देखकर महसूस होता है कि हिंदी विदेशों में नि:संदेह जीवित है। डेनमार्क में बॉलीवुड की फिल्मों को मल्टीप्लेक्स में रिलीज नहीं किया जाता है, लेकिन अभी भी छोटे सिनेमा हैं, जो नई बॉलीवुड रिलीज फिल्में दिखाते हैं जो कि यहाँ रहनेवाले भारतीयों के अलावा बहुत से स्थानीय लोगों द्वारा देखी जाती हैं। मूवी अंग्रेजी उपशीर्षक के साथ दिखाई जाती हैं।

आप्रवासी भारतीयों द्वारा हिंदी व भारतीय संस्कृति का संरक्षण

विश्वभर में हिंदुस्तान एक ऐसा देश है, जहाँ से काफी बड़ी तादाद में हर वर्ग के लोग दूसरों देशों में प्रवास करते हैं। आज भू-मंडल के हर देश में भारतवासी बसे हैं। हिंदुस्तानियों ने जिन भी देशों में प्रवास किया, वहाँ अपनी भारतीय संस्कृति व धार्मिक प्रथाओं को सहजने की भरसक कोशिश की। डेनमार्क में अन्य देशों की तरह कोई हिंदी समिति तो नहीं है, मगर हिंदी सांस्कृतिक व धार्मिक संस्थाएँ हैं, जो समय-समय पर भारतीय तीज-त्योहारों, राष्ट्रीय दिवसों व अन्य अवसरों पर सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करती रहती हैं। इन कार्यक्रमों में हिंदी भाषा का ही प्रयोग होता है। डेनमार्क में नाना प्रकार की भारतीय संस्थाएँ हैं, इंडियन डेनिश सोसाइटी, ऑल इंडियन कल्चरल सोसाइटी डेनमार्क, इंडियंस इन डेनमार्क, मिलापघर, डेनमार्क तेलुगु एसोसिएसन, बंगाली एसोसिएशन, डीवा (डेनिश—इंडियन वालंटियर एसोशिएशन), जो भारतीय त्योहारों व राष्ट्रीय दिवसों पर कार्यक्रम आयोजित कर विदेशों में बसे भारतीयों को अपनी जड़ों से जोड़े रखती हैं और भारतीय संस्कृति को सहेजे हुए हैं।

कुछ उल्लेखनीय बिंदु

• कोपनहेगन में कुछेक संस्थाएँ व व्यक्ति हैं, जो भारतीय शास्त्रीय नृत्य व हिंदी सिनेमा गीतों पर नृत्य पाठशाला चला रहे हैं। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश महिला लूसी बेनन ओडीसी व हिंदी सिनेमा पर नृत्य पाठशाला चलाती हैं। डेनिश महिला ऐनेमेटे कार्पन, प्रसिडेंट ऑफ इंडियन म्यूजिक सोसाइटी भारतीय संगीत पर पाठशाला चला रही हैं। श्री मनबीर सिंह की अध्यक्षता में चलनेवाले ऐशियन म्यूजिक सोसाइटी स्कूल में काफी देशी-विदेशी, हिंदी-अहिंदीभाषी भारतीय वाद्य व संगीत सीखने आते हैं। इस संस्था ने डेनमार्क में भारतीय राष्ट्रीय संगीत को जिंदा रखा है।

• बॉम्बे रॉकर्स एक डेनिश-इंडियन बैंड है, जो डेनमार्क में लोकप्रिय है। गोरे डेनिश व भारतीय नवयुवकों का यह बैंड विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों में रंगमंच पर हिंदी और भँगड़ा प्रभावित स्वरों के हाइब्रिड गीत-नृत्य प्रस्तुत कर दर्शकों को भावविभोर कर देते हैं। उनका पहला एल्बम परिचय १,००,००० से अधिक एल्बमों की बिक्री के साथ पाँच गुना प्लैटिनम गया है। राजस्थान के मुरारी लाल प्रति वर्ष डेनमार्क पधारकर भारतीय संगीत की क्लासेज देते हैं और गरमियों के सुहावने मौसम में शहर के विशाल व मशहूर पार्क में भारतीय लोकगीतों व बॉलीवुड गीतों पर लोगों को नृत्य सिखाते हैं। विदेशी सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थाएँ व कोपनहेगन यूनिवर्सिटी जब-तब अपने कार्यक्रमों में भारतीय लोकगीत, शास्त्रीय संगीत व फिल्मी गानों पर नृत्य प्रस्तुत करने के लिए स्थानीय कलाकारों को आमंत्रित करती रहती हैं। हिंदी गाने व नृत्य दर्शकों द्वारा अति सराहे भी जाते हैं। डेनिश महिला अनिता लर्चे पंजाबी व बोलीवुड गीत गाने के लिए डेनमार्क में अति प्रचलित हैं।

• भारतीय मंदिर में धार्मिक क्रियाकलाप निरंतर चलते रहते हैं। मंदिर से वितरित होनेवाले सभी पत्र विशुद्ध हिंदी भाषा में ही निकलते हैं। उदाहरण के लिए, डेनमार्क के भारतीय मंदिर में हर वर्ष रामायण, महाभारत, दुर्गा अष्टमी पर हिंदी में प्रवचन आयोजित होते हैं। भारतीय समाज की पुरानी व नई पीढ़ी भारी संख्या में सुनने आती है। यहाँ भजन-कीर्तन, पूजा-पाठ सब हिंदी में होता है।

• इनके अलावा विदेशों में भारतीय प्रभाव की कई आध्यात्मिक संस्थाएँ हैं, जोकि विदेशियों को प्रभावित करती हैं। आर्ट ऑफ लिविंग, सहज मार्ग, ब्रह्मकुमारी, माँ आनंदमयी आदि। योगा व मेडिटेशन का महत्त्व दिन-पर-दिन बढ़ रहा है। आंतरिक शक्ति व शांति की कामना ने भारतीय अध्यात्म को पश्चिम में बड़ी लोकप्रियता दिलवाई है। हिंदी व भारतीय संस्कृति का प्रभाव इन केंद्रों में स्वत: ही देखने को मिलता है।

• विदेशों में हिंदी का प्रचार करने का श्रेय हिंदी फिल्मों को

काफी कुछ जाता है।

बॉलीवुड फिल्में, जोकि हिंदी सिनेमा के नाम से भी जानी जाती हैं, का विदेशों में काफी बाजार है। अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बँगलादेश, खाड़ी प्रदेश, इजराइल, रूस व लेटिन अमेरिका में हिंदी फिल्में पहले से ही लोकप्रिय रही हैं। अब डेनमार्क व अन्य स्केंडिनेवियन देश, स्वीडन, नॉर्वे आदि देशों में भी इनकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। लगभग सभी स्केंडिनेवियन पुस्तकालयों में बॉलीवुड फिल्मी कैसेट व डी.वी.डीज रहती हैं, जिन्हें लोग किराए पर ले सकते हैं। कोपनहेगन में एक सार्वजनिक पुस्तकालय के लाइब्रेरियन का कहना है कि हिंदी पुस्तकें उनके पास लेने कोई नहीं आता, मगर बॉलीवुड फिल्म डी.वी.डी. लेने काफी लोग आते हैं।

भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी

उल्लेखनीय है कि वैश्वीकरण के इस युग में जब दूरियाँ घट रही हैं, विभिन्न समुदाओं के बीच पारस्परिक विचार-विमर्श बढ़ रहा है, कई मुल्क एक साथ मिलकर व्यापार करने लगे हैं तो हिंदी को इधर थोड़ी अहमियत मिलनी शुरू हुई है। कम-से-कम विदेशी लोग हिंदी भाषा के अस्तित्व को जानने तो लगे हैं। पहले विदेशी भारत को एक दरिद्र देश समझते थे। वे सोचते थे एक गरीब मुल्क की भाषा जानकर वे क्या करेंगे। मगर भारत की आर्थिक स्थिति बेहतर बनते देख विदेशियों में भारतीय राष्ट्रभाषा के प्रति रुझान बढ़ रहा है।

प्रतिष्ठित लैंगुएज स्कूल, स्टूडियो स्कोलन में विश्व की तमाम भाषाओं—चाइनीज, जापानीज, अरबी, स्पेनिश, फ्रेंच आदि के कोर्स नियमित चलाए जाते हैं, हिंदी के कोर्स की भी वहाँ व्यवस्था है। भाषा सलाहकार कात्या लारसन का कहना है, 'शिक्षार्थियों की आवश्यकतानुसार हिंदी के पाठ्यक्रम तैयार किए जाते हैं और शैक्षिक सामग्री विशेष रूप से शिक्षार्थियों के पाठ्यक्रम के लिए चुनी जाती है। ३० पाठों के एक कोर्स की कीमत १४,८५० क्रोनर है, शिक्षण सामग्री के ४०० क्रोनर अलग से देने पड़ते हैं। हमारे शिक्षक पेशेवर दृष्टि से शिक्षित हैं और शिक्षण में व्यापक अनुभव रखते हैं।'

प्रतिष्ठित लैंगुएज स्कूल, स्टूडियो स्कोलन में विश्व की तमाम भाषाओं—चाइनीज, जापानीज, अरबी, स्पेनिश, फ्रेंच आदि के कोर्स नियमित चलाए जाते हैं, हिंदी के कोर्स की भी वहाँ व्यवस्था है। भाषा सलाहकार कात्या लारसन का कहना है, 'शिक्षार्थियों की आवश्यकतानुसार हिंदी के पाठ्यक्रम तैयार किए जाते हैं और शैक्षिक सामग्री विशेष रूप से शिक्षार्थियों के पाठ्यक्रम के लिए चुनी जाती है। ३० पाठों के एक कोर्स की कीमत १४,८५० क्रोनर है, शिक्षण सामग्री के ४०० क्रोनर अलग से देने पड़ते हैं। हमारे शिक्षक पेशेवर दृष्टि से शिक्षित हैं और शिक्षण में व्यापक अनुभव रखते हैं।'

एन.जी.जी. इंटरनेशनल स्कूल डेनमार्क का एक स्कूल है, जहाँ मातृभाषा क्लब का आयोजन है। इस क्लब के द्वारा स्कूल अपने अंतरराष्ट्रीय छात्रों को अपने-अपने देशों की मातृभाषा के संपर्क में रहने के लिए प्रोत्साहित करता है। हिंदी भाषा क्लब यहाँ सबसे बड़ा क्लब है। छात्र भारत के विभिन्न प्रांतों से हैं, जैसे केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश आदि। इस क्लब में छात्रों को हिंदी भाषा के ज्ञान के साथ भारतीय संस्कृति से भी परिचित कराया जाता है। छात्रों में हिंदी भाषा सीखने की गहरी रुचि है, क्योंकि उनका मानना है कि हिंदी हमारी आधिकारिक भाषा है और भविष्य में यह विश्व की महत्त्वपूर्ण भाषाओं में से एक होगी।

श्रीमती स्मिता इमैन्यल और श्रीमती अनीता हूकेरिकार इस क्लब का संचालन करती हैं। हिंदी अध्यापिका श्रीमती स्मिता इमैन्यल कहती है कि अपनी मातृभूमि से दूर परदेश में हिंदी भाषा को प्रोत्साहन मिलना, इस क्लब का संचालन करना उनके लिए सौभाग्य और हर्ष की बात है। उन्हें बच्चों को पढ़ाने के लिए सामग्री खुद ही जुटानी पड़ती है। वे कहती हैं कि अब हिंदी सीखने की इंटरनेट पर भी काफी सामग्री उपलब्ध है।

हिंदी अकादमिक परिप्रेक्ष्य में

सामाजिक क्रियाकलाप व सांस्कृतिक गतिविधियाँ नि:संदेह हिंदी विकास में सहायक हैं। अगर अनौपचारिक स्तर से हटकर औपचारिक स्तर पर विदेशों में हिंदी का विश्लेषण करें, विदेशी विश्वविद्यालय में हिंदी की स्थिति आँकें तो डेनमार्क में आँकड़े इस प्रकार मिलते हैं—

विभिन्न स्केंडिनेवियन देशों के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में ऐशियन स्टडीज, 'साउथ ऐशियन रिलेटेड रिसर्च एंड एज्यूकेशन' एवं 'डिपार्टमेंट ऑफ क्रॉस कल्चरल एंड रीजनल स्टडीज' शिक्षण विभाग मौजूद हैं। डेनमाक की कोपनहेगन यूनिवर्सिटी में 'डिपार्टमेंट ऑफ एशियन स्टडीज' एवं डिपार्टमेंट ऑफ क्रॉस कल्चरल एंड रीजनल स्टडीज के अंतर्गत विषय इंडोलॉजी गत पचास वर्षों से कार्यशील है।

वर्तमान में इंडोलॉजी दो विभागों में विभक्त है—क्लासिक इंडोलॉजी एवं न्यू (नवीन) इंडोलॉजी। क्लासिक इंडोलॉजी के अंतर्गत भारतीय संस्कृति, इतिहास, दर्शन, बुद्धिज्म पर पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। कोर्स संस्कृत व पालि में पढ़ाए जाते हैं मगर संस्कृत इनमें प्रमुख है। क्लासिक इंडोलॉजी के अध्यक्ष अमेरिकन नागरिक प्रोफेसर केनेथ ज्यूस्क, जो संस्कृत भाषा के विद्वान् हैं, संस्कृत पढ़ाते हैं।

'न्यू इंडोलॉजी' के अंतर्गत हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के साथ भारत के समाज, इतिहास वगैरह विषयों पर पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। छात्रों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है। वर्तमान शैक्षणिक सत्र में कोपनहेगन विश्विद्यालय के 'न्यू इंडोलॉजी' अथवा 'मॉडर्न इंडिया स्टडीज' डिपार्टमेंट में कुल पंद्रह विद्यार्थी हैं। न्यू इंडोलॉजी की अध्यक्ष प्रोफेसर रविंद्र कौर हैं। जर्मन नागरिक एल्मार रेनर हिंदी पढ़ाते हैं।

एसोसिएट प्रोफेसर एल्मार रेनर की शिकायत है—उचित शिक्षण

संसाधन का अभाव। प्रोफेसर रेनर का कहना है कि अहिंदी भाषियों को हिंदी पढ़ाने में मुख्य समस्या सही सामग्री का उपलब्ध नहीं होना। शिक्षण पद्धति का पिछले पचास सालों में जो विकास पाश्चात्य भाषा-शिक्षण के संदर्भ में हुआ है, वह अभी भारतीय भाषाओं के अध्ययन में नहीं आया। फिलहाल वे जर्मन आदि भाषाओं के लिए तैयार किए गए 'काम्यूनिकटिव अप्रोच' यानी संवादनात्मक शिक्षण पद्धति को हिंदी में लाने का प्रयास करते हुए अपने विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं। उनकी राय है कि मूल संवादनात्मक शिक्षण सामग्री के अतिरिक्त ऐसी पाठ्य-पुस्तिकाएँ प्रकाशित की जाएँ, जिनमें मशहूर लेखकों के उपन्यास और अन्य रचनाओं को लघुरूप एवं सरल भाषा में लिखकर प्रकाशित किया जाए, ताकि छात्रों को साहित्यसागर में प्रवेश पाने में सुविधा हो। ऐसी पुस्तिकाएँ अंग्रेजी में 'ईजी रीडर' के नाम से कई दशकों से उपलब्ध हैं।

इंडिया एंड साउथ एशिया स्टडीज कहा जाने लगा है। इंडिया एंड साउथ एशिया स्टडीज में बी.ए. प्रोग्राम चार वर्ष का है, जिसमें मुख्य रूप से इंडिया के बारे में पढ़ाया जाता है, अन्य साउथ एशियन देशों की सूक्ष्म जानकारी दी जाती है। पहले पाठ्यक्रम में सिर्फ भाषाएँ–संस्कृत, हिंदी और दर्शन संबंधित विषय ही पढ़ाए जाते थे। इस संदर्भ में एक बिंदु यह भी उभरकर आया कि हिंदी में सरल भाषा में वयस्क लोगों के लिए उपन्यास उपलब्ध नहीं हैं, जैसे कि डेनिश, स्पेनिश व अन्य भाषाओं में उपलब्ध है। जिस हिसाब से किशोरों के लिए अंग्रेजी व अन्य यूरोपीय भाषाओं में रोचक उपन्यास लिखे जाते हैं, उस मुकाबले हिंदी में संख्या न के बराबर हैं। अब मिक्स्ड पैकेज है, जिसमें हिंदी के अलावा, एंग्रोपोलॉजी, धर्म एवं इतिहास सोसाइटी एंड कल्चर पढ़ाए जाते हैं।

एल्मार डेनिश से हिंदी के व्याकरण की एक पुस्तक तैयार कर रहे हैं— Morfosyntaks pa Hindi। कोपनहेगन यूनिवर्सिटी के इंडोलॉजी डिपार्टमेंट के आलावा अन्य शिक्षा अकादमियों में भी हिंदी व भारतीय संस्कृति तथा दर्शन का कुछ-न-कुछ स्वरूप देखने को मिलता है। कोपनहेगन यूनिवर्सिटी के इंग्लिश डिपार्टमेंट में कैथरीन हेनसन हिंदी साहित्य व हिंदी सिनेमा के कोर्सेस के शिक्षण कार्य में सक्रिय हैं। डेनमार्क की आरहुस यूनिवर्सिटी में समकालीन हिंदी समाज, संस्कृति व इतिहास के पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं।

आरहुस यूनिवर्सिटी के विभाग 'स्कूल ऑफ कल्चर एंड सोसाइटी—इंडिया एंड साउथ एशिया स्टडीज' में असिस्टेंट प्रोफेसर विवेक कुमार शुक्ला विगत चार वर्षों से हिंदी अध्यापन में संलग्न हैं। उनसे प्राप्त जानकारी के अनुसार आरहुस यूनिवर्सिटी में इंडोलॉजी विभाग १९८० से सक्रिय है, कालांतर में वह मॉडर्न साउथ एशिया स्टडीज में तब्दील हुआ और २०१६ से उसे इंडिया एंड साउथ एशिया स्टडीज कहा जाने लगा है। इंडिया एंड साउथ एशिया स्टडीज में बी.ए. प्रोग्राम चार वर्ष का है, जिसमें मुख्य रूप से इंडिया के बारे में पढ़ाया जाता है, अन्य साउथ एशियन देशों की सूक्ष्म जानकारी दी जाती है। पहले पाठ्यक्रम में सिर्फ भाषाएँ—संस्कृत, हिंदी और दर्शन संबंधित विषय ही पढ़ाए जाते थे। इस संदर्भ में एक बिंदु यह भी उभरकर आया कि हिंदी में सरल भाषा में वयस्क लोगों के लिए उपन्यास उपलब्ध नहीं हैं, जैसे कि डेनिश, स्पेनिश व अन्य भाषाओं में उपलब्ध है। जिस हिसाब से किशोरों के लिए अंग्रेजी व अन्य यूरोपीय भाषाओं में रोचक उपन्यास लिखे जाते हैं, उस मुकाबले हिंदी में संख्या न के बराबर हैं। अब मिक्स्ड पैकेज है, जिसमें हिंदी के अलावा, एंग्रोपोलॉजी, धर्म एवं इतिहास सोसाइटी एंड कल्चर पढ़ाए जाते हैं। भारत में जाति प्रथा, दलित-विमर्श एंव स्त्री अधिकार आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला जाता है। इस संदर्भ में एक बिंदु यह भी उभरकर आया कि हिंदी में सरल भाषा में वयस्क लोगों के लिए उपन्यास उपलब्ध नहीं हैं, जैसे कि डेनिश, स्पेनिश व अन्य भाषाओं में उपलब्ध हैं। जिस हिसाब से किशोरों के लिए अंग्रेजी व अन्य यूरोपीय भाषाओं में रोचक उपन्यास लिखे जाते हैं, उस मुकाबले हिंदी में संख्या न के बराबर है। भारतीय भाषाओं में विभाग केवल हिंदी ही ऑफर करता है, मगर अगर किसी छात्र को भारत की अन्य भाषाएँ तमिल, मलयालम वगैरह पढ़ने में रुचि है तो विभाग उसकी व्यवस्था करता है। भारत जाकर भाषा सीखने का भी प्रावाधान है। हिंदी पढ़नेवाले कुल मिलाकर २५-३० विद्यार्थी हैं। इस संदर्भ में एक बिंदु यह भी उभरकर आया कि हिंदी में सरल भाषा में वयस्क लोगों के लिए उपन्यास उपलब्ध नहीं हैं, जैसे कि डेनिश, स्पेनिश व अन्य भाषाओं में उपलब्ध है। वर्तमान में तीन अध्यापक वहाँ कार्यरत हैं। एसोसिएट प्रोफेसर उवे स्कोडा वहाँ पर दस सालों से एंग्रोपोलॉजी, धर्म और धर्मशास्त्र विषय पढ़ाते हैं। विवेक शुक्ला ३-४ साल से हिंदी पढ़ाते हैं, और दो वर्ष पूर्व असिस्टेंट प्रोफेसर गौरी पाठक समाज से संबंधित कोर्स पढ़ाने के लिए नियुक्त हुई हैं।

एन.सी.आई. नॉर्डिक देशों—डेनमार्क, फिनलैंड, नॉर्वे व स्वीडन के अग्रणी विश्विद्यालयों का एक संयुक्त संकाय है। यह संकाय २००१ में स्थापित हुआ तथा इसका लक्ष्य नॉर्डिक देशों व भारत के बीच शोध कार्यों व उच्च शिक्षा के सहयोग को सुकर करना है। शैक्षिक विनिमय द्वारा एन.सी.आई. इंडो-नॉर्डिक संबंधों को दृढ़ करना चाहता है। एन.सी.आई. नेटवर्क का मुख्य काम नॉर्डिक विद्यार्थियों के लिए भारत व अन्य देशों में समकालीन भारत पर लैक्चर्स, सेमिनार व समर कोर्स इत्यादि आयोजित करना है। विद्यार्थियों को हिंदी विषय-वस्तु में काम करने के लिए स्कॉलरशिप प्रदान होती रहती है।

कई स्केंडिनेवियन विश्विद्यालयों में भाषा विषयक व दर्शन विभाग द्वारा आधुनिक हिंदी साहित्य विषय पर कोर्स चलाए जाते हैं। इंडोलॉजी

विभाग मौजूद है, जिनके अंतर्गत हिंदी साहित्य, हिंदुत्व, वैदिक अध्ययन व आधुनिक भारत पर कोर्स चलते हैं। संस्कृत साहित्य, भाषा-विषयक एवं सांख्यिकीविद् व वैदिक पढ़ाई पर कोर्स होते हैं। किस संख्या में इन हिंदी विभागों में विद्यार्थी कोर्स करने आते हैं। ये विभाग कितने सुप्त हैं, कितने सक्रिय, यह एक विवदास्पद प्रश्न है। मगर आकड़े बताते हैं कि कुल मिलाकर पाश्चात्य देशों में लोगों का हिंदी के प्रति रुझान बढ़ा है। एक स्वतंत्र एशियन स्टडीज इंस्टिट्यूट है, जिसका मुख्य दायित्व नॉर्डिक व ऐशियाई देशों को समीप लाना है। इसका मकसद नॉर्डिक क्षेत्र में आधुनिक एशिया की राजनीति, आर्थिक, समाजिक व्यापार व संस्कृति रूपांतरण को विकसित करने का है। फिर प्रवासी हिंदी साहित्य हिंदी साहित्य जगत् में एक नया वाक्यांश व चेतना है। इस संदर्भ में प्रख्यात साहित्यकार ममता कालिया का कथन है—'आज विदेशों में रहनेवाले हिंदी के लेखक भाषा की नई खिड़की खोल रहे हैं। इनके लेखन में थोड़ा बाजारवाद, मार्केटिंग व ग्लोबलाइजेशन होते हुए भी ये हिंदी के वैश्विक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।'

डेनिश साहित्य का आप्रवासियों द्वारा हिंदी में थोड़ा-बहुत अनुवाद हो रहा है। मगर अभी तक किसी हिंदी साहित्य का डेनिश में अनुवाद नहीं हो पाया है। कोई हिंदी समिति का गठन नहीं हुआ। इस दिशा में कदम उठाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

औपचारिक व अनौपचारिक स्तर पर हिंदी भाषा व संस्कृति को प्रचारित करने में काफी कुछ हो रहा है। लेकिन हिंदी में जो संभावनाएँ हैं, तदनुरूप हिंदी को भाषाजगत् में वह स्थान नहीं मिल पाया है। विश्व में चीनी और अंगेजी भाषा के पश्चात् तीसरे स्थान पर रहनेवाली हिंदी भाषा के अस्तित्व के लिए संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। विशेषकर हमारी नई पीढ़ी का हिंदी के प्रति दृष्टिकोण चिंतनीय है।

एक गंभीर प्रश्न यह भी खड़ा हो रहा है कि जो कुछ हिंदी व भारतीय संस्कृति का बाहर देशों में प्रभाव है, वह पुरानी पीढ़ी जो भारत से विदेशों में प्रवासित हुई, उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप है। अप्रवासियों की नई पीढ़ी हिंदी से कतरा रही है तो हिंदी को इन मुल्कों में आगे लेकर कौन जाएगा, हिंदी का संरक्षण कौन करेगा? सर्वेक्षण दरशाते हैं कि पुरानी पीढ़ी के अभिभावक जो साठ-सत्तर के दशक में विदेशों में प्रवास किया, उनमें जिजीविषा थी कि उनके बच्चे अपनी मातृभाषा सीखें। जो कुछ अवसर उन्हें उपलब्ध थे, उन्होंने अपने बच्चों को हिंदी बोलने-सीखने के लिए प्रेरित किया। लिहाजा उनकी संतानें, जो अब मध्यम आयु की हैं, को हिंदी बोलनी आती है। मगर आज की नई पीढ़ी के अभिभावकों में ही हिंदी के प्रति रुझान कम है, सो उनके बच्चों में हिंदी बोलने का ह्रास हुआ।

हिंदी एक विशाल जनसंख्या की मातृभाषा व पूरे हिंदुस्तान की संपर्क भाषा है। यही नहीं, विश्व स्तर की प्रमुख भाषाओं में हिंदी भी एक है। हिंदुस्तान एक बड़ा व विशाल देश होने की वजह से विश्व को इसका गढ़, संस्कृति व साहित्य जानने की उत्सुकता हमेशा से रही। अत: हिंदी के अस्तित्व व महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। हिंदी खत्म तो नहीं होगी, मगर क्षय हो जाएगी, अगर ठोस कदम नहीं उठाए गए।

हिंदी शिक्षिका श्रीमती कुमुद माथुर ने डेनमार्क में बीस वर्षों तक १९८५ से २००५ तक प्रवासी भारतीयों के बच्चों को हिंदी सिखाई थी और वह डेनमार्क में हिंदी शिक्षिका के नाम से मशहूर थी। बच्चों को हिंदी सीखने की यह सुविधा डेनिश सरकार की तरफ से उपलब्ध थी। बच्चों को हिंदी स्कूल १५-१६ वर्षों तक तो अच्छा चला, फिर किसी तरह घिसटते-घिसटते अंतत: बंद हो गया। श्रीमती माथुर का कहना है कि स्कूल बंद होने के तमाम कारणों में से एक कारण यह भी था कि भारतीय बच्चों में अपनी मातृभाषा सीखने की उतनी ललक नहीं रहती जितनी अन्य देशों—जापानी, अरबी व चाइनीज बच्चों में रहती है। उनके स्कूल वहाँ अब भी चल रहे हैं। कुमुद माथुर के लिए सबसे बड़ी चुनौती बच्चों में हिंदी के प्रति रुचि बनाए रखने की थी, क्योंकि हिंदी के प्रति हिंदुस्तानियों में उदासीनता है। पहली पीढ़ी के अभिभावकों में फिर भी चाहत थी कि उनके बच्चे हिंदी सीखें। समय के साथ हिंदुस्तानियों में हिंदी सीखने व पढ़ने की जिज्ञासा कम हो रही है। आजकल के तो माता-पिता ही कहते हैं—'हमारे बच्चे हिंदी पढ़कर क्या करेंगे?''

हिंदी भाषियों को अपनी मूल भाषा व मातृभाषा हिंदी को उपयुक्त महत्त्व देने की आवश्यकता है। गैरहिंदीभाषी व्यक्तियों को भी सोचना चाहिए कि भारत की २३ संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त आधिकारिक भाषाओं में हिंदी सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा है। हिंदी की व्यापकता को देखते हुए हिंदी को देश की एक संपर्क भाषा व राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार करें। वे अपनी क्षेत्रीय भाषा को अधिक महत्त्व दें, मगर हिंदी की महत्ता को नकारें नहीं। इनसान एक साथ चार-चार भाषाओं को लेकर चल सकता है। रिसर्च कहती है, जो इनसान जितनी अधिक भाषाएँ जानता है, दुनिया को वह उतना अधिक परखता है।

हिंदी के उत्थान के लिए अत्यधिक संभावनाएँ हैं। आज जन्म लेनेवाले बच्चे २०९० तक काम करेंगे, किस भाषा में जनसंख्या और आर्थिक दोनों दृष्टिकोण से भारत और चीन विश्वपटल पर उभरते हुए देश हैं। भविष्य में अँगरेजी नहीं चाइनीज और हिंदी का बोलबाला होगा। हम अल्प अवधि में परिणाम देखने की उम्मीद नहीं करते, लेकिन अगर हिंदी विकास परियोजनाओं पर समुचित ध्यान दें तो आनेवाले वर्षों में हिंदी की एक लहर दुनिया में देखने को मिल सकती है। प्रधानमंत्री मोदी ने जिस तरह से विश्व में योग का बोलबाला किया है, आशा है मोदी सरकार अपने देश में राजभाषा हिंदी को पर्याप्त महत्त्व दे, हिंदी को पूरे विश्व में बुलंद करेगी। हिंदी इतनी अधिक विकसित हो कि भारतीय मूल के लोग ही नहीं, विदेशी भी हिंदी सीखें और इसे अपने व्यवसाय की भाषा बनाएँ।

Islevhusvej 72 B
2700 Bronshoj
Copenhagan
Denmark
e-mail : apainuly@gmail.com

थाईलैंड में हिंदी का प्रचार-प्रसार और भविष्य

• तिप्पाबत्तिनि नरसिंहुलु

सुपरिचित हिंदी लेखक। बाल-शिक्षा पर दो पुस्तकों का अनुवाद तथा कविताओं का अनुवाद, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय गोष्ठियों में पत्र-समर्पण, अध्यापन हिंदी शिक्षक, कडपा जिला (आंध्र प्रदेश)। संप्रति प्राध्यापक, ICCR, नई दिल्ली के अभ्यागत हिंदी पीठ (हिंदी चेयर), प्रिडी बानोमियंग अंतरराष्ट्रीय विद्यालय, थम्मासाट विश्वविद्यालय, बैंकॉक, थाईलैंड।

इस आलेख को लिखने से पहले मैंने कई लोगों से संपर्क करके उचित जानकारी प्राप्त की और उसी जानकारी को अक्षर रूप दे रहा हूँ। जिन लोगों ने महत्त्वपूर्ण जानकारी दी है, उनमें डॉ. तुंगनाथ दूबे, प्रोफेसर चिरापट प्रपांडविद्या, श्री राज मत्ता, डॉ. पैतून सोंगकैव, डॉ. बामरूँग खाम एक, श्रीमती शिखा रस्तोगी आदि के नाम प्रमुख हैं। इसके आलावा मैं ने जो थोड़ी सामग्री पढ़ी थी, वह भी आलेख लिखने में उपयोगी हुई है, जो थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम के ग्रंथालय की पत्रिका से प्राप्त हुई है।

थाईलैंड के हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में कई विशिष्ट व्यक्ति, अध्यापक, सेवक, प्रचारक, सांस्कृतिक संस्थाएँ, लेखक और अनुवादकों ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, जिससे हिंदी को वैश्विक धरातल पर गर्व से देख सकें।

स्वामी सत्यानंद पुरी, करुणा कुशला शाय, पंडित रघुनाथ शर्मा, बौद्धभिक्षु लोकनाथा, डॉ. चामलोंग सरपथ नुक (Chamlong Saraphat Nuk), डॉ. कामछाई अनंतसुख, डॉ. सथीत छायपन्या (Sathit Chaipanya), डॉ. तुंगनाथ दूबे, डॉ. बमरूँग खाम एक, श्री राज मत्ता, श्री युवराज धावन, श्री किर्त्तिपोंग, श्री उत्तितपोंग, श्रीमती कमलेश मत्ता, श्रीमती शिखा रस्तोगी, डॉ. करुणा शर्मा, डॉ. तिप्पाबत्तिनि नरसिंहुलु, तथा अन्य अज्ञात हिंदी सेवक व शिक्षकों का विशेष योगदान रहा है।

वर्तमान में थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम (Thai-Bharat Cultural Lodge) बैंकॉक, स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, थाईलैंड सांस्कृतिक केंद्र, थाईलैंड हिंदी परिषद्, आदि संस्थाएँ हिंदी सेवा में संलग्न हैं।

मॉडर्न इंटरनेशनल स्कूल, बैंकॉक इंटरनेशनल पायनियर स्कूल, बैंकॉक, ग्लोबल इंटरनेशनल स्कूल, बैंकॉक आदि विद्यालयों में (सी. बी.एस.ई. तथा आई.जी.एस.ई. का पाठ्यक्रम) हिंदी अध्ययन-अध्यापन हो रहा है।

महाचूलालांगकार्न विश्वविद्यालय (अयुथ्या), शिल्पाकार्न विश्वविद्यालय (बैंकॉक), चूलालांगकार्न विश्वविद्यालय (बैंकॉक), प्रिडी बानोमियांग अंतरराष्ट्रीय विद्यालय, थम्मासाट विश्वविद्यालय (बैंकॉक), राम खम हैंग विश्वविद्यालय (बैंकॉक), महामकुट विश्वविद्यालय (बैंकॉक), छियांगमाय विश्वविद्यालय आदि में हिंदी भाषा का अध्यापन हो रहा है।

स्वामी सत्यानंद पुरी, करुणा कुशला शाय, प्रोफसर चिरापट प्रपांडविद्या, डॉ. तुंगनाथ दूबे, चामलांग सरपथ नुक, डॉ. बमरूंग खाम एक, डॉ. करुणा शर्मा, छाडथान सुतजावत्ती (Chadathan Sutjawattee) (चुनरी) आदि लेखक और अनुवादकों के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

थाईलैंड में उपरोक्त सभी संस्थाएँ, विद्यालय, विश्वविद्यालय, विशिष्ट व्यक्ति, लेखक, अनुवादक, हिंदी-सेवक व प्रचारकों के निस्स्वार्थ और समर्पित प्रयासों से हिंदी का प्रचार-प्रसार भव्य रूप ने धारण किया है, ऐसा मेरा विचार है। थाईलैंड में मैंने जो कुछ देखा है, वे सारे अनुभव भी इसकी पुष्टि करते हैं।

उक्त स्रोत थाईलैंड में हिंदी भाषा के अतीत, वर्तमान का समाचार और भविष्य की सूचना देते हैं कि हिंदी के वैश्विक धरातल पर थाईलैंड पीछे नहीं है। ७९ वर्षीय डॉ. तुंगनाथ दूबेजी (गोरखपुरवासी), जिन्होंने सन् १९८५ से २००४ तक थाईलैंड में हिंदी-अध्यापन में अपना मूल्यवान जीवन बिताया है, का कहना है कि थाईलैंड में हिंदी भाषा के अध्ययन और अध्यापन का प्रारंभ थाईलैंड की दूसरी पूर्व राजधानी अयुथ्या में सन् १८वीं सदी में ही हुआ था, जहाँ भारतीय मूल के गोरखपुरवासी अयुथ्या में अपने अड़ोस-पड़ोस के घरों में हिंदी सीखा करते थे।

८१ वर्षीय श्री राज मत्ताजी, जो थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम (Thai-Bharat Cultural Lodge) बैंकॉक, के सचिव भी हैं, का कहना है कि व्यवस्थित रूप से अक्तूबर सन् १९४० में थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम की स्थापना से हिंदी अध्यापन प्रारंभ हुआ था, किंतु सन् १९३२ से ही 'धर्म आश्रम' के नाम से सेवा और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होता था, जिनकी देखरेख स्वामी सत्यानंद पुरीजी किया करते थे। वह दौर देश-भक्ति और तीव्र राष्ट्रीयता का था। थाईलैंड में रहनेवाले भारतीयों में शिक्षक, लेखक, पत्रकार, वकील और न्यायाधीश आदि शामिल होते थे। भारत और थाईलैंड के बीच मित्रता तथा सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ बनाने के विचार से 'धर्म आश्रम' की स्थापना की गई थी। बैंकॉक में 'Voice of the East' नामक पत्रिका का प्रकाशन होता था।

थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम में थाई, संस्कृत, पाली और हिंदी भाषाओं के अध्ययन के साथ-साथ दोनों देशों के सांस्कृतिक विषयों पर विचार-विमर्श होता था। संस्कृत और हिंदी ग्रंथों का थाई भाषा में अनुवाद भी हुआ था और हिंदी का अध्यापन भी सक्रिय रहा। हिंदी

अध्यापन में पंडित रघुनाथ शर्मा का नाम आज भी बड़े ही आदर के साथ लिया जा रहा है। हिंदी के प्रचार में श्री लाल सचदेव, दर्शन सिंह बजाज तथा किशन लाल मत्ता आदि का योगदान भी अविस्मरणीय है।

बाल ब्रह्मचारी बौद्ध-भिक्षु करुणा कुशला शाय (१० मई, १९२०—१३ अगस्त २००९) का नाम हिंदी अध्यापन के संदर्भ में बड़े आदर के साथ आज भी लिया जाता है। आचार्य चिरापट प्रपांडविद्या तथा डॉ. तुंगनाथ दूबेजी से वैयक्तिक बातचीत से इसकी पुष्टि होती है। इसके साथ-साथ पैतून सोंग कैव, जो भारत में थाईलैंड के राजदूतावास के पूर्व मंत्रित्व-परामर्शदाता थे, ने भी मुझसे यही बात बताई। पैतूनजी बहुत ही सरल और सहृदय व्यक्तित्व-संपन्न हिंदी-प्रेमी हैं। आचार्य चिरापटजी, डॉ. तुंगनाथ दूबेजी तथा पैतूनजी, इन तीनों के मत से यह मालूम होता है कि करुणा कुशला शायजी बहुमुख प्रज्ञाशाली थे, जिन्होंने भारत में संस्कृत, पाली, हिंदी, अंग्रेजी भाषाओं के साथ बौद्ध, हिंदू धर्मों का गहरा अध्ययन किया था। भारत में इनके सहपाठी इटली देश के मूल निवासी बौद्ध-भिक्षु लोकनाथा थे। इन दोनों ने भारतीय शास्त्रों और संस्कृति का अध्ययन किया था। आचार्य चिरापटजी ने इस बात का जिक्र मुझसे किया था। उनके अनुसार डॉ. करुणा कुशला शाय ने थाईलैंड की पूर्व राजधानी अयुथ्या के महा चूलालंगकार्न विश्वविद्यालय में संस्कृत, पाली, हिंदी तथा बौद्धधर्म का लंबे अरसे तक अध्यापन किया था और इसके साथ-साथ थाई-भारत सांकृतिक आश्रम में भी सक्रिय सदस्य के रूप में अपना योगदान दिया था।

आचार्य चिरापटजी तथा पैतूनजी सोंग कैव दोनों की बातचीत से इस बात की पुष्टि होती है कि डॉ. करुणा कुशला शाय ने महात्मा गांधी की आत्मकथा का थाई भाषा में अनुवाद किया था, जिसका नाम 'अत्ता चीव प्रवत्ति खांग महात्मा गांधी' था। पैतूनजी ने कहा कि करुणा कुशला शाय और उनकी पत्नी रुआंग उराय कुशला शाय दोनों ने जवाहरलाल नेहरू की रचनाओं का थाई भाषा में अनुवाद किया था।

थाईलैंड की उत्तरी सीमा के चियांगमाय विश्वविद्यालय में आज से लगभग पच्चीस वर्ष पहले हिंदी का अध्यापन प्रारंभ हुआ था, जहाँ संस्कृत, पाली भाषाओं के साथ हिंदी का भी अध्ययन वैकल्पिक विषय के रूप में होता था। विश्वविद्यालय के प्राच्य भाषा विभाग के अंतर्गत उपरोक्त भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन आज भी चल रहा है, जिसकी सूचना मुझे आचार्य चिरापटजी ने दी है। छियांगमाय विश्वविद्यालय के आचार्य 'कामछाई अनंत सुख' जी ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से संस्कृत से पी-एच.डी. की थी, जिन्होंने संस्कृत, पाली, हिंदी के साथ-साथ बौद्धधर्म का भी लगभग २५ वर्ष तक अध्यापन किया था।

डॉ. चामलोंग शरपथ नुक ने भी बनारस में संस्कृत में पी-एच. डी. की थी और साथ-साथ हिंदी का भी अध्ययन किया था। आपने शिल्पाकार्न विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व शाश्स्त्र व प्राच्य भाषा विभाग के प्रथम हिंदी प्राध्यापक के रूप में अपनी सेवाएँ सन् १९८० से १९९६ तक दीं। हिंदी को अध्यापन एक विकल्प के रूप में यहाँ पढ़ाया जाता था।

डॉ. चामलोंग शरपथ नुक के बाद सन् १९९६ से डॉ. बमरूंग खाम एक ने हिंदी अध्यापन का कार्य प्रारंभ किया। आप ने केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से हिंदी-शिक्षक प्रशिक्षण में शिक्षा प्राप्त की थी (सन् १९९३-९४ के आसपास)। इन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से संस्कृत में पी-एच.डी. की थी। आजकल ये 'परामत खाम एक' के नाम से भी विख्यात हैं। अब भी उसी विश्वविद्यालय में सक्रिय रूप से कर्मरत हैं। इससे पहले ये थम्मासाट विश्वविद्यालय के भारतीय अध्ययन केंद्र, बैंकॉक में संध्याकालीन कक्षा में हिंदी-अध्यापन करते थे। इस केंद्र में हिंदी-अध्यापन का शुभारंभ आचार्य चिरापटजी ने किया था तथा बाद में डॉ. तुंगनाथ दुबेजी आदि ने भी हिंदी-अध्यापन कार्य को जारी रखा था।

डॉ. बम रूँग खाम एक ने 'हिंदी-थाई शब्दकोश' तथा 'हिंदीभाषा : भारत में कई स्थितियों पर वार्त्तालाप' नामक दो हिंदी पुस्तकें भी लिखी हैं। डॉ. बम रूँग खाम एकजी आचार्य चिरापटजी के संस्कृत विद्यार्थी थे।

सन् १९९४-९५ के आसपास थम्मासाट विश्वविद्यालय के प्रिडी बानोमियांग अंतरराष्ट्रीय विद्यालय, बैंकॉक में भारतीय अध्ययन केंद्र खुला, जहाँ हिंदी का पहला अध्यापन आचार्य चिरापट प्रपांडविद्याजी ने किया था। इन्होंने बड़ौदा विश्वविद्यालय से संस्कृत में पी-एच.डी. की थी। थाईलैंड के श्रेष्ठ विद्वानों में इनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इतना ही नहीं, ये थाईलैंड की विदुषी राजकुमारी 'महा सिरिंधोर्न' के संस्कृत गुरु भी थे। वर्तमान में थाईलैंड के लगभग सभी संस्कृत अध्यापक आचार्य चिरापट प्रपांडविद्याजी (७९ वर्ष) के ही शिष्य हैं।

इसी क्रम में डॉ. सथीत छायपन्या का नाम आता है, जिन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से संस्कृत में पी.एच.डी. की तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से भी हिंदी भाषा का अध्ययन किया। तदुपरांत भारतीय अध्ययन केंद्र, सिसामोर्न में हिंदी का अध्यापन किया तथा लगभग २५ वर्षों से राम खम हैंग विश्वविद्यालय में हिंदी-अध्यापनकार्य में संलग्न हैं।

थम्मासाट विश्वविद्यालय के प्रिडी बानोमियांग अंतरराष्ट्रीय विद्यालय, बैंकॉक, में सन् २०१३ से 'भारतीय अध्ययन' नाम से चार वर्षीय पाठ्यक्रम प्रारंभ हुआ था। इसके साथ ही 'हिंदी पीठ' की भी स्थापना हुई थी और भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् नई दिल्ली ने हिंदी की पहली प्राध्यापिका के रूप में डॉ. करुणा देवी शर्मा की नियुक्ति की। डॉ. करुणा शर्मा ने लगभग साढ़े तीन साल यहाँ काम किया था। उन्होंने पाँच पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें थाई रामायण 'रामकीर्ति' ('रामकीयन') का अंग्रेजी से हिंदी में भव्य अनुवाद किया तथा 'थाई-एकता सूत्र' के नाम से डॉ. पोर्नपिमोलसेनावोंग की पुस्तक (Thai Ties) का भी सफल अनुवाद किया। भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, बैंकॉक में भी हर शनिवार को दो घंटों तक साढ़े तीन साल तक हिंदी का अध्यापन किया था।

आजकल चूला लांगकार्न विश्वविद्यालय में श्री कित्तिपोंग हिंदी अध्यापन में सक्रिय हैं, जिन्होंने महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्व विद्यालय, वर्धा से एम.ए किया था। इसी महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय से उत्तिपोंग ने भी एम.ए किया था, जो वर्तमान में शिल्पाकार्न विश्वविद्यालय में एम.ए संस्कृत के छात्रों को हिंदी का अध्यापन करा रहे हैं।

अब एक बार फिर थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम बैंकॉक में हिंदी

गतिविधियों के बारे में अवलोकन करना अति आवश्यक है। यहाँ पंडित रघुनाथ शर्मा, करुणा कुशला शाय के साथ-साथ स्वतंत्रता के आंदोलन के दौरान सुभाष चंद्र बोस ने आजाद हिंद फौज की मदद से भारत-माता को मुक्त करने के तीव्र प्रयत्न किए थे। उसी समय सुभाष चंद्र की मदद करने के लिए कुछ उत्साही बालक उनकी सेना में भर्ती होना चाहते थे, किंतु उनकी उम्र और भविष्य को दृष्टि में रखते हुए उन बालकों को सेना में भर्ती होने से रोका गया था, किंतु कुछ उत्साही बालकों ने अपनी एक सेना बनाई, जिसका नाम था 'बालक सेना'। ये बाल-सैनिक 'आजाद हिंद फौज' की सहायता करते थे। साथ-ही-साथ भारतीय मूल के लोगों को हिंदी पढ़ाने का तथा लोगों में हिंदी के प्रति श्रद्धा और प्रेम बढ़ाते थे, जिनमें कुछ बाल-सैनिक आज भी जीवित हैं। श्रद्धेय श्री तिलक राज पवार उस बालक-सेना के एक सैनिक थे। २३ जनवरी, २०१८ के दिन सुबाष चंद्र बोस की जयंती के संदर्भ में उनसे बात करते हुए बहुत सारी जानकारियाँ प्राप्त हुईं।

वर्तमान में थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम में श्री राज मत्ताजी का नाम विशेष आदर के लिया जा सकता है। आप आश्रम के कर्णधार हैं। आप स्वर्गीय श्री किशन लाल मत्ताजी के अनुज हैं। स्वर्गीय श्री किशन लालजी का थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम की प्रगति में विशेष योगदान रहा। श्री राजमत्ताजी विद्यार्थी-प्रिय गुरु हैं। आश्रम में विभिन्न स्तरों पर हिंदी का विकास हो रहा है। श्री युवराज धावन, श्रीमती कमलेश मत्ता, श्रीमती शिखा रस्तोगी, डॉ. तिप्पाबत्तिनि नरसिंहुलु आदि अध्यापक हर रविवार दोपहर को एक बजे से शाम चार बजे तक हिंदी का अध्यापन कर रहे हैं। थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम में कभी-कभी इन अध्यापकों को एक स्तर से दूसरे स्तर के छात्रों को पढ़ाने के लिए बदला जाता है तथा छात्रों को हिंदी भाषा के चारों कौशलों में कुशल बनाने का प्रयास किया जा रहा है। हिंदी का शिक्षण पूरी तरह से नि:शुल्क है। आह्लादपूर्ण वातावरण में सस्नेह, सानंद हँसते हुए हिंदी सीखने का शुभ अवसर इस आश्रम में उपलब्ध कराया जा रहा है।

वर्तमान में श्री राज मत्ताजी भारत में थाईलैंड दूतावास में काम करनेवाले थाई अधिकारियों को भी हिंदी सिखाने का सफल प्रयास कर रहे हैं। मासाट विश्वविद्यालय में डॉ. करुणा शर्मा के स्थान पर वर्तमान में डॉ. तिप्पाबत्तिनि नरसिंहुलु हिंदी अध्यापन का कार्यरत हैं, साथ ही भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, बैंकॉक में भी हर शनिवार सुबह नौ से ग्यारह तक दो घंटे हिंदी अध्यापन कर रहे हैं। इतना ही नहीं, ये कुछ विशेष अनुवाद के काम में भी सक्रिय हैं।

डॉ. तुंगनाथ दुबेजी ने आर्य समाज और थाई-भारत आश्रम को जोड़कर हिंदी-अध्यापन किया था। लगभग ६५ छात्र-छात्राओं को हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की विभिन्न परीक्षाओं के लिए तैयार किया था। थाईलैंड में यह काम प्रमुख था। इन्होंने सन् १९८६ में डॉ. चामलांग शरफथ नुक के साथ मिलकर 'हिंदी भाषा : स्व सीखनी' नामक पुस्तक की रचना की थी। आचार्य चिरापट प्रपांडविद्याजी ने रामायण और महाभारत आदि धारावाहिकों का थाईभाषा में अनुवाद किया था। इस काम में उन्हें डॉ. तुंगनाथ दुबेजी ने बड़ी सहायता की थी।

श्री विवेकानंद भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, बैंकॉक, की हिंदी छात्रा छाडथान सुतचावत्ती, जो चुनरी नाम से भी पुकारी जाती है, बैंकॉक से २०० किलोमीटर दूर स्थित प्राचीनबुरी से हर शनिवार को बैंकॉक आकर हिंदी भाषा के साथ भारतीय नृत्यकला भरत नाट्यम को भी सीख कर वापस चली जाती है। इस छात्रा ने हिंदी दूरदर्शन धारावाहिक 'देवों के देव महादेव', 'गणेशा' के अधिकतर भागों का थाई भाषा में अनुवाद किया तथा 'चक्रवर्ती अशोक सम्राट्', 'महाकाली प्रेम' या 'पहेली : चंद्रकांता' के कुछ हिस्सों का थाई भाषा में अनुवाद किया। कुल मिलाकर लगभग ५०० भागों का अनुवाद किया था।

'सिया के राम' व 'संकट मोचन महाबली हनुमान' धारावाहिकों के बहुत से गीतों का भी अनुवाद किया था। छाडथान सुतचावत्ती (चुनरी) को अपनी छात्रा कहते हुए मुझे गर्व हो रहा है।

थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम की ही उपशाखा 'थाईलैंड हिंदी परिषद्' है, जिसके अध्यक्ष श्री सुशील कुमार धनूकाजी हैं, जो पेशे से बड़ी कंपनी के मालिक हैं, किंतु वे गंभीर रूप से हिंदी के लिए समर्पित हैं। यह परिषद् नियमानुसार हर महीने शनिवार के दिन एक साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन कर छात्रों में हिंदी के प्रति लगाव और प्रेम बढ़ा रही है। उपहार और पुरस्कारों से हिंदी-प्रेमियों के मन में उत्साह बढ़ाने का सफल प्रयास कर रहे हैं। श्रीमती सुषमा सिंगजी का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है, जिन्होंने बैंकॉक में बीस साल पहले अनौपचारिक रूप से हिंदी कार्यक्रमों का आयोजन किया था।

श्री अमरेंद्र नारायण सिन्हा, श्रीमती ममता व्यास, हिरन जैन साहब, यमदग्नि, थाई-भारत आश्रम के सभी सदस्य थाईलैंड हिंदी परिषद् के अप्रकटित सक्रिय सदस्य हैं।

आजकल श्रीमती धनूकाजी भी महिलाओं को समर्पित भाव से हिंदी सिखाने में आनंद का अनुभव कर रही हैं।

भारतीय दूतावास, बैंकॉक हर वर्ष पाँच छात्रों को छात्रवृत्ति पर हिंदी में प्रशिक्षण देने के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा भेज रहा है।

उपरोक्त सभी सहृदय एवं सक्रिय प्रतिभागी, उत्साह व हर्ष-उल्लास के साथ थाईलैंड में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान देते आ रहे हैं, जिससे आज बहु संख्या में थाई भाषी छात्र हिंदी के प्रति समर्पित एवं आनंद-चित्त से अध्ययनरत हैं। थाईलैंड देश के हिंदी प्रेमी छात्र भारत के बाहर विश्व के किसी भी देश से पीछे नहीं हैं, जिसका जीता-जागता उदाहरण ३० जनवरी, २०१८ को उत्साह और धूमधाम से मनाया गया विश्व हिंदी दिवस है।

अत: निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि आज थाईलैंड में हिंदी का विशेष प्रचार-प्रसार हो रहा है तथा इसमें भारत सरकार की ओर से वित्तीय योगदान भी निरंतर प्राप्त हो रहा है। पुन: इस सार्थक प्रयास में हिंदी को विश्व मानचित्र में विशिष्ट दर्जा दिलाने में थाईलैंड सरकार का भी विशेष सहयोग सहर्ष प्राप्त हो रहा है।

प्राध्यापक, आई.सी.सी.आर., अभ्यागत हिंदी पीठ,
प्रिडी बानोमियांग अंतरराष्ट्रीय विद्यालय,
थम्मासाट विश्वविद्यालय, बैंकॉक, थाईलैंड
e-mail : tnsimha@rediffmail.com

नार्वे में हिंदी जगत् : विस्तार एवं संभावनाएँ

• सुरेशचंद्र शुक्ल

छियालीस लाख की आबादी वाले नार्वे में लगभग इक्कीस हजार भारतीय निवास करते हैं। ये भारतीय आपस में हिंदी में बातचीत करना पसंद करते हैं। बहुत से नार्वेजीय लोग भी हिंदी बोल सकते हैं।

योग शिक्षा के कारण बहुत से लोग हिंदी थोड़ी-बहुत जानते हैं। हिंदी फिल्में, गीत-संगीत यहाँ एशियाई लोगों में लोकप्रिय हैं।

स्कूलों में हिंदी

नार्वे के स्कूलों में दसवीं कक्षा में बच्चे हिंदी की परीक्षा दे सकते हैं। पर हिंदी की शिक्षा अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ और व्यक्ति देते हैं। इससे बच्चे हिंदी सीखते हैं और इससे वह अपनी भाषा-संस्कृति सीखने के साथ-साथ भारत/पूर्वजों के देश से भी जुड़े रहते हैं। यहाँ की एक राजनैतिक पार्टी सोशलिस्ट लेफ्ट पार्टी ने अपनी पार्टी की तरफ से हिंदी के लिए यह प्रस्ताव पारित किया कि हिंदी को नार्वे के स्कूलों में अंतरराष्ट्रीय भाषाओं फ्रेंच, जर्मनी, स्पेनिश आदि की तरह पढ़ाया जाए।

हिंदी अंतरराष्ट्रीय भाषा

यहाँ सभी बच्चों को इनमें से एक भाषा चुननी होती है। यदि अन्य राजनैतिक पार्टियों ने भी हिंदी को अंतरराष्टीय भाषा की तरह पढ़ाए जाने पर अपना प्रस्ताव पास किया तो वह हिंदी जगत् और उसके विस्तार के लिए स्वर्णिम अवसर होगा। नार्वे में हिंदी को भारतीयों की मातृभाषा के रूप में स्वीकृति प्राप्त है। नार्वे में हिंदी के विस्तार की बहुत संभावनाएँ हैं। लोग हिंदी में रेडियो और टी.वी. चैनल में कुछ समय प्रसारण चाहते हैं। यदि हिंदी के विकास के लिए कोई सार्वजनिक कार्य किया जाता है तो नार्वे की सरकार से आर्थिक सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

नार्वे से प्रकाशित स्पाइल-दर्पण पत्रिका

नार्वे से प्रकाशित 'स्पाइल-दर्पण' पत्रिका जो हिंदी और नार्वेजीय भाषा में नार्वे के संस्कृति विभाग की आर्थिक सहायता से छपती है। यहाँ ओस्लो में हर माह हिंदी की साहित्यिक गोष्ठियाँ होती हैं। भारत-नार्वे लेखक सेमीनार में हिंदी के विकास तथा उसमें आनेवाली समस्यों और संभावनाओं पर विचार होता है। २०१९ से ओस्लो में हिंदी के नाटक की शुरुआत होने जा रही है जो हिंदी नाटक के लिए मील का पत्थर साबित हो सकती है। किसी भी देश में हिंदी की स्थिति जानने के लिए उस देश की भौगोलिक स्थिति और वहाँ की मूल भाषा तथा संस्कृति के बारे में जान लेना जरूरी है।

भारतीय-नार्वेजीय सूचना एवं सांस्कृतिक फोरम के अध्यक्ष पद पर सुशोभित हैं। संप्रति 'स्पाइल दर्पण' (ओस्लो से प्रकाशित) द्विभाषीय, द्वैमासिक पत्रिका के संपादक हैं।

नार्वे में भाषा

नार्वे की भाषा नार्वेजीय है—नीनोर्श्क और बुकमोल, सामी लोगों की भाषा सामी है।

नीनोर्श्क और बुकमोल जर्मन परिवार की भाषा है, जो इंडो-यूरोपीय भाषा से जनमी है, ऐसा कहा जाता है। नार्वे में कोई भी समाचार-पत्र अंग्रेजी भाषा में नहीं छपता। सभी समाचार-पत्र नार्वेजीय में छपते हैं।

नार्वे में हिंदी पत्रिकाएँ

नार्वे में केवल दो हिंदी की पत्रिकाएँ छपती हैं—स्पाइल-दर्पण और 'वैश्विका स्पाइल-दर्पण' द्वैमासिक है। वैश्विका अनियमित है। दोनों पत्रिकाएँ राजधानी ओस्लो से ही प्रकाशित होती हैं। स्पाइल-दर्पण का प्रकाशन १९८८ में आरंभ हुआ जो आज भी निरंतर छप रही है। स्पाइल-दर्पण का संपादन मैंने पत्रिका के शुभारंभ १९८८ से किया और आज भी कर रहा हूँ। स्पाइल-दर्पण पर लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रो. योगेंद्र प्रताप सिंह ने शोध छात्रा गरिमा तिवारी द्वारा २००८-०९ में किया जा चुका है। स्पाइल-दर्पण बेशक नार्वे से निकलनेवाली हिदी की द्वैमासिक द्वैभाषिक पत्रिका है। साथ ही पत्रिका ने २००९ से भारत में रंगमंच के क्षेत्र में रंगकर्मियों को सम्मानित करना आरंभ किया है। २९ दिसंबर, २००९ को स्पाइल-दर्पण ने लखनऊ उत्तर प्रदेश में आनंद शर्मा के निर्देशन में खेले जानेवाले सुप्रसिद्ध नाटक 'गुड़िया का घर' का सुरेशचंद्र शुक्ल शरद आलोक द्वारा किए अनुवाद को खेलने वाले सभी रंगकर्मियों को उमानाथ रायबली हॉल में पुरस्कृत और सम्मानित

किया गया।

'परिचय' नार्वे की ही नहीं बल्कि स्कैनडिनेवियाई देशों (नार्वे, स्वीडेन, डेनमार्क, फिनलैंड और आइसलैंड) की प्रथम हिंदी पत्रिका थी, जिसका संपादन हिंदी में मैंने १९८० से १९८५ तक किया। यह पत्रिका अब नहीं छपती। परिचय हिंदी और पंजाबी भाषा में मूलत: छपती थी, जिसमें अंग्रेजी के भी पृष्ठ होते थे, जिसका प्रकाशन १९७८ में आरंभ हुआ था।

नार्वे में मेरे आने के पूर्व हिंदी की स्थिति

मैं २६ जनवरी, १९८० को नार्वे आया था। मैंने सुना था कि बहुत सालों पहले कोलकाता से प्रोफ बराल नार्वे आए थे। जो योगी थे। बाद में उन्होंने एक नार्वेजीय युवती से शादी कर ली थी, जिनसे एक लड़की ने जन्म लिया था। यह संभवतया ९० वर्ष पहले की बात होगी। भारतीय घुमक्कड़ स्वभाव के होते हैं। भारतीय किसी न किसी रूप में यहाँ आया करते हैं। महेश योगी भी नार्वेवासियों में परिचित नाम है। इन लोगों ने नार्वेवासियों को भजन और योग के सहारे हिंदी में भजन और संस्कृत में श्लोक सिखाए।

यहाँ भारतीयों का आना सन् १९७५ के आस-पास शुरू हुआ। इस समय नार्वे में २१००० भारतीय निवास करते हैं। यहाँ बसे भारतीय भारत के विभिन्न प्रांतों—पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, केरल, उड़ीसा, झारखंड, मध्य प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान आदि से हैं।

जब ये भारतीय आपस में मिलते हैं तो हिंदी बोलना पसंद करते हैं। हिंदी प्रवासियों की संपर्क भाषा है। यहाँ हिंदी का वातावरण नहीं है। यहाँ कार्य करने के अच्छे पैसे मिलते हैं, अत: लोग हिंदी के प्रचार-प्रसार, लेखन आदि की जगह पैसा कमाना पसंद करते हैं। पर जैसे-जैसे समय बीत रहा है, लोगों को समझ में आना शुरू हो गया है कि यदि अपने बच्चों को हिंदी या भारतीय संस्कार न सिखाए तो ये बच्चे आज केवल अपनी संस्कृति से दूर हो जाएँगे, वरन् अपने परिवार और माता-पिता से भी दूर होंगे, और अपने पूर्वजों के देश में संवाद नहीं कर सकेंगे। भाषा हमें अपनी जड़ों से जोड़ती है। हिंदी का पठन-पाठन अब बढ़ने लगा है।

नार्वे से अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं और किसी के का एक अंक छपा तो किसी के कुछ अंक छपे और कुछ पत्रिकाओं ने कुछ वर्षों में प्रकाशन बंद कर दिया या प्रकाशित होना बंद हो गईं। नार्वे से निम्नलिखित पत्रिकाएँ छपी थीं—१. परिचय २. पहचान ३. स्पाइल-दर्पण ४. त्रिवेणी ५. सनातन मंच ६. शांतिदूत ७. प्रवासी टाइम्स ८. वैश्विका ९. प्रवासी।

जब ये भारतीय आपस में मिलते हैं तो हिंदी बोलना पसंद करते हैं। हिंदी प्रवासियों की संपर्क भाषा है। यहाँ हिंदी का वातावरण नहीं है। यहाँ कार्य करने के अच्छे पैसे मिलते हैं, अतः लोग हिंदी के प्रचार-प्रसार, लेखन आदि की जगह पैसा कमाना पसंद करते हैं। पर जैसे-जैसे समय बीत रहा है, लोगों को समझ में आना शुरू हो गया है कि यदि अपने बच्चों को हिंदी या भारतीय संस्कार न सिखाए तो ये बच्चे आज केवल अपनी संस्कृति से दूर हो जाएँगे, वरन् अपने परिवार और माता-पिता से भी दूर होंगे, और अपने पूर्वजों के देश में संवाद नहीं कर सकेंगे। भाषा हमें अपनी जड़ों से जोड़ती है। हिंदी का पठन-पाठन अब बढ़ने लगा है।

नार्वे में हिंदी का पठन-पाठन

सन् १९८० को जब मैं नार्वे आया तो भारतीय दूतावास में दूतावास की मदद से हिंदी की कक्षाएँ लगाने लगा था। फिर स्कूल में हिंदी मात्रभाषा के रूप में पढ़ाई जाने लगी। सन् १९९३ में बजट की कटौती में हिंदी और अन्य मात्र भाषाओं की शिक्षा बंद हो गई। हिंदी केवल सहयोग की भाषा बन गई, जैसे किसी को कोई विषय न समझ आ रहा हो तो दो अध्यापकों द्वारा, जिसमें मात्रभाषा का शिक्षक भी सम्मिलित होता था, ताकि बच्चे को विषय समझने आसानी हो।

नार्वे की राजधानी में ओस्लो विश्विद्यालय में हिंदी के पठन-पाठन की व्यवस्था है। जर्मन मूल के प्रोफेसर क्लाउस जोलर विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाते हैं। रुथ स्मिथ अवकाश प्राप्त हो चुकी हैं। फिन थीसेन डेनमार्क और नार्वे में हिंदी पढ़ा चुके है, सन् २००८ से वह अवकाश प्राप्त कर चुके हैं। वह अब भी विश्वविद्यालय में कभी-कभी आते रहते हैं। फिन थीसेन हिंदी और मूल रूप से पारसी, हिंदी के अध्यापक रह चुके हैं। स्वर्गीय क्नुत क्रिस्तिआनसेन पहले हिंदी और नेपाली पढ़ाते थे। जबकि क्नुत क्रिस्तिआनसेन अच्छी हिंदी नहीं बोल पाते थे, पर वे हिंदी के विद्वान् थे।

इस लेख के लेखक भी कोपेनहेगन और ओस्लो विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ा चुके हैं।

हिंदी स्कूल नार्वे

ओस्लो में संगीता शुक्ला दिदरिक्सेन के नेतृत्व में हिंदी स्कूल चलता है। जिसमें कक्षा एक से आठ तक की हिंदी में शिक्षा की व्यवस्था है। संगीता शुक्ला दिदरिक्सेन ने नौ वर्ष की आयु में दो कविताएँ हिंदी में लिखी थीं और उसे नार्वेजीय भाषा में भी लिखा था, जो नार्वे की एक पुस्तक में संकलित हैं। वह स्पाइल के नार्वेजीय भाषा के बाल और युवा जगत् की संपादक रह चुकी हैं। जीतेंद्र पराशर भी हिंदी स्कूल में पढ़ते हैं, जो स्वयं एक कलाकार हैं और मंच संचालन भी कर लेते हैं। मीना ग्रोवर भी अपने घर पर बच्चों को निजी तौर पर हिंदी पढ़ाती हैं।

नार्वे के स्कूलों में यदि कोई छात्र या छात्रा अतिरिक्त विषय के रूप में मात्रभाषा के अंतर्गत कक्षा नौ या दस में हिंदी की परीक्षा दे सकता है। हिंदी में अच्छे अंक आने से उसके योग अंक का प्रतिशत भी बेहतर होता है, जो अच्छे स्कूल और विषयों में प्रवेश लेने में मदद मिलती है। मैंने (सुरेशचंद्र शुक्ल; शरद आलोक) ने सोशलिस्ट लेफ्ट पार्टी में हिंदी, पंजाबी और तमिल भाषा को जर्मन, फ्रेंच और स्पेनिश की भाँति स्कूलों में पढ़ाए जाने को लेकर एक प्रस्ताव पारित कराया था।

अन्य राजनैतिक पार्टियाँ भी ऐसा ही करें तो हिंदी भी अन्य अंतरराष्ट्रीय यूरोपीय भाषाओं की तरह पढ़ी जा सकेगी। नार्वे के अनेक स्कूलों में मात्रभाषा या सहयोगी अध्यापक के रूप में हिंदी के अध्यापक कार्य कर रहे हैं। हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें नार्वे में पुस्तकालय से और दुकानों में खरीदने को मिल जाती हैं। ओस्लो के दायकमान्सके पुस्तकालय में हिंदी की पुस्तकें आसानी से पढ़ने को मिल जाती हैं। यहाँ पर स्पाइल-दर्पण पत्रिका भी पढ़ने के लिए मिल जाती है। यहाँ श्रीलंकावासियों और एशियन दुकानों पर अकसर हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ मिल जाती हैं।

इन्होंने नार्वेजीय साहित्य का प्रचुर मात्रा में हिंदी में अनुवाद किया है। हेनरिक इबसेन के नाटकों गुड़िया का घर; मुर्गाबी और क्नुत हामसुन के उपन्यास भूख तथा नार्वे और डेनमार्क के एच.सी. अंदर्सन की लोककथाओं का अनुवाद किया है। अनेक संकलनों का संपादन और अनेक अंथोलोजियों में इनकी रचनाएँ संगृहीत हैं। इनकी कृतियों पर शोध हो रहे हैं। इनकी कथाओं पर छह टेलीफिल्में बन चुकी हैं। नार्वेजीय लेखक यूनियन, हिंदी अकादमी दिल्ली और चौथे विश्व हिंदी सम्मलेन मॉरीशस और छठे विश्व हिंदी सम्मलेन लंदन, यू.के., अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति और विश्व हिंदी समिति यू.एस.ए., अहिंसम भारतीय मैनचेस्टर और यू.के. हिंदी समिति, लंदन ने इनको पुरस्कृत किया है।

नार्वे में हिंदी की गोष्ठियाँ

भारतीय-नार्वेजीय सूचना और सांस्कृतिक फोरम हर महीने एक गोष्ठी का आयोजन करती है, जिसमें हिंदी में कविता, विचार और कहानियाँ सुनाई जाती हैं। भाग लेनेवाले का लेखक होना अनिवार्य नहीं है। इन गोष्ठियों के माध्यम से लोगों में हिंदी के प्रति समझ बढ़ रही है। एक मंच है, जहाँ अपनी भाषा में विचार प्रगट किए जा सकते हैं। जब कोई लेखक या साहित्यकार या राजनीतिज्ञ भारत से आते हैं, तब भी गोष्ठी में आमंत्रित किया जाता है। गोष्ठी को रोचक बनाने के लिए अकसर संगीत को भी सम्मिलित किया जाता है। महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, हेनरिक इबसेन, मुंशी प्रेमचंद का जन्मदिन मनाना, अंतरराष्ट्रीय पुस्तक दिवस, मानवता दिवस और त्योहार मनाए जाते हैं।

भारत-नार्वे लेखक सेमिनार का आयोजन वर्ष में एक बार किया जाता है जिसमें भारत से चार-पाँच हिंदी के लेखक यहाँ आते हैं और अपने-अपने लेख पढ़ते हैं। इसमें नार्वेजीय लेखक भी भाग लेते हैं। ओस्लो विश्वविद्यालय और अन्य शैक्षिक सांस्कृतिक संस्थानों को भी आमंत्रित किया जाता है। कार्यक्रम का संचालन हिंदी और नार्वेजीय भाषा के माध्यम से होता है।

नार्वे में हिंदी रचनाकार

सुरेशचंद्र शुक्ल शरद आलोक महात्मा गांधी को अपना आदर्श मानते हैं। इनके सात काव्य संग्रह हिंदी में और दो नार्वेजीय में प्रकाशित हो चुके हैं। दो कहानी-संग्रह हिंदी में और एक उर्दू में प्रकाशित हो चुका है। इन्होंने दो नाटक लिखे हैं।

आपके चर्चित कविता संग्रहों में—रजनी, नंगे पावों का सुख और नीड़ में फँसे पंख और कहानी। संग्रह में अर्धरात्रि का सूरज और; सरहदों के पार है। अनुवाद में चर्चित कृति 'गुड़िया का घर' है।

इन्होंने नार्वेजीय साहित्य का प्रचुर मात्रा में हिंदी में अनुवाद किया है। हेनरिक इबसेन के नाटकों गुड़िया का घर; मुर्गाबी और क्नुत हामसुन के उपन्यास भूख तथा नार्वे और डेनमार्क के एच.सी. अंदर्सन की लोककथाओं का अनुवाद किया है। अनेक संकलनों का संपादन और अनेक अंथोलोजियों में इनकी रचनाएँ संगृहीत हैं। इनकी कृतियों पर शोध हो रहे हैं। इनकी कथाओं पर छह टेलीफिल्में बन चुकी हैं। नार्वेजीय लेखक यूनियन, हिंदी अकादमी दिल्ली और चौथे विश्व हिंदी सम्मलेन मॉरीशस और छठे विश्व हिंदी सम्मलेन लंदन, यू.के., अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति और विश्व हिंदी समिति यू.एस.ए., अहिंसम भारतीय मैनचेस्टर और यू.के. हिंदी समिति, लंदन ने इनको पुरस्कृत किया है।

माया भारती : इन्होंने कविताएँ लिखी हैं। नार्वे से साहित्यिक समाचार आदि लिखती रहती हैं। स्पाइल-दर्पण के संपादकीय मंडल की सदस्य भी हैं। इनकी अनेक रचनाएँ, परिचय स्पाइल-दर्पण, अनुभूति नेट पत्रिका और वैश्विका में प्रकाशित हो चुके हैं। सोनांचल साहित्यकार संस्थान, सोनभद्र उत्तर प्रदेश, भारत ने इनको सम्मानित किया है।

पूर्णिमा चावला : स्वर्गीय पूर्णिमा चावला हिंदी अध्यापक थीं और कविताएँ लिखती थीं। उनका एक कविता-संग्रह 'कभी-कभी लगता है' उनके मरणोपरांत प्रकाशित हुआ। वे एक अनुवादक भी थीं। उन्होंने नार्वेजीय कहानियों का अनुवाद किया था, जो पुस्तक के रूप में स्तर पब्लिकेशंस से छपा भी था।

हरचरण चावला : स्वर्गीय हरचरण चावला मूलत: उर्दू में लिखते थे, परंतु इनकी दो पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं। कहानी संग्रह आखिरी कदम के पहले और एलबम यादों की हिंदी में प्रकाशित हुई थीं। उर्दू की पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते थे। इनको भी हिंदी का अच्छा ज्ञान नहीं था। इनको नार्वेजीय भी अच्छी नहीं आती थी। परंतु नार्वेजीय अनुवादकों की मदद से पुस्तक क्लब से प्रकाशित एक संकलन 'इंडिया फोर्तेल्लर' का संपादन किया, जो इनका बड़ा योगदान है। चावलाजी ने भारतीय अनुवादकों सुरजीत, कुर्शीद आलम और अन्य की मदद से अनुवाद किए, पर उन्होंने पुस्तक में अनुवादकों के नाम नहीं प्रकाशित किए, उनकी जगह अपना व धर्मपत्नी पूर्णिमा चावलाजी के नाम छापे हैं।

इंदर खोसला : ये शौकिया कविताएँ लिखते हैं। इनकी कविता में उर्दू का बाहुल्य है। इन्होंने हिंदी में आप बीती पुस्तकें गद्य में दो पुस्तकें

'क्या खोया क्या पाया' तथा 'मैं चला विदेश' और एक कविता की पुस्तक, जिसका शीर्षक है 'समुद्री लहरें' प्रकाशित की है। लेखक होने के लिए लगन होना जरूरी है और यह बात इंदर खोसला पर सही बैठती है। खोसलाजी अपने घर में दीवाली पूजा और पार्टी आयोजित करते हैं। भारतीय-नार्वेजीय सूचना और सांस्कृतिक फोरम, नार्वे ने इनको सम्मानित किया है।

राजेंद्र प्रसाद शुक्ल : अपनी साइकिल यात्रा पर दो पुस्तकें 'मेरी साइकिल यात्रा' लिखी थीं, जो लखनऊ के वंदे मातरम् प्रेस से छपीं। कुछ कविताएँ भी बालकाल में लिखीं। धार्मिक पत्रिका 'सनातन मंच' का प्रकाशन किया था, जो सनातन मंदिर सभा के अंतर्गत छपती थी, पर चल न सकी। परिचय से भी वे जुड़े थे।

मीना ग्रोवर : मीना ग्रोवर ने कविताएँ लिखी हैं। संगीत और योग-साधना भी जानती हैं। हिंदी का अध्यापन भी करती हैं। हिंदी की अच्छी जानकार हैं और विश्वविद्यालय में भी हिंदी पढ़ा चुकी हैं। इनकी कविताएँ 'स्पाइल-दर्पण' में छपती रहती हैं।

राय भट्टी : राय भट्टी पंजाबी के एक अच्छे कवि हैं। कई कविताएँ अनेक अंथोलॉजी में आई हैं। हिंदी में कभी-कभी लिखते हैं। इनकी कविता में गंभीरता है। इनको पंजाबी भाषा और साहित्य की अच्छी समझ है। 'स्पाइल-दर्पण' में कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। पंजाबी में एक अच्छे मंच संचालक भी हैं। इनको भारतीय-नार्वेजीय सूचना और सांस्कृतिक फोरम, नार्वे ने सम्मानित किया है।

इंदरजीत पाल : इंदरजीत पाल मूलत: पंजाबी में लिखते हैं, पर हिंदी में भी कविताएँ लिखी हैं। भाषा में उर्दू और पंजाबी भाषा के शब्दों का बाहुल्य है इनकी कविता में। स्पाइल-दर्पण में कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। इनको भारतीय-नार्वेजीय सूचना और सांस्कृतिक फोरम, नार्वे ने सम्मानित किया। 'प्रवासी' नाम से पत्रिका भी छापते थे।

मीनाक्षी जौहर : इन्होंने बचपन और स्कूल समय में कविताएँ लिखी हैं। इनकी कविताएँ बिखरी पढ़ी हैं पर कम पढ़ने को मिलती हैं।

कैलाश राय : कैलाश राय ने भी बचपन और स्कूल समय में कविता लिखी हैं, दो कविताएँ 'स्पाइल' में छपी हैं। इन्होंने ओस्लो से 'त्रिवेणी' नामक पत्रिका का संपादन और प्रकाशन शुरू किया था, पर बाद में किसी कारणों से पत्रिका बंद हो गई। नार्वे की प्रथम पत्रिका 'परिचय' के शुरू में यानी १९७९ में पहले अंकों के संपादक रहे।

अलका भटनागर : अलका भटनागर ने शौकिया दो-तीन कहानियाँ लिखी हैं। अब नहीं लिखतीं। इनकी रचनाएँ 'त्रिवेणी' और 'स्पाइल' में छपी हैं।

नार्वे से हिंदी में लिखनेवाले ब्लॉगर में सुरेशचंद्र शुक्ल शरद आलोक और अनुराग विद्यार्थी हैं।

संगीता शुक्ला दिदरिक्सेन : संगीता हिंदी स्कूल नार्वे की पहली प्रधानाचार्य हैं। नौ वर्ष की आयु में दो कविताएँ लिखी थीं, वे दोनों कविताएँ हिंदी और नार्वेजीय भाषा में नार्वे में बाल-युवा द्वारा लिकही कविताओं की अन्थोलॉजी में सम्मिलित हुई थीं।

भारतीय दूतावास में कार्यरत रचनाकार : नार्वे में अमर जीत, सीलेश कुमार और विनोद पासी हंसकमल तीनों भारतीय दूतावास में कार्यरत रहे और हिंदी में रचनाएँ लिखते थे। ये तीनों ओस्लो में होनेवाली साहित्यिक गोष्ठियों में तो भाग लेने के साथ-साथ परिचय और स्पाइल-दर्पण में कविताएँ लिखते थे। अमर जीत आज भी कविताएँ लिख रहे हैं, जिनको पाठकों और श्रोताओं ने पसंद किया है।

गुमनाम कभी-कभी लिखनेवाले रचनाकार : नार्वे में शिखा चंद्रा, राज पाठक, अलका भरत, पूनम कालिया, पूनम शर्मा ने कभी कविताएँ लिखी थीं और कभी-कभी गुरु शर्मा ओमबीर उपाध्याय भी लिखते हैं, जिन्होंने भारतीय दूतावास द्वारा आयोजित विश्व हिंदी दिवस पर पुरस्कार जीता है। बर्मिंघम यू.के. से डॉ. कृष्ण कुमार और डॉ. राखी बंसल ने एक नई पत्रिका 'आधुनिक साहित्य' यू.के. आरंभ की है, जिसे दिल्ली से आशीष खांडवे देखते हैं। डॉ. शैल अग्रवाल इंटरनेट पर 'लेखनी' नाम से भी एक पत्रिका निकालती हैं। अभी हाल ही में संध्या सिंह ने 'सिंगापुर संगम' नाम की पत्रिका के पहले अंक का नेट पर लोकार्पण किया है।

Post Box 31, Veitvet, 0518 Oslo, Norway
e-mail : speil.nett@gmail.com

हिंदी भाषा और साहित्य ने तो जन्म से ही अपने पैरों पर खड़ा होना सीखा है। —धीरेंद्र वर्मा

हिंदी और नागरी का प्रचार तथा विकास कोई भी रोक नहीं सकता। —गोविंद वल्लभ पंत

हिंदी का शिक्षण भारत में अनिवार्य ही होगा। —सुनीति कुमार चटर्जी

हिंदी, नागरी और राष्ट्रीयता अन्योन्याश्रित हैं। —नंददुलारे वाजपेयी

नीदरलैंड में हिंदी की स्थिति

• मोहन कांत गौतम

सन् २००३ के सितंबर महीने में 'यूरोप हिंदी समिति' ने हिंदी की दो और संस्थाओं के साथ सर्वप्रथम अंतरराष्ट्रीय कवि-सम्मेलन का आयोजन किया। दूसरी हिंदी संस्थाएँ थीं—'हिंदी परिषद् नीदरलैंड', जिसने द हेग में कांग्रेस भवन के हॉल का प्रबंध किया था और 'हिंदी प्रचार संस्था नीदरलैंड'। डॉ. विद्यानिवास मिश्र, जिन्हें 'बाबूजी' कहा जाता था, मैंने उन्हें 'ओहम' (हिंदू ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन) की बनी डॉक्यूमेंटरी फिल्म 'उपनिषद्' के उद्घाटन के लिए बीज वक्तव्य के लिए बुलाया था। उनसे निवेदन भी किया था कि वे द हेग में आकर अंतरराष्ट्रीय कवि-सम्मेलन का सभापतित्व करें। उस शाम को 'कांग्रेस भवन' का हॉल भरा हुआ था, जिसमें भारत, इंग्लैंड और नीदरलैंड के कवि उपस्थिति थे। कवि सम्मेलन का उद्घाटन पूर्व भारतीय राजदूत श्रीमती श्यामला कौशिक ने किया। उनकी मातृभाषा थी तो तमिल, पर उनकी हिंदी सराहनीय थी, जिसे आए हुए सभी हिंदीप्रेमी समझ सकते थे। भारत से श्री केशरीनाथ त्रिपाठी भी आए थे। उन्होंने अपने बीज वक्तव्य में कहा कि भारतीय जहाँ जाते हैं, अपने साथ स्वत: ही भारत ले जाते हैं, जिसमें उनकी अस्मिता में उनकी भाषा, संस्कार, परंपरा, संस्कृति और दैनिक रीति-रिवाज होते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि द हेग में घूमते हुए किसी दुकान पर हिंदी देवनागरी लिपि में कोई बोर्ड नहीं दिखाई दिया। भारतीयों ने भी ऐसा कुछ नहीं किया।

पिछले दो दशकों में हिंदी की स्थिति में सुधार के साथ प्रचार-प्रसार भी हुआ है, किंतु प्रक्रिया बहुत धीमी रही है। उस कवि-सम्मेलन में आए हुए भारतीय और भारतवंशी, जो अपने को हिंदुस्तानी कहते हैं, चाहते थे कि हिंदी की और प्रगति हो। प्रचार-प्रसार में नवयुवक पश्चिमीकरण के परिवेश में अपने सार्वभौमिक मूल्यों और सांस्कृतिक मान्यताओं के आधार पर भारतीयता, जो उनके आजा-आजी और माई-बाप सूरिनाम लाए थे, आजतक सदैव सुरक्षित बनी हुई हैं। आज हिंदी की वर्तमान स्थिति और भविष्य को समझने के लिए पहले तो पता लगाना होगा कि नीदरलैंड में हिंदी लिखने-पढ़ने और पत्र-व्यवहार करनेवाले हैं कौन? इनके अतीत की भूमिका में हिंदी की क्या सार्थकता थी? कैसे अपनी भिन्न-भिन्न मातृभाषाओं के साथ सूरिनामी का विकास

प्रसिद्ध नृतत्व वैज्ञानिक। अब तक ३६ पुस्तकें व लगभग १५० लेख प्रकाशित। अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालययों में ६० पी-एच.डी. और डी. लिट्. थीसिस की परीक्षा की है। हिंदी में कहानी, कविताएँ और निबंध, लेख आदि भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। आजकल यूरोपियन यूनिवर्सिटी ऑफ वेस्ट और ईस्ट के सभापति व कुलपति; दक्षिण कोरिया की सन-मून यूनिवर्सिटी के उप सभापति हैं। विश्व हिंदी सम्मान, सांस्कृतिक सम्मान और बहुत से भारतीय सम्मानों से सम्मानित।

हुआ? हाँ, इसमें भाषिक-प्रक्रिया के द्वारा हिंदुस्तानी समाज और उसकी सूरिनामी-हिंदुस्तानी भाषा फिर से जीवित हो गई। इस भाषिक-प्रक्रिया में विविध बोलियों का योग रहा। सरनामी में आंचलिक भोजपुरी भाषाएँ, अवधी, बनारसी बोली, मगही, ब्रज और बुंदेलखंडी का समावेश हुआ है। जो भारतवंशी अपने को हिंदुस्तानी कहते हैं, उनके दादा-परदादा (आजा-आजी) ने सूरिनाम में गुलामी प्रथा के उन्मूलन के बाद उत्तर भारत के लोग भरती करनेवालों के जाल में फँसकर 'श्रीराम' (सूरिनाम) टापू जा पहुँचे। सन् १८७३ से १९१६ तक भारतीय श्रमिकों का प्रवास ४४ वर्ष तक चला और ६४ जहाजों से ३४,३०४ प्रवासी भारतीय बागानों में काम करने के लिए सूरिनाम आए, जिसमें से ११७०० भारत वापस लौट गए। सन् १९१६ तक प्रवास होता रहा। सन् १९२१ में सूरिनाम से आखिरी जहाज भी भारत लौट गया। १९५०-६० तक सूरिनाम में धार्मिक और राजनीति पार्टियाँ और संस्थाएँ बन चुकी थीं। इस आधुनिकीकरण में हिंदुस्तानियों ने अपने बच्चों को पढ़ने और शिक्षण के लिए नीदरलैंड भेजा। इन्हीं प्रवासी हिंदुस्तानियों की संतानों और पीढ़ियों ने घर में सूरिनामी बोली और धार्मिक कृत्यों में हिंदी का उपयोग किया। बीसवीं सदी के सातवें और आठवें दशक में सूरिनामी हिंदुस्तानियों के बच्चों ने सूरिनाम में ही हिंदी पढ़ ली थी। १५ सितंबर, १९७७ में 'सूरिनाम हिंदी परिषद्' की स्थापना के साथ वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रसार समिति के पाठ्यक्रम को अपना लिया था। नीदरलैंड में सातवें दशक में डच सरकार के अनुदान से मंदिरों और स्वैच्छिक संस्थाओं में हिंदी का

अध्ययन-अध्यापन आरंभ हो गया था। १४ सितंबर, १९८३ में 'हिंदी परिषद् नीदरलैंड' की स्थापना और पंजीकरण द हेग से लगी बस्ती लायडसनडाम में हुआ। इसके प्रथम सभापति बिसुन दयाल ब्रिजमोहन थे। मैं भी इसका सलाहकर्ता था। पाठ्यक्रम की पुस्तकें ब्रिजमोहन ने मँगवा ली थीं।

सन् १९८५ में भारत के भाषा-विशेषज्ञ श्री उदय नारायण तिवारी ने पत्र द्वारा सूचित किया कि वे नीदरलैंड में इस संस्था से जुड़ना चाहेंगे। इसके पहले उन्होंने गयाना विश्वविद्यालय में हिंदी और भारतीय संस्कृति पढ़ाई थी। उन्होंने सूरिनाम में भी हिंदी पढ़ाई और 'वास्तविक हिंदी शब्दकोष' भी बनाया था, जिसमें हिंदी व अंग्रेजी और डच थी। वे चाहते थे कि हिंदी परिषद् के द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रचार हो, जिसमें हिंदू धर्म, देवभाषा संस्कृत, संगीत और भारतीय शास्त्रीय नृत्य भी हो। किसी कारणवश अनुदान न मिलने से योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी। मंडल के सदस्य हरिराम शरण के अनुसार १९८३ में २१० विद्यार्थियों ने वर्धा की परीक्षाएँ दी थीं। मैं भी परीक्षा समिति का सभापति था। परीक्षा के छह केंद्र थे, जो पूरे देश में फैले थे। साथ में १६ स्वैच्छिक संस्थाएँ भी थीं, जहाँ हिंदी का अध्यापन होता था। सातवें और आठवें दशकों से सूरिनामी हिंदुस्तानी भारत की संस्कृति और हिंदी भाषा पढ़ने के लिए लायडन विश्वविद्यालय के उप-संकाय में भारतीय विद्या के छात्र बन गए, जहाँ डॉ. मोहन गौतम और डॉ. स्खोक्कर हिंदी का अध्यापन करते थे। इन्हीं को हम 'दुबारा प्रवासी' कह सकते हैं, जो हिंदी के प्रति जागरूक थे और हिंदी के द्वारा आजा-आजी के भारत के ग्रामों में जाकर संपर्क बनाना चाहते थे।

२१वीं सदी के पहले दशक में प्रयत्न किया था कि एक विश्व हिंदी सम्मेलन यूरोप में द हेग में हो। कमेटियाँ बनीं, बजट बना, भारत सरकार और भारतीय दूतावास से बातें हुईं। भारत से दो डेलीगेशन भी आए, पर सब टाँय-टाँय फिस्स। भारत में यही कहा गया कि अगला सम्मेलन नीदरलैंड में ही होगा। श्री बालेश्वर अग्रवाल, डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी, श्री जगदीश शर्मा, भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयीजी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र और बहुत से हिंदी लेखक चाहते थे एवं वायदे भी किया था, पर कुछ नहीं हुआ। सूरिनाम में विश्व हिंदी सम्मेलन की समाप्ति पर घोषणा भी की थी, वहाँ के समाचार-पत्रों में भी घोषणा छपी थी।

सन् १९६० में भारतीय (भारत के नागरिक) बहुत कम थे और सरनामी हिंदुस्तानियों से मिलकर अपनी भारतीय अस्मिता की सुरक्षा करना चाहते थे। इन भारतीयों में पंजाबी भाषा बोलनेवालों का बहुमत था, जो पंजाबी को ही अधिक महत्त्व देते थे। यदि कोई हिंदी के स्थान पर सरनामी बोलनेवाला मिला तो उससे बात तक नहीं कर पाते थे, क्योंकि सरनामी व भोजपुरी भाषा का व्याकरण हिंदी की संरचना जैसा नहीं है। लिंग भेद से ही वाक्य बनते हैं। भारतीयों ने हिंदी पर विशेष ध्यान नहीं दिया और एक प्रकार से सूरिनामी भारतवंशियों का बहिष्कार किया। इस प्रक्रिया में दो वर्ग बन गए, जो न तो एक-दूसरे से मिलते थे और न पर्व एवं मंदिर में साथ-साथ पूजा-पाठ करते थे। भारतीयों ने अपने बच्चों को इंगलिश और अमरीकन स्कूलों में भेजा। उन्हें डच नहीं आती थी। सूरनामी भारतवंशियों ने अपने बच्चों को डच स्कूलों में भेजा, उन्होंने डच भाषा सूरिनाम से ही सीखी थी। वे डच समाज के भाग बन गए और डच राजनीतिक पार्टियों में भी योगदान दिया।

डच सरकार की अनुदान कटौती

डॉ. विद्यानिवास मिश्रजी के समय में ही डच सरकार की आर्थिक-समाज कल्याण की योजना में आर्थिक कटौती की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी थी। भारतीय विद्या विभाग का अध्यापन केवल लायडन विश्वविद्यालय में ही सुरक्षित था, जहाँ भारत की अन्य भाषाओं के साथ हिंदी का महत्त्व बहुत था। यदि कोई विद्यार्थी भारत के किसी विषय पर अध्ययन करना चाहता था तो उसके लिए हिंदी पढ़ना आवश्यक था, क्योंकि हिंदी अनिवार्य थी; यह विदित हो चुका था कि भारत से संप्रेषण हिंदी से ही हो सकता है। सन् १९३० से ही डॉ. फोगलने, जो भारत में वर्षों रहे थे, लायडन विश्वविद्यालय में 'कर्न इंस्टिट्यूट' की स्थापना करके हिंदी का अध्यापन करते थे। डाकर्न यहाँ के पहले संस्कृत के प्राध्यापक थे। वैसे इंस्टिट्यूट का नाम विश्वविख्यात हो चुका था। सन् १९२१ में 'नोबेल' सम्मान से सम्मानित रवींद्रनाथ ठाकुर भी यहाँ आए थे और उन्होंने व्याख्यान दिए थे। वैसे इंस्टिट्यूट का पुस्तकालय विश्व में प्रसिद्ध था। डॉ. फोगल के विद्यार्थी डॉ. वी. छाबड़ा ने उन्हीं के साथ प्रेमचंद की 'सप्त सरोज' का डच में अनुवाद में सहायता की थी। डॉ. फोगल उत्तर-पश्चिम भारत के पुरातत्त्व विभाग में उप-निदेशक थे। (सन् १९०२-१४) डॉ. छाबड़ा भूतपूर्व पुरातत्त्व विद्या लेखाकार थे। डॉ. सरलोक्कर और डॉ. गौतम ने हिंदी सीखने के लिए नई प्रणाली से डच से हिंदी सीखने की हिंदी व्याकरण पुस्तक लिखी, जो आज तक उपयोग की जा रही है। हिंदी के प्रति आकर्षण बढ़ा। डच विद्वानों के साथ सूरिनाम के भारतवंशी राजनीतिज्ञों ने भी हिंदी पढ़ी और भारतीय संस्कृति पर शोध-कार्य किए। डॉ. कौलेश्वर सुकुल का नाम प्रसिद्ध है। १९वीं सदी के अंतिम तीन दशकों में हिंदी प्रवासी भातरवंशियों के लिए भावनात्मक एकता अनिवार्य हो गई।

सूरिनामी हिंदुस्तानी मंदिरों में हिंदी देवनागरी लिपि में आज भी बैनर दिखाई देते हैं। चूँकि 'रोटी-रोजी' की भाषा डच है, इसलिए हिंदी लिखित आदेशों को डच में भी लिखा गया है। हिंदी के प्रति भावनाओं से भरा एक ऐतिहासिक रुझान है, जिसमें नीदरलैंड के 'दुबारा प्रवासी' भारतवंशियों की स्मृति में उनके आजा-आजी (पूर्वजों) के अनुभवों

का दर्द है। वही उनकी अस्मिता है, धरोहर है और जीवित खजाना है। नीदरलैंड के ही योहान योसुआकेटलार (१६५९-१७१८), जो थे तो जर्मन, ने हिंदी/हिंदुस्तानी का सर्वप्रथम व्याकरण १६९८ में लखनऊ में उनके सहायक वाडर होएव ने उसकी प्रति बनाई थी, जो लायडन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है और पांडुलिपि का नाम है—'Instruction reducalculation of Hindustani and Persian'। शिक्षा आदेश या शिक्षा हिंदुस्तानी और फारसी की), जो लखनऊ में बनी/लिखी थी। यह व्याकरण लैटिन व्याकरण के आधार पर है, जिसको भारतीय विद्वानों ने अपनाया है। सूरिनामी भारतवंशियों में पुरानी पीढ़ी के विद्वान् अभी हैं, जो हिंदी पढ़ लेते हैं, किंतु हिंदी पर उन्होंने न तो लिखा है और न छपवाया है। २००८ में कर्न इंस्टिट्यूट समाप्त करने से भारतीय भाषाएँ अब नहीं पढ़ाई जाती हैं। हाँ, सांकेतिक रूप में इंस्टिट्यूट ऑफ एशियन स्टडीज से जुड़ी है। वहाँ कुछ वर्षों से अध्यापन हो रहा है, किंतु किसी नई प्रणाली से, जिसमें बॉलीवुड फिल्मों की सहायता ली जाती है। कोई शोध नहीं हुआ है और न नए प्रकाशन आए हैं (गौतम, २००७)।

एक प्राइवेट विश्वविद्यालय 'यूनीवर्सिटी ऑफ वेस्ट ऐंड ईस्ट चाहता है कि हिंदी के साथ और विषयों को नीदरलैड में पढ़ाया जाए। आर्थिक सुविधा में कमी होने से इसमें विलंब हो रहा है। न तो डच सरकार से और न भारत सरकार से कोई अनुदान मिला है।

हिंदी प्रचार-प्रसार की स्वयं चलित संस्थाएँ

नीदरलैंड में हिंदी की चार संस्थाएँ हैं। सूरिनाम के विश्व हिंदी सम्मेलन में 'यूरोप हिंदी संस्था' बनी थी, जो अभी तक काम कर रही हैं। डॉ. गौतम इसके सभापति, चाहते हैं कि हिंदी पर सभी डच, भारतीय और भारतवंशी मिल-जुलकर काम करें। २१वीं सदी के पहले दशक में प्रयत्न किया था कि एक विश्व हिंदी सम्मेलन यूरोप में द हेग में हो। कमेटियाँ बनीं, बजट बना, भारत सरकार और भारतीय दूतावास से बातें हुईं। भारत से दो डेलीगेशन भी आए, पर सब टाँय-टाँय फिस्स। भारत में यही कहा गया कि अगला सम्मेलन नीदरलैंड में ही होगा। श्री बालेश्वर अग्रवाल, डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी, श्री जगदीश शर्मा, भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयीजी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र और बहुत से हिंदी लेखक चाहते थे एवं वायदे भी किया था, पर कुछ नहीं हुआ। सूरिनाम में विश्व हिंदी सम्मेलन की समाप्ति पर घोषणा भी की थी, वहाँ के समाचार-पत्रों में भी घोषणा छपी थी। पर जब सरकार बदली तो कहा गया कि नीदरलैंड में नहीं, न्यूयॉर्क में होगा, जिससे हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ में पहुँचेगी और अनिवार्य भाषा बन जाएगी। इस स्थगन से नीदरलैंड के भारतवंशियों की आशा पर पानी पड़ गया। उन्होंने दस साल तक प्रतीक्षा की, अब भी कहते हैं कि कहाँ तक भारत सरकार के वायदों का विश्वास करें? जब मोदीजी की बी.जे.पी. सरकार आई तो सोचा था कि अगला हिंदी सम्मेलन नीदरलैंड में जरूर होगा, पर नहीं हुआ और सूचना मिली कि भारत में होगा। डॉ. गौतम स्वयं विदेश राज्य मंत्री जनरल वी.के. सिंह से मिले। वे कुछ नहीं कर सकते थे, यही कहा कि आप अवश्य आएँ। उनके सचिव ने मुझे बैंकॉक में टेलीफोन पर बताया कि आपको भोपाल आना है। निमंत्रण मिला कि विशिष्ट अतिथि आप होंगे। मैं चाहता था कि प्रवासी भारतीयों के सत्र में बोलूँ। कई बार टेलीफोन किया, पर कोई उत्तर नहीं मिला। जब बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर ने मंत्रालय से पूछा तो बताया गया कि आप किसी सत्र में नहीं बोलेंगे और अपना अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय हवाई खर्चा और रहने की सुविधा आप स्वयं देंगे। मैं नहीं गया, मुझे लगा कि सब दिखावे का मेला है। जब भारतवंशियों की हिंदी संस्थाओं को बताया तो उनको भी अच्छा नहीं लगा। लगता है कि नीदरलैंड में हिंदी सम्मेलन अब नहीं होगा। दुःख इस बात का है कि नीदरलैंड में जो हिंदी के प्रचार-प्रसार की प्रक्रिया में विकास हो रहा था, वह रुक गया। सम्मेलन से प्रेरणा मिलती। तीन हिंदी संस्थाओं के नाम हैं—'हिंदी परिषद् नीदरलैंड, जिसके सभापति नारायण शर्मा हैं (१९८३), 'हिंदी प्रचार संस्था' (१९९७), सभापति हैं चंद्र घुरबीन और तीसरी है, 'हिंदी राष्ट्रभाषा संस्था नीदरलैंड,' इसके सभापति हैं चंद्र सुरजन, जो कवि भी हैं। अभाग्य ही कहिए कि आपस की लड़ाई में नई संस्थाएँ बनीं। तीन वर्ष पहले भारतीय राजदूत जे.एस. मुकुल ने आई.सी.सी.आर. से निवेदन करके एक विभाग भारतीय संस्कृति की स्थापना करवा दी, जिसमें व्याख्यान, भारतीय नृत्य और संगीत के साथ हिंदी अध्यापन आरंभ करवा दिया। हिंदी पढ़ानेवाली एन. कांता रानी हैं, जो पहले सूरिनाम में भी हिंदी, वैसे राजा मुनि ने भारतवंशियों को भारतीयों से मिलाने में काम किया है, पढ़ाती थीं। इन्होंने वर्धा राष्ट्रभाषा समित के कार्यक्रम को नहीं अपनाया था। जब सूरिनामी भारतवंशियों ने इसका विरोध किया, तब उन्होंने और पुस्तकों के साथ अपना लिया। इसी वर्ष उन्होंने हिंदी के विद्यार्थियों का उत्सव किया था और नए भारतीय राजदूत बीनु राजा मुनि ने उसमें लोगों को प्रमाण-पत्र दिए। सूरिनाम के रमेश रामौतार को सबसे पुराना हिंदी का कर्ताधर्ता बनाया। और भी कई हिंदी के विद्वान् हैं, जिनका नाम तक नहीं लिया। रूपलाल बहादुर सिंह भी हैं, जो पहले ख़ोनिंगन में उत्तर नीदरलैंड में हिंदी का प्रचार-प्रसार आरंभ से ही करते थे। उन्होंने लगभग ३० वर्ष तक हिंदी पत्रिका भी निकाली थी, अब द हेग ही में रहते हैं, का नाम तक नहीं लिया गया। शायद अनभिज्ञता थी, कांता रानी को मालूम नहीं। सभी ने एक बात अवश्य कही कि डॉ. गौतम का नाम क्यों नहीं लिया, क्योंकि सबसे पुराने हिंदी सिखानेवाले तो वही हैं। हाँ सभी हिंदी की संस्थाएँ हिंदी दिवस अवश्य मनाती हैं। हिंदी राष्ट्रभाषा नीदरलैंड के १९१४ के हिंदी दिवस का चित्र देखिए।

सनातन धर्म हिंदू परिषद् ने नीदरलैंड में ५ स्कूल स्थापित किए हैं, जिसमें हिंदी और भारतीय संस्कृति भी पढ़ाई जाती है। डॉ. गौतम उस मंडल के सदस्य ही नहीं, संस्थापक भी हैं। इन हिंदू स्कूलों के नाम हिंदू देवी-देवताओं पर हैं। छटा स्कूल भी द हेग में है, जो दकियानूसी हिंदू धर्म के खिलाफ है। इस सनातन संस्था ने एक कविता-संग्रह भी

निकाला है, जो डच में 'खदिख्त बंडल' के नाम से हैं, जिसमें डच कविताओं के साथ ८ सूरिनामी भारतवंशी विद्यार्थियों की हिंदी में १२ कविताएँ हैं। हिंदू महासभा संस्था और सनातन हिंदू धर्म संस्था में द्वेष की भावनाएँ हैं और दोनों अलग-अलग कार्यक्रम करती हैं। हॉलैंड में लगभग ७० हिंदू मंदिर हैं, जहाँ हिंदी में ही पूजा-पाठ, कीर्तन, भजन, व्याख्यान और हिंदी पढ़ाई जाती है। आर्य समाज की एक राष्ट्रीय फास्टनेट संस्था है, जिसमें शहरों की सभी आर्य समाज की संस्थाएँ जुड़ी हैं और उनके मंदिरों में भी हिंदी अध्यापन होता है। पत्रिका भी निकालते हैं। वैसे नए युवकों ने हिंदी कविताएँ लिखी हैं। डच सरकार की नीति है कि सभी वर्ग स्वतंत्रता से विकसित हों। इस कारण धर्म और संस्कृति के विकास में डच लोगों का योगदान १७९८ से रहा है।

सरनामी हिंदुस्तानी भाषा पर भी तीन विद्यार्थियों ने काम किया था–शीला साहतू, मोती माढ़े, क्रिस बैजनाथ। सरनामी संस्कृति पर सूर्य प्रसाद वीरे, वैलमुड और हरि रामभरण, ये सब ही निबंधों के निर्देशन और मार्गदर्शन डॉ. स्खोक्कर और डॉ. गौतम के अधीन हुआ था। डॉ. स्खोक्कर और डॉ. गौतम ने कई पुस्तकें साथ लिखीं, जैसे–हिंदी गद्य का इतिहास', 'हिंदी गद्य रीडर', 'अमृतलाल नागर'। नई कहानी और कुछ चुने लेखक सूरिनाम के हिंदुस्तानियों की हिंदी नाटक पद्धति आदि जो प्रकाशित नहीं हो पाए हैं। अभाग्यवश डॉ. स्खोक्कर के निधन से और डॉ. गौतम के परिवार की अनदेखी समस्याओं से काम रुक गया। आशा की जाती है कि शीघ्र ही उनका प्रकाशन होगा।

फरजाउलिंग नीति के अनुसार सभी को अपने धर्म और भाषा की स्वतंत्रता है। पहले तो डच सरकार अनुदान भी देती थी। १९८४ में ओ.ई.टी.सी. बनी, जिसने अल्पसंख्यक समाज को मीडच समाज का अंग माना। इसका अर्थ है कि सभी वर्गों को उनकी भाषा और संस्कृति में शिक्षा दी जाए। जब वे अपनी अस्मिता जान जाएँगे तो आसानी से बिना द्वेषभाव के डच समाज में मिलकर रहेंगे। इसीलिए पहले हिंदू और मुसलिम ब्रॉडकॉस्टिंग कॉरपोरेशन थे। ओहम के निर्माण में काफी लोगों का योगदान था, जैसे राजेंद्र रामनाथ, राम लाल, रालाराम तिवारी और डॉ. गौतम। अभाग्यवश हिंदू महासभा का द्वेष कि संस्थाओं में सभापति मैं बनूँ के चक्कर में झगड़ा होता रहा और ओहम व अन्य वर्गों के रेडियो, टी.वी. बंद हो गए। अब हिंदू कार्यक्रम और प्रोग्राम डच बॉडकास्टिंग ही चलाती है, जिन्हें भारतीय संस्कृति और भाषाओं का ज्ञान नहीं है। डॉ. स्खोक्कर और डॉ. गौतम ने लगभग दो दशक पहले दक्षिण एशियाई-यूरोपियन भक्ति-सम्मेलन किया, जिसकी भारत में छपी पुस्तक को लोगों ने पढ़ा तो उनमें हिंदी सीखने की लालसा जाग्रत् हुई। जिससे डच लोगों ने कबीर, नानक, तुलसीदास और सूरदास के मानवीय भक्ति से जुड़े योग को पहचाना।

दु:ख इस बात का है कि भारतीय लोग हिंदी तो समझते हैं, पर पंजाबी को अधिक स्थान देते हैं। यदि भारतीय व्यापारी वर्ग चाहे तो नीदरलैंड में भारतीय संस्कृति और भाषाओं के लिए एक इंस्टिट्यूट बना सकता है, पर ऐसा नहीं हुआ है। जब तक भारत सरकार अनुदान नहीं देगी, कुछ नहीं होगा। आज जो भी हिंदी की स्थिति है, उसमें भारतवंशियों का ही योग है। आज हिंदी दयनीय स्थिति से गुजर रही है। २० वर्ष पहले एक डच विद्यार्थी ने शोध किया था। उसके अनुसार सूरीनामी भारतवंशी ६७ प्रतिशत डच भाषा का उपयोग करते थे और सरनामी हिंदी (बोलचाल की भाषा) का २६ प्रतिशत और मानक हिंदी केवल २ प्रतिशत। इन २० वर्षों में स्थिति और नाजुक हो गई है। नई खोज से विदित होता है कि नई पीढ़ी (तीसरी) आज ८२ प्रतिशत डच भाषा को महत्त्व देती है और सरनामी को १६ प्रतिशत एवं मानक हिंदी की दो प्रतिशत ही है, क्योंकि यह मंदिरों में पूजा-पाठ, कीर्तन भजन और व्याख्यानों की भाषा बन गई है। हाँ, जो लोग भारत जाते हैं, उनमें मुख्यत: धार्मिक स्थलों को देखने जाते हैं। प्रवासी आजा-आजी की जड़ों को देखने कुछ ही लोग जाते हैं। पर्यटक रूप में बहुत कम लोग ही जाते हैं। बॉलीवुड जाते अवश्य हैं, पर वहाँ फिल्म के अभिनेता और अभिनेत्रियों से मिलने का संयोग ही नहीं मिलता। इसलिए फिल्म अभिनेताओं और संगीतज्ञों को यहीं नीदरलैंड में पैसा देकर बुलाते हैं, जिसमें १०० यूरो का टिकट भी हो तो लोग जाते हैं और अगर वे अभिनेताओं के साथ फोटो खिंचवा सकें तो वे १०० यूरो और भी दे सकते हैं। वही चित्र उनके मकानों में दीवारों पर लटकते दिखाई देते हैं। हाँ, नीदरलैंड में हिंदी-डच-हिंदी शब्दकोश अवश्य लिखे गए हैं। अभाग्यवश सूरिनामी भारतवंशी हिंदुस्तानी बहुत कम अंग्रेजी बोलते हैं, जबकि भारतीय हिंदी में नहीं, अपितु अंग्रेजी में ही संप्रेषण करना चाहते हैं। इसलिए क्योंकि यदि वे अंग्रेजी और भारत की तरह हिंदी नहीं बोल पाते तो उन्हें असभ्य कहते हैं, क्योंकि उनके भारतीय रीति-रिवाज और संस्कार करने की विधि सौ-डेढ़ सौ वर्ष पुरानी है। सूरिनाम भी भारत से लगभग १०,००० किलोमीटर दूर है। सूरिनामी हिंदुस्तानी, जो स्वयं को हिंदुस्तानी ही कहते हैं। भारतवंशी भारत के त्योहारों के साथ-साथ डच ईसाइयों के त्योहार भी मनाते हैं। स्त्रियाँ जन्म पर सोहरा गाती हैं। होली या फगुवा पर अवधी और ब्रज में चौताल गाते हैं। द हेग में हर वर्ष मिलन होता है, जो तीन दिन तक चलता है। हिंदी में भी कार्यक्रम होते हैं, किंतु भारतीय अब बहुत ही कम जाने लगे हैं, क्योंकि कुछ हिंदुस्तानी इस मेले में अपना सौदा भी बेचते हैं।

जब-जब सूरिनामी आजा-आजी की बातें करते हैं, वे अब भी

(पहली पीढ़ी के सूरिनामी) कबीर को याद करते हैं—

'उड़ गइले हंसा यह मोरे देसवा।
भैया यह जग कोई नाहीं आपन॥ टेक...
कंकड़ चुनि-चिनि महल बनाया, पत्थर केई दरवाजा।
ना घर मेरा, ना घर तेरा चिरिया रैन बसेरा॥ टेक...

फिर भी जो हिंदी का प्रेम है, उसे सूरिनाम के अमर सिंह (१९३२-२०१६) की कविता से हिंदी दिवस पर अवश्य पढ़ते हैं—

'अय दुनिया के लोगों सुन लो एक खबर मस्तानी।
हिंदी सीखो, हिंदी बोलो, हिंदी से ही हिंदुस्तानी॥
हिंदी से संसार हमारा, हिंदी ही संस्कार हमारा।
हिंदी दाना, हिंदी पानी, हिंदी मधुर जबानी है, अय...
हिंदी ही कर काज हमारा, हिंदी ही रिवाज हमारा।
हिंदी ही सरताज हमारा, हिंदी ही महाराज हमारा॥ अय...

स्वचलित संस्थाओं को अनुदान न मिलने से बहुत कम मंदिरों और संध्याओं में हिंदी अब भी बढ़ रही है। पहले विश्वविद्यालय में हिंदी लेखक भी आते थे, पर भारतीय विद्या के उप-संकाय की समाप्ति से अब नहीं आते। पहले आनेवालों की स्मृतियाँ ही बची हैं, जिनमें लोकेश चंद्र, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, कन्हैयालाल नंदन, राजेंद्र अवस्थी, गंगा प्रसाद विमल, कैलाश वाजपेयी, गोपी नाथन, प्रभाकर माचवे, मनमोहन सरल, विद्यानिवास मिश्र और केशरीनाथ त्रिपाठी आदि के नाम अभी तक गूँज रहे हैं। हिंदी के विद्यार्थियों ने लायडन विश्वविद्यालय में शोध भी किया है। जिनके निबंध जो प्रेमचंद (फोगल के बाद कई विद्यार्थियों ने लिखा। राजेंद्र अवस्थी, कृष्ण बलदेव वैद, कन्हैयालाल नंदन, भीष्म साहनी, कमलेश्वर, गंगा प्रसाद विमल, मनमोहन सरल, अज्ञेय आदि पर थे। सरनामी हिंदुस्तानी भाषा पर भी तीन विद्यार्थियों ने काम किया था—शीला साहतू, मोती माढ़े, क्रिस बैजनाथ। सरनामी संस्कृति पर सूर्य प्रसाद वीरे, वैलमुड और हरि रामभरण, ये सब ही निबंधों के निर्देशन और मार्गदर्शन डॉ. स्खोक्कर और डॉ. गौतम के अधीन हुआ था। डॉ. स्खोक्कर और डॉ. गौतम ने कई पुस्तकें साथ लिखीं, जैसे—हिंदी गद्य का इतिहास', 'हिंदी गद्य रीडर', 'अमृतलाल नागर'। नई कहानी और कुछ चुने लेखक सूरिनाम के हिंदुस्तानियों की हिंदी नाटक पद्धति आदि जो प्रकाशित नहीं हो पाए हैं। अभाग्यवश डॉ. स्खोक्कर के निधन से और डॉ. गौतम के परिवार की अनदेखी समस्याओं से काम रुक गया। आशा की जाती है कि शीघ्र ही उनका प्रकाशन होगा। आज नीदरलैंड में भी हिंदी अनुवाद करनेवालों की और दुभाषियों की माँग है। ब्रुसेल्स (यूरोप का केंद्र) भी चाहता है कि उन्हें भी हिंदी अनुवाद करनेवाले मिलें। आज भारत एक आर्थिक दृष्टि से विश्व में काफी आगे बढ़ गया है और अब यूरोप की निगाह भारत पर है। व्यापार बढ़ रहा है और हिंदी समझनेवालों की माँग है। विश्वविद्यालयों में भारतीय विद्या और भाषाओं के अध्ययन न होने से हिंदी के प्रति विद्यार्थियों की रुझान में रुकावट आ गई है। फिर नीदरलैंड में हिंदी पुस्तकों के न उपलब्ध होने से हिंदुस्तानियों को पता ही नहीं चलता कि भारत में हिंदी पर क्या छप रहा है और कौन प्रकाशक छाप रहा है? फिर भी हिंदी दिवस पर सभी भारतवंशी मिलकर गाते हैं—

''हिंदी हिंदी हिंदी हैं हम, हिंदी की संतान हैं
हिंदी बोली घर-घर बोलें, यही हमारी शान है
हिंदी बनी है राष्ट्रभाषा, भारत की यह देख लो
हिंदी से ही एकता है, भारत की यह देख लो
हिंदी बोलो घर-घर में तो सदा तरक्की मान लो
हिंदी का गौरव करने से, गौरव अपना जान लो

हिंदी दिवस पर हिंदू, मुसलमान व ईसाई सभी जाते हैं और मिलकर हिंदी गान करते हैं। सूरिनाम के रामायण ज्ञाता मुंशी रहमान खान (१८७४-१९७२) ने सदैव अपने दोहों को दुहराया और भारतवंशियों में एकता की दुहाई दी। सन् १९५३ में 'दोहा शिक्षावली' को भारत में प्रकाशित करवाया और जहाजी भाई प्रवासी हिंदु-मुसलमानों को अपनी संस्कृति और भाषा-धर्म न भूलने की याद दिलाई—

निशि दिन पालियो धर्म तुम पाप से रहियो दूर।
हिंसा, चोरी, झूठ, छल, कर्ज सबन से क्रूर॥
रहियो तुम जिस देश में पलियो नृप की नीति।
चलियो अपने धर्म पर सबसे रखियो प्रीति॥

सा अ

Van Ledenberchstraat 8,
2334 AT Leiden
e-mail : gautammohan@hotmail.com

संस्कृत माँ, हिंदी गृहणी और अंग्रेजी नौकरानी है। —डॉ. फादर कामिल बुल्के

हिंदी भाषा को भारतीय जनता तथा संपूर्ण मानवता के लिए बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सँभालना है। —सुनीति कुमार चटर्जी

राष्ट्रभाषा हिंदी हो जाने पर भी हमारे व्यक्तित्व और सार्वजनिक जीवन पर विदेशी भाषा का प्रभुत्व अत्यंत गर्हित बात है। —कमलापति त्रिपाठी

नीदरलैंड में हिंदी भाषा और उसका स्वरूप

• पुष्पिता अवस्थी

प्रतिष्ठित लेखिका। वसंत कॉलेज फॉर विमेन के हिंदी विभाग की अध्यक्ष रहीं। सूरीनाम में आयोजित सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन की संयोजक। तीन दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न साहित्यिक विभूतियों पर डॉक्यूमेंटरी फिल्मों का निर्माण। जापान, मॉरीशस, अमेरिका, इंग्लैंड सहित अनेक यूरोपीय और कैरिबियन देशों में काव्य-पाठ। संप्रति नीदरलैंड स्थित 'हिंदी यूनीवर्स फाउंडेशन' की निदेशक।

भारतवंशी बहुल देश वस्तुतः भारतीयता के ज्योति-स्तंभ हैं। भारतीय संस्कृति की सुगंध यहाँ के भारतवासियों की प्रकृति में है। भारतभूमि से उपजे शंख की तरह हैं— सूरीनाम, ट्रिनिडाड, गयाना, मॉरीशस, फीजी आदि देश के भारतवंशी, जिनके हृदय के शंख से भारतीय संस्कृति का शंखनाद होता है। अपनी संस्कृति और धर्म पर बहुत मारक प्रहार सहे जाने के बावजूद देश की आजादी के बाद अपनी संस्कृति का मस्तक ऊँचा किए हुए हैं। इन देशों की आजादी से पूर्व तक भारतवर्ष के राष्ट्रीय गान को अपना राष्ट्रीय गीत मानते हुए गाते थे और किसी भी कार्यक्रम की समाप्ति के बाद भी उसे ही गाते थे।

भारतवंशी जन विश्व के अनेक देशों में व्याप्त हैं। उनके पूर्वज जीविका उपार्जन के लिए अलग-अलग समय पर अनेक देशों में गए। अनेक तत्कालीन परिस्थितियों से वशीभूत होकर वहीं बस गए। आज वहाँ के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन से उनका जीवन जुड़ा हुआ है। जीवन-मूल्य, परंपराएँ, धर्म, रीति-रिवाज, लोकगीत, लोककथाएँ उनके प्रवासी पूर्वज अपने साथ लेकर आए उस संस्कृति को भारतवंशियों ने पर्याप्त मात्रा में आज तक सुरक्षित रखा है। जहाँ तक संस्कृति के बाह्य उपकरणों का संबंध है, यह कहा जा सकता है कि अनेक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रभावित होकर ये लोग अपने रहन-सहन, अपने पहनावे और कुछ हद तक अपनी भाषा में परिवर्तन कर चुके हैं।

फ्रांस और पोलैंड के सत्ताधारी उत्तर प्रदेश और बिहार के भारतवंशियों को धान की फसल की पौध की तरह उन्हें ले गए और अपनी कमाई के लिए दूसरे देश में रोप दिया। वे वहाँ फीजी, मॉरीशस, गयाना, ट्रिनीडाड जैसे भारतवंशी बहुल देशों की धरती पर धान की फसल की तरह उगे, फैले और उनकी सत्ता एवं संपत्ति की भूख को पूरा किया।

विश्व में गुलामी और शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत विश्व के ब्रिटिश फ्रांस और डच साम्राज्य से जुड़े द्वीप देशों और क्षेत्रों में गन्ना की उगाई की जो व्हाइट गोल्ड कहा गया। गोरों की भाषा में व्हाइट गोल्ड ही है, क्योंकि गन्ने की सफेद चीनी की कमाई से उन्होंने अपने देशों को स्वर्णलंका में तब्दील किया। इन गोरे पूँजीपतियों के ह्वाइट गोल्ड में ही हमारे भारतीयों की देह की खदान से निकला और पिघला हुआ लाल सोना था। लाल सोना जीवन की कसौटी में सूरज की भट्ठी में तपकर सफेद सोना बना। हमारे पुरखों का पसीना नहीं परिश्रम के हिमालय से प्रभावित हुई गंगा-यमुना की जलधारा है। वर्तमान पीढ़ी हमारे आजादी की श्रम-गंगा धारा की धाराएँ हैं। आज भी भारतीय संस्कृति मानव धरती को सींच रही है। विश्व के देशों में भारतीय संस्कृति का वैभव विदेशी भारतीयों के पसीने की कमाई का पुरस्कार है। उनका रक्त उनके देश की खदानों सा लाल है, जिसे वे सूरज के ताप में पिघलाते हैं और ज्योतिष-पुष्पों की खेती करते हैं। वे स्वर्ण-फसल उगाते हैं, जो भारतवंशियों के खून और पसीने की कमाई के स्वर्णिम कुसुम हैं। जिनमें उनके परिश्रम की सुगंध है और उस परिश्रम में भारतीय संस्कृति की शक्ति है।

एक ओर यदि मानें तो धर्म ही संस्कृति की कोशिका है तो दूसरी ओर से देखें तो संस्कृति ही धर्म की संरक्षिका है। इन दोनों का ही उदात्त और वसुधैव कुटुंबकम् स्वरूप शिक्षा के द्वारा ही संभव है। शिक्षा धर्म और संस्कृति की सही समझ देती है या यों कहें, धर्म और संस्कृति की सही समझ के लिए शिक्षा की दीक्षा अपरिहार्य है। सभी धर्मों, संस्कृतियों का मूल लक्ष्य मनुष्य और मानवता की रक्षा है।

विदेश के अन्य देशों में भारतीय भारतवंशियों ने अपनी भारतीय संस्कृति और धर्म की ज्योति से यह सिद्ध किया है कि भारतीय संस्कृति में विश्व की धर्म, सभ्यता और संस्कृति से समायोजन करने की अद्‌भुत गुणवत्ता है।

सन् १९७५ में सूरीनाम देश की आजादी के उपरांत जीविका और जीवन की असुरक्षा से भयभीत भारतवंशियों का एक बड़ा हिस्सा हॉलैंड आकर बस गया था। सातवें दशक में नीदरलैंड सरकार की स्वीकृति से हजारों की संख्या में सूरीनामी नागरिक नीदरलैंड भाग आए। उन सबके साथ भारतवंशियों की नीदरलैंड सरकार ने जीवन और जीविका की व्यवस्था की। शनैः-शनैः डच सरकार की सहायता

से स्वचालित संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ। भारतवंशियों ने अपने समाज में सामाजिकता और संगठन शक्ति संवर्धित करने के लिए हिंदुस्तानी समाज के भीतर पठन-पाठन की कक्षाएँ आरंभ कीं। सनातन धर्म और आर्य समाज द्वारा अनेक संस्थाएँ गठित हुईं। जिससे नीदरलैंड की हिंदुस्तानी संस्कृति का स्वरूप सूरीनामी संस्कृति में समाहित है, पर उसकी जड़ें भारतीयता की अंतर-संस्कृति में अनुसूचित हैं।

इस तरह नए सिरे से धर्म, भाषा, संस्कृति के अस्तित्व की आस्था को पुनः संरक्षित करने के उद्देश्य से हिंदी भाषा का अध्ययन-अध्यापन प्रारंभ हुआ। गुरुदत्त सिंह और कर्ताराम आदि सूरीनामी भारतवंशियों द्वारा हिंदुस्तानी संस्कृति को बचाए रखने के लिए नाटक लिखे गए। इस प्रकार संगीत मंडलियों और नृत्य कार्यों द्वारा सूरीनामी हिंदुस्तानी लोक संस्कृति के मूल्यों की पुनर्स्थापना का घोर प्रयत्न किया गया। नीदरलैंड के लाइडन विश्वविद्यालय से डॉ. स्खोकुर और यूतरेख्त विश्वविद्यालय के डॉ. के डॉ. गैफ्के विद्वानों ने हिंदी व्याकरण के साथ-साथ भक्तिकालीन और आधुनिक हिंदी साहित्य पर अनेकानेक लेख लिखकर विद्यार्थियों में हिंदी भाषा और साहित्य की गहरी जड़ें जमाईं। समय-समय पर इस सिलसिले में भारत से हिंदी विद्वानों को भी आमंत्रित करते रहे। सूरीनाम के हिंदुस्तानी भारतवंशी जनसमाज ने भी हॉलैंड में हिंदी के प्रचार-प्रसार में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। १४ सितंबर को यहाँ आज भी हिंदी दिवस मनाया जाता है। इस अवसर पर संस्थाओं द्वारा वाद-विवाद, भाषण, निबंध लेखन आदि प्रतियोगिताएँ आयोजित होती हैं।

वस्तुतः हॉलैंड देश में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार की वही स्थिति है, जो सूरीनाम देश में हिंदी की है। दरअसल हॉलैंड में हिंदी भाषी प्रवासियों की संख्या अत्यल्प है। यहाँ का हिंदुस्तानी बनाम भारतीय समाज सूरीनामी भारतवंशियों से रचा-बसा और बना है। इन के संस्कारों खान-पान का मूल आधार सूरीनाम का हिंदुस्तानी समाज है। इनके पूर्वज-पुरखे हैं। इनकी हिंदी भाषा मूलतः सरनामी है। यद्यपि सरनामी की संरचना का आधार हिंदी भाषा की बोलियों के परिवार का ही हिस्सा है। डॉ. ग्रियर्सन के समय की अवधि, भोजपुरी, मैथिली और मगही की बोलियाँ तथा तुलसी के मानस और कबीर के निर्गुण के लोक साहित्य की भाषा संस्कार से निर्मित सी भाषा है, जो सूरीनामी देश में उत्तर प्रदेश बिहार, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ प्रदेशों से गए हुए किसान मजदूरों की बोलियों से बनी हुई भाषा है और अपनी मिठास के साथ वैसी ही बनी और बची हुई है। हिंदी भाषा के लेखक-कवि आज भी अपनी मातृभाषा और सरनामी भाषा के रूप में सूरीनामी भारतवंशियों के बीच प्रसिद्ध हैं। यह उनके बोलचाल, संबंध, संपर्क और साहित्य अभिव्यक्ति की साहित्यिक भाषा बनी हुई है। इस तरह से हॉलैंड में भी सरनामी भाषा में साहित्य लिखनेवालों का अपना एक समाज बन गया है। इस भाषा में कई प्रतिष्ठित लेखक हुए हैं। उनकी कविताएँ और उपन्यासों में आज भी अपने पुरखों के संघर्ष की संवेदनशील अभिव्यक्ति पढ़ने को मिलती है। जिनमें चित्रा गयादीन, उषा मार्ढे, रवींद्र बलदेव सिंह, चाँदनी, राज रामदास, राबिन गंगादीन, राजमोहन, संदीप बदलू, मालाकिशुन दयाल आदि प्रमुख हैं।

इस तरह से डॉ. तेयो दम्स्त्येख, डॉ. डिक और डॉ. अनैत फंड हुक के रूप में तीन डच विद्वान् हिंदी के प्रचार-प्रसार निमित्त नीदरलैंड में सक्रिय हैं, जो इन लोगों की जीविका का आधार है और जीवन का भी। इन विद्वानों ने ५ वर्षों से अधिक का समय लगाकर भारत से हिंदी भाषा और साहित्य की पढ़ाई की और आगे चलकर शोध कार्य भी यहीं से पूर्ण किया। तदुपरांत नीदरलैंड वापस आकर हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में प्राणपण से जुट गए और अपना जीवन समर्पित किए हुए हैं।

लाइडन विश्वविद्यालय के केरन इंस्टिट्यूट के अंतर्गत हिंदी और संस्कृत के साथ-साथ सरनामी भाषा का भी एक अलग से विभाग है, जहाँ सरनामी भाषा का विधिवत् शिक्षण होता है। तेयो दम्स्त्येख ने इस भाषा को विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षण की मान्यता प्रदान की है। जिसमें 'का हाल' प्रमुख है। इस पुस्तक के माध्यम से सरनामी व्याकरण की शिक्षा देने का सरल और सहज प्रयत्न है।

नीदरलैंड में इसी के समानांतर हिंदी शिक्षण प्रशिक्षण का कार्य प्रगति पर है, जिसमें कई संस्थाएँ सक्रिय हैं। एम्सटर्डम स्थित 'इंडियन इंस्टिट्यूट' भारती संस्थान है, जहाँ डॉ. डिक के निर्देशन में संस्कृत और बांग्ला भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा का शिक्षण प्रशिक्षण का कार्य चलता है। रामचरितमानस, महाभारत, वेद और उपनिषद् आदि पर भी प्रवचन और चर्चाएँ होती हैं। उनके कुछ अंशों का परिचय और ग्रंथ के संदर्भ में डच भाषा में प्रकाशित है, जिससे इंडोलॉजी और भारतीय संस्कृति तथा धर्म में रुचि रखनेवालों को सहायता प्राप्त होती है। डॉ. डिक प्लकर एक साधक की तरह अपनी शक्ति से अन्य स्रोतों को जुटाकर हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा में संलग्न हैं। इन्होंने हिंदी भाषा के शिक्षण के लिए, विशेषकर डच विद्यार्थियों के लिए सीडी सहित पुस्तकें भी तैयार की हैं, जो अत्यंत उपयोगी और लोकप्रिय हैं। इनकी प्रसिद्धि सूरीनाम देश के हिंदी सीखनेवाले विद्यार्थियों तक में व्याप्त है।

संवाद संस्थान के माध्यम से डॉ. अनैत फान द हुक हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में लगी हुई हैं। वे कुछ इच्छुक विद्यार्थियों को लेकर समय-समय पर हिंदी शिक्षण का कार्य करती हैं। इसके अतिरिक्त समय-समय पर विभिन्न संस्थाओं के महत्त्वपूर्ण आयोजनों के अवसर पर डॉक्टर की तरह ही हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति पर समयानुकूल अपने व्याख्यान प्रस्तुत करती हैं।

इस तरह से डॉ. तेयो दम्स्त्येख, डॉ. डिक और डॉ. अनैत फंड हुक के रूप में तीन डच विद्वान् हिंदी के प्रचार-प्रसार निमित्त नीदरलैंड में सक्रिय हैं, जो इन लोगों की जीविका का आधार है और जीवन का भी।

इन विद्वानों ने ५ वर्षों से अधिक का समय लगाकर भारत से हिंदी भाषा और साहित्य की पढ़ाई की और आगे चलकर शोध कार्य भी यहीं से पूर्ण किया। तदुपरांत नीदरलैंड वापस आकर हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में प्राणपण से जुट गए और अपना जीवन समर्पित किए हुए हैं।

इसके अतिरिक्त नीदरलैंड में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में वे संस्थाएँ भी सक्रिय हैं, जिनका मूल संबंध सूरीनाम देश से है। यह सूरीनाम के भारतवंशी हैं, जो सरनामी भाषा होने के बावजूद हिंदी के प्रचार-प्रसार की संस्थाएँ स्थापित कर वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के पाठ्यक्रम की गतवर्ष परीक्षाएँ करवाकर हिंदी भाषा को प्राथमिक स्तर पर जीवित बनाए हुए हैं, जिसमें एक संस्था हिंदी प्रचार संस्था नीदरलैंड (एच.पी.एस.एन.) है, जिसके अध्यक्ष और निदेशक डॉ. रामदास थे, जो जीविका से स्त्री रोग विशेषज्ञ थे, लेकिन जीवन से हिंदी भाषी समर्थक थे। वे शुद्ध हिंदी के हिमायती थे। अपनी हिंदी प्रचार पत्रिका के दिसंबर २००१ ई. के अंक में 'शुद्ध हिंदी की हमारी राष्ट्रभाषा' आलेख में लिखा है—''विदेश में रहनेवाले भारतीय और प्रवासी भारतीय की समझ में यह बात नहीं आती कि अरबी, फारसी और तुर्की की तरह ही अंग्रेजी भी आक्रामकों की भाषा है, हम विदेशी शब्दों का प्रयोग करके अपनी भाषा को दूषित करते हैं, जबकि संस्कृत में पर्याप्त शब्द हैं, जिनसे हिंदी की वृद्धि हो सकती है। हमें ऐसी हिंदी का प्रचार-प्रसार करना चाहिए, जिसमें विदेशी शब्दों का प्रयोग नहीं हो या कम हो। इसको हमें भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिए। अगर यह कार्य रूप में परिणत हो जाए, तभी दक्षिण भारत हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी को आसानी से स्वीकार करेगा। यह बहुत ही अपमानजनक नजरिया है कि हम लोग एक ओर तो अपनी भाषा में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग का विरोध करते हैं परंतु अरबी, फारसी, तुर्की आदि के विदेशी शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस अर्थ में वे सरनामी को बोली मानते हुए भी उसे भाषा का दर्जा नहीं देते थे। जर्मन के इंडोलॉजी विभाग के डॉ. सत्यनारायण शर्मा इनके गुरु थे, उनका मानना था, 'हिंदी विश्व की एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। क्रियाकलाप की निष्पत्ति हिंदी में ही होनी चाहिए अंग्रेजी में नहीं।'

डॉ. रामदास ने वर्धा से आचार्य की उपाधि प्राप्त की थी। इन्हीं के संपादन में ३२ पृष्ठ की हिंदी पत्रिका का यदाकदा सुविधानुसार जुलाई १९९७ से प्रारंभ हुआ था, जो प्राथमिक शिक्षा संस्थान की गतिविधियों, हिंदी प्रचार-प्रसार की सूचनाएँ, परीक्षा संबंधी जानकारियाँ, हिंदी भाषा के विद्यार्थियों के परिणाम, पुरस्कार वितरण, प्रमाण-पत्र वितरण आदि की जानकारियाँ रहती हैं।

इसी के समानांतर श्री नारायण मथुरा की अध्यक्षता और निर्देशन में हिंदी परिषद् नीदरलैंड संस्था है, जहाँ से वर्धा की राष्ट्रभाषा परिषद् के तत्त्वावधान में प्रतिवर्ष प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा प्रवेशिका आचार्य की परीक्षाएँ होती हैं, जिसके लिए भारतवंशियों द्वारा बहुत से जिलों में हिंदी प्रेमियों द्वारा प्राथमिक स्तर पर निशुल्क कक्षाएँ होती हैं, जिसमें आर्य समाज और सनातन धर्म की अनेक संस्थाएँ और संगठन भी हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में हिस्सा लेते हैं। इसमें सूर्य प्रसाद बीरे का नाम प्रमुख है, जो तीन दशकों से हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में प्राणपण से लगे हुए हैं। इन्होंने अंक के साप्ताहिक ओ.एच.एम.के. घंटे के कार्यक्रम द्वारा और अन्य संस्थाओं के सहयोग के माध्यम से हिंदी का उल्लेखनीय उत्थान किया है। वे आर्य समाज के कार्यकारी पंडित होने के साथ-साथ संस्कृत और हिंदी भाषा की भी सधी हुई जानकारी रखते हैं।

विश्व ज्योति नाम से सन् १९९३ के आसपास के वर्षों में डच और हिंदी भाषा के द्विभाषी पत्रिका निकालती थी, जिसमें भारतीय संस्कृति और बहुसंस्कृति के बीच जीवन यापन की सामग्री सहित हिंदी शिक्षण पर सामग्री रहती थी। यह हिंदी की संस्कृति तथा सामाजिक पत्रिका थी। '८० के दशक में सरनामी नाम से २० पृष्ठों की पत्रिका प्रकाशित होती थी, जो एक ओर तो सरनामी साहित्य और भाषा ज्ञान की प्रस्तोता थी, तो दूसरी ओर आवरण पृष्ठ और देवनागरी अक्षरों का भी पौष्टिक ज्ञान प्रदान करते हुए हिंदी को सरनामी की 'महतारी भाषा' होने की भी घोषणा करती थी; जिसमें डॉक्टर बी.एस. सूर्यप्रसाद बीरे, संपत राही, शाबित बलदेव सिंह, डॉ. लाल गुरदयाल, जुंपा गुरु आदि का सहयोग रहता था।

'विश्वज्योति' पत्रिका में सुचंदना चौधर, डॉ. राम अवतार सिंह और आचार्य शंकर के सहयोग से पत्रिका प्रकाशित होती थी। रामदास के संपादन में प्रकाशित होनेवाली हिंदी प्रचार पत्रिका में रमेश राम अवतार, रूप लाल बहादुर, आर. रघुवीर सिंह, के. मंगरे, पंडित के. बंशीधर, जे. खेदु, मोहन गौतम, एच. सूर्यवली, श्रीमती उर्मिला मुंशी आदि का सहयोग रहता था।

इस तरह से कुछ दिनों के लिए कभी-कभी पुस्तिका या पत्र के रूप में हिंदी में कुछ देखने पढ़ने को मिल जाता है, पर मूलतः यहाँ हिंदी भाषा का स्तर अत्यंत प्राथमिक है तथा भारतीय संस्कारगत अतिशय प्रेम के कारण हिंदी भाषा का शिक्षण कार्य चल रहा है। लेकिन हिंदी भाषा में साहित्य लेखन का कोई स्वरूप देखने को नहीं मिलता है। अगर मानें तो हिंदी को सरनामी भाषा में साहित्य लेखन के कुछ सार्थक प्रयास हो रहे हैं। लेकिन ये सरनामी साहित्यकार, कवि और लेखक अपने को हिंदी से बिल्कुल इतर 'सरनामी भाषा' का साहित्यकार मानते हैं। ये सूरीनामी देश के अपने पुरखों की जीवन-संस्कृति को और नीदरलैंड के भारतवंशियों के संस्कृति संघर्ष को अभिव्यक्त प्रदान करने में संलग्न हैं। जिसमें सबके अलग-अलग अपने खेमे हैं और नीदरलैंडवासियों के बीच अपने को स्थापित करने की रणनीतियाँ हैं। यही सब कारण है कि सरनामी भाषा की लिपि रोमन रखी गई है, जिससे बोधगम्यता के कारण विश्व की दूसरी भाषाओं के लोग भी पढ़ सकें। लेकिन शब्द के अर्थ ज्ञान के अभाव में भाषा की भूमिका का प्रश्न फिर से बचा रह जाता है। सरनामी भाषा की वैश्विक पठनीयता कायम रखने के लिए ही इस विधि को कायम रखा गया है, क्योंकि विदेशों में संस्कृत भाषा और साहित्य अध्ययन का प्राथमिक आधार भी रोमन लिपि ही है, जबकि सूरीनाम आदि देशों में डच कॉलोनाइजर लोगों ने अपनी स्मृति सुविधा उच्चारण-

पुकार के लिए हिंदुस्तानी किसान मजदूर द्वारा जो कहा जाता था, वे उसे रोमन लिपि में लिख लेते थे। बाद में इन्हीं मजदूरों के बच्चों ने स्कूलों में इसी रोमन लिपि में पढ़ाई-लिखाई करते हुए इसी रोमन लिपि में अपनी हिंदुस्तानी भी लिखने लगे। जिसे बाद में सरकारी तौर पर स्थानीय भाषा के रूप में मान्यता मिल गई।

गत पाँच दशकों में नीदरलैंड में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार तो हुआ, पर उसके अनवरत विकास में प्राय: बाधाएँ रही हैं। सूरीनाम की तरह ही यहाँ भी राजकाज और नौकरी की भाषा डच होने के कारण प्राथमिकता पूर्ण यहाँ की नई पीढ़ी अपना संपूर्ण ध्यान डच भाषा पर केंद्रित करती है और अभिभावक भी इनके सार्थक भविष्य के लिए यही चाहते हैं।

'विश्वज्योति' पत्रिका में सुचंदना चौधर, डॉ. राम अवतार सिंह और आचार्य शंकर के सहयोग से पत्रिका प्रकाशित होती थी। रामदास के संपादन में प्रकाशित होनेवाली हिंदी प्रचार पत्रिका में रमेश राम अवतार, रूप लाल बहादुर, आर. रघुवीर सिंह, के. मंगरे, पंडित के. बंशीधर, जे. खेदु, मोहन गौतम, एच. सूर्यवली, श्रीमती उर्मिला मुंशी आदि का सहयोग रहता था।

यूरोप में लगभग २५ लाख हिंदीभाषी हैं। वे हिंदी बोलते हैं। नीदरलैंड में हिंदी भाषा के विकास में अवरोध सरनामी भाषा के कारण प्रकट होते रहे हैं। भाषा के प्रचार और विकास अभियान से भी इसका कई बार खुलेआम सार्वजनिक विरोध हो चुका है। भाषा का आंदोलन १९७० के दशक से लाए विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा चलाया गया था। इसका विरोध सूरीनाम के लोगों को स्वीकृति के समर्थन में भी किया गया था।

एक बार पारामारिबो में आयोजित हिंदी सम्मेलन में सरनामी के समर्थकों ने हिंदी का विरोध ही नहीं किया, अपितु सरनामी को ही अपने पूर्वजों की मूल भाषा के रूप में मानने की घोषणा भी की थी। लेकिन कुछ लोगों ने फिर भी हिंदी को स्वीकार और महत्त्व की मान्यता देते हुए माना कि हिंदी सरनामी की महतारी भाषा है।

२००६ में नीदरलैंड देश में स्थापित हिंदी यूनीवर्स फाउंडेशन प्रोफेसर पुष्पिता अवस्थी के निर्देशन में बारह वर्षों से अनवरत सक्रिय है। एक ओर यदि यह संस्था हिंदी प्रचार-प्रसार में सक्रिय नीदरलैंड, सूरीनाम, मॉरीशस आदि देशो की स्वैच्छिक संस्थाओं को आर्थिक सहयोग प्रदान करती है तो दूसरी तरफ भारत से आनेवाली हिंदी संस्थाओ के अनेकानेक कार्यक्रमों को नीदरलैंड देश में दूतावास और अन्य संस्थाओं के संयोजन में आयोजित करवाती है।

इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति और वैचारिकता के संवर्धन में संलग्न FCCI, DE NICCT, NIA, GOPI जैसी अनेकानेक संरचनाओं को आर्थिक अनुदान प्रदान करते हुए सक्रिय भागेदारी करती है, इसी के संरक्षण में अम्स्टल गंगा नाम से साहित्यिक, सांस्कृतिक, पत्रिका का भी इंटरनेट द्वारा प्रकाशन होता है। इस तरह से हिंदी यूनीवर्स फाउंडेशन भारतवंशियों भारतीयों को भाषा, साहित्य के माध्यम से भारतभूमि से संबद्ध करने में प्राणपण से संलग्न है। समय-समय पर संस्था महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन करती है और संस्कृतिकर्मियों को उनके उत्थान में सहयोग करती है।

हॉलैंड में आरंभिक दशकों में सूरीनामी हिंदुस्तानी बहुत कम थे। पर जितने भी थे, उन्हें 'मनन' नाम की संस्था ने हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार से जोड़े रखा। जिससे मंदिरों, संस्थाओं और पाठशाला में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार होता रहा। लाइडन विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा के अध्ययन की शुरुआत प्रो. फोगल ने की थी। बाद में इसके प्रभाव नीदरलैंड के अन्य विश्वविद्यालय भी आ गए, हिंदी की पढ़ाई होने लगी थी।

यूरोप के अन्य देशों की तरह ही नीदरलैंड में भी संस्कृति की तुलना में हिंदी को कम महत्त्व मिला और वह दोयम दर्जे की भाषा बनी रही। फिर भी यह नीदरलैंड के डच-हिंदी विद्यालयों के लिए रोजी-रोटी की भाषा भी बनी हुई है। जबकि डच सरकार की नीतियों को देखते हुए लगता है कि इंडोलॉजी (भारतीय विद्या) के विषय की तरह ही हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन का सिलसिला जल्दी यहाँ अपने अंत को प्राप्त हो जाएगा। फिर भी सरकारी तौर पर हम हिंदी की वैश्विक होने का जयघोष करते रहेंगे, बगैर इसकी सत्यता का अन्वेषण किए कि विश्व के अन्य देशों में हिंदी की वास्तविक स्थिति क्या है!

हिंदी भाषा के लिए नीदरलैंड सरकार यदि अपने हाथ समेट लेती है तो भी यूरोप के अन्य देशों की सरकारों को इस संदर्भ में सोचना चाहिए कि वह जो सहायता अन्य अल्पसंख्यक वर्गों के समुदायों को विभिन्न कारणों से प्रदान कर रही है। वह उन्हें नीदरलैंड की संस्थाओं को भी प्रदान करनी चाहिए। वास्तविकता तो यह है कि हिंदी का भविष्य यूरोप में तभी निर्धारित होगा, जब भारत देश संयुक्त राष्ट्र संघ 'सुरक्षा परिषद्' का स्थायी सदस्य बन जाएगा और 'हिंदी' संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा मान ली जाएगी, तभी यूरोप के साथ-साथ नीदरलैंड में भी अंग्रेजी फ्रेंच की तरह ही हिंदी को भी प्रतिष्ठा मिल सकेगी।

भारतवंशियों, भारतीयों की अपनी संस्कृति भाषा है। उनके घर, मंदिर यदि भारतीय संस्कृति से सुसज्जित हैं तो उनके मन-प्राण भारतीय शक्ति से समृद्ध हैं। हिंदी ही वह थैली है, जो भारत के धर्म, दर्शन और संस्कृति को विश्व के भारतवंशियों की अंजुलियों में सौंप सकती है। भारतीय संस्कृति महासागर है, विश्व की तमाम संस्कृतियाँ आकर इसमें समाहित हो गई हैं। आज जिसे आर्य समाज संस्कृति, हिंदू संस्कृति आदि नामों से पहचाना जाता है, वस्तुत: वह भारतीय संस्कृति है।

Director
Hindi Universe Foundation
P.O. Bo& 1080
1080 KB Alkmaar
The Netherlands
e-mail : info@pushpitaawasthi.com

हिंदी की दशा-दिशा : नेपाल के संदर्भ में

• श्रीप्रकाश शुक्ल

उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर हिंदी विश्व की प्रमुख भाषाओं में दूसरा स्थान रखती है। हाल के दशकों में विकासशील देशों में सहअस्तित्व तथा उन्नति के प्रति जागरूकता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। इन देशों ने अपने विकास के लिए विभिन्न स्तरों पर आपस में जुड़ने तथा आपसी सहयोग को तीव्रता से महसूस किया है। दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन इसी शृंखला की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसकी स्थापना ६ दिसंबर, १९८५ को की गई थी तथा इसका मुख्यालय काठमांडू (नेपाल) में है।

यह मेरा सौभाग्य था कि मैं विदेश मंत्रालय की ओर से नेपाल में अताशे (प्रेस, संस्कृति और हिंदी) के रूप में पाँच वर्ष तक प्रतिनियुक्त था। अत: वहाँ दक्षेस (दक्षिण एशियाई सहयोग संगठन) की कार्यविधियों एवं उस क्षेत्र में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया को करीब से देखने का अवसर मिला। दक्षिण एशियाई सहयोग संगठन के आठ सदस्य देश हैं—भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका, भूटान, मालदीव तथा अफगानिस्तान। इस संगठन से जुड़ने के बाद से इन देशों के परस्पर सांस्कृतिक, व्यापारिक तथा राजनैतिक संबंधों में काफी बदलाव आया है। प्रस्तुत लेख में दक्षेस के महत्त्वपूर्ण सदस्य 'नेपाल' में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय आयाम में समझने का प्रयास किया गया है।

नेपाल में हिंदी वाचिक परंपरा की प्रतिनिधि भाषा के रूप में

नेपाल एवं भारत में हिंदी सामासिक संस्कृति की एक वाचिक प्रतिनिधि भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उसका भाषिक और सांस्कृतिक पक्ष अनेक बाधाओं-व्यवधानों के बावजूद विकासमान और प्रवहमान है। पिछले दस विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजनों के वैश्विक स्वरूप को एक दृढ़ आधार मिला है। इसके साथ ही विश्व के विभिन्न भागों में हिंदी के बढ़ते प्रसार और उपयोग के कारण उसके रूप-वैविध्य और प्रयोजन बहुलता को देखते हुए हिंदी शिक्षण संबंधी अनेक समस्याएँ भी उभरने लगी हैं। साथ ही वैश्विक हिंदी का स्वरूप भी अंतरराष्ट्रीय जगत् में प्रतिष्ठित हो रहा है। इस दृष्टि से हिंदी शिक्षण के अध्ययन-अध्यापन को अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में समझना और विचार करना अब सामयिक और आवश्यक हो गया है।

भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों में राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन एवं प्रचार-प्रसार के कार्य में विगत ३२ वर्षों से कार्यरत। संप्रति राजभाषा विभाग में संयुक्त निदेशक (नीति/पत्रिका) के रूप में संघ सरकार की राजभाषा नीति का कार्य देख रहे हैं; साथ ही गृह मंत्रालय की पत्रिका 'राजभाषा भारती' का विगत चार वर्षों से सफल संपादन का कार्य।

इस संदर्भ में हिंदी के विश्व व्यवहार और विदेशों में हिंदी शिक्षा के विस्तार को देखते हुए हिंदी में तीन स्पष्ट क्षेत्र वर्गीकृत किए जा सकते हैं। पहला क्षेत्र यूरोप, अमेरिका और अन्य महादेशों के उन विकसित देशों का है, जहाँ हिंदी भारत की राजभाषा और विश्व की बहुत बड़ी जनसंख्या की भाषा होने के कारण उसके अध्ययन-अध्यापन का कार्य महत्त्व पा रहा है। दूसरा क्षेत्र भारत से बहुत दूर प्रवासी भारतीय बहुल देशों—मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम आदि देशों का है, जहाँ भारतीयता की मुखर अभिव्यक्ति के रूप में और अपनी सांस्कृतिक निधि की अमूल्य संवाहिका के रूप में हिंदी रक्षित, पुष्पित और पल्लवित हो रही है। इसके अतिरिक्त एक तीसरा वर्ग दक्षिण एशियाई वर्ग का भी है। इसके अंतर्गत भारत, नेपाल, पाकिस्तान, बँगलादेश, श्रीलंका, बर्मा (म्याँमार) आदि हैं, जहाँ निकट संबंधों के कारण ही हिंदी के व्यवहार का बहुत बड़ा क्षेत्र अब भी विद्यमान है। इन तीनों क्षेत्रों में भौगोलिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों की विविधता के कारण हिंदी के व्यवहार और शिक्षण की स्थितियों में भी उल्लेखनीय विविधता पाई जाती है।

भाषिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से नेपाल के महत्त्वपूर्ण तराई क्षेत्र और निकटवर्ती भारतीय क्षेत्र में कोई विभेद नहीं दिखाई पड़ता है। मध्य पहाड़ी क्षेत्रों की प्रमुख से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नेपाल की राष्ट्रभाषा 'नेपाली' भी हिंदी के अत्यंत निकट या सहभाषा ही है। साहित्यिक नेपाली तथा हिंदी की शब्दावली लगभग एक जैसी है और देवनागरी लिपि की नेपाली से एकता तो स्वयं सिद्ध है ही, इसीलिए यह कहा जाता है कि नेपाल में हिंदी विदेशी भाषा नहीं है। एक अनुमान के अनुसार नेपाल

में हिंदी भाषा का प्रथम, द्वितीय या तृतीय भाषा के रूप में व्यवहार करनेवालों की संख्या लगभग एक करोड़ होगी। प्रथम तो यह नेपाल तराई के क्षेत्र के ५० लाख लोगों से अधिक अवधी, भोजपुरी, थारू, मैथिली आदि हिंदी की उपभाषाएँ हैं, जो नेपाल में जनप्रिय और लोकप्रिय हैं तथा व्यावसायिक भाषा है। द्वितीय यह कि नेपाली मातृभाषा वालों की भी शैक्षिक, साहित्यिक तथा व्यापारिक आदि कार्यों के लिए स्वाभाविक रूप से व्यवहार में आनेवाली द्वितीय भाषा है। फिर नेवारी तथा उत्तर की भोट-किराती भाषा-भाषियों के लिए भी शिक्षा, व्यापार, तीर्थयात्रा आदि कारणों से यह व्यवहार की भाषा रही है। अत: नेपाल में हिंदी का विशाल अस्तित्व स्वत: सिद्ध है।

नेपाल का दक्षिणी क्षेत्र प्रमुखत: हिंदी भाषा का क्षेत्र है। यह क्षेत्र भारत के पूर्णत: हिंदी भाषी राज्यों से जुड़ा है। नेपाल में लगभग पचहत्तर प्रतिशत लोग हिंदी का किसी-न-किसी रूप में प्रयोग करते हैं। नेपाल की तराई (मधेश) और पहाड़ के लोगों के बीच आपसी आदान-प्रदान और व्यावहारिक संपर्क ने वहाँ पहाड़ी क्षेत्रों में हिंदी को अधिक सुलभ और ग्राह्य बना दिया है।

शैक्षिक स्थिति

शिक्षण इतिहास की दृष्टि से भी नेपाल में हिंदी का महत्त्व अत्यंत प्राचीन काल से रहा है। हिंदी साहित्य के आरंभिक काल के अनेक रचनाकार (नाथ-सिद्ध) नेपाल के निवासी थे। मध्यकाल में नेपाल में रचित अनेक नाटकों, शिलालेखों तथा सरकारी अभिलेखों की भाषा हिंदी ही है। आधुनिक काल में गोपाल सिंह नेपाली, भवानी भिक्षु तथा केदारमान 'व्यथित' जैसे प्रतिभाशाली हिंदी कवियों तथा लेखकों की मातृभूमि होने का गौरव नेपाल को ही है। ऐसी स्थिति में नेपालियों के हृदय में हिंदी के प्रति सहज स्नेह तथा उसके पठन-पाठन में विशेष रुचि होना स्वाभाविक है। विक्रम संवत् २०१९ तक हिंदी नेपाल में शिशु से उच्च कक्षाओं तक शिक्षा की माध्यम भाषा थी। उसके बाद स्थिति बहुत तेजी से बदली और अब हिंदी शिक्षा संस्थानों में माध्यन भाषा तो रही नहीं, ऐच्छिक भाषा के रूप में भी इसका अध्ययन व्यवस्था और प्रोत्साहन के अभाव में बहुत कम हो रहा है।

इसके बावजूद विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षण-व्यवस्था में प्रमाण-पत्र (आई.ए.) तथा बी.ए. कक्षाओं में नेपाल में हिंदी पढ़नेवाले छात्रों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। कारण, नेपाल के आठ कैंपस (कॉलेजों) में अब तक हिंदी की पढ़ाई की व्यवस्था है। स्कूल स्तर पर बिना हिंदी पढ़े छात्र भी कॉलेजों में ऐच्छिक विषय के रूप में हिंदी पढ़ते हैं। त्रिभुवन विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर (एम.ए.) हिंदी अध्ययन की व्यवस्था है। मगर एम.ए. कक्षा में छात्रों की संख्या बहुत कम होती जा रही है, क्योंकि हिंदी में एम.ए. व पी-एच.डी. करने के बाद उनके लिए जीविका का माध्यम मुख्य रूप से हिंदी नहीं है। फलत: रोजगारपरक भाषा के रूप में हिंदी यहाँ अधिक लोकप्रिय नहीं है।

इसके अतिरिक्त काठमांडू में भी एक अंतरराष्ट्रीय भाषा केंद्र (विश्वभाषा कैंपस) स्थापित है। वहाँ भी प्रमुख रूप से यूरोपीय तथा एशियाई भाषाओं के साथ यदाकदा हिंदी की भी पढ़ाई होती है। किंतु वहाँ केवल विदेशी छात्र हिंदी सीखते हैं। नेपाली विद्यार्थी का औसत हिंदी ज्ञान व्यावहारिक रूप से कामचलाऊ स्तर का ही होता है। अत: नेपाल में हिंदी का शिक्षण मुख्यत: कॉलेजों में एक ऐच्छिक विषय के अध्ययन के रूप में ही सीमित है।

नेपाल : एक सनातन धर्मी हिंदू प्रधान राष्ट्र के रूप में

नेपाल लगभग तीन करोड़ की आबादीवाला देश है, साथ ही नेपाल भारत का निकटतम पड़ोसी देश भी है। परिणामस्वरूप दोनों देशों के जन-समूहों के परस्पर मिलन होते रहने से तथा धर्म-प्रचारकों के अनेक शताब्दियों से नेपाल आते रहने से दोनों देशों के बीच धार्मिक तथा सांस्कृतिक संबंध प्रगाढ़ होता गया है। वैसे तो नेपाल एक हिंदू धर्म प्रधान देश भी है। नेपाल में हिंदी समझने और बोलनेवालों की संख्या ७५ प्रतिशत के लगभग है।

हिंदी का अनुकूल परिवेश

नेपाल में हिंदी का प्रयोग लगभग ६०० वर्षों से भी अधिक समय से होता आया है, जिसे हम नेपाल के शिलालेखों, अभिलेखों, ताम्रपत्रों, लोक साहित्य, संस्थागत पुस्तकालय तथा व्यक्तिगत रचनाओं में देख सकते हैं। इतना ही नहीं आदिकाल से ही नेपाल में संगीत, रंगमंच, आयुर्वेद, शिक्षा, पत्राचार तथा प्रचार आदि के कार्यों में भी हिंदी का प्रयोग अनवरत रूप से होता आया है। इसका कारण यह है कि हिंदी और नेपाली, दोनों भाषाओं की जननी संस्कृत है तथा लिपि देवनागरी। यही कारण है कि दोनों राष्ट्रों के नागरिकों को विश्व के अन्य देशों की भाषाओं की तरह समझने तथा अभिव्यक्ति करने में अत्यधिक कठिनाई नहीं होती। शिक्षा-संस्कृति के अंतर्गत संस्कृत भाषा का ही प्रयोग होता था। इतना ही नहीं, हिंदी की आदिकालीन महत्त्वपूर्ण कृति 'वर्णरत्नाकर' की रचना भी नेपाल में ही हुई थी। साहित्यिक रचना के अंतर्गत जब नेपाली समाज में संस्कृत लेखन की परंपरा थी, उस समय भी मल्ल शासकों ने हिंदी और मैथिली नाटक के लेखन एवं मंचन को महत्त्व दिया था। काठमांडू के राजा प्रतापमल्ल स्वयं भी हिंदी और मैथिली साहित्य के ज्ञाता थे। साहित्य सृजन की परंपरा मोतीराम भट्ट ने चलाई थी। यही कारण था कि उन दिनों दरबारों में जो नाटिकाएँ अभिनीत होती थीं, वे प्राय: हिंदी तथा मैथिली भाषा में ही लिखी जाती थीं। श्री उपेंद्र विक्रम शाह ने भी हिंदी भाषा में रचनाएँ की थीं। तत्कालीन पंडित विद्यारण्य केशरी ने भी हिंदी भाषा में 'गोपिका स्तुति' की रचना की थी।

नेपाल का दक्षिणी क्षेत्र प्रमुखत: हिंदी भाषा का क्षेत्र है। यह क्षेत्र भारत के पूर्णत: हिंदी भाषी राज्यों से जुड़ा है। नेपाल में लगभग पचहत्तर

प्रतिशत लोग हिंदी का किसी-न-किसी रूप में प्रयोग करते हैं। नेपाल की तराई (मधेश) और पहाड़ के लोगों के बीच आपसी आदान-प्रदान और व्यावहारिक संपर्क ने वहाँ पहाड़ी क्षेत्रों में हिंदी को अधिक सुलभ और ग्राह्य बना दिया है।

नेपाल की दांग घाटी का क्षेत्र : प्राचीनतम हिंदी प्रयोग क्षेत्र

नेपाल में हिंदी भाषा या लिपि का प्रयोग प्राचीनतम है, जिसका शिलालेखों और उपलब्ध हस्तलिखित सामग्रियों से अनुमान लगाया जा सकता है। पश्चिम नेपाल की दांग घाटी में प्राप्त आज से ६५० वर्ष पूर्व के शिलालेख में दांग के तत्कालीन राजा रत्नसेन (जो बाद में योगी हो गया थे) की एक 'दंगीशरण कथा' नामक रचना मिलती है। यह कृति नेपाल में हिंदी के व्यापक प्रयोग और गहरे सांस्कृतिक जड़ को पुष्ट करती है। यह रचना साहित्यिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है और हिंदी साहित्य की परंपरा की अविभाज्य कड़ी है। नेपाल के सूर्यवंशीय नरेशों तथा पूरब में मोरंग और अन्य कई राज्यों के तत्कालीन नरेशों ने हिंदी को अपनी राजभाषा ही बनाया था। कृष्णशाह, मुकुंदसेन आदि नरेशों के सभी पत्र और हुक्मनामे हिंदी में ही मिलते हैं। काठमांडू के कई मल्ल राजाओं ने हिंदी में रचनाएँ कीं। शाहवंशीय शासकों में अत्यंत लोकप्रिय पृथ्वीनारायण शाहदेव उत्तर भारत में हिंदू संस्कृति और धर्म के महान् रक्षक थे तथा वे योगी गोरखनाथ के बड़े भक्त ही नहीं, वरन् स्वयं हिंदी के अच्छे कवि भी थे। उनके भजन अब भी रेडियो नेपाल से प्रसारित होते हैं।

नेपाल की बोलियाँ और हिंदी

नेपाल को हिंदी का एक विशाल क्षेत्र माना जा सकता है। नेपाल की जनता में प्रचलित भाषाएँ नेवारी और नेपाली हैं, पर हिंदी को नेपाल में गतिशील रखा गया है। हिंदी की विकासधारा के साथ-साथ नेपालवासियों की अपनी मातृभाषा, विशेषकर नेवारी और नेपाली भी विकसित होती गई है। इसका रहस्य भारत और नेपाल का गहरा एवं अटूट धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक संबंध है। हिंदी एवं नेपाली के अच्छे ज्ञान से स्वाभाविक रूप से नई पीढ़ी में रोजगारपरक समस्याएँ सुलझ रही हैं। हिंदी उन लोगों के लिए भी सरल है, जिनकी मातृभाषा नेपाली नहीं है। हिंदी सीख लेने के बाद नेपाली सीखना और भी आसान हो जाता है। खासकर उत्तरी सीमा पर रहनेवाले तिब्बती मूल के लोगों ने हिंदी के माध्यम से नेपाली सीखी है। अंग्रेजी, नेपाली और हिंदी के अच्छे ज्ञान से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार एवं रोजगार के भी अच्छे अवसर मिल रहे हैं।

हिंदी साहित्य की परंपरा

नेपाल में उपलब्ध हिंदी साहित्य की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। प्राचीन साहित्यकारों ने नाथपंथी एवं विद्यापति की रचनाओं से लेकर विगत शताब्दी तक की कई रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ देखने को मिलती हैं। वहाँ के मल्ल राजाओं की हिंदी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। राजा राजेंद्र विक्रमशाह हिंदी में अच्छी रचनाएँ किया करते थे। विषय की दृष्टि से मूलतया नेपाल में ही रचित हिंदी साहित्य का आयाम बहुत बड़ा है। विभिन्न विषयों पर वहाँ रचित हिंदी ग्रंथों की संख्या बड़ी है, पर इनमें अधिकतर अप्रकाशित हैं। इन साहित्यकारों में राजगुरु हेमराज शर्मा, आशुकवि शंभुप्रसाद दुंगेल, मोतीराम भट्ट, लेखनाथ पौडयाल, गिरीश वल्लभ जोशी, रघुनाथ भाट, आधुनिक कथाकार, उपन्यासकार भवानी भिक्षु आदि हिंदी साहित्य में स्थापित नाम हैं।

नेपाल की राजनीति पर हिंदी का प्रभाव

सन् १९५०-६० के दशक और फिर बाद में हिंदी एक राजनैतिक मुद्दे के रूप में उभरकर आई और नेपाल कांग्रेस के प्रमुख नेता वेदानंद झा ने हिंदी को संवैधानिक स्तर प्रदान करने का हर संभव प्रयास किया। नेपाल के अन्य नेता, जैसे प्रधानमंत्री बी.पी. कोइराला, जो हिंदी के अच्छे लेखक भी थे, मातृका प्रसाद कोइराला, सूर्यप्रसाद उपाध्याय, रामनारायण मिश्र तथा परिषद् के भद्रकाली मिश्र आदि ने हिंदी को द्वितीय राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किया था।

त्रिभुवन विश्वविद्यालय और हिंदी का विकास

नेपाल में जब उपयुक्त शिक्षा प्रणाली को गतिशील करने का विचार आया तो नेपाल ने भारत का सहयोग प्राप्त किया। नेपाल में भारत से अनेक सुयोग्य शिक्षक गए। नेपाल के स्कूलों में पटना विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम की छाप पड़ी और त्रिभुवन विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। फलस्वरूप नेपाल में हिंदी का काफी प्रचार-प्रसार हुआ। प्रारंभिक दिनों में नेपाल के तराई क्षेत्रों के स्कूलों में तो शिक्षा का माध्यम ही हिंदी बन गई।

नेपाल के हिंदी लेखक

सन् १९५० की क्रांति और त्रिभुवन विश्वविद्यालय की स्थापना से पूर्व नेपाल के अधिकांश युवकों का अध्ययन केंद्र वाराणसी, लखनऊ, गोरखपुर, इलाहाबाद और पटना था। उन्हें हिंदी के अच्छे ज्ञान का संस्कार मिला। स्व. बी.पी. कोइराला के बड़े भाई एवं भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व. मातृका प्रसाद कोइराला धाराप्रवाह हिंदी बोलते थे। समान रूप से भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री गिरिजाप्रसाद कोइराला एवं वर्तमान प्रधानमंत्री श्री लोकेंद्र बहादुर चंद, भूतपूर्व विदेशमंत्री श्री शैलेंद्र कुमार उपाध्याय हिंदी के अच्छे ज्ञाता हैं। त्रिभुवन विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के कई विद्वानगण अपनी लेखनी से हिंदी की सेवा में सतत संलग्न हैं। स्व. केदारनाथ 'व्यथित' की रचनाओं में सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवी वर्मा के छायावाद एवं रहस्यवाद का भी प्रभाव मिलता है। बनारस हिंदी विश्वविद्यालय, गोरखपुर, इलाहाबाद नगरों में शिक्षोपार्जन करनेवाले अधिकांश नेपाली युवक-युवतियाँ नेपाल में किसी-न-किसी रूप में हिंदी के प्रचार-प्रसार में अग्रणी रहे हैं। हिंदी के प्रमुख नेपाली लेखकों में श्री रामस्वरूप प्रसाद, पं. अवधकिशोर दास, धुस्वाँ सायमि, रामहरि जोश, विश्वनाथ प्रसाद गुप्त, महावीर प्रसाद गुप्त, शिवशंकर यादव,

राजेश्वर नेपाली, प्रो. सूर्यनाथ गोप, डॉ. कृष्णचंद्र मिश्र एवं रामदयाल राकेश आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सुश्री सुभद्रा घले, प्रो. उषा ठाकुर, डॉ. आशा सिंह और प्रो. मृदुला शर्मा प्रमुख हिंदी लेखिकाएँ हैं।

नेपाल की राजधानी काठमांडू में सन् १९९९ में नेपाली-हिंदी रचनाकार सम्मेलन का सफल आयोजन हुआ था। नेपाल में हिंदी को प्राप्त स्थान का महत्त्वपूर्ण भाग है—काठमांडू के कुछ उत्साही युवक-युवतियाँ हिंदी में समाचार-पत्र और पत्रिका के प्रकाशन में कार्यरत हैं। नेपाल में हिंदी के उत्थान के लिए कई हिंदी संस्थाएँ सेवारत हैं, जिनमें जनकपुर बौद्धिक समाज, आर्य समाज, हिंदी परिषद्, नेपाल आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

> **बनारस हिंदी विश्वविद्यालय, गोरखपुर, इलाहाबाद नगरों में शिक्षोपार्जन करनेवाले अधिकांश नेपाली युवक-युवतियाँ नेपाल में किसी-न-किसी रूप में हिंदी के प्रचार-प्रसार में अग्रणी रहे हैं। हिंदी के प्रमुख नेपाली लेखकों में श्री रामस्वरूप प्रसाद, पं. अवधकिशोर दास, धुस्वाँ सायमि, रामहरि जोश, विश्वनाथ प्रसाद गुप्त, महावीर प्रसाद गुप्त, शिवशंकर यादव, राजेश्वर नेपाली, प्रो. सूर्यनाथ गोप, डॉ. कृष्णचंद्र मिश्र एवं रामदयाल राकेश आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सुश्री सुभद्रा घले, प्रो. उषा ठाकुर, डॉ. आशा सिंह और प्रो. मृदुला शर्मा प्रमुख हिंदी लेखिकाएँ हैं।**

हिंदी पत्रकारिता का परिवेश

नेपाल में हिंदी पत्रकारिता का भी विकास हुआ। काठमांडू में 'नेपाल' शीर्षक से सन् १९५६ में हिंदी दैनिक का प्रकाशन श्री उमाकांत दास के संपादन में आरंभ हुआ। त्रिभुवन विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से स्व. डॉ. कृष्णचंद्र मिश्र के संपादन में 'साहित्य लोक' का प्रकाशन १९७९ में हुआ था। अब वहाँ से 'हिमालिनी' त्रैमासिक डॉ. उषा ठाकुर के संपादन में प्रकाशित हो रही है। साप्ताहिक पत्रों में 'लोकमत और इनकलाब' भी अत्यंत लोकप्रिय हैं। लोकप्रिय पत्रिकाओं में 'कोकिला', 'नवजागरण', 'अनुराधा', 'चर्चा', 'विविध भारत', 'आरोहण', 'नेपाल-संदेश', 'शारदा', 'जय चेतना', 'अभ्युत्थान' आदि ने हिंदी के परिवेश को विकसित करने में प्रमुख भूमिका निभाई है।

विश्व हिंदी दिवस की लोकप्रियता

विदेश मंत्रालय ने वर्ष २००६ से विश्व हिंदी सम्मेलनों की स्मृति में १० जनवरी को 'विश्व हिंदी दिवस' घोषित किया। इसी परंपरा में नेपाल में भी विश्व हिंदी दिवस उमंगों के साथ मनाया जाता है। गत वर्ष हिमानी स्थित नेपाल अकादमी और लोक पत्रिकाओं के सहयोग से विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर कमालदी स्थित नेपाल अकादमी में एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया था। कार्यक्रम में भारत और नेपाल, दोनों देशों के प्रख्यात विद्वानों ने भाग लिया था। प्रख्यात हिंदी प्रौद्योगिकी के विशेषज्ञ बालेंदु शर्मा 'दाधीच' ने समाज में प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रयोग एवं उसकी आवश्यकता' पर बल दिया। साथ ही भारत और नेपाल के अनेक प्रतिष्ठित कवियों ने अपने कविता के पाठ से कार्यक्रम को संपूर्णता प्रदान की।

प्राथमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण की दशा

प्राथमिक स्कूलों में हिंदी शिक्षण को सरकारी स्तर पर कोई सहयोग प्राप्त नहीं है। नेपाल में स्थित कुछ हिंदी संस्थाओं ने भारत से संबंध जोड़कर हिंदी पढ़ाने में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं, ताकि हिंदी की पढ़ाई विकसित हो सके। त्रिभुवन विश्वविद्यालय में एम.ए. तक हिंदी पढ़ने की व्यवस्था है। प्रो. सूर्यनाथ गोप ने भारतीय दूतावास के राजनयिक श्री संजय वर्मा एवं सांस्कृतिक अताशे डॉ. श्रीप्रकाश शुक्ल के सहयोग से केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा एवं त्रिभुवन विश्वविद्यालय काठमांडू के संयुक्त तत्त्वावधान में 'अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी विषय' पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की थी। इस संगोष्ठी का नेपाल के हिंदी अध्ययन-अध्यापन की दिशा पर गहरा और अनुकूल प्रभाव पड़ा। डॉ. श्रीप्रकाश शुक्ल ने भारतीय दूतावास से हिंदी में 'विविध भारत' के नाम से हिंदी पत्रिका का भी संपादन आरंभ किया था। उन्होंने पाँच वर्षों का इसका सफल संपादन किया। आज भी यह पत्रिका नेपाल में कीर्तिमान स्थापित कर रही है।

हिंदी के वातारवण को लोकप्रिय बनाने में इस पत्रिका ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त तत्कालीन राजदूत श्री श्याम सरन एवं राजनयिक संजय वर्मा के मार्गदर्शन से हिंदी के वातावरण को और राजभाषा हिंदी के प्रयोग को अत्यधिक संबल और गतिशीलता मिली थी, जो आज भी अविस्मरणीय है।

आज आवश्यकता है नेपाल में शैक्षिक दृष्टिकोण में सार्थक और व्यावहारिक व्यापक परिवर्तन की तथा भारत और नेपाल के हिंदी प्रेमियों के उभयनिष्ठ सार्थक वैचारिक मंच की स्थापना की। नेपाल में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन को समुन्नत करने के लिए भारत सरकार एवं अन्य हिंदी संस्थाओं को इस दिशा में हिंदी के पाठ्य-पुस्तकों, शब्दकोशों एवं पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की महती अवश्यकता है। इस प्रयास से नेपाल में हिंदी के विकास के नए आयामों के उन्मीलन का अवसर मिल सकेगा।

आज नेपाल के हिंदी-प्रेमियों को चातक की तरह 'हिंदी विकास के स्वर्णिम भविष्य' के पावस की आकुल प्रतीक्षा है।

सा अ

संयुक्त निदेशक (नीति)
राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय,
एन.डी.सी.सी. भवन, जय सिंह रोड,
नई दिल्ली
e-mail : shukla.sp@nic.in

राम झरोखे बैठ के

देश का नया सामान्य

• गोपाल चतुर्वेदी

कभी हर शहर के कहवाघर, ज्ञान-वितरण के केंद्र और बौद्धिक चर्चा तथा नई-नई अफवाहों के जाने-माने प्रसूति घर का दर्जा रखते थे। दिल्ली का जिक्र करें तो सत्तर-अस्सी के दशक में यही भूमिका कनॉट प्लेस को तंबूवाला कॉफी हाउस तथा उसके बाद टी-हाउस निभा चुका है। अब तो सन्नाटा है। यह ज्ञान हमें गलियारे की दुकान पर पान खाते मुरारी की देन है। आज वे काफी मुखर हैं। छुट्टी का दिन है। सब्जी लेने के बहाने बंगाली मार्केट फूट लिये हैं। छोले-भटूरे जपकर अब वे चाय पीने के लिए ढाबे की तलाश में हैं। इन सारे गुनाह में हम उनके भागीदार हैं। इस पूरे घटनाक्रम के दौरान वे हमें बता चुके हैं कि वे जेब का एक भी पैसा खर्च करने में असमर्थ हैं। घर जाकर उन्हें पत्नी को पाई-पाई का हिसाब देना है। यों जब बिल आता है तो वे जेब में हाथ डालने का नाटक जरूर करते हैं। पर यह चुकाने के सच से उतना ही दूर है, जितने सियासी दल अपने घोषित आदर्शों से या सरकारी बाबू ईमानदारी से।

मुरारी हमारे बौद्धिक गाइड हैं। अपना अनुभव है। वर्तमान के गाइड, चाहे वे बुद्धि के हों या पी-एच.डी. के, उनका चरित्र एक सा है। जुबानी जमा-खर्च में उनका मुकाबला नहीं है। जहाँ तक पैसे के व्यय का ताल्लुक है, किसी ऐयाशी के किस्से के समान उनके खर्च का खजाना, सौ-सौ तालों और एक जहरीले फन फैलाए नाग की सुरक्षा के घेरे में है। यही क्या कम है कि वे हमें साहित्य में फल-फूल रहे अपने चोर-उचक्के प्रतिद्वंद्वियों के किस्से सुनाते हैं, बिना पी-एच.डी. के गाइड की तरह घर के झाड़ू-पोंछे और फ्री का रसद-राशन, साग-सब्जी लाने की अपेक्षा के।

जब हम चाय पीने के लिए एक ढाबे में बैठे तो मुरारी को एक पुराना समाचार-पत्र नजर आ गया। कुछ लोगों का स्वभाव है कि वे छपे शब्दों को ऐसे चाटते हैं, जैसे कोई परहेज के अनुशासन से विवश डायबिटिक घर के गवाहों से बचकर फ्रिज में रखी रसमलाई को। हमें छपे शब्दों में खास रुचि नहीं है, विशेषकर पुराने अखबारों में। रोजमर्रा अपराध, अपहरण, बलात्कार, सियासी दलों के गठजोड़ या मुठभेड़ की खबरें। कुछ सच, कुछ झूठ, कुछ वास्तविक, कुछ कल्पना प्रधान। हमने मुरारी का ध्यान आकृष्ट करने के लिए यह तथ्य उन्हें बताया, तब जाकर उन्होंने अखबार को तजा यह कहते हुए कि ''भैया, हम तो संपादकीय पृष्ठ देखते हैं, कभी-कभी वहाँ कविता-कहानी भी मिल जाती है।'' फिर जैसे उनको स्वयं चेत आया, ''यों तो सभी अखबार अब अंग्रेजी से अनूदित लेख-कॉलम आदि छापते हैं, जैसे हिंदी में वैचारिक, रचनात्मक या राजनैतिक लेखन है ही नहीं। यदि है भी तो उनके स्तरीय अखबारों में प्रकाशन योग्य नहीं है।''

'दैनिक नगाड़ा' जैसे स्थानीय अखबार में मुरारी का अविस्मरणीय योगदान है। कभी उनकी कविता छपती है तो कभी कहानी। पारिश्रमिक देने का वहाँ चलन नहीं है। संपादकजी कहते भी हैं, ''आपका नाम बिना पैसे लिये छाप दिया, इतना क्या कम है?''

मुरारी की मूल शिकायत यही है। राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाएँ उनके जैसे योग्य और साहित्य में सक्रिय लेखक को छापते क्यों नहीं हैं? पहले तो पता लिखे, टिकट लगे लिफाफे के साथ संपादक के 'अभिवादन और खेद सहित' की सूचना आ जाती थी, अब तो वह भी बंद है। लगता है कि वह इधर से अपनी उत्कृष्ट कहानी या कविता प्रेषित करते हैं और उधर उसे सीधे कूड़ेदान के हवाले कर दिया जाता है। इस अन्याय का कोई प्रतिकार भी नहीं है, वरना अब तक कई ऐसे संपादकों को वे कोर्ट-कचहरी में घसीट लेते। तब भी क्या उनके होश ठिकाने आते? यों उनके तेवरों में कमी नहीं है। रचना भेजने के बाद वे दो-तीन महीने किसी शुभ सूचना की प्रतीक्षा करते हैं, उसके बाद डाक विभाग को उपकृत करते हैं, पत्र-पत्रिका के मालिक को संपादक की शिकायत भेजकर। 'दैनिक नगाड़ा' के अलावा किसी अन्य संपादक ने उनको छापने की न कृपा की है, न मुरारी ने किसी को बख्शा है। हालात इतने बदतर हैं कि संपादक के नाम लिखे उनके पत्र तक प्रकाशित नहीं होते हैं। संपादकों द्वारा यह उनका निंदनीय और कुत्सित सामूहिक बहिष्कार है।

ऐसे मुरारी एक उदार किस्म के इनसान हैं। हमने एक बार उन्हें याद दिलाया था कि डाक विभाग को आज तक उन्होंने हजारों का लाभ पहुँचाया है—टिकट, पोस्टकार्ड और लिफाफे खरीदकर। उसे तो उनका सार्वजनिक सम्मान करना चाहिए। संस्था व विभागों की बात अलग है, किसी एक व्यक्ति ने डाक विभाग की इतनी आमदनी शायद ही करवाई हो? वे हैं कि इस अनदेखी तक का भी बुरा नहीं मानते हैं, ''आजकल कोई कबूतर सेवा तो है नहीं, जो चोंच में दबाकर प्रेमी-प्रेमियों के संदेशों को एक से दूसरे को पहुँचाए, बस सहारा है तो डाक सेवा का, जो देश

के कोने-कोने में विस्तृत है। हम तो उनकी इस सेवा के लिए दिल से आभारी हैं।''

हमने उनको चेताया, ''क्या पता, आपकी रचनाएँ अपने गंतव्य तक पहुँचती भी हैं कि नहीं? कोई भरोसा नहीं है! भूखे भिखारियों द्वारा होटल की जूठन की तरह इधर डाकखाना भी डाक खाने लगा है।'' उन्होंने अपनी विश्वासी प्रवृत्ति का परिचय दिया, डाक व्यवस्था में विश्वास जताकर—''भ्रष्ट भले हों, पर सरकार इतनी नाकारा नहीं है कि चिट्ठियाँ तक न पहुँचा सके। दीगर है कि दो महत्त्वपूर्ण सेवाओं के शीर्ष पर बैठे अधिकारी आई.पी.एस. कहलाते हैं। एक है इंडियन पोस्टल सर्विस और दूसरी है इंडियन पुलिस सर्विस। बस यहीं समानता का अंत है। एक सरकस का शेर है तो दूसरा जंगल का आदमखोर। सरकस का शेर अपने कर्तव्य का करतब डाक पहुँचाकर दिखाता है, तो जंगल का खूँखार पैसे खाकर अदने आदमी पर दया करता है। उसके लिए कुछ-न-कुछ खाना अनिवार्य है।''

मुरारी कब तक मौन रहते! उन्हें जैसे अचानक खयाल आया हो कि चतुर चुप रहे तो चतुर कैसा? उन्होंने हमें ज्ञान दिया, ''बंधु, ऐसा है कि जो असामान्य है, वही खबर बनता है। डॉक्टर का काम ही मरीजों का इलाज तो है। यह कोई समाचार है क्या? पर उसके द्वारा मरीज से मारपीट हो तो जरूर खबर है। इसी प्रकार विकास सरकार का घोषित कार्यक्रम है, पर यदि गड्ढा-मुक्त के स्थान पर गड्ढा-युक्त सड़कें दिखें तो इस पर ध्यान जाना ही जाना है।''

डाक व्यवस्था में आस्था जताकर मुरारी को हमारी टिप्पणी की याद आई। उन्होंने समझाया कि शहर-सूबे या देश में जो हो रहा है, अखबार वही तो छापेंगे। कोई सोचे कि आजादी के बाद की हमारी धरोहर क्या है? हर काम के लिए सरकार पर बढ़ती निर्भरता, चारों ओर भ्रष्टाचार। बारिश में बाढ़ और इसके अभाव में सूखा, दोनों में संबद्ध अधिकारियों की कमाई एक ऐसी सामान्य सी बात है, जो अब अखबार की खबर तक नहीं है। कुछ हैं, जो भ्रष्टाचार को 'मिस' करते हैं। ''वे भी क्या दिन थे, जब सही रकम लेकर बाबू, मंत्री, अफसर, सभी दुम हिलाते थे।''

आज भी दफ्तरों का सच यही है। ढर्रा वही पुराना है, बस 'रिस्क' बढ़ने के कारण काम का 'रेट' बढ़ गया है। सरकारी नौकरी की ललक का कारण भी ऊपरी आमदनी ही है। दुनिया भर में उत्पादनों के साधनों पर जोर है, यहाँ अनुत्पादक फाइल के धंधे पर। न समाज में प्राण-रक्षक डॉक्टर का सम्मान है, न अच्छे नागरिक बनानेवाले शिक्षकों का। देश के विकास में बढ़ई, कारीगर, मजदूर, इंजीनियर, वगैरह-वगैरह की अहम भूमिका है। इसे सुविधा से नकारकर फाइल में समेट दिया गया है। नतीजतन, स्कूल फाइलों में बनते हैं, अस्पताल भी वहीं खुलते हैं। यह जरूरी नहीं है कि जमीन पर भी हों, तभी तो डॉक्टर-इंजीनियर एड़ी-चोटी का जोर लगाकर भारतीय प्रशासनिक सेवा में प्रवेश के लिए उत्सुक हैं अपना सारा विशेष प्रशिक्षण त्यागकर! ऐसा संसार में कहीं संभव है क्या? मुरारी एक साँस में यह सब बोलते-बोलते खुद ही बोल गए और किसी धावक के समान हाँफने लगे, जिसने मैराथन दौड़ी हो। ढाबे की दूधिया चाय से उनकी साँस-में-साँस आई।

हमने अपने जेब हरण पर उन्हें अंदर-ही-अंदर कोसा। फिर हिम्मत जुटाकर अखबारों के प्रति अपनी उदासीनता के विषय पर लौट आए। समाज के व्यापक अपराधीकरण के अलावा अखबारों में और होता ही क्या है? कहीं लिव-इन की खबर है, कभी पिता द्वारा बेटी के शारीरिक शोषण की, कहीं दोस्त द्वारा दोस्त की हत्या की, कहीं सुर्खियों में समाचार है—किसी सिरफिरे का लड़की के घर में घुसकर उसके साथ बलात्कार के प्रयास का। विकास के कामों की खबर कहीं है क्या? जैसे पुल, सड़क, स्कूल, अस्पताल बन ही नहीं रहे हैं? डॉक्टर रोज सैकड़ों मरीजों का इलाज करते हैं, पर खबर क्या बनती है? 'बीमार के तीमारदारों ने अभद्रता के कारण डॉक्टर की पिटाई की।' या फिर 'रेस्तराँ की कढ़ी में कॉकरोच'।

मुरारी कब तक मौन रहते! उन्हें जैसे अचानक खयाल आया हो कि चतुर चुप रहे तो चतुर कैसा? उन्होंने हमें ज्ञान दिया, ''बंधु, ऐसा है कि जो असामान्य है, वही खबर बनता है। डॉक्टर का काम ही मरीजों का इलाज तो है। यह कोई समाचार है क्या? पर उसके द्वारा मरीज से मारपीट हो तो जरूर खबर है। इसी प्रकार विकास सरकार का घोषित कार्यक्रम है, पर यदि गड्ढा-मुक्त के स्थान पर गड्ढा-युक्त सड़कें दिखें तो इस पर ध्यान जाना ही जाना है।''

वे चालू रहे कि मंत्री या नेता पर सड़े टमाटर फेंकना या उसका सार्वजनिक मंच से असंसदीय भाषा का प्रयोग वर्तमान समय में एक आम वारदात है, जो रोज हो रहा है, उसे खबर कहना अन्याय है। दरअसल, हमने इस नेता नामक जीव को व्यर्थ में महिमा-मंडित कर रखा है। यह कोई अनुरकरणीय आदर्श न होकर केवल आदमी है। गालिब ने दुरुस्त फरमाया है—''आदमी को मयस्सर नहीं इंसा होना।'' कहना तो कठिन है कि इन लीडरों में सिर्फ आदमी ही हैं या इंसां भी हैं? राजनीति भी आजकल दूसरे धंधे की तरह एक धन कमाने का धंधा है—चुनाव में किए गए खर्चे की वसूली का या दल की दुकान चलाने का। इनके बके-घोषित उसूल-वादे केवल सत्ता पाने के बहाने हैं, वैसे ही जैसे गटर का काम गंदगी ढोना है। दलों का इकलौता लक्ष्य सत्ता हासिल कर कुरसी तोड़ना है। ये जो सिद्धांत या उसूल हैं, वे केवल गटर को ढककर उसे सजाने के साधन हैं। इनसे उसका मूल चरित्र बदल सकता है क्या? यह तो किसी मेनहोल पर मिट्टी डालकर उसमें गुलाब उगाने जैसा होगा। उसके अंदर का मल-मूत्र तो रहना ही रहना है। अब तो गँवार-से-गँवार को भी यह समझ आ गया है कि नेता कितने भी उसूलों की उलटी करें, वह गाय का गोबर भी नहीं, बल्कि ऐसी गंदगी हैं, जो न लीपने की है, न पोतने की।

नेताओं को जीते-जी नर्क का जीव साबित करने के पश्चात् उन्होंने

हर चोटी के खोजू विद्वान् के समान समाज में नए नॉर्मल का सिद्धांत प्रतिपादित किए है। इसके अनुसार अशिष्ट भाषा का प्रयोग, गाली-गलौज से परिचितों का पारस्परिक संबोधन, सड़कों पर दिन-दहाड़े हिंसा, कहीं अपनी गलती से पैर फिसले तो भी प्रधानमंत्री को दोष देने का सामूहिक अभियान, अपने से कमजोर से दुर्व्यवहार और ताकतवर के सम्मुख जुबानी दुम हिलाना, अकारण धरना-प्रदर्शन व आगजनी, सत्तालोलुप दलों द्वारा प्रचारित जातीय जहर, महिलाओं से अशोभनीय आचरण पारंपरिक नैतिकता के नए सुविधाजनक आयामों की खोज, आपसी सद्भाव को भंग करने के प्रगतिशील प्रयास आदि अब जीवन का नया सामान्य है। कौन कहे, इन्हें कब सामाजिक स्वीकार्यता मिले? यदि किसी ने श्रेष्ठता के दर्प में चूर होकर अपनी कार के आगे निकलने की कोशिश करनेवाले व्यक्ति को गोली मार भी दी तो यह कोई असामान्य कृत्य न होकर केवल वर्तमान के नए सामान्य सा ऐसा हिंसक कर्म होगा, जो शायद समाचार-पत्रों में प्रकाशन योग्य भी नहीं माना जाएगा।

मुरारी बताते हैं कि आज का समय जीवन-मूल्यों का संक्रमण काल है। पुराने मान्य नहीं हैं और नए को अभी सार्वजनिक स्वीकृति नहीं मिली है। ऐसे में आदमी-आदमी की समानता की राह में हमारे चिंतक-विचारक अपने निहित स्वार्थ से वशीभूत होकर नए-नए रोड़े बिछा रहे हैं। कहीं धन की प्रधानता है तो कहीं जाति की। धन-दौलत की तराजू पर जिसका पलड़ा भारी है, वह स्वयं को दूसरे से सुपीरियर ही नहीं समझता है, नियम-कानून के परे भी मानता है। क्यों न माने, कोर्ट में केस तो उसी को जीतना है, जिसके पास बड़े वकीलों की फौज है। मध्य वर्ग का सामान्य आदमी तो कोर्ट-कचहरी जाने से वैसे ही घबराता है, जैसे कैंसर के नाम से मरीज।

वहीं एक जमात वोट-लोलुप नेताओं की है। वे हिमायत सामाजिक समरसता की करते हैं, उसमें आरक्षण की नई-नई खाइयाँ खोदकर।

मुरारी बताते हैं कि आज का समय जीवन-मूल्यों का संक्रमण काल है। पुराने मान्य नहीं हैं और नए को अभी सार्वजनिक स्वीकृति नहीं मिली है। ऐसे में आदमी-आदमी की समानता की राह में हमारे चिंतक-विचारक अपने निहित स्वार्थ से वशीभूत होकर नए-नए रोड़े बिछा रहे हैं। कहीं धन की प्रधानता है तो कहीं जाति की। धन-दौलत की तराजू पर जिसका पलड़ा भारी है, वह स्वयं को दूसरे से सुपीरियर ही नहीं समझता है, नियम-कानून के परे भी मानता है। क्यों न माने, कोर्ट में केस तो उसी को जीतना है, जिसके पास बड़े वकीलों की फौज है।

आठ-दस पीढ़ी पहले अतीत में हुई हत्या के लिए वर्तमान में उस परिवार के वंशज को फाँसी पर चढ़ाना क्या न्यायसंगत है? इनकी मान्यता यही है, वरना यह हर क्षेत्र में आरक्षण-दर-आरक्षण की वकालत कैसे कर पाएँगे? क्या एक बार सरकारी सेवा में प्रवेश के लिए आरक्षण पर्याप्त नहीं है, जो उसे प्रमोशन में भी लागू किया जाए, इससे क्या अकर्मण्यता को बढ़ावा नहीं मिलेगा? आरक्षित कर्मचारी यदि हाथ-पर-हाथ धरे बैठा रहा तो भी उसके साथ सामाजिक न्याय, यानी प्रमोशन तो होना-ही-होना है। इस नाइनसाफी से सामान्य वर्ग के सीनियर, योग्य और मेहनती कर्मचारी तथा आरक्षित पदोन्नति प्राप्त व्यक्ति के पारस्परिक सद्भाव का अनुमान लगाना कठिन नहीं है। पर सवाल देश के सामान्य सद्भाव का न होकर प्रजातंत्र के पापी वोट का है, जिसे छल-कपट से पाना ही पाना है। इस जातीय नेतागीरी से वे अपनी भविष्य की पीढ़ियों का पुख्ता आर्थिक प्रबंध कर चुके हैं। यों तो उनके पास आरक्षित वर्ग के कल्याण का अंतहीन पुलिंदा है। वह दिन दूर नहीं, जब वह क्रिकेट जैसे कमाऊ खेल में आरक्षण माँगें! सिर्फ फौज है, जिसमें आरक्षण की माँग की संभावना कम है, क्योंकि वहाँ जान जाने का खतरा है। ऐसी तथाकथित पारस्परिक सद्भावना और सौहार्द, एक वर्ग के नेताओं के लिए नए भारत के निर्माण का नया सामान्य है। समता और समानता की सड़क पर आपसी वैमनस्य की बारूद बिछाकर वे देखना चाहते हैं कि इस प्रयोग का भारत की एकता पर क्या प्रभाव पड़ता है? मुरारी का प्रश्न है कि ऐसे नेता यदि वास्तव में देशहित को समर्पित हैं तो हर जाति के गरीब को आरक्षण देकर नए भारत के सर्वमान्य सामान्य की वे पहल क्यों नहीं करते हैं?

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

हिंदी राष्ट्रभाषा है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को, प्रत्येक भारतवासी को इसे सीखना चाहिए —रविशंकर शुक्ल

हिंदी भाषा ही एक ऐसी भाषा है, जो सभी प्रांतों की भाषा हो सकती है। —रंगनाथ पिल्लयार

जब हम हिंदी की चर्चा करते हैं तो वह हिंदी संस्कृति का एक प्रतीक होती है। —शांतानंद नाथ

हिंदी में जो गुण है, उनमें से एक यह है कि हिंदी मर्दानी जबान है। —सुनीति कुमार चटर्जी

वारसा में हिंदी : पोलैंड तथा मध्य-यूरोप के संदर्भ में

● दानूता स्ताशिक

सबसे पहले मैं हंगरी के डॉ. इमरै बंघा, जो आज ऑक्सफुड में प्राध्यापक हैं, के शब्दों को उद्धृत करना चाहती हूँ। उन्होंने अपने एक आलेख में नोट किया कि हिंदी अध्ययन की दृष्टि से मध्य-यूरोप विश्व में अपेक्षाकृत कम प्रसिद्ध है, पर इन देशों के विभन्न विश्वविद्यालयों में भारत-विद्या विभाग स्थापित हैं और इनमें हिंदी शिक्षण तथा प्रचार-प्रसार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहा है। उदाहरण के लिए पोलैंड में चार विश्वविद्यालय, यानी वारसा, क्राकूव, पोजुनान और व्रोत्स्लाव, हंगरी में बुडापेश्त विश्वविद्यालय, चेक गणराज्य में प्राग में चार्ल्स विश्वविद्यालय, बल्गारिया में सोफिया विश्वविद्यालय और रोमनिया में बुखारेस्त विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की प्राचीन परंपरा है। इनमें हिंदी अध्यापन से जुड़े कुछ विद्वान् विश्व के जाने-माने हिदीविदों में से हैं और यह सबकुछ ऐसी स्थिति में कि इन देशों में भारतीय प्रवासी समुदाय, जिसका आविर्भाव ऐतिहासिक तथा राजनीतिक कारणों से अंतिम २०-२५ वर्षों में संभव हुआ है—बहुत सीमित है। यहाँ अधिकतर छात्र अपनी रुचि की प्रेरणा से हिंदी और भारत-शास्त्र पढ़ते हैं। इस संदर्भ में यह भी रोचक है कि हिंदी पढ़ने जा रहे छात्र सामान्यत: पहले से ही दो या तीन भाषाओं और इनकी भाषा-रचना से परिचित होते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि दुनिया में कम लोगों को पता है कि मध्य-यूरोप में लोग भारतीय संस्कृति तथा भारतीय भाषाओं और इसके साथ-साथ हिंदी में रुचि लेते हैं।

वैसे पोलैंड में भी भारत और भारतीय संस्कृति में रुचि लेने की पुरानी परंपरा है। इसके सर्वप्रथम दस्तावेज पंद्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में मिलते हैं। भारत जानेवाले सर्वप्रथम ज्ञात पोलिश व्यक्ति गास्पर द गामा उर्फ गास्पर द इंडिया (१४५०-१५५०) थे, जो वास्को द गामा के सलाहकारों में से एक थे तथा पोलिश राजा के राजदूत एराज्म क्रेत्कोव्स्की (१५०८-१५५८) और एक पोलिश अभिजात का सन् १५९६ में भारत में, गोवा में, लिखित एक पत्र सुरक्षित है। उनके वक्तव्य से पता चलता है कि उस काल में पोलैंड में लोगों में भारत के प्रति बड़ी जिज्ञासा थी। और बात आज भी, लगभग पाँच सौ वर्ष बाद सही है, यानी हम लोगों में दूसरी संस्कृतियों तथा भाषाओं को जानने की जिज्ञासा वर्तमान है। इस परंपरा का एक अविच्छेद अंश मैं भी हूँ,

प्राच्य विद्या विभाग के दक्षिण एशिया की अध्यक्षा। पोलैंड के राष्ट्रपति से प्रोफेसर की उपाधि प्राप्त। विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भागीदारी। हिंदी साहित्य में प्रवासी भारतीयों के जीवन पर शोध-कार्य। इससे संबंधित अंग्रेजी में लिखी और भारत में छपी 'Out of India Image of the West in Hindi Literature', हिंदी राम साहित्य पर शोध-कार्य पुस्तक 'The Infinite Story the past and present of the Ramayanas in Hindi' तथा अज्ञेय, कुँवर नारायण, अशोक वाजपेयी, मंगलेश डबराल आदि का हिंदी से पोलिश में अनुवाद।

जो आज यहाँ भारत में आप लोगों के सामने पोलैंड में हिंदी के बारे में हिंदी में बोल रही हूँ।

हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के इतिहास को लेकर यह याद रखना जरूरी है कि यह भारत-विद्या का एक क्षेत्र है और यद्यपि पोलैंड में भारत-विद्या का समारंभ गत दो-तीन सौ वर्ष पहले हुआ था, तो ऐतिहासिक और राजनीतिक कारणों से सर्वप्रथम विभागों की स्थापना प्रथम महायुद्ध के बाद ही संभव हुई। वारसा में सन् १९३२ में प्राज्य-विद्या संस्थान खुला, जिसके विभागों में भारत-विद्या विभाग भी एक था। इसी विभाग में पोलैंड में हिंदी के अध्ययन-कार्य का शुभारंभ सन् १९३८ में हुआ। किंतु एक वर्ष के पश्चात् द्वितीय महायुद्ध के कारण विश्वविद्यालय बंद हो गया।

महायुद्ध के आठ वर्ष बाद सन् १९५३ में वारसा विश्वविद्यालय के प्राच्य-विद्या संस्थान में भारत-विद्या विभाग पुन: आरंभ हुआ। इसके प्रथम अध्यक्ष प्रो. एउगेनियुष स्वुष्क्येविच बने। शुरू में भारत-विद्या विभाग का प्रमुख क्षेत्र संस्कृत भाषा, प्राचीन भारतीय संस्कृति और दर्शन था, पर शीघ्र ही सन् १९५५ में इस केंद्र में हिंदी भाषा और साहित्य का भी अध्ययन-अध्यापन शुरू हो गया। वारसा में हिंदी पाठ्यक्रम का शुभारंभ स्वार्गीय श्रीमती डॉ. तात्याना रूत्कोउस्का (१९२६-२००२) ने किया। वे प्रसिद्ध रूसी प्रोफेसर ए.पी. बारात्निकोव की छात्रा रह चुकी थीं। डॉ. रूत्कोउस्का के काम का आरंभिक दौर बहुत कठिन था। आमतौर पर किताबों को विदेशी पुस्तकालयों से मँगवाना पड़ता था और फोटोस्टेट मशीनों के अभाव में बहुत बार पुस्तकों के लंबे

अंशों की प्रतिलिपियाँ हाथ से तैयार करनी पड़ती थीं! सौभाग्यवश इस तरह की कठिनाइयों ने, जो वर्ष-प्रति-वर्ष कम होती जा रही थीं, पाठ्यक्रम में बाधा नहीं डाली। उस समय से आज तक अपने कार्यक्षेत्र में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप सन् १९९६ में विभाग का नाम दक्षिण एशिया विभाग में बदल दिया गया।

वारसा में हिंदी की पढ़ाई में सन् १९८३ के इंडो-पोलिश सांस्कृतिक सहयोग की एक धारा बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। इसके अंतर्गत भारत के अच्छे-से-अच्छे उच्च शिक्षा संस्थानों (जैसे दिल्ली विश्वविद्यालय, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, जामिया मिल्लिया इसलामिया, कालीकट विश्वविद्यालय, हैदराबाद विश्वविद्यालय तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान) के अब तक भारत से आए कुल मिलाकर १२ अध्यापकों का वारसा में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में उल्लेखनीय योगदान रहा।

क्राकूव में हिंदी भाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन का शुभारंभ प्रसिद्ध भाषा-विशेषज्ञ प्रो. तादेउष पोबोज्न्यक के प्रयासों से सन् १९७३ में हुआ। अब जैसे वारसा में वैसे क्राकूव में भी भारत-विद्या की पढ़ाई (और इसमें हिंदी की भी) सभी स्तरों पर चल रही है—बी.ए., एम.ए. तथा पी-एच.डी. के स्तर पर। पोजुनान और व्रोत्स्लाव के नए केंद्रों में हिंदी की पढ़ाई सिर्फ बी.ए. के स्तर पर चल रही है।

वारसा में भारत-विद्या की पढ़ाई सभी स्तरों पर चल रही है, बी.ए. के पाठ्यक्रम की अवधि तीन साल है, एम.ए. के पाठ्यक्रम की अवधि दो साल है तथा पी-एच.डी. के पाठ्यक्रम की अवधि चार साल है। पी-एच.डी. तथा एम.ए. के शोध प्रबंधों के विषय आधुनिक या मध्यकालीन हिंदी साहित्य या हिंदी भाषाविज्ञान से संबंधित हैं, जैसे 'ढोला मारू रा दूहा' में मध्यकालीन राजस्थानी समाज का वर्णन तुलसीकृत रामचरितमानस में स्त्री-जगत् हिंदी में आधुनिक उपन्यास की उत्पत्ति, जयशंकर प्रसाद की कामायनी में 'बुद्धिवाद' और 'हृदयवाद', हिंदी फिल्मों की समालोचना इत्यादि। आज तक वारसा विश्वविद्यालय में लगभग एक सौ विद्यार्थियों को हिंदी में उपाधि मिल चुकी है। इस समय विभाग में पैंतीस छात्र पढ़ रहे हैं, जिनके लिए हिंदी प्रमुख विषय है। इनके अलावा तीस ऐसे विद्यार्थी हैं, जो हिंदी दूसरी या तीसरी भारतीय भाषा के रूप में पढ़ रहे हैं।

पोलैंड में हिंदी की पढ़ाई वारसा के अतिरिक्त तीन अन्य विश्वविद्यालयों में भी चल रही है, ये हैं—क्राकूव का याग्येलोनियान विश्वविद्यालय, पोजुनान का आदम मित्स्क्येविच विश्वविद्यालय तथा व्रोत्स्लाव विश्वविद्यालय।

क्राकूव में हिंदी भाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन का शुभारंभ प्रसिद्ध भाषा-विशेषज्ञ प्रो. तादेउष पोबोज्न्यक के प्रयासों से सन् १९७३ में हुआ। अब जैसे वारसा में वैसे क्राकूव में भी भारत-विद्या की पढ़ाई (और इसमें हिंदी की भी) सभी स्तरों पर चल रही है—बी.ए., एम.ए. तथा पी-एच.डी. के स्तर पर। पोजुनान और व्रोत्स्लाव के नए केंद्रों में हिंदी की पढ़ाई सिर्फ बी.ए. के स्तर पर चल रही है।

हिंदी के पोलिश छात्रों के बारे में बोलते समय ध्यान देने योग्य है कि सन् १९७८ से उनको भारत सरकार की ओर से उच्च अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति मिल सकती है। इस छात्रवृत्ति के अंतर्गत वे विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान (शुरू में दिल्ली, बाद में आगरा केंद्र) में जाकर हिंदी पढ़ने का अच्छा अवसर पाते हैं। भारत में रहकर वे हिंदी के महत्त्व एवं गौरव को समझने लगते हैं तथा बहुतों के लिए भारत उनकी दूसरी प्रिय मातृभूमि बन जाता है। हिंदी के माध्यम से उन्हें समग्र भारतीय संस्कृति के मूल तक पहुँचना और भारत की आत्मा को समझना आसान हो जाता है। अध्यापन के साथ-साथ ही वारसा में हिंदी भाषा तथा साहित्य पर शोध भी चल रहा है। पोलिश और अंग्रेजी भाषाओं में लिखित हिंदी साहित्य तथा भाषा की पुस्तकें इस गहरे अध्ययन का परिणाम हैं। ये हैं—पोलिश में लिखित तात्याना रूत्कोउस्का तथा दानूता स्ताशिक की हिंदी साहित्य की रूपरेखा (१९९२), दानूता स्ताशिक की, (दो भागों में) हिंदी भाषा की पाठ्य-पुस्तक (पहला संस्करण १९९४-१९९७), हिंदी भाषा का व्याकरण (पहला संस्करण १९९८) और धर्मचारी राजा की कथा। हिदी साहित्य में रामायण की परंपरा (२०००); दानूता स्ताशिक अंग्रेजी में लिखित तथा भारत से प्रकाशित दो पुस्तकें 'अद ऑफ इंडिया', 'द इमैज ऑफ द वेस्ट इन हिंदी लिटरेचर' (१९९४) और 'द इन्फिनिट स्टोरी'। 'द पस्त्र एंड प्रेसेट ऑफ द रामायणस इन हिंदी' (२००९) तथा डॉ. आलेक्सांद्रा शीष्को उत्तर भारत में राजस्थानी लोकगाथा ढोला-मारू की परंपरा पर अंग्रेजी में लिखित पुस्तक ट्री जुएल्नस अँफू द डेसेर्द ढोला-मारू लिविंग नेरेटिव टेरडिशन ऑफ नॉदर्न इंडिया (२०१३)। इन पुस्तकों के अलावा अनेकानेक विषयों से संबंधित लेख भी पोलिश, अंग्रेजी और हिंदी में प्रकाशित हुए हैं। कई सालों से इन शब्दों को प्रस्तुत करनेवाली हिंदी साहित्य का इतिहास (हिंदी साहित्य की चयनिका सहित) परियोजना में संलग्न है।

अंतिम ४-५ वर्षों में एक दिलचस्प पहल सामने आई, जो मध्य-यूरोप को हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में महत्त्वपूर्ण केंद्र प्रमाणित करती है, यह है पुरानी तथा आधुनिक हिंदी की कार्यशालाएँ, जिनमें सारी दुनिया के हिंदी के अध्यापक, छात्र, अनुवादक और लेखक भाग लेते हैं। अभी तक पाँच ऐसी कार्यशालाएँ हो चुकी हैं, तीन पुरानी हिंदी की (म्येर्कुरआ रोमानिया में, वारसा पोलैंड में और वास्को बुल्गारिया में) और दो आधुनिक हिंदी की कार्यशालाएँ (म्येर्कुरआ में और क्राकूव के पास)। इन कार्यशालाओं के सहभागियों का हिंदी के प्रति समर्पण और उत्साह सभी जगह अनुकरणीय है, जिससे हिंदी अध्ययन का वर्तमान

और भविष्य उज्ज्वल रहे।

अध्ययन-अध्यापन के अलावा वारसा विश्वविद्यालय का अनुवाद के क्षत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यहाँ सर्वप्रथम स्थान स्वर्गीय श्री यूल्युष पार्नोव्स्की (१९३४-२०००) का है। वे विभाग के पुस्तकालय में कार्यरत रहे। उन्होंने हिंदी के उपन्यासों, अनेकानेक कहानियों तथा कवितओं का अनुवाद किया। 'फणीश्वरनाथ रेणु' का मैला आँचल इनमें प्रमुख है (१९८२)। पार्नोव्स्कीजी ने अपने अनुवाद में रेणु की सजीव भाषा से निर्मित मेरीगंज के यथार्थ को पोलिश पाठकों के लिए पुनर्जीवित कर दिया।

वे मुंशी प्रेमचंद की कहानियों के भी अनुवादक रहे। सर्वप्रथम प्रेमचंदजी की कहानियों के पोलिश अनुवाद सन् १९७१ के संग्रह 'ठाकुर का कुआँ' में प्रकशित हुए (संग्रह के अन्य अनुवादकों में श्री आजेय वुगोउस्की, श्रीमती कार्लिकोउस्का, प्रो. बृस्की और डॉ. रूत्कोउस्का हैं)। संग्रह की भूमिका में डॉ. रूत्कोउस्का ने प्रेमचंद के जीवन और उनकी प्रमुख कृतियों का परिचय दिया है।

सन् १९७६ में पार्नोव्स्कीजी द्वारा अनूदित आधुनिक कहानियों का संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें बारह कहानीकारों की १४ कहानियाँ संकलित हैं, जैसे धर्मवीर भारती की 'बंद गली का आखिरी मकान', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', कमलेश्वर की 'युद्ध', ज्ञानरंजन की 'घंटा', शेखर जोशी की 'बदबू' आदि। संग्रह की भूमिका डॉ. आग्न्येष्का कोवाल्स्का-सोनी ने लिखी।

हिंदी कहानियों के पोलिश अनुवाद एक और संग्रह में उपलब्ध हैं, जिसमें अनेक हिंदी और बँगला कहानीकारों की कहानियाँ संकलित की गई हैं। उक्त संग्रह में डॉ. रूत्कोउस्का और श्रीमती कार्लिकोउस्का के अनुवाद में प्रेमचंद की 'शतरंज के खिलाड़ी', जयशंकर प्रसाद की 'मधुआ', मन्नू भंडारी की 'खोटे सिक्के', उषा प्रियंवदा की 'वापसी' आदि कहानियाँ संगृहीत हैं।

और दो साल पहले, सन् २०१३ में सर्वश्रेष्ठ आधुनिक हिंदी कवि कुँवर नारायण की कविताओं का पोलिश में अनूदित द्वैभाषिक (हिंदी तथा पोलिश में) संग्रह प्रकाश में आया। पुस्तक रूप के अतिरिक्त हिंदी के पोलिश अनुवाद विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए, जैसे—कमलेश्वर की 'कस्बे का आदमी' और 'जार्ज पंचम की नाक', भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया है', रघुवीर सहाय और श्रीकांत वर्मा की कुछ कहानियाँ, अज्ञेय, कुँवर नारायण और अशोक वाजपेयी की कविताएँ तथा तुलसीकृत मानस और 'कबीर बीजक' के अंश इनमें प्रमुख हैं।

जैसे कि पहले कहा गया, इस समय पोलैंड में हिंदी की पढ़ाई वारसा के अतिरिक्त तीन अन्य विश्वविद्यालयों में भी चल रही है, ये हैं—क्राकूव के याग्येलोनियान विश्वविद्यालय, पोजुनान के आदम मित्स्क्येविच विश्वविद्यालय तथा ब्रोत्स्लाव विश्वविद्यालय। अभी तक पोलैंड में कुल मिलाकर लगभग २०० व्यक्तियों को हिंदी में उपाधियाँ दी गई हैं। वे पोलैंड और यूरोप के आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय हैं। पर सच यह है कि वे किन्हीं भी नौकरी में न हों (जो ज्यादातर हिंदी से जुड़ी नहीं), वे सदा के लिए भारतीय संस्कृति के राजदूत हैं। फिर भी आशा की जा सकती है कि जैसे-जैसे भारतीयों तथा भारतीय मूल के लोगों द्वारा हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग किया जाएगा, वैसे-वैसे विश्व भर में हिंदी-विज्ञों का बेहतर प्रयोग होता चला जाएगा।

अंत में मैं प्रसिद्ध हिंदी विद्वान् रूपर्ट स्नेल, जो पहले लंदन और आजकल अमरीका में पढ़ाते हैं, के शब्दों को दोहराना चाहती हूँ। ये शब्द मेरे वक्तव्य के सिद्धांत-वाक्य का काम करते हैं और साथ ही मेरे अध्यापक-जीवन का अर्थ भी व्यक्त करते हैं। रूपर्टजी ने कुछ साल पहले नवभारत टाइम्स में लिखा—''हिंदी की मेरी जानकारी अधूरी और ऊपरी होती हुई भी, बहुत कुछ दे चुकी है मुझे। मुझे बहुत कुछ मिला है हिंदी से और मेरा हिंदी पढ़ाने का उद्देश्य भी हमेशा यही रहा है कि औरों को भी इस प्रकार का फायदा और आनंद महसूस करने का मौका मिले।'' मेरे कहने का तात्पर्य इतना है कि हिंदी हमसे न कुछ लेती है, न ले सकती है, उलटे बहुत कुछ देकर हमारे तादात्म्य को स्थापित करने में बड़ी सहायता देती है।

Kierownik Katedry Azji Południowej
Wydział Orientalistyczny
Uniwersytet Warszawski/
Prof. Danuta Stasik, Head
Chair of South Asian Studies
Faculty of Oriental Studies
University of Warsaw
ul. Krakowskie Przedmieście 26/28
00-927 Warszawa, Poland
e-mail : d.stasik@uw.edu.pl

अहिंदी भाषा-भाषी प्रांतों के लोग भी सरलता से टूटी-फूटी हिंदी बोलकर अपना काम चला लेते हैं—अनंतशयनम् अयंगार

हिंदुस्तान की भाषा हिंदी है और उसका दृश्यरूप या उसकी लिपि सर्वगुणकारी नागरी ही है। —गोपाललाल खत्री

हिंदी भाषा की उन्नति का अर्थ है राष्ट्र और जाति की उन्नति। —रामवृक्ष बेनीपुरी

पैसिफिक में हिंदी का द्वीप—फीजी

• अनिल जोशी

फीजी में भारतीय हाई कमीशन में निदेशक; भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, चांसरी प्रमुख, द्वितीय सचिव (हिंदी एवं संस्कृति)। विश्व हिंदी सम्मेलन में डेस्क ऑफिसर के रूप में कार्य। कविता-संग्रह 'मोर्चे पर', 'नींद कहाँ है' तथा सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक विषयों पर सैकड़ों लेख एवं ब्रिटेन के कवियों का संकलन 'धरती एक पुल' प्रकाशित। यू.के. हिंदी समिति ब्रिटेन, विश्व हिंदी समिति न्यूयॉर्क, विश्व हिंदी परिषद् भारत, विश्व हिंदी न्यास त्रिनिडाड से सम्मानित।

हिंदी दुनिया की सबसे ज्यादा बोली जानेवाली भाषाओं में से एक है। यह भारत ही नहीं, विश्व के बहुत से देशों में बोली, पढ़ी और समझी जाती है। आज प्रवासी भारतीय सौ से ज्यादा देशों में है, जहाँ किसी-न-किसी रूप में हिंदी विद्यमान है। उसी प्रकार बॉलीवुड, भारतीय नृत्य और संगीत हिंदी को बहुत से देशों में ले गया। पैसिफिक में फीजी के अतिरिक्त ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में इस भाषा को बोलने, पढ़ने और समझनेवाले, रेडियो चैनल इस भाषा के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं। प्रशांत देशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में सबसे ज्यादा योगदान १९वीं शताब्दी के अंत में गिरमिटिया मजदूरों के फीजी में आने से हुआ।

गिरिमिटिया मजदूरों के आगमन के साथ ही फीजी में हिंदी प्रचलित हो गई। विभिन्न प्रदेशों से आए गिरमिटिया मजदूरों ने संपर्क भाषा के रूप में हिदी को अपनाया, जिसे 'फीजी हिंदी' कहा गया। उन्होंने अपनी परंपरा और संस्कृति का संरक्षण इसी भाषा के माध्यम से किया। रामायण और अन्य धार्मिक पुस्तकों के माध्यम से उन्होंने अपनी भाषा को जीवंत रखा। धीरे-धीरे उन्होंने स्कूलों की स्थापना की, जिससे हिंदी को विधिवत् रूप से आगे बढ़ाया जा सके। तब से हिंदी फीजी के औपचारिक शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। देश में चार रेडियो स्टेशन हैं, जो २४ घंटे चलते हैं। एक साप्ताहिक अखबार 'शांतिदूत' है, जो कि भारत से बाहर दुनिया का सबसे पुराना चलनेवाला अखबार है। इसकी स्थापना वर्ष १९३५ में हुई थी। इसके ऐतिहासिक योगदान को देखते हुए इस आलेख में 'शांतिदूत' पर विशेष चर्चा की गई है। फीजी में तीन विश्वविद्यालयों में स्नातक स्तर पर हिंदी पढ़ाई जाती है और कुछ स्थानों पर स्नातकोतर स्तर पर भी कुछ पाठ्यक्रम शुरू किए गए हैं। फीजी में कमला प्रसाद मिश्र, जोंगिदर सिंह कँवल, डॉ. सुब्रमणि और विवेकानंद शर्मा जैसे लेखक हुए हैं, जिनकी रचनाशक्ति पर हिंदी को गौरव है। इनमें से मानक हिंदी में गद्य और पद्य दोनों में महत्त्वपूर्ण योगदान करनेवाले पिछले वर्ष ही दिवंगत हुए श्री जोगिंदर सिंह कँवल के योगदान पर इस लेख में विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। फीजी में हिंदी के संदर्भ में सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि फीजी में हिंदी घर, बाहर, बाजार सब जगह इस्तेमाल की जाती है। हिंदी फीजी में एक जीवंत भाषा है।

फीजी में हिंदी की संस्थाएँ

वर्ष १९८७ के बाद फीजी राजनीतिक अस्थिरता के दौर से गुजरा। सैनिक विद्रोह के बाद विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत बहुत से प्रमुख लोग फीजी छोड़कर ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड चले गए। एक शून्य की सी स्थिति बन गई। इसका नुकसान समाज जीवन के बहुत से क्षेत्रों में पड़ा और हिंदी भी उससे अछूती नहीं रही। वर्तमान में जो संस्थाएँ काम कर रही हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—फीजी में हिंदी अध्यापक संघ हिंदी की सबसे पुरानी संस्था है। हिंदी अध्यापक संघ की वर्तमान अध्यक्ष श्रीमती मनीषा रामरखा हैं। इस संघ द्वारा वर्ष में दो विशेष गतिविधियाँ की जाती हैं, पहली गतिविधि है प्रत्येक वर्ष हिंदी दिवस का आयोजन। इस अवसर पर स्कूली विद्यार्थियों के लिए हिंदी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त हिंदी अध्यापक संघ शिक्षा मंत्रालय के साथ मिलकर अध्यापकों के लिए हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन करता है। श्रीमती मनीषा रामरखा के अतिरिक्त श्री शैलेन, श्री विमल इत्यादि इसकी सक्रिय पदाधिकारी हैं।

हिंदी की सबसे सक्रिय संस्था हिंदी परिषद् की पश्चिमी इकाई है। यह पश्चिम के भारतीय मूल के बहुल इलाकों में काम कर रही है। यह समय-समय पर सार्थक, उपयोगी और महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों का आयोजन करती रहती है। पिछले वर्ष किए गए कार्यक्रमों में जून, २०१८ में अध्यापकों की महत्त्वपूर्ण कार्यशाला थी, जिसमें अध्यापकों को हिंदी शिक्षण में आनेवाली समस्याओं का विस्तृत विवेचन किया गया था, बहुत सफल रही। इसी प्रकार स्थानीय प्रतिभाओं को अवसर देने के लिए 'एक शाम हिंदी के नाम' कार्यक्रम का आयोजन किया गया। संस्था को फीजी के वरिष्ठ साहित्यकार प्रो. सुब्रमणि का मार्गदर्शन प्राप्त है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम में फीजी हिंदी के पहले कहानी-संग्रह, 'कोई किस्सा सुनाओ' का लोकार्पण करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। एक अन्य कार्यक्रम में फीजी के वरिष्ठतम साहित्यकार श्री जोंगिदर सिंह कँवल के देहांत पर उन्हें समस्त साहित्यकारों द्वारा श्रद्धांजलि दी गई। प्रो.

सुब्रमणि के मार्गदर्शन में फीजी नेशनल युनिवर्सटी की श्रीमती सुभाषिनी, श्री नरेश चंद, श्री कमलेश आर्य, श्रीमती सुकलेश बली, श्रीमती विद्या सिंह इस संस्था को गतिशीलता के साथ चला रहे हैं। हिंदी परिषद् द्वारा भारतीय हाई कमीशन के साथ मिलकर हिंदी दिवस कार्यक्रम का भी भव्य आयोजन किया गया। इस संस्था की सक्रियता और सफलता में फीजी नेशनल यूनिवर्सटी की श्रीमती सुभाषिनी का विशेष योगदान है।

'हिंदी परिषद्, सुवा' स्थित प्रमुख शाखा के अध्यक्ष वरिष्ठ समाज सेवी श्री भुवन दत्त और सचिव सनातन समाज के श्री वीरेन लाल हैं। इस संस्था में भारतीयों की अन्य संस्थाओं की भी भागीदारी है। हिंदी की किसी समस्या को सरकार या उच्च अधिकारियों तक ले जाने में इस संस्था की विशेष भूमिका रहती है। हिंदी परिषद् सुवा में उपर्युक्त पदाधिकारियों के अतिरिक्त श्री मनहर नारसी, श्रीमती इंदु चंद्रा आदि हिंदीसेवी सक्रिय हैं। हाल में 'हिंदी परिषद्, लंबासा' का भी गठन हुआ है, इसकी संयोजक श्रीमती शैलेशनी हैं, जिन्होंने वर्ष २०१८ में लंबासा में भव्य कार्यक्रम का आयोजन किया।

वर्ष २०१६ में फीजी में फीजी के तत्कालीन शिक्षा मंत्री द्वारा भारतीय हाई कमिश्नर की उपस्थति में 'गोपियो' संस्था का गठन किया गया। श्री रमेशचंद इस संस्था के अध्यक्ष हैं और इस संस्था ने सुरुचिपूर्ण हिंदी कार्यक्रमों का आयोजन कर हिंदी प्रेमियों को आकर्षित किया है। इसके द्वारा वर्ष २०१८ में आयोजित कार्यक्रम हास्य कवि-सम्मेलन काफी सफल रहा। इसके अलावा ये हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए निरंतर कार्यरत हैं। इस संस्था में श्री रमेश चंद के अतिरिक्त श्रीमती उत्तरा गुरदयाल, श्रीमती श्यामला, श्रीमती रोहिणी, श्री चंद्र प्रकाश आदि सक्रिय पदाधिकारी हैं।

एक संस्था जो फीजी और भारत को जोड़ने का निरंतर काम कर रही है, वह भारत-फीजी मैत्री संघ। इस संस्था की गतिविधियाँ काफी व्यापक हैं और भारतीय हाई कमीशन के साथ मिलकर इन्होंने बहुत बड़े कार्यक्रम किए हैं, जैसे 'नमस्ते पैसिफिका फैस्टिवल' का आयोजन, 'अंतरराष्ट्रीय योग दिवस' का आयोजन। हिंदी के कार्यक्रमों के आयोजन में भी इसकी बढ़-चढ़कर भागीदारी रहती है। यू.एस.पी. की श्रीमती इंदु चंद्रा के मार्गदर्शन में और प्राध्यापक श्री राजेंद्र प्रसाद के संयोजन में इस संस्था का हिंदी मंच बहुत प्रभावी भूमिका अदा कर रहा है। चाहे अगले विश्व हिंदी सम्मेलन के फीजी में आयोजन के लिए पहल की बात हो या अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का संयोजन, भारत-फीजी मैत्री संघ की रचनात्मक और सक्रिय भूमिका सब जगह नजर आती है।

'हिंदी लेखक संघ फीजी' की स्थापना वर्ष २०१६ में की गई थी। इस संस्था द्वारा पुस्तकों के लोकार्पण कार्यक्रम, कार्यशाला और साहित्यिक समारोहों का आयोजन भारतीय हाई कमीशन द्वारा मिलकर किया गया। इस संस्था के अध्यक्ष श्री जैनेन कुमार हैं और इसमें श्रीमती उत्तरा गुरदयाल, सुश्री श्वेता, श्रीमती श्यामला इत्यादि बहुत सक्रिय हैं। इसके अतिरिक्त 'फीजी सेवाश्रम संघ' द्वारा प्रतिवर्ष विद्यार्थियों के लिए अगस्त मास में हिंदी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है। यह कार्यक्रम पिछले १० वर्षों से अधिक समय से स्वामी संयुक्तानंदजी के संयोजन में चल रहा है। इसी प्रकार हिंदू सोसायटी व इसकी अध्यक्षा श्रीमती इंदु चंद्रा भी हिंदी के स्तरीय कार्यक्रमों का आयोजन करती रहती हैं, जिसमें प्रमुख रूप से हिंदी दिवस का आयोजन है।

फीजी के विश्वविद्यालयों में हिंदी

फिजी में तीन विश्वविद्यालय हैं—पहला विश्वविद्यालय साउथ पैसिफिक विश्वविद्यालय है। इसके अंतर्गत १४ पैसिफिक द्वीपीय देश आते हैं। '९० के दशक में यहाँ पर हिंदी विभाग की स्थापना हुई, उस समय विभागाध्यक्ष प्रोफेसर सुब्रमण्य थे—पहले प्राध्यापक, जिन्होंने हिंदी पढ़ाना शुरू किया, वे थे श्री विवेकानंद शर्मा। वे अपने विद्यार्थियों में बहुत लोकप्रिय हैं। उन्होंने विद्यार्थियों को लेखन का मंच देने के लिए 'संस्कृति' पत्रिका भी प्रारंभ की। देखते-देखते यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ पैसिफिक हिंदी विभाग हिंदी संबंधी गतिविधियों का केंद्र बन गया। उनके साथ-साथ डॉक्टर चंद्रा ने भी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक का पद सँभाला, इन दोनों की टीम की वजह से हिंदी पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी। ज्यादातर वरिष्ठ अधिकारी, शिक्षा मंत्रालय में काम करनेवाले हिंदी अधिकारी, पत्रकार, मीडियाकर्मी, यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ पैसिफिक के हिंदी विभाग से शिक्षा ग्रहण करके ही अपने कॅरियर में आगे बढ़े। दुर्भाग्य से पिछले दशक में प्रोफेसर विवेकानंद शर्मा का देहांत हो गया और विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग को चलाने की जिम्मेदारी श्रीमती इंदु चद्रा ने सँभाली। उन्होंने कुशलतापूर्वक अपने कार्य का संचालन किया।

भारतीय मूल के लोगों की संस्थाओं और विश्वविद्यालय में लगातार प्रयास करते हुए वित्तीय कारणों से बंद किए गए स्कूल को दोबारा से शुरू करवाया। यह कठिन समय उनकी योग्यता और निष्ठा की परीक्षा थी। वे अभी भी बड़ी सक्रियता के साथ विद्यार्थियों का मार्गदर्शन कर रही हैं। डॉक्टर चंद्रा ने कई विश्व हिंदी सम्मेलनों में भाग लिया है और सामाजिक रूप से बहुत सक्रिय हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ फिजी की स्थापना आर्य समाज द्वारा इस सदी के पहले दशक में की गई थी, इसके पीछे समस्त भारतीय समाज आकर खड़ा हुआ विश्वविद्यालय के भारतीय मूल के कई प्रतिभाशाली अध्यापकों ने अपनी सेवाएँ प्रदान कीं, इस समय पैसिफिक में अगले ऐसा विश्वविद्यालय है, जहाँ पोस्टग्रैजुएट डिप्लोमा के शिक्षण की व्यवस्था है। इस विश्वविद्यालय में श्रीमती सुकलेश बली ने लंबे समय तक अपनी सेवाएँ प्रदान की हैं। इस समय श्रीमती मनीषा रामरखा वहाँ हिंदी का अध्यापन कर रही है। फीजी नेशनल यूनिवर्सटी फीजी सरकार द्वारा संचालित विश्वविद्यालय है। इसमें भावी प्राध्यापकों को हिंदी प्रशिक्षण दिया जाता है। सबसे ज्यादा संख्या में हिदी के विद्यार्थी यहीं पढ़ते हैं। यहाँ हिंदी की प्राध्यापक श्रीमती सुभाषिनी हैं। तीनों विश्वविद्यालय हिंदी की गतिविधियों की दृष्टि से बहुत सक्रिय हैं।

रेडियो स्टेशन

फीजी में दो रेडियो स्टेशन हैं, जिन पर निरंतर हिंदी के कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं। इनमें से एक मीडिया संस्था सरकार द्वारा संचालित है, जिसका नाम 'फीजी ब्राडकास्टिंग कॉरपोरेशन' (FBC) है। उसके अंतर्गत दो रेडिया स्टेशन हैं—रेडियो सरगम और रेडियो मिर्ची। जहाँ रेडियो सरगम मध्य आयु वर्ग और वयस्क लोगों के लिए है, शायद पुराने विविध भारतीय अंदाज में तो रेडियो मिर्ची युवाओं को ध्यान में रख कार्यक्रम प्रसारित करता है। फीजी ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन के टेलीविजन चैनल पर बॉलीवुड फिल्मों के अलावा हिंदी के कार्यक्रम भी प्रसारित किए जाते हैं। श्वेता पल्लवी, नूरजहाँ, वीरेन लाल आदि रेडियो सरगम के लोकप्रिय प्रसारक हैं। पर इन रेडियो स्टेशनों को जिस संस्था से कड़ी टक्कर मिल रही है, वह है सी.एफ.एल और उसके रेडियो स्टेशन नवतरंग। नवतरंग रेडियो स्टेशन के कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय और गतिशील हैं। समुदाय के साथ उसका संबंध सीधा है। इन कार्यक्रमों में फीजी हिंदी का भी प्रयोग किया जाता है। स्टेशन में प्रसारित फीजी हिंदी में बोले गए हास्य-व्यंग्य और चुटकले आदि का कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय हैं। दोनों रेडियो स्टेशनों पर कीर्तन, भजन, कव्वाली आदि खूब लोकप्रिय कार्यक्रम हैं। इन रेडियो स्टेशनों पर अभी वे गाने ज्यादा बजते हैं, जो भारत में '९० के दशक में लोकप्रिय थे। कुमार शानु, उदित नारायण के गाने। हिंदी बोलना, सुनना, समझना इसका फीजी में कोई सबसे बड़ा कारक और प्रेरक है तो ये रेडियो स्टेशन है।

फीजी में हिंदी के प्रचार-प्रसार में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान फीजी सरकार के शिक्षा मंत्रालय का है। इस मंत्रालय में हिंदी से जुड़े पाँच पदाधिकारी वर्ष २०१५ में भोपाल में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में भी गए थे, जहाँ से उन्हें बहुत प्रेरणा मिली। फीजी में प्राइमरी स्तर तक हिंदी अनिवार्य है। हिंदी के प्रचार-प्रसार में इस तथ्य का बहुत योगदान है। सेकेंडरी स्कूलों में भी हिंदी का शिक्षण किया जाता है। शिक्षण में मुख्य जोर बातचीत की हिंदी पर है। मंत्रालय द्वारा हिंदी का एक त्रैमासिक 'नव ज्योति' भी प्रकाशित किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा मंत्रालय द्वारा अध्यापकों की कार्यशालाएँ और हिंदी की प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। मंत्रालय के पाठ्यक्रम विभाग में श्री रमेश कुमार, सेकेंडरी स्तर पर और श्रीमती श्यामला प्राइमरी स्तर पर हिंदी का काम देखती हैं।

हिंदी लेखन

'७०-८० के दशक तक फीजी में लेखन, प्रकाशन की सशक्त परंपरा थी। कई साप्ताहिक अखबार थे। कमला प्रसाद मिश्र, गुरदयाल शर्मा, अयोध्या सिंह जैसे पत्रकार थे। उसी प्रकार साहित्य की दुनिया में भी कमला प्रसाद मिश्र पूरे विश्व में अपनी पहचान बनाए हुए थे। जोगिंदर सिंह कँवल, प्रो. सुब्रमणि, विवेकानंद शर्मा जैसे लेखकों ने हिदी में महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी थीं।

प्रो. सुब्रमणि फीजी हिंदी में लेखन का प्रमुख नाम है। उन्होंने यूनिवर्सटी ऑफ साउथ पैसिफिक में हिंदी की शिक्षा शुरू करने में बहुत मदद की थी। वे अपनी फीजी हिंदी में लिखी पुस्तक 'डऊका पुराण' से चर्चा में आए। उन्हें भारत सरकार द्वारा सूरीनाम के विश्व हिंदी सम्मेलन में वर्ष २००२ में 'विश्व हिंदी सम्मान' से सम्मानित किया गया। हाल में ही उन्होंने अपना दूसरा उपन्यास पूरा किया है—फीजी माँ। मूल रूप से लंबासा नगर के रहनेवाले प्रो. सुब्रमणि देश के प्रतिष्ठित विद्वान् हैं और इस वर्ष उनके मार्गदर्शन में फीजी हिंदी का एक कहानी-संग्रह 'कोई किस्सा बताओ' प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह की संकल्पना उन्हीं की है और इसमें उनके अतिरिक्त प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. ब्रजलाल, डॉ. सत्येंद्र नंदन, क्षेमेंद्र, सुभाषिनी, नरेश चंद, कोमल करिश्मा लता की कहानियाँ हैं। वे एक आधुनिक लेखक हैं और फीजी हिंदी में व्यंग्य की क्षमता का भरपूर दोहन किया है। व्यक्तिगत रूप से और फीजी हिंदी के नेतृत्वकर्ता लेखक के रूप में उनका योगदान अत्यंत सराहनीय है। विवेकानंद शर्मा न केवल उत्कृष्ट शिक्षक थे, बल्कि अच्छे लेखक भी थे। यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ पैसिफिक में हिंदी के संस्थापक थे। उनके विद्यार्थी देश में हिंदी का नेतृत्व कर रहे हैं। वे 'संस्कृति' नामक अत्यंत स्तरीय साहित्यिक पत्रिका भी वर्षों तक निकालते रहे।

वर्तमान में हिंदी लेखन में प्रो. सुब्रमणि के अतिरिक्त क्षमताशील लेखकों की बात करें तो श्रीमती सुभाषिनी प्रमुख नाम है। उन्होंने मैसूर विश्वविद्यालय से हिंदी में स्नातकोतर की परीक्षा में चार स्वर्ण पदक प्राप्त किए थे। फीजी हिंदी कहानियों में प्रकाशित उनकी कहानी एक अलग तेवर और संवेदना की कहानी है। इसके अतिरिक्त जैनेन प्रसाद के तीन कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उनकी कविताओं में हास्य-व्यंग्य की धार है। श्रीमती उत्तरा गुरदयाल नियमित लेखन कर रही हैं और उनके दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें एक संग्रह गिरमिट काल की कहानियों पर आधारित है। संवेदनशील कवयित्री सुश्री श्वेता का भी एक कविता-संग्रह प्रकाशनाधीन है। हिंदी के एक और अच्छे कवि नांदी के श्री यूसुफ हैं।

शिक्षा मंत्रालय

फीजी में हिंदी के प्रचार-प्रसार में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान फीजी सरकार के शिक्षा मंत्रालय का है। इस मंत्रालय में हिंदी से जुड़े पाँच पदाधिकारी वर्ष २०१५ में भोपाल में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में भी गए थे, जहाँ से उन्हें बहुत प्रेरणा मिली। फीजी में प्राइमरी स्तर तक हिंदी अनिवार्य है। हिंदी के प्रचार-प्रसार में इस तथ्य का बहुत योगदान है। सेकेंडरी स्कूलों में भी हिंदी का शिक्षण किया जाता है। शिक्षण में मुख्य जोर बातचीत की हिंदी पर है। मंत्रालय द्वारा हिंदी का

एक त्रैमासिक 'नव ज्योति' भी प्रकाशित किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा मंत्रालय द्वारा अध्यापकों की कार्यशालाएँ और हिंदी की प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। मंत्रालय के पाठ्यक्रम विभाग में श्री रमेश कुमार, सेकेंडरी स्तर पर और श्रीमती श्यामला प्राइमरी स्तर पर हिंदी का काम देखती हैं। इसके अतिरिक्त श्रीमती रोहिणी और श्रीमती प्रेमिका भी मंत्रालय में रहकर हिंदी का काम सक्रियतापूर्वक कर रही हैं।

भारतीय हाई कमीशन की भूमिका

भारतीय हाई कमीशन का काम फीजी में चल रही हिंदी गतिविधियों का संयोजन करना, उनको दिशा देना और यथासंभव वित्तीय सहयोग प्रदान करना है। मंत्रालय में द्वितीय सचिव स्तर का एक हिंदी अधिकारी है। पिछले वर्षों में हिंदी का शायद ही कोई ऐसा कार्यक्रम होगा, जिसमें भारतीय हाई कमीशन सुवा की सहयोगी के रूप मे केंद्रीय भूमिका न रही हो। फीजी में भारत के हाई कमिश्नर श्री विश्वास सपकाल की हिंदी में गहरी रुचि है। उनके कार्यकाल में हिंदी के प्रचार-प्रसार की विभिन्न योजनाओं को कार्यरूप दिया गया और हिंदी की संस्थाओं की प्रभावी और ठोस तरीके से सहायता की गई। इस संबंध में कुछ योजनाओं की चर्चा करना उचित होगा। पिछले तीन वर्षों से विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर हाई कमीशन द्वारा हिंदी के तीन विद्वानों को सम्मानित किया जाता है और उन्हें ५०० डालर की राशि और प्रमाण-पत्र दिया जाता है। एक विशेष बात यह है कि इस योजना के अंतर्गत ई-ताऊकेई भाषी हिंदी सेवियों और हिंदी विद्वानों को भी सम्मानित किया गया। इसी कड़ी में गैर-भारतीय मूल के हिंदी विद्वान् श्री नेमानी, प्रसिद्ध गायक जिमी सुभयदास आदि के अलावा प्रसिद्ध हिंदीसेवी, आर्य समाज प्रतिनिधि सभा के श्री भुवन दत्त, श्री वीरेन कुमार आदि को सम्मानित किया गया। इस सम्मान समारोह की एक और विशेषता किसी अध्यापक को सम्मानित किया जाना है, जिसका निर्णय फीजी के शिक्षा मंत्रालय से मिलकर किया जाता है।

भारतीय हाई कमीशन द्वारा १४ सितंबर के हिंदी दिवस कार्यक्रम का आयोजन पूरी भव्यता के साथ किया जाता है। परंतु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हाई कमीशन द्वारा सभी विश्वविद्यालयों और संस्थाओं को हिंदी दिवस के आयोजन के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। एक और विशेष योजना जो वर्ष २०१७ से हाई कमिश्नर श्री विश्वास सपकाल की पहल पर शुरू की गई, वह थी हिंदी दिवस के अवसर पर विश्वविद्यालयों द्वारा रचनात्मक प्रतियोगिताओं का आयोजन और प्रत्येक विश्वविद्यालय से एक सफल विद्यार्थी को 'भारत को जानिए' कार्यक्रम के अंतर्गत भारत की यात्रा पर भेजना। इससे युवाओं में अपनी भाषा के प्रति रुचि बढ़ी है।

भारतीय हाई कमीशन के सक्रिय सहयोग से हिंदी परिषद् सुवा, हिंदी परिषद् पश्चिम, गोपियो हिंदी लेखक संघ, भारत-फीजी मैत्री संघ के हिदी मंच की स्थापना हुई है। ये संस्थाएँ यथाशक्ति हिंदी की सेवा में लगी हुई हैं।

हिंदी के प्रसिद्ध लेखक जोगिंदर सिंह कँवल

जोगिंदर सिंह कँवल फीजी में हिंदी के प्रमुख लेखक हैं। वर्ष २०१८ में उनका ९० वर्ष की आयु में देहांत हुआ। जीवन-पर्यंत वे महत्त्वाकांक्षाओं से दूर, बा की पहाड़ियों में साहित्य साधना में रत रहे। जीवन के इस लंबी दौड़-धूप और यात्रा में उन्होंने अपनी मुसकान नहीं खोई, साहित्यकारों को सामान्य रूप से मिलनेवाली सांसारिक असफलताओं के कारण उनमें कोई कटुता नहीं आई, उदासीनता और निराशा तो उनसे कोसों दूर रही। बात-बात पर ठहाके लगाना उनकी आदत थी। अपनी कवयित्री पत्नी अमरजीत कौर के साथ वे निरंतर जीवन और भाषा के सत्यों का अन्वेषण करते रहे। हिंदी के चार उपन्यास, तीन काव्य-संग्रह, फीजी के हिंदी लेखकों की कविताओं, कहानियों और निबंधों के संग्रह, कहानी-संग्रह, अंग्रेजी में एक उपन्यास का लेखन, यानी पिछले ४४ सालों तक उन्होंने लगातार लिखा। उनसे मिलकर मुझे हिंदी के लेखक विष्णु प्रभाकर, रामदरश मिश्र और प्रभाकर श्रोत्रिय की याद आई। जिनकी कलम को उम्र की आँच ने गला नहीं दिया बल्कि अनुभवों के प्रकाश में दुनिया को और बारीकी से देखा, उसकी सुंदरता और पल-पल परिवर्तन के स्वभाव को समझा, जमीन की खुशबू को महसूस किया और क्षितिज के उस पार के अबूझे भविष्य को जन-जन के सामने प्रस्तुत किया। उनकी पहली पुस्तक 'मेरा देश, मेरी धरती' १९७४ में प्रकाशित हुई थी। इतिहास को खँगालते हुए, इतिहास के निर्जीव तथ्यों में अपनी रचनात्मकता से प्राण फूँककर जीवंत, खिलंदड़ी कहानियों, कविताओं, उपन्यासों को सृजित करते हुए।

'सवेरा' १८८० से शुरू होता है और १९२० में गिरमिट प्रथा की समाप्ति की खबर से समाप्त होता है। इतिहास का यह लोमहर्षक कालखंड जोगेंद्र सिंह कँवल ने 'सवेरा' उपन्यास में बड़े ही संवेदना और विजन के साथ दर्ज किया है। 'धरती मेरी माता' उपन्यास का पहला संस्करण १९७८ में प्रकाशित हुआ, दूसरा संस्कण १९९९ में। आज तक बनी हुई भूमि समस्या को ध्यान में रखकर लिखे इस उपन्यास के दूसरे संस्करण की भूमिका में वे लिखते हैं, ''कुछ लोग कहते हैं कि वक्त रुकता नहीं। वह आगे ही बढ़ता है, लेकिन अपनी इस रचना को पढ़कर मुझे महसूस होने लगा कि जैसे वक्त पिछले इक्कीस सालों से एक ही स्थान पर ठहरा हुआ है। वक्त की घड़ी की सुइयाँ एक ही जगह पर रुककर खड़ी हैं। जमीन की जो समस्याएँ भारतीय किसानों के लिए वर्षों से पहाड़ बनकर खड़ी हैं, वे आज भी उसी तरह सिर उठाए खड़ी हैं।'' कँवलजी सशक्त कवि हैं। उन्होंने फीजी के कवियों के संकलन का संपादन किया है और फीजी की कविता शक्ति को एक स्थान पर प्रस्तुत किया है। उनकी अपनी कविताएँ अपने समय का आइना हैं।

जिस तरह से प्रेमचंद अपने समाज की एक-एक समस्या को समझ, उसको बारीकी से पकड़ उपन्यास लिखते हैं, उसी प्रकार कँवलजी की पकड़ अपने देश और समाज की नब्ज पर है। आपको अगर फीजी

को समझना है तो सवेरा, करवट, धरती मेरी माता जैसे उपन्यासों को पढ़ना, जानना और समझना आवश्यक है। ये उपन्यास नहीं हैं, बल्कि पिछले १५० वर्षों का फीजी का रचनात्मक इतिहास है।

फीजी में हिंदी का प्रतिनिधि पत्र–'शांतिदूत'

फीजी में हिंदी की कोई बात 'शांतिदूत' के बिना अधूरी है। 'शांतिदूत' साप्ताहिक फीजी में हिंदी पत्रकारिता के ८० साल के गौरवपूर्ण इतिहास का प्रतिनिधि है। फीजी में भारतीय मूल के लोगों का गौरवशाली और संघर्षपूर्ण इतिहास है। इन साधनविहीन भारतीयों ने सोचा, क्यों न अपने जन्मस्थान से हजारों लोगों को जोड़ने के लिए हिंदी में अखबार निकाला जाए? तीस के दशक में जब 'फीजी टाईम्स' के प्रबंधन की जनता के साथ बैठक में जब यह चर्चा उठी तो एक युवा मौजूद था, जिसकी वर्षों से इच्छा थी कि फीजी में रहनेवाले भारतीयों के लिए हिंदी में एक समाचार–पत्र होना चाहिए। उसने मौके के महत्त्व को समझा और स्वयं को यह कार्य करने के लिए प्रस्तुत कर दिया। उसका नाम था पंडित गुरुदयाल शर्मा। परंतु अखबार की अपेक्षा केवल संपादन करना ही नहीं था। अखबार में समाचार–संग्रह, चयन, प्रूफ रीडिंग, संपादन, ले–आउट, प्रस्तुति, वितरण सब अपेक्षित है। गुरुदयाल शर्मा ने यह सारा कार्य एक–दो साल नहीं, दस–बीस साल नहीं, बल्कि अनवरत ४८ साल तक किया।

११ मई, १९३५ में 'शांतिदूत' के प्रकाशन से हिंदी का जो शंख बजा वह हुंकार आज भी ध्वनित हो रही है। गुरुदयाल शर्मा का जन्म १० दिसंबर, १९१३ को सुवा में हुआ था। उन्होंने अपनी पत्रकारिता की पारी पैसिफिक प्रेस से शुरू की, जहाँ वे हिंदी पत्र के सहायक संपादक बने। इन्होंने 'वृद्धिवाणी' जैसे नए पत्र की भी शुरुआत की। अंतत: १९३५ में उन्होंने शांतिदूत के संपादक का कार्यभार सँभाला और ४८ वर्ष तक शांतिदूत के माध्यम से हिंदी पत्रकारिता की अनवरत सेवा की। वे प्रसिद्ध ऋषिकुल कॉलेज के संस्थापकों में से थे और बहुत सी सामाजिक गतिविधियों से जुड़े थे। वर्ष १९८२ में उन्होंने सेवानिवृति ली। उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी 'Memories of Fiji १८८७–१९८७'।

हिंदी शिक्षण और हिंदी के प्रचार–प्रसार में तो शांतिदूत की भूमिका बहुत प्रशंसनीय है। एक तरह से शांतिदूत फीजी में हिंदी का प्रवक्ता है। शांतिदूत के कारण हजारों लोगों ने हिंदी सीखी। वर्तमान में भी हिंदी विद्यार्थियों के लिए दो पृष्ठ विशेष रूप से आरक्षित हैं, जिनमें स्कूलों के पाठ्यक्रम से जुड़े विषयों को क्रमवार प्रस्तुत किया जाता है। प्रसन्नता की बात है, इस संबंध में उन्हें शिक्षा मंत्रालय से भी सहयोग प्राप्त हो रहा है। दूरदराज के लोग किस प्रकार शांतिदूत के कारण हिंदी तथा भारत से जुड़े रहे, यह जानना अत्यंत रोचक और प्रेरणादायक है।

शांतिदूत की एक अन्य विशेषता यह है कि वह भारतीय समुदाय विशेष रूप से हिंदू मान्यताओं, आस्थाओं, विश्वासों को पालित–पोषित करता रहा है। यह भारतीय संस्कृति के प्रमुख प्रवक्ता के रूप में उभरा है। हिंदुओं की दो प्रमुख संस्थाओं सनातन धर्म सभा और आर्य समाज की गतिविधियाँ शांतिदूत में प्रमुखता से प्रकाशित होती रही हैं। दीवाली विशेषांक तो शांतिदूत की जीवनवाहिनी शक्ति है। कभी–कभी तो यह ३६५ पृष्ठों तक का होता रहा है। प्रत्येक अंक में न केवल उस समय के त्योहार आदि की विशेष जानकारी होती है बल्कि उस अवसर पर किए गए धार्मिक–सांस्कृतिक आयोजनों को भी इसमें प्रमुखता से दिया जाता है। सनातन धर्म सभा के अध्यक्ष रहे शालिग्राम शर्मा इसके नियमित स्तंभकार थे। वे विभिन्न त्योहारों की धार्मिक–सांस्कृतिक–दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करते रहे हैं। अंग्रेजी का अखबार सांस्कृतिक–धार्मिक मान्यताओं से एक दूरी बना लेता है, परंतु हिंदी का अखबार, उसका संपादक मंडल, उसका प्रबंधन उन गतिविधियों में एक दृष्टा के रूप में नहीं, एक सहभागी के रूप में भाग लेता है। रामायण मंडलियों की गतिविधियों को भी इसमें प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता है। ईद के अवसर पर इसमें विशेष सामग्री प्रकाशित की जाती है। क्रिसमिस के अवसर पर संपादकीय लिखे जाते हैं।

शांतिदूत फीजी मूल के भारतीय किसानों का अखबार रहा है। गाँवों में पढ़ा जाता रहा है। इसकी प्रसार संख्या गाँवों मे शहरों से अधिक है और वहाँ यह पंचायती अखबार रहा है, जहाँ एक समय में दसियों लोग इसे पढ़ते थे। किसानों की समस्याओं को लेकर यह प्रारंभ से ही आवाज उठाता रहा है।

चालीस के दशक में शांतिदूत में प्रकाशित कमला प्रसाद मिश्रजी 'हलाहल' नाम से कविता लिखी थी—

'कोई कहता है, न्यूजीलैंड जाकर तुम बस बी.ए. कर लो, कोई कहता है तुम भारत जाकर विद्यालंकार करो, कोई कहता है पुलिस बनो, कोई कहता सैनिक बन लो, कोई कहता कि 'सिविल सर्विस' से ही भवसागर पार करो, कुछ कहते अरे फकीर बनो, झटपट संन्यास ग्रहण कर लो, कोई कहता, तुम घूम–घूम बस विद्या का प्रचार करो, कोई कहता है कि वकील बनो, कोई कहता कि बनो लीडर, भारत से जब कोई नेता आए तुम टंग ऑफ वार करो, कोई कहता इस ओर चलो, कोई कहता उस ओर चलो, मुझको अब सच्ची राह दिखा, गुरुवर मेरा उद्धार करो।

गुरुवर ने झट ब्लूबुक देखी, आँखें मूँदी, कुछ ध्यान किया, कुछ सोच–समझकर फिर बोले, 'प्यारे चेला! व्यापार करो।'

कुल मिलाकर डायसपोरा पत्रकारिता में शांतिदूत का विशेष महत्त्व है। फीजी में रहनेवाले भारतीय समाज के आशाओं–अपेक्षाओं, आशंकाओं, रुचियों और सरोकारों को शांतिदूत ने प्रभावी तरीके से प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में प. गुरुदयाल शर्मा फीजी में हिंदी पत्रकारिता के भीष्म पितामह हैं। फीजी में भारतीय समाज, विशेष रूप से हिंदी समाज की धड़कने इसमें सुनाई पड़ती है।

Director (Culture), Head of the Chancery
e-mail : anilhindi@gmail.com

बल्गारिया में हिंदी

• देवेंद्र शुक्ल

हिंदी आज विश्व की तीन प्रमुख भाषाओं में से एक है। पिछले तीन दशकों से इसका अंतरराष्ट्रीय महत्त्व काफी बढ़ा है। किसी भी भाषा के महत्त्व को तीन संदर्भों के आधार पर देखा जा सकता है—क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय।

हिंदी में अंतरराष्ट्रीय भाषा होने की पूर्ण क्षमता है। अपने देश में लोग हिंदी के बारे में कितने ही उदासीन हों, किंतु जो विद्वान् भाषा के प्रवाह की गति को पहचानते हैं और जो भाषा-विज्ञान के सामाजिक पक्ष के मर्मज्ञ हैं, वे अच्छी तरह समझने लगे हैं कि इस शताब्दी के उत्तरार्ध में विश्व में कुल १० भाषाएँ अंतरराष्ट्रीय महत्त्व की रह जाएँगी, जिनमें आपसी आदान-प्रदान सहज और स्वयंचालित बनाने के लिए यांत्रिकी सुविधाएँ सुलभ हो सकेंगी, उनमें हिंदी का प्रमुख स्थान होगा।

हिंदी का समाजशास्त्रीय पक्ष यह भी संकेत देता है कि राष्ट्रीय संदर्भ से इतर इधर हिंदी का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ अति महत्त्वपूर्ण है। हिंदी आज विश्व के लगभग २०० विश्वविद्यालयों और सैकड़ों अन्य संस्थाओं में पढ़ी और पढ़ाई जा रही है। हिंदी बड़े पैमाने पर फिजी, ट्रिनीडाड, मॉरीशस, सूरीनाम, नेपाल, भूटान, गुयाना आदि देशों में प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही है, साथ ही बर्मा, श्रीलंका, कंपूचिया आदि देशों में हिंदी सामाजिक और सांस्कृतिक अंत:शक्ति के रूप में विद्यमान है तथा सोवियत संघ, अमरीका तथा यूरोप के अनेक देशों में हिंदी के प्रति गहरी शैक्षिक अभिरुचि है।

इससे यह स्पष्ट है कि हिंदी में एक ऐसी संधिनी शक्ति है, जो संस्कृत की प्रमुख उत्तराधिकारिणी भाषा होने के कारण ऐतिहासिक भाषाशास्त्र की दृष्टि से विश्व के अनेक भाषा-परिवारों को आपस में जोड़ती है। साथ ही व्यापक स्तर पर यह अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक समझ और आदान-प्रदान को भी गतिशील बनाती है। अमेरिका तथा यूरोपीय देशों में इधर हिंदी के प्रति रुचि काफी बढ़ी है, जिसके विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारण हैं।

भारत-यूरोपीय भाषा परिवार में जिन भाषाओं को गिना जाता है, उनका संस्कृत और हिंदी से संबंध एक जैसा नहीं है। जैसे जर्मन परिवार की अपेक्षा ग्रीक-लैटिन संस्कृत के अधिक निकट हैं, वैसे ही ग्रीक और लैटिन की तुलना में स्लाव परिवार की भाषाएँ संस्कृत के अधिक निकट हैं।

सुपरिचित लेखक। विदेशी भाषा के रूप में हिंदी पर शोध एवं लेखन, शैली-विज्ञान, भाषा-विज्ञान, हिंदी काव्यभाषा, आलोचना एवं निबंध के क्षेत्र में निरंतर लेखन। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में पूर्व प्रोफेसर। संप्रति भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा अतिथि प्राध्यापक के रूप में सोफिया विश्वविद्यालय, बल्गारिया एवं पेकिंग विश्वविद्यालय, पेइचिंग (चीन) में अध्यापन।

बल्गारियाई, स्लाव भाषाएँ तथा हिंदी

बल्गारिया की भाषा दक्षिणी स्लाव भाषा समुदाय के अंतर्गत है। संस्कृत-हिंदी परिवार और स्लाव भाषाओं का संपर्क ज्यादा गहरा है, शायद इसीलिए बल्गारिया में संस्कृत और हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन के प्रति अभिरुचि में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

हिंदी भाषा के अध्ययन की परंपरा

बल्गारिया में भारतविद्या के प्रति अभिरुचि यद्यपि १९वीं शताब्दी से प्रारंभ होती है, लेकिन १९६० के आस-पास सोफिया विश्वविद्यालय में शास्त्रीय एवं नव्य भाषाशास्त्र संकाय में पूर्वी भाषा विभाग की स्थापना के बाद यह परंपरा अत्यधिक गतिशील हुई है। इस विभाग के तत्त्वावधान में भारतविद्या के अलग-अलग विभाग विभिन्न समयांतराल में खोले गए। यद्यपि १९८४ में राष्ट्रीय स्तर पर पूर्वी भाषा विभाग को औपचारिक स्तर पर मान्यता मिल गई थी, पर अनौपचारिक रूप से १९६६ में ही विभाग में हिंदी-प्रेम एवं हिंदी अध्ययन परंपरा की नींव पड़ चुकी थी। १९६६ में विभाग में व्यावहारिक हिंदी का पाठ्यक्रम आरंभ हुआ। १९८१ में व्यावहारिक संस्कृत और १९८२ में भारतीय साहित्य का इतिहास खुलने से हिंदी साहित्य एवं हिंदी भाषा के अध्ययन को और अधिक गतिशीलता मिली।

सन् १९६६-१९८२ तक बल्गारिया में हिंदी और संस्कृत, दोनों भाषाओं में अध्ययन केंद्र खोले गए तथा भारतीय राजदूतावास एवं पूर्वी भाषा विभाग के प्रयत्नों से हिंदी शिक्षण पाठ्यक्रम को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया गया। पूर्वी भाषा विभाग में सन् १९६६-१९८२ तक का काल हिंदी-संस्कृत अध्ययन का आदिकाल है। इस काल में क्रांतिकारी गतिशीलता तब आई, जब १९७४ में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा पूर्वी भाषा विभाग में हिंदी अध्ययन पीठ; पी-एच.ए.

Propagation of Hindi Abroad कार्यक्रम की स्थापना हुई। इसके अंतर्गत भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली से प्रतिनियुक्ति पर आए प्रो. विमलेश कांति वर्मा एवं प्रो. रामकृष्ण कौशिक ने हिंदी अध्ययन-अध्यापन को भाषा वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। इन विद्वानों ने हिंदी-संस्कृत अध्ययन के संदर्भ में बल्गारीय शिक्षा व्यवस्था को न केवल एक नई ऊँचाई प्रदान की, प्रत्युत दोनों देशों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान को भी आगे बढ़ाया। बल्गारिया में हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में डॉ. विमलेश कांति वर्मा का अवदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जो विदेश मंत्रालय द्वारा प्रतिनियुक्त प्रथम अतिथि प्रोफेसर थे। प्रो. वर्मा ने बल्गारीया में हिंदी को प्रतिष्ठित करने में सुदृढ़ भूमिका निभाई। उन्होंने बल्गारीय भाषा में हिंदी भाषा एवं साहित्य के अनेक पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया, जिनमें प्रमुख हैं—

१. उच्बेनीक पो हिंदी (सोफिया यूनिवर्सिटी प्रेस १९७६)।
२. फोनेतिका हिंदी (सोफिया यूनिवर्सिटी प्रेस १९७८)।
३. बल्गारियन हिंदी शब्दकोश (१९७८)।

प्रो. वर्मा ने हिंदी भाषा से बल्गारीय भाषा में तथा बल्गारीय भाषा से हिंदी में साहित्यिक अनुवाद की परंपरा का श्रीगणेश किया। अपने कार्यों से हिंदी एवं बल्गारीय भाषा एवं साहित्य अध्ययन क्षेत्र में वे एक जीवंत-मिथक प्रतीक बन गए हैं। पूर्वी भाषा विभाग में आज भी हिंदी अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में प्रो. वर्मा के अवदान एवं कार्यों का स्मरण बड़े ही आदर के साथ किया जाता है।

सन् १९८२ से सोफिया विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा एवं अध्ययन के विकास को एक नई दिशा तब मिली, जब पूर्वी भाषा विभाग में प्रो. योर्दाङ्का बोयानोवा ने हिंदी अध्ययन को एक नया आयाम और नया परिदृश्य प्रदान किया। प्रो. बोयानोवा ने मास्को विश्वविद्यालय, रूस में प्रचलित हिंदी भाषा अध्ययन प्रणाली को विभाग में अपनाया तथा भारतीय परंपरा एवं रूसी अध्ययन परंपरा के संश्लेषण का नया प्रयोग किया। प्रो. बोयानोवा ने १९८३-१९८४ में केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली में हिंदी भाषा एवं भाषा विज्ञान का गहन व विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया तथा ब्रज अकादमी, वृंदावन से मध्यकालीन ब्रज साहित्य का भी अध्ययन किया। उन्होंने सोफिया विश्वविद्यालय के हिंदी अध्ययन को नई दिशा देने के साथ-ही-साथ तुलनात्मक साहित्य को भी वैज्ञानिक आधार दिया।

इस प्रकार बल्गारिया में हिंदी शिक्षण प्रक्रिया को समृद्ध करने में भारतीय अतिथि प्रोफेसरों एवं बल्गारीय हिंदी प्राध्यापकों का विशिष्ट योगदान रहा है। विभाग के स्थापना काल से ही भारतीय अतिथि प्रोफेसरों में डॉ. विमलेश कांति वर्मा, डॉ. राम कृष्ण कौशिक, डॉ. महेंद्र, डॉ. कर्ण सिंह चौहान, डॉ. जे.एस. कुसुम गीता, डॉ. देवेंद्र शुक्ल, डॉ. वेंकटेश, डॉ. नूरजहाँ बेगम, डॉ. आनंद वर्धन, डॉ. सत्यकाम, डॉ. गोविंद प्रसाद, डॉ. वी. राजू, डॉ. जयश्री, डॉ. प्रेम सिंह एवं प्रो. वी. कृष्ण ने हिंदी भाषा एवं साहित्य के अध्ययन क्षेत्र को बहु आयामी संभावना को विस्तार दिया है।

संप्रति प्रो. वी. कृष्णा भारतीय अतिथि प्रोफेसर के रूप में हिंदी भाषा एवं साहित्य के अध्ययन को नई गति एवं दिशा प्रदान कर रहे हैं। डॉ. आनंद वर्धन ने २००३ में पहली बार विभाग में हिंदी शिक्षण को भाषा प्रौद्योगिकी एवं आधुनिक तकनीक से जोड़ा है तथा वैकल्पिक मीडिया एवं साइबर युग की तकनीक से शिक्षण प्रक्रिया को एक विशिष्ट आयाम दिया। इन्होंने विभाग में ऑनलाइन वेब पत्रिका 'मैत्री' का संपादन किया तथा बल्गारीय भाषा से हिंदी में अनेक आलेखों, कविताओं एवं कहानियों का अनुवाद किया। साथ ही विभाग में सृजनात्मक हिंदी लेखन को लोकप्रिय बनाया।

इस प्रकार सोफिया विश्वविद्यालय के भारत विद्या विभाग को वैज्ञानिक रूप से नया रूपाकार देने में डॉ. योर्दाङ्का बोयानोवा, डॉ. बोर्याना कमोवा, डॉ. वान्या गांचेवा, डॉ. इफ्तीमोवा, डॉ. वालेंतीना मैरीनोवा, डॉ. मिलेना ब्रातोएवा, डॉ. गौलीना रूसेवा, सोकोलोवा, नादेज्दा रोजोवा, एमीलिया रादोवा, श्रीमती गेर्गाना एवं एलीत्सा कोन्स्तान्तीनोवा आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

डॉ. श्रीमती मोना कौशिक १९९१ से ही विभाग में हिंदी पढ़ा रही हैं। डॉ. मोना कौशिक ने हिंदी वार्त्तालाप, बुल्गारीय भाषा से हिंदी में अनुवाद और हिंदी की साहित्यिक शैलियों को अपनी हिंदी शिक्षण प्रक्रिया में विकसित किया है और हिंदी भाषा प्रौद्योगिकी का हिंदी शिक्षण में विकास भी किया है। पूर्वी भाषा और संस्कृति केंद्र के तत्कालीन संस्थापक और अध्यक्ष प्रसिद्ध बल्गेरियाई टर्की-विद्याविद् एवं भाषा वैज्ञानिक प्रो. एमिल बोएब ने भी अपने शिक्षण अनुभवों से हिंदी पाठ्यक्रमों को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि भारत और बल्गारिया के बीच प्राचीन सांस्कृतिक संबंधों को नई दिशा एवं नई ऊर्जा हिंदी अध्ययन एवं अध्यापन की परंपरा से मिली। इस परंपरा को गतिशील करने में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली एवं केंद्रीय हिंदी संस्थान का महत्त्वपूर्ण योगदान है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारत में भी बुल्गारिया ने एक सांस्कृतिक केंद्र खोला, जिसने दोनों देशों में सांस्कृतिक संबंध को समृद्ध किया था। इस दिशा में महत्त्वपूर्ण है १९७८-८४ में 'इंडियन सेंटर फॉर बल्गारियन स्टडीज' की स्थापना। यह संस्था केवल भारत में ही नहीं, बल्कि संपूर्ण एशिया में अपने ढंग का नव्यतम शोध-केंद्र सिद्ध हुआ, जिसने भारतीय अध्येताओं को भारत में बल्गारीय भाषा तथा साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहित किया और साथ ही भारत में दिल्ली विश्वविद्यालय तथा जामिया मिलिया विश्वविद्यालय में भी बल्गारीय भाषा एवं साहित्य के अध्ययन केंद्र खुले।

स्लाव भाषा-परिवार और हिंदी के तुलनात्मक अध्ययन में मेरी रुचि पहले से ही थी, पर इस अभिरुचि को विशेष दिशा अक्तूबर १९९४ में मिली, जब मेरी प्रतिनियुक्ति अतिथि प्रोफेसर के रूप में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की ओर से क्लीमेंट ऑखीड्स्की, सोफिया विश्वविद्यालय के भारत-अध्ययन विभाग में हुई। यह मेरा सौभाग्य है कि तत्कालीन राजदूत श्री निरूपम सेन ने मुझे निम्नलिखित परियोजनाओं में कार्य करने का अवसर दिया—

१. भारतीय अध्ययन विभाग की विभागाध्यक्ष प्रोफेसर इफ्तीमोवा के निर्देश पर विभाग में स्नातकोत्तर स्तर के छात्रों को हिंदी, भारतीय संस्कृति, संस्कृत एवं हिंदी पत्रकारिता का अध्यापन।

२. बल्गारीय-हिंदी अभिव्यक्ति कोश।

३. हिंदी संस्कृत-बल्गारीय शब्दकोश निर्माण परियोजना।

४. बल्गारिया के सांस्कृतिक मंत्रालय के आमंत्रण पर 'नेशनल गैलरी ऑफ फॉरैन आर्ट' में उपलब्ध प्राचीन भारतीय कलाकृतियों में उत्कीर्ण अभिलेखों की पहचान एवं ध्वन्यांकन तथा उनका भाषिक रूपांतरण।

बल्गारिया में भारतीय भाषाओं, साहित्य, इतिहास और संस्कृति के प्रति वैज्ञानिक अध्ययन एवं अभिरुचि की चिरस्थायी और गहरी जड़ें हैं, जो भारत और बल्गारिया के तुलनात्मक प्राचीन सांस्कृतिक अध्ययन से जुड़ी हैं। इसको महत्त्वपूर्ण गति प्रदान की प्रसिद्ध भारतविद् प्रो. एलेग्जेंडर फॉल एवं प्रो. एमिल बोएव ने। इन बुल्गारीय भारतविद् विद्वानों में उल्लेखनीय हैं—प्रो. ईवान शिशमानोव, प्रो. मिहाईल अर्नाउदोव, प्रो. स्तेफान म्लादेनोव, प्रो. आतानास बोजकोव, प्रो. ईवान दुरिदानोव, प्रो. अलेग्जेंडर फॉल एवं प्रो. इवान माराजोव आदि।

सन् १९९४ में बल्गारिया के तत्कालीन भारतीय राजदूत श्री निरूपम सेन एवं दूतावास के प्रथम सचिव श्री परमजीत मान ने भी हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन को नई गति प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। बल्गारिया में लगभग पिछले चार दशकों से हिंदी एवं भारतीय भाषाओं तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अभिरुचि बढ़ी है। साथ ही भारतीय दूतावास ने सोफिया विश्वविद्यालय के अतिरिक्त बल्गारिया के अन्य क्षेत्रों में भी हिंदी के अन्य अध्ययन केंद्र खोले हैं तथा हिंदी अध्ययन-अध्यापन को प्रोत्साहित किया है।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् ने भी संस्कृत और हिंदी, दोनों के अध्ययन के विकास पर ध्यान दिया है। इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है १९९३ में परिषद् की ओर से पूर्वी भाषा विभाग में भारत के प्रख्यात भाषाविद् प्रो. विद्यानिवास मिश्र का 'पाणिनीय भाषाशास्त्रीय चिंतन' पर विशिष्ट व्याख्यान शृंखला। प्रो. मिश्र ने १९९५-९६ में भारतीय भाषा शास्त्रीय चिंतन पर सोफिया विश्वविद्यालय के इंडोलॉजी एवं विदेशी भाषा विभाग के संयुक्त तत्त्वावधान में 'पाणिनीय भाषा-चिंतन' पर महत्त्वपूर्ण व्याख्यान-शृंखला प्रस्तुत किया। इस आयोजन में उपस्थित थे—बल्गारिया के प्रसिद्ध भाषाविद् प्रो. एमिल बोएव। प्रो. श्रोवानोव, प्रो. इफ्तीमोवा एवं प्रो. बाल्तोवा ने इस व्याख्यान शृंखला को भारत बल्गारिया के भाषिक सांस्कृतिक सेतु की अटूट कड़ी के रूप में देखा था।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आज बल्गारिया में हिंदी अध्ययन। अध्यापन के प्रति जहाँ गहरी निष्ठा है, वहीं इस अध्ययन के माध्यम से दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक संबंधों को नए आयाम मिले हैं।

भारत से बाहर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यूरोप, अमेरिका एवं मॉरीशस में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलनों की परंपरा से यह बाद पूरी तरह रेखांकित हो गई है कि विश्व हिंदी का एक विश्व-मानस आज मूर्त रूप ले रहा है। हिंदी का यह विश्व मन किसी एक समुदाय या किसी विशेष मानवजाति के लिए नहीं है, बल्कि यह निखिल लोक के लिए है। हिंदी ने खुले मन से चारों ओर से प्रभाव लिया है, अपने को तरह-तरह की हवाओं से भरपूर भरा है, परंतु हिंदी ने इसके साथ ही अपनी प्राणशक्ति और सृजनात्मकता को समृद्ध भी बनाया है।

प्रस्तुत आलेख में बल्गारिया में हिंदी की स्थिति एवं परंपरा के मूल्यांकन की दृष्टि से विश्व भाषा हिंदी के कुछ आयामों की ओर संकेत किया गया है। पर इसकी प्रतिभा के लिए कुछ कार्यक्रम अपेक्षित हैं, जो हिंदी को इस तकनीकी युग में व्यापक रूप से ग्राह्य बनाने में प्रयोजक बन सकती है—

१. संगणक में तथ्याधार कोश तैयार किया जाए, जिसमें हिंदी संस्थाओं, हिंदी शिक्षण संस्थाओं, पाठ्यक्रमों, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं, हिंदी में प्रकाशित पुस्तकों, हिंदी साहित्य एवं हिंदी भाषा की व्याकरणिक विशेषताओं, हिंदी साहित्य एवं संस्कृति की पारिभाषिक विशेषताओं एवं लोक संस्कृति के पारिभाषिक शब्दों और हिंदी भाषा के इतिहास का पूरा आकलन उपलब्ध हो तथा यह शोधकर्ताओं एवं विश्व हिंदी के समस्त चाहकों को सॉफ्टवेयर के रूप में सुलभ हो।

२. दूसरा कार्यक्रम राजनीतिक है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान दिलाया जाए, इसके लिए विश्वव्यापी अभियान चलाना होगा।

आज मॉरीशस में विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हो रहा है। यह विश्व हिंदी के स्वागत के लिए नई संभावनाओं को खोलने की तैयारी का प्रतीक है—

मॉरीशस में आयोजित इस विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर प्रख्यात कवि अज्ञेयजी के शब्दों को कुछ बदलकर हम कह सकते हैं—

विश्व हिंदी सम्मेलन में
(हिंदी के) आँगन के पार
एक नया द्वार खुला
द्वार के पार आँगन
इसी में कहीं
खो गया (यह) भवन।

इस पहचान से हम विश्व हिंदी की पहचान पा सकते हैं।

३४ संस्कृत नगर, सेक्टर-१४, रोहिणी,
दिल्ली
दूरभाष : ९८९७८७४४४६

भूल-सुधार

जुलाई अंक में पृष्ठ २८ पर भूलवश रामस्वरूप चतुर्वेदीजी का गलत फोटो मुद्रित हो गया था, अतः उनका ठीक फोटो छाप रहे हैं।

बांग्लादेश में हिंदी

● योगेश वसिष्ठ

बांग्लादेश पूर्व में भारत का ही अंग रहा है, अत: दोनों की सांस्कृतिक विरासत समान है। यहाँ के निवासी अपनी मातृभाषा से अगाध प्रेम करते हैं तथापि देश की राजधानी ढाका के मीरपुर, मोहम्मदपुर व पुराने ढाका सहित अनेक बांग्लादेशी अंचलों में ऐसे मुसलिम, जो १९४७ के बँटवारे में बिहार व साथ लगते क्षेत्रों से यहाँ आए थे, वे आज भी मातृभाषा के रूप में हिंदी/उर्दू का प्रयोग करते हैं। इस कारण इन क्षेत्रों में हिंदी खूब बोली व समझी जाती है। हाँ, ये हिंदी पढ़ना-लिखना नहीं जानते और किसी कारण से इसकी इच्छा भी नहीं रखते। यहाँ के निवासी हिंदी फिल्मों सहित विभिन्न चैनलों पर प्रसारित होनेवाले हिंदी धारावाहिकों को देखकर ही इससे जुड़ते हैं, परंतु विधिवत् हिंदी सीखने के जिज्ञासुओं को यह कहकर हतोत्साहित करते हैं कि हिंदी सीखने की क्या आवश्यकता है? यह तो इतनी सरल है कि इसे टी.वी. देखकर भी सीखा जा सकता है। निस्संदेह हिंदी भाषा हिंदी सिनेमा के माध्यम से दुनिया के बड़े भू-भाग में समझी जानेवाली भाषा स्वत: बन गई है।

यहाँ बोली जानेवाली बांग्ला भाषा भी हिंदी की भाँति आर्य परिवार की भाषा है, जिसका विकास संस्कृत से ही हुआ है। अत: तत्सम शब्दावली दोनों भाषाओं की साझी पूँजी है। व्याकरण व वाक्य संरचना आदि भी प्राय: समान हैं, इस कारण यहाँ हिंदी का शिक्षण सरल हो जाता है। दोनों भाषाओं की लिपि अवश्य अलग है, किंतु तत्सम शब्दों की वर्तनी में लगभग समानता है। हाँ, अनेकानेक अर्धस्वर य, व के प्रयोग में स्वर को प्रधानता देने से बांग्ला शब्दों की वर्तनी अत्यंत भिन्न होकर मजेदार बन जाती है, जैसे 'यूनियन को इउनियन, यूरोप को इउरोप आदि तथा विल को उइल तथा जावा को जाओआ' लिखा जाता है। इसी प्रकार अंग्रेजी शब्दों में 'व' को 'भ' लिखते हैं, जैसे प्राइवेट को प्राइभेट, यूनिवर्सिटी को यूनिभर्सिटी। व का प्रयोग तत्सम संयुक्त व्यंजनों में ही किया जाता है, यथा आह्वान। बांग्ला में नासिक्य व्यंजन आने पर साथ लगता वर्ण ही लुप्त हो जाता है, यथा बांग्ला को बांला, रंग को रं और अंग्रेजी को इरैजी की तरह लिखते हैं। साथ ही हिंदी का 'त' बांग्ला 'न' से और हिंदी का 'ष' बांग्ला के 'ह' से मेल खाता है तो हिंदी में 'ऊ' की मात्रा बांग्ला 'उ' की मात्रा है, जिससे भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है।

उच्चारण भिन्नता तो अवश्य ही कठिनाई उत्पन्न करती है। यथा 'अ' को 'ऑ' करने की प्रवृत्ति से बांग्लादेशी जय को जॉय, बस को बॉस, रस को रॉस बोलते हैं। य का उच्चारण खो जाने से उसे ज ही बोलते हैं, यथा यश को जस। जबकि मजेदार बात यह है कि बांग्ला वर्णमाला में य और व मौजूद हैं। संयुक्त व्यंजनों के रूप बांग्लाभाषी संयुक्त रूप में ही लिखते हैं (हिंदी की भाँति द्व, द्य, ह्व, ह्म आदि में हलंत करने की प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं है), किंतु उच्चारण में स्वरहीन वर्ण को ही द्वित्व उच्चरित करते हैं, यथा आत्मा को आश्रा, पऽा को पद्दा आदि। श/स के उच्चारण में प्राय: विपर्यय मिलता है तो ण का अलग लिपि चिह्न होते हुए भी उच्चारण 'न' ही हो गया है। ड वर्ण है, किंतु अधिकांश बंगाली इसका उच्चारण र की भाँति ही करते हैं। इस प्रकार पर्याप्त उच्चारण अभ्यास के बाद भी इस देशवासियों की हिंदी उच्चारण की समस्या बनी रहती है। फिर भी डॉ. सुरेंद्र गंभीर के शब्दों में—''विधिवत् अभ्यास ही विदेशी भाषा की सब प्रकार की जटिलताओं को सुलझाने की एकमेव कुंजी है।''

हिंदी भाषा में दो लिंग हैं, किंतु बांग्ला में चार लिंग हैं—पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, क्लीवलिंग और उभयलिंग। साथ ही बांग्ला भाषा की वाक्य संरचना में पुरुष (मैं, तुम, आप, वह आदि) के आधार पर तो क्रियापद में परिवर्तन होता है, किंतु लिंग व वचन के आधार पर नहीं। इसके उलट हिंदी भाषा में लिंग, वचन के आधार पर न केवल क्रियापद में परिवर्तन होता है, अपितु अनेकानेक हिंदी शब्दों का लिंग निर्धारण करना भी सरल कार्य नहीं है। जैसे पानी, खाना, दिन, दाँत, मुँह क्यों पुंल्लिग हैं तथा पुस्तक, सुबह, रात क्यों स्त्रीलिंग हैं, इनका कोई निश्चित नियम नहीं है। इस कारण हिंदी में लिंग, वचन के आधार पर क्रियापद में होनेवाले परिवर्तन को सीख पाना बंगाली छात्रों के लिए सबसे बड़ी चुनौती होती है, जिसमें वे प्राय: भ्रमित हो जाते हैं। इसके लिए व्यावहारिक प्रयोग के आधार पर अभ्यास से ही सिद्धि पाई जा सकती है।

बांग्लादेश में १९२१ ई. में स्थापित यहाँ के सबसे पुराने ढाका विश्वविद्यालय में १९७१ से आधुनिक भाषा संस्थान विभिन्न भाषाओं के शिक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। वर्तमान में यहाँ १४ भाषाओं (अंग्रेजी, अरबी, इटैलियन, कोरियन, चीनी, जर्मन, जापानी, टर्की, फारसी, फ्रेंच, बांग्ला, रूसी, स्पेनिश और हिंदी) का अध्यापन किया जाता है। डॉ. परमानंद पांचाल के अनुसार, अप्रैल १९९५ में भारत सरकार के विदेश मंत्रालय की सूचना के अनुसार बांग्लादेश के

अंग्रेजी, हिंदी व संस्कृत तीनों भाषाओं में नाटक अभिनीत किया, क्षेत्रीय युवा समारोह में श्रेष्ठ अभिनेता पुरस्कार प्राप्त। एन.एस.एस. प्रभारी, सर्व शिक्षा अभियान प्रभारी रहे। प्रथमिक व सेकेंडरी स्तरीय एजुसेट कार्यक्रम में विशेष योगदान। राष्ट्रीय युवा कवि पुरस्कार तथा श्रेष्ठ हिंदी अध्यापक सम्मान प्राप्त। संप्रति ढाका विश्वविद्यालय और इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र ढाका में हिंदी शिक्षक पद पर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा प्रतिनियुक्त।

ढाका विश्वविद्यालय में हिंदी का चार वर्षों का भाषा पाठ्यक्रम प्रारंभ करने की योजना बनी थी। किंतु इस शृंखला में हिंदी भाषा का तीन मास का लघु पाठ्यक्रम वर्ष २००६ में फारसी की प्रोफेसर कुलसुम बशर और प्रो. शमीम बानो (दोनों बहनें, जिनका बचपन व छात्र जीवन मुंबई में बीतने के कारण उन्हें हिंदी से लगाव रहा) के माध्यम से ही प्रारंभ हो पाया।

११ मार्च, २०१० में भारतीय उच्चायोग के अंतर्गत इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र की स्थापना होने पर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की ओर से २०११ में पहली बार हिंदी शिक्षक की नियुक्ति की गई। प्रतिनियुक्ति पर आई डॉ. अनामिका द्वारा इन दोनों ही केंद्रों पर हिंदी अध्यापन किए जाने से इसे मजबूती प्राप्त हुई। भारत सरकार द्वारा ढाका विश्वविद्यालय स्थित आधुनिक भाषा संस्थान के चतुर्थ तल पर हिंदी कक्षाओं के लिए अलग से नवीनतम सुविधाओं से युक्त कक्ष आदि निर्मित करवाए गए, जिसका प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा जून २०१५ में उद्घाटन किया गया। इस हिंदी तल की निर्मिति के उपरांत सत्र २०१५-१६ में 'कनिष्ठ प्रमाण-पत्र' पाठ्यक्रम प्रारंभ किया गया। इस पाठ्यक्रम के तीन सत्र संपन्न होने पर लगभग चालीस छात्र इसे उत्तीर्ण कर चुके हैं तो 'वरिष्ठ प्रमाण-पत्र' पाठ्यक्रम भी तैयार कर लिया गया है, जिसमें सत्र २०१८-१९ में प्रवेश संभव हो सकेंगे।

हिंदी भाषा के पक्ष में माहौल तैयार करने के लिए भारतीय उच्चायोग द्वारा वर्ष २०११ से प्रतिवर्ष दस जनवरी को ढाका विश्वविद्यालय में विश्व हिंदी दिवस का आयोजन किया जा रहा है, जिसमें हिंदी छात्रों के गीत, भाषण, कविता आदि की प्रस्तुति सहित आगत अतिथियों के भी हिंदी के पक्ष में व्याख्यान होते हैं। विगत वर्ष २०१७ में 'गरिमा' नाम से एक लघु पत्रिका के प्रथम अंक का ई रूप का लोकार्पण किया गया तो इस वर्ष २०१८ में उसके दूसरे अंक का प्रकाशन भी प्रारंभ किया गया। इस विश्वविद्यालय में अलग से हिंदी पीठ की स्थापना के लिए भी भारत सरकार की ओर से समझौता किया जा चुका है, यद्यपि अभी नियुक्ति की जानी शेष है।

इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र में चार स्तरों पर हिंदी शिक्षण कार्य करवाया जा रहा है। भाषा शिक्षण का मूल उद्देश्य भाषायी कौशलों का विकास करना होता है। अत: यहाँ सर्वप्रथम तीन मास के प्रारंभिक स्तर पर सभी चारों भाषायी कौशलों पर ध्यान केंद्रित करते हुए शिक्षण कार्य करवाया जाता है। हिंदी-बांग्ला वर्णमाला में समानता के कारण बांग्लादेशी छात्र हिंदी भाषा की ध्वनियों और स्वर ज्ञान से भलीभाँति परिचित होते हैं। अत: एक मास में ही ये हिंदी पढ़ने-लिखने में समर्थ हो जाते हैं तो उन्हें मौखिक अभिव्यक्ति की ओर प्रेरित किया जाता है। इसके पश्चात् तीन मास का माध्यमिक और छह मास का उत्तर माध्यमिक पाठ्यक्रम संपन्न करवाया जाता है। माध्यमिक स्तर तक छात्रों को हिंदी शब्दावली तथा वाक्य-संरचना से परिचित करवाते हैं। किसी अन्य भाषा को सीखते हुए नए-नए शब्द सीखने की हमेशा चुनौती होती है, किंतु तत्सम शब्दों की समानता तथा सांस्कृतिक एकता के कारण हमारे अनेक शब्द, मुहावरे व लोकोक्तियाँ समान हैं। वाक्य-निर्माण में भी बांग्ला भाषा से पदक्रम समानता है, जो इसके लिए सुविधा उत्पन्न करती है। बस वर्तमान काल की अस्तित्ववाची क्रिया के बाह्य स्तर पर लुप्त होने पर भी बांग्ला वाक्य व्याकरणिक होता है। जबकि हिंदी में अस्तित्ववाची क्रिया का प्रयोग अनिवार्य होता है, जैसे—

आमि एक जन छात्र (आछि)। — मैं एक छात्र (हूँ)।

तोमार नाम की (आछे) ? — तुम्हारा नाम क्या (है) ?

इसी प्रकार हिंदी के सामान्य निषेधात्मक वाक्यों में निषेधसूचक अव्यय क्रिया के पहले आता है और बांग्ला में क्रिया के बाद, जैसे—

मैं वहाँ नहीं गया	आमि सेखाने जाइनि
राम रोटी नहीं खाता	राम रूटि खाय ना

इसके अतिरिक्त लिंग निर्धारण की जटिलता इन्हें परेशानी में डालती है। व्याकरणिक नियमों को समझना वयस्क विद्यार्थियों के लिए कठिन नहीं होता, परंतु भाषा प्रयोग में उनका विनियोग अत्यधिक अभ्यास की माँग करता है। प्रो. भरत सिंह के अनुसार, 'यदि अध्यापक छात्रों की कठिनाइयों को रेखांकित कर लें और उनकी समस्याओं के अनुरूप पाठ एवं अभ्यास तैयार कर शिक्षण कार्य करने का प्रयास करें तो बहुत शीघ्र व आसानी से इन समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है।'

इसी दृष्टि से उत्तर-माध्यमिक स्तर पर तीन मास के प्रथम सत्र में व्याकरण के विविध पहलुओं से अवगत कराने के उपरांत पर्याप्त अभ्यास कराते हुए तीन मास के द्वितीय सत्र में छात्रों को हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं की चुनिंदा रचनाओं से परिचित कराया जाता है। हरजेंद्र चौधरी के अनुसार, 'जब साहित्य का पठन-पाठन प्रारंभ होता है, तब भाषायी संरचना का वैविध्य (यानी एक ही बात को कई तरह से कहना) तथा भाषा का सांस्कृतिक पक्ष बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है।''इसलिए विदेशों में हिंदी शिक्षण का दायित्व प्रकारांतर से भारतीय संस्कृति व परंपरा की विपुलता के शिक्षण का दायित्व भी है।' एक वर्ष के हिंदी अध्ययन के उपरांत प्रमाण-पत्र प्राप्त करके भी जो छात्र इस भाषा से जुड़े रहना चाहते हैं तो वे केंद्र पर आकर चौथे स्तर अग्रसर में स्वरुचि अनुसार हिंदी सीखते हुए शिक्षक के मार्गदर्शन में अपनी समस्याओं का समाधान करते हैं। प्रथम वर्ष के सभी तीनों स्तरों पर परीक्षा के माध्यम से उनका प्रगति आकलन किया जाता है, जबकि इस स्तर पर उन्हें दत्त कार्य के माध्यम से जाँचते हुए आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता है।

एक वर्ष के हिंदी अध्ययन के उपरांत प्रमाण-पत्र प्राप्त करके भी जो छात्र इस भाषा से जुड़े रहना चाहते हैं तो वे केंद्र पर आकर चौथे स्तर अग्रसर में स्वरुचि अनुसार हिंदी सीखते हुए शिक्षक के मार्गदर्शन में अपनी समस्याओं का समाधान करते हैं। प्रथम वर्ष के सभी तीनों स्तरों पर परीक्षा के माध्यम से उनका प्रगति आकलन किया जाता है, जबकि इस स्तर पर उन्हें दत्त कार्य के माध्यम से जाँचते हुए आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता है।

मैसेंजर पर हिंदी छात्रों का एक हिंदी भाषा समूह बनाया गया है,

जिसका उद्देश्य हिंदी गतिविधियों की सूचना देने के अतिरिक्त उन्हें इसे पढ़कर समझने व कुछ लिखने के लिए प्रेरित करना भी है। यहाँ हिंदी सीखने की लालसा का प्रमुख उद्देश्य भारत में पर्यटन, अध्ययन अथवा स्वास्थ्य सुविधाओं आदि के लिए कभी भारत जाने पर हिंदी में बात कर पाना, भारतीय संस्कृति को गहनता से जानना, हिंदी साहित्य, फिल्मों व धारावाहिकों का रसास्वादन करना ही है। भविष्य में कुछ हिंदी छात्र अध्यापन, अनुवाद, कला व साहित्य सृजन में भी प्रवृत्त हो सकते हैं।

बांग्लादेश बेतार, विदेश विभाग द्वारा प्रतिदिन रात्रि ९:१५ बजे से ९:४५ बजे तक (भारतीय समयानुसार आधा घंटा पूर्व) हिंदी सेवा के अंतर्गत विगत कई दशकों से भारत के लिए कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। इसमें समाचार, समीक्षा, हिंदी में विशेष आलेख सहित एक बांग्ला देशभक्ति गीत तथा दो हिंदी गीतों का प्रसारण किया जाता है। यह प्रसन्नता की बात है कि इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र से हिंदी की विधिवत् शिक्षा ग्रहण कर सिफत-ए-इलाही और नरगिस सुल्ताना इस सेवा में वर्ष २०१५ से अपनी प्रस्तुति दे रही हैं।

रामलाल वर्मा ने कभी लिखा था—'बांग्लादेश के आसपास का भारतीय परिवेश बांग्ला भाषियों का है, जो राजनीति के कारण हिंदी को पसंद नहीं करता। परिणामस्वरूप बांग्लादेश में हिंदी शिक्षण का कोई वातावरण नहीं है।' किंतु अब लगता है कि हिंदी के प्रति रुझान बढ़ रहा है। नई पीढ़ी टी.वी. देखकर ही हिंदी बोलना सीख पा रही है तो वयस्क विधिवत् हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं। यही कारण है कि इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र पर वर्तमान में १६ से ६० की उम्र के पचास से अधिक हिंदी शिक्षार्थी इस भाषा का अध्ययन कर रहे हैं। इस उत्साहपूर्णता का ही परिणाम है कि पिछले दो सत्रों से यहाँ के विद्यार्थी विदेशी छात्रों के हिंदी अध्ययन योजना के अंतर्गत केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में न केवल जाने लगे हैं, अपितु वहाँ अपनी श्रेष्ठता भी सिद्ध कर रहे हैं। इसका प्रमाण है कि केंद्रीय हिंदी संस्थान के विदेशी छात्रों के मध्य सत्र २०१६-१७ में बांग्लादेशी छात्र अंजय रंजन दास अपने पाठ्यक्रम में प्रथम रहा तो सत्र २०१७-१८ में यहाँ के छात्र मनतोष कुमार दास ने अपने पाठ्यक्रम में यह इतिहास दोहराया है। पिछले दो वर्षों में पाँच छात्रों ने आगरा से सफलतापूर्वक अपना पाठ्यक्रम पूर्ण किया है तो इस सत्र में वहाँ इससे भी अधिक छह छात्र अध्ययनार्थ चयनित हुए हैं, जो यहाँ हिंदी के भविष्य के लिए आशा का संचार करता है।

अंजय रंजन का हिंदी के प्रति उत्साह तो देखते ही बनता है। वह वर्ष २०१५ में आयोजित दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन में सहभागिता के लिए भोपाल गया तो विगत वर्ष आगरा संस्थान में प्रथम रहने के बाद यहाँ ढाका स्थित केंद्र में हिंदी अग्रसर का छात्र हो गया। अब उसका आई. सी.सी.आर. छात्रवृत्ति योजना के अंतर्गत बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में एम.ए. कक्षा के लिए प्रवेश हो गया है, जिसके लिए वह अपनी नौकरी छोड़कर जाने के लिए भी तैयार है। उसका यह उत्साह उसे न केवल विशिष्ट बनाता है, अपितु उसमें बांग्लादेश में हिंदी के उज्ज्वल भविष्य की तसवीर भी दिखाता है।

बांग्लादेश में ढाका के अतिरिक्त राजशाही विश्वविद्यालय में भी हिंदी शिक्षण का कार्य ढाका विश्वविद्यालय से भी पूर्व भारत से लौटे एक सेवानिवृत्त शिक्षक के प्रयासों से २००४-०५ में प्रारंभ हुआ था, जो दो-तीन वर्षों के शिक्षण के पश्चात् रुक गया था; किंतु विगत वर्ष यह पुनः शुरू हो गया है। यद्यपि यहाँ अभी हिंदी शिक्षक की अलग से कोई नियुक्ति नहीं हुई है तथा यह हिंदी प्रसार का शुभ कार्य वहाँ उर्दू शिक्षक मो. शमिउल इसलाम द्वारा ही किया जा रहा है। इससे हिंदी का बांग्लादेश में बेहतर भविष्य की संभावनाएँ तो अवश्य दिखलाई पड़ ही रही हैं।

हिंदी की भाँति बांग्ला भाषा की जननी भी संस्कृत होने के कारण यहाँ संस्कृत के प्रति पहले से ही रुझान है और अनेक विश्वविद्यालयों में इसे पढ़ाया जा रहा है। संस्कृत को विद्यालय स्तर पर भी वैकल्पिक भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है, किंतु हिंदी नहीं। आशा की जा सकती है कि कुछ वर्षों के पश्चात् हिंदी को भी संस्कृत-तनया होने का लाभ मिलेगा और बांग्लादेश के अनेक विश्वविद्यालयों में न केवल हिंदी शिक्षण प्रारंभ हो पाएगा, अपितु हिंदी विभागों की स्थापना करके उच्च कक्षाएँ भी शुरू हो सकेंगी।

भारत सरकार की ओर से बांग्लादेश में हिंदी-संस्कृत के प्रसार के लिए अनवरत प्रयास किए जा रहे हैं। इस शृंखला में न केवल ढाका विश्वविद्यालय और इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र में कक्षाएँ संचालित की जा रही हैं, अपितु समय-समय पर अन्य प्रोत्साहन भी प्रदान किए जाते हैं। यथा विगत वर्ष अक्तूबर २०१७ में विदेश मंत्री सुषमा स्वराज के बांग्लादेश आगमन पर ढाका विश्वविद्यालय स्थित हिंदी-संस्कृत विभागों सहित राजशाही व चटग्राम स्थित विश्वविद्यालयों के संस्कृत विभागों के लिए लैपटॉप, कंप्यूटर, फोटोकॉपियर सहित पुस्तकालय हेतु पुस्तकें भेंट की गईं। इससे पूर्व वर्ष २०१६ में भी हिंदी शिक्षण के लिए संबंधित केंद्रों पर उपयोगी विविध स्तरीय पुस्तकें प्रेषित की गई थीं, जिससे शिक्षण कार्य आसान हुआ है तथा छात्रों की संख्या में वृद्धि हुई है।

इसके बावजूद बांग्लादेश की भूमि पर हिंदी बढ़ने लगी है; कुछ युवा छात्रों में हिंदी सीखने की अपार क्षमता है। बहुत से हिंदी छात्र नौकरी की चाहत में प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के कारण हिंदी पर अपना पूर्ण ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते, इस दृष्टि से भारतीय उच्चायोग यह प्रयास कर रहा है कि भारतीय मूल की कंपनियों से बातचीत कर हिंदी सीखनेवालों के लिए रोजगार के विशेष अवसर उपलब्ध करवाए जाएँ। यदि यह नीति कारगर होती है तो भविष्य में हिंदी के छात्रों की संख्या में अपार बढ़ोतरी की संभावनाएँ हैं।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि अभी तक यहाँ अंशकालीन हिंदी शिक्षण ही चल रहा है। विद्यालय, महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय स्तर पर इसका कोई नियमित पाठ्यक्रम नहीं है। यहाँ स्वैच्छिक हिंदी सेवी संस्थाएँ भी कार्य नहीं कर रही हैं, न ही यहाँ से कोई हिंदी की पत्र-पत्रिका ही प्रकाशित हो रही है। अतः हम कह सकते हैं कि हिंदी की इस उर्वर भूमि में हिंदी फसल लहलहाने की अपार संभावनाएँ तो हैं, परंतु यहाँ अभी इस दृष्टि से बहुत कार्य किया जाना शेष है।

ढाका विश्वविद्यालय व इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र, ढाका
e-mail : yvasista@rediffmail.com

आप्रवासी गिरमिटिया देशों में हिंदी

• उमेश कुमार सिंह

मॉरीशस में अपने प्रवास के दौरान मुझे इस देश के अनेक पर्यटन स्थलों का भ्रमण और मन मोह लेनेवाले सागर तटों पर घंटों बैठकर उसके जल की नीले रंग की आभा से युक्त उठती और गिरती फेनिल लहरों की सुंदर छवि को निहारने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ है। इतना ही नहीं, इस देश के अनेक गिरमिटिया प्रवासी हिंदी रचनाकारों से मिलकर उनकी रचनाएँ सुनने, उनकी रचनाओं को पढ़ने का अवसर मिला है। इन लेखकों की रचनाओं में कभी भारत से रोजी-रोटी की तलाश में आए बेबस और मजबूर पूर्वजों की पीड़ा को अपने मॉरीशस प्रवास के दौरान रहते हुए स्वयं महसूस किया है। अपनों की यादें और अपने देश की यादें किस तरह प्रतिदिन, प्रतिक्षण और प्रतिपल निरंतर पीड़ा से सालती रहती हैं। इस शोध-पत्र में आप्रवासी गिरिमिटिया देशों की हिंदी के बारे में विचार किया गया है।

प्रवासी भारतीयों ने भारत से विस्थापित होने के बावजूद अपने देश के संस्कारों, रीति-रिवाजों, रहन-सहन, खान-पान, बोलचाल, वेशभूषा आदि को नकारा नहीं और न तत्कालीन बदले परिवेश के यथार्थ की उपेक्षा ही की, बल्कि उन्होंने वहाँ की परंपराओं से अनुकूल प्रेरणा ग्रहण की तथा वहाँ के युगीन जन-जीवन में रचने-बसने के बावजूद अपनी पहचान हिंदी के प्रयोग के द्वारा आज तक बनाए रखी है। वर्तमान में भी जिस देश में भी जा बसे हैं, वहाँ पर निरंतर हिंदी माध्यम से कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे हैं।

भारत में रहनेवाली हमारी युवा पीढ़ी दस-बीस बरस गुजर जाने के बाद अपने पुरखों के नाम तक को भूल जाती है। इतना ही नहीं, हम भारतवासी एक ओर अपनी स्थानीय बोलियों को भी भूल रहे हैं, वही प्रवासी भारतीय कई पीढ़ियाँ गुजरने के बाद भी हिंदी को नहीं भूले हैं। प्रवासी भारतीय लेखक हजारों मील दूर से आज भी भारत की मिट्टी की सोंधी खुशबू को महसूस करते हैं तथा अपनी सरनामी हिंदी, अपनी भोजपुरी मिश्रित हिंदी और हिंदी भाषा का गर्व के साथ प्रयोग करते हैं। वे कई दशकों के बाद भी कुछ बदलाव के साथ भोजपुरी को अपने रीति-रिवाजों में, संस्कारों में, अपने विचार-विमर्श में आज भी सहेजे हुए हैं। भारत से प्रवास के कारण पीछे छूट गई सुख-दु:ख की बीती यादों के सहारे हिंदी में साहित्य का सृजन कर रहे हैं। उन्होंने दिलों को पिघला देनेवाली पीड़ा से सराबोर कविता, कहानियों की रचना की है, जिनमें एक ही भाव, एक ही दर्द, एक ही संगीत सुनाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह हमारी अपनी कहानी है। हमारी अपनी बात है। आज भारत के अलावा विदेशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार दो रूपों में हो रहा है। प्रथम के अंतर्गत वे देश आते हैं, जहाँ के लोग स्वयं हिंदी को सीखते और पढ़ते हैं। इसके अंतर्गत रूस, चीन, जापान, इंग्लैंड, कोरिया, रोमानिया, इटली, जर्मनी, फ्रांस, कनाडा, नार्वे, स्वीडन, पोलैंड, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, मेक्सिको, अफगानिस्तान, अर्मेनिया, अजरबैजान, तुर्की, तुर्कमेनिस्तान, बेल्जियम, बुल्गारिया, क्रोएशिया, हंगरी, स्लोवेनिया, स्पेन आदि देश आते हैं।

सुपरिचित लेखक। वर्तमान में प्रतिनियुक्ति पर महात्मा गाँधी संस्थान, मोका, मॉरीशस में हिंदी चेयर, आई.सी.सी.आर. के पद पर हिंदी अध्यापन कार्यरत। हिंदी की अनेक स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में कहानियों के साथ-साथ अनेक कथा-आलेख प्रकाशित। भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, समरहिल, शिमला में सह-अध्येता के रूप में परियोजना का शोधकार्य पूर्ण किया। ओमान, कनाडा, यू.एस.ए., अजरबैजान और मॉरीशस आदि देशों की विदेश यात्राएँ।

दूसरे देशों के अंतर्गत प्रवासी भारतीय और भारतवंशी लोग बड़ी संख्या में निवास करते हैं, जिनकी मातृभाषा हिंदी है, जो आजकल फिजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद एंड टुबैगो, मॉरीशस, थाईलैंड, नेपाल, श्रीलंका, दक्षिण अफ्रीका आदि इन दोनों प्रकार के देशों में हिंदी का रचना-संसार विपुल एवं समृद्ध है।

गिरमिटिया देशों की हिंदी पर अपनी बात रखने से पूर्व में इस बात पर बल देना चाहूँगा कि किसी भी भाषा के सभी रूप कभी भी एक सामान नहीं हो सकते हैं। उदाहरण के लिए अंग्रेजी एक अंतरराष्ट्रीय भाषा है किंतु क्या उसका अंतरराष्ट्रीय सुनिश्चित कोई एक रूप है? सच कहा जाए तो शायद नहीं। उच्चारण, शब्द-भंडार, अर्थ, रूप-रचना तथा वाक्य-रचना, इन सभी दृष्टियों से वह अनेकरूपता लिये हुए है।

इंग्लैंड अंग्रेजी का घर है। वहाँ की अंग्रेजी सभी दृष्टियों से एक

प्रकार की है, जिसे 'किंग्स इंग्लिश' कहते हैं। अमेरिका अंग्रेजी का दूसरा घर है किंतु वर्तनी, उच्चारण, शब्द-भंडार, अर्थ, वाक्य-संरचना आदि दृष्टियों से अमरीकी अंग्रेजी ब्रिटिश अंग्रेजी से काफी भिन्न है। यह बात दूसरी है कि ब्रिटिश अंग्रेजी अमेरिका में समझ ली जाती है।

अंग्रेजी ब्रिटेन और अमेरिका में समझने के अतिरिक्त एशिया तथा अफ्रीका के कई देशों, कनाडा तथा ऑस्ट्रेलिया आदि में बोली जाती है तथा इन सभी की अंग्रेजी एक-दूसरे से भिन्न तो है ही। ब्रिटिश और अमेरिकन अंग्रेजी पूरी तरह समान नहीं है। किसी भी अंतरराष्ट्रीय भाषा के स्वरूप में दो प्रकार के तत्त्व होते हैं—एक केंद्रीय तथा दूसरा परिधीय। केंद्रीय तत्त्व उस भाषा के सभी रूपों में समान होते हैं। इन्हीं के आधार पर उस भाषा के रूप का प्रयोक्ता दूसरे रूप के प्रयोक्ता को समझ अवश्य लेता है, चाहे वह उस मानक रूप में बोल भले न सके। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अंग्रेजी भाषा की संरचना में जो केंद्रीय तत्त्व है, वह ब्रिटिश अंग्रेजी, अमरीकी अंग्रेजी तथा ऑस्ट्रेलियाई अंग्रेजी आदि के सभी रूपों में समान है और उन्हीं के आधार पर वह अंतरराष्ट्रीय भाषा बनी है तथा अंग्रेजी जाननेवाले चाहे किसी भी देश के क्यों न हों, एक-दूसरे को उसी आधार पर समझ लेते हैं।

इसी प्रकार भारत के हिंदी प्रदेशों में हिंदी के कई रूप प्रचलित हैं। हिंदी के ये सभी रूप मिलकर हिंदी भाषा की मुकम्मल तसवीर बनाते हैं।

१. हिंदी का एक मानक रूप जो भारत के विश्वविद्यालयों तथा कुछ महानगरों में सुशिक्षित लोगों में प्रचलित है, जिसका विश्लेषण हिंदी व्याकरणों में मिलता है।

भारत में हिंदी के मुख्यत: दस रूप मिलते हैं, जिनमें १. हरियाणवी क्षेत्र की हिंदी, २. कौरवी क्षेत्र की हिंदी, ३. बुंदेली क्षेत्र की हिंदी, ४. ब्रज-कन्नौजी क्षेत्र की हिंदी, ५. अवधी बघेली क्षेत्र की हिंदी, ६. छत्तीसगढ़ क्षेत्र की हिंदी, ७. हिमालय क्षेत्र की हिंदी, ८. कुमाऊँनी-गढ़वाली क्षेत्र की हिंदी, ९. भोजपुरी क्षेत्र की हिंदी, १०. मैथिली तथा संबद्ध क्षेत्र की हिंदी आदि। इसके अतिरिक्त हिंदीतर प्रदेशों में भी हिंदी के कई रूप मिलते हैं, जिनमें १. दक्खिनी हिंदी, जो मुख्यत: आंध्र और कर्नाटक के कुछ क्षेत्रों में बोली जाती है। इसके दो मुख्य रूप हैं—

१. आंध्र की हिंदी, कर्नाटक की हिंदी आदि २. बंबइया हिंदी जो मुंबई और अहमदाबाद में बोली जाती है, ३. कलकतिया हिंदी, जो कोलकाता में बोली जाती है, हिंदी का एक रूप जो पूरब के बड़े नगरों में प्रचलित है। शिलांग, मिजोरम, ईटानगर आदि शहरों में प्रचलित है। इस प्रकार भारत की हिंदी बोलियों तथा हिंदीतर प्रदेशों में बोली जानेवाली हिंदी के विभिन्न रूप कुल मिलाकर हिंदी के अंतर्गत आते हैं।

अब हम विश्व के उन देशों के लोगों की हिंदी पर विचार करेंगे जो स्वय हिंदी को सीखते, पढ़ते और पढ़ाते हैं। इनके अंतर्गत रूस, चीन, जापान, इंग्लैंड, कोरिया, रोमानिया, इटली, जर्मनी, फ्रांस, कनाडा, नॉर्वे, स्वीडन, पोलैंड, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, मेक्सिको, अफगानिस्तान, अर्मेनिया, अजरबैजान, तुर्की, तुर्कमेनिस्तान, बेल्जियम, बुल्गारिया, क्रोएशिया, हंगरी, स्लोवेनिया, स्पेन आदि देश आते हैं। इतना ही नहीं, आई.सी.सी.आर. द्वारा भारत की ओर से विश्व के ७३ देशों के साथ भारतीय सिनेमा, भारतीय संस्कृति, शांति अध्ययन, भारतीय साहित्य और हिंदी भाषा को पढ़ाने के लिए एम.ओ.यू. (मैमोरंडम ऑफ अंडरस्टैंडिंग) हस्ताक्षरित किए जा चुके हैं। इन देशों में लोग हिंदी में विशेषज्ञता हासिल करने, भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने तथा भारत में भ्रमण आदि के उद्देश्य से हिंदी सीखते हैं। भारत से बाहर अमेरिका, इंग्लैंड तथा जर्मनी आदि प्रमुख देशों के विश्वविद्यालयों में एम.ए., पी-एच.डी. तथा पोस्टडॉक्टोरल अध्ययन किए जाते हैं।

भारत में हिंदी के मुख्यतः दस रूप मिलते हैं, जिनमें १. हरियाणवी क्षेत्र की हिंदी, २. कौरवी क्षेत्र की हिंदी, ३. बुंदेली क्षेत्र की हिंदी, ४. ब्रज-कन्नौजी क्षेत्र की हिंदी, ५. अवधी बघेली क्षेत्र की हिंदी, ६. छत्तीसगढ़ क्षेत्र की हिंदी, ७. हिमालय क्षेत्र की हिंदी, ८. कुमाऊँनी-गढ़वाली क्षेत्र की हिंदी, ९. भोजपुरी क्षेत्र की हिंदी, १०. मैथिली तथा संबद्ध क्षेत्र की हिंदी आदि। इसके अतिरिक्त हिंदीतर प्रदेशों में भी हिंदी के कई रूप मिलते हैं, जिनमें १. दक्खिनी हिंदी, जो मुख्यतः आंध्र और कर्नाटक के कुछ क्षेत्रों में बोली जाती है।

विश्व के कुछ देश, जहाँ प्रवासी भारतीय और भारतवंशी समुदाय बड़ी संख्या में निवास करते हैं, वे प्रवासी भारतीय कई पीढ़ियाँ गुजरने के बाद भी अपनी मातृभाषा हिंदी को मानते हैं। वे स्वयं प्रेरित होकर हिंदी सीखते और सिखाते ही नहीं हैं बल्कि वे हिंदी में रचनाएँ भी करते हैं। उन देशों में फिजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद एंड टोबैगो, मॉरीशस, नेपाल, दक्षिण अफ्रीका, अमेरिका, ब्रिटेन और ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में हिंदी का रचना-संसार विपुल मात्रा में उपलब्ध हो रहा है। प्रवासी अपने विचारों का आदान-प्रदान अपनी भोजपुरी मिश्रित हिंदी में बड़े गर्व के साथ करते हैं। इनमें से कुछ देशों में बोली जानेवाली हिंदी को नमूने के तौर पर प्रस्तुत करना बहुत आवश्यक है।

मॉरीशस हिंद महासागर का काफी छोटा द्वीप है। इस देश की वर्ष २००० में की गई जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या ग्यारह लाख अठहत्तर हजार चार सौ चौरासी है। जिसमें भारतीयों की संख्या दूसरों से अधिक है। यहाँ ग्यारह भाषाएँ बोली जाती हैं। भोजपुरी, खड़ी बोली हिंदी, उर्दू, तमिल, तेलुगू, मराठी, गुजराती, चीनी, फ्रेंच, अंग्रेजी तथा मिश्रित भाषा क्रियोल आदि। भारत के अतिरिक्त सभी देशों में बोली जानेवाली हिंदी की दृष्टि से मॉरीशस सबसे आगे है। यही वह देश है जहाँ सबसे पहले हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति जागरूकता आई थी। (मार्च १९०९ में यहाँ से 'हिंदुस्तानी' नामक पत्र निकला। इसके संपादक मणिलाल डॉक्टर थे)

मॉरीशस

मॉरीशस की हिंदी का नमूना प्रस्तुत है। मैंने स्वयं के प्रयास से अपने मॉरीशस के भाई बंधुओं से बात करके इन वाक्यों को सृजित किया है। यह एक प्रकार से भोजपुरी मिश्रित हिंदी का ही रूप है, जिसे

यहाँ के लोग अपने व्यवहार के लिए एवं आपसी संप्रेषण के लिए दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं।

'तोर भाई का करता।' (तुम्हारा भाई क्या करता है)

'तोर बहिन का करता।' (तुम्हारी बहिन क्या करती है)

'उ दुकान से एगो पुस्तक खरीदलस।' (उसने दुकान से एक पुस्तक खरीदी)

इसी तरह कुछ वाक्य मॉरीशस की भोजपुरी में इस प्रकार कहे जा सकते हैं—

तोर भाय कोनची करेला। (तुम्हारा भाई क्या करता है)।

कोनची=क्या, करेला=करता है।

तोहर भाय कोनची करेलन। (तुम्हारा भाई क्या करता है) सम्मानसूचक है।

हमर भाय दोक्तेर ह/हवन। (हमारा भाई डॉक्टर है) दोक्तेर=डॉक्टर, हवन=है

तोर बहिन कोनची करेला। (तुम्हारी बहिन क्या करती है)

तोर बहिन का करेला। (तुम्हारी बहिन क्या करती है)

तोहर बहिन का करेलन। (तुम्हारी बहिन क्या करती है) आदर सूचक है।

(तोर=तुम्हारा/आपका/आपकी, बहिन=बहन, कोनची=का, क्या, करेला=करती है, करेलन=करती है)

तू का खा हवे/तू कोनची खात हवे (तू कोनची=आदरसूचक)

आप क्या खा रहे हैं।

बुटिक से एगो लिव किनलक। (बुटिक (फ्रेंच) = दुकान, लिव (फ्रेंच)= पुस्तक

दुकान से पुस्तक खरीदी।

बुटिक से एगो पुस्तक किनलन।

(किनलक=खरीदा, किनलन=आदरसूचक)

फिजी—दक्षिणी प्रशांत महासागर में स्थित छोटे-बड़े अनेक द्वीपों का एक देश है, जहाँ के ५५ प्रतिशत पौने तीन लाख लोग हिंदी बोलते हैं। यहाँ पर पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार के अधिकतर भोजपुरी भाषी लोग रहते हैं। उदाहरणार्थ—

फीजी हिंदी—तुम तो कमाल के हिंदी जानो।

(मानक हिंदी—तुम तो कमाल की हिंदी जानते हो)

एक वचन में—हम जात रहा। बहुवचन में—हम लोग जात रहा।

फिजी हिंदी—दुई स्कूल पढ़े—दो स्कूल में पढ़ते हैं।

फिजी हिंदी की शब्दावली अधिकांशत: भोजपुरी की है। उज्जर (उजाला), हरियर (हरा), सोम्मर (सोमवार), मंगर (मंगलवार), हियाँ (यहाँ), हुवाँ (वहाँ), ई (यह), ऊ (वह), केरा (केला)।

सूरीनाम—सूरीनाम दक्षिणी अमेरिका का एक छोटा सा राज्य है। सूरीनाम में एक लाख पचास हजार से अधिक लोग हिंदी बोलते हैं। सूरीनाम के अन्य निवासियों में डच, रेड इंडियन, नीग्रो, पुर्तगाली तथा जापानी आदि लोग हैं। सूरीनाम में सरनामी हिंदी बोली जाती है। उसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

राम जाला। (राम जाता है)

राम जात बा (राम जा रहा है)

राम गईल (राम गया)

राम जाई (राम जाएगा)

तोहरा हियाँ आबे (तुम्हारे यहाँ आऊँगा)

कुछ शब्दावली भी प्रस्तुत है—मूड़ी (सिर), गोड (पैर), ठेगुना (घुटना), मोंछ (मूँछ), माठा (मट्ठा), गुलगुला (पुआ), खरहा (खरगोश), हरना (हिरन), फगुवा (होली), दियादिवारी (दीपावली), लहँगा, ओढ़नी, पैजामा (पेंट), सोंठ (कमीज, शर्ट के विकसित रूप)।

दक्षिण अफ्रीका—दक्षिणी अफ्रीका में भी हिंदी भाषी हैं, जिनकी संख्या एक लाख से अधिक है। ये लोग भोजपुरी प्रदेश के हैं और भोजपुरी प्रभावित हिंदी बोलते हैं। जैसे—

तू वारी नहीं करना (तू चिंता मत करना)

तू प्लीज होकर ई काम करना (तू कृपया यह काम करना)

ई बच्चा मस्ती कर रहा है। (यह बच्चा शैतानी कर रहा है)

इन देशों में बोली जानेवाली हिंदी में भिन्नता है, परंतु फिर भी हम उन प्रवासी भारतीयों की हिंदी समझ लेते हैं।

विश्व हिंदी सम्मेलन, न्यूयॉर्क में भारत के एक व्यक्ति ने अमेरिका में बसे एक प्रवासी व्यक्ति से पूछा! 'अमेरिका में हिंदी की क्या जरूरत है, जब भारत के कुछ भागों में ही उसके लिए अधिक उत्साह नहीं।' प्रवासी भारतीय का उत्तर था, 'मेरे अपने विचार से अमेरिका के प्रवासी भारतीय को हिंदी की जितनी जरूरत है, उतनी शायद भारतवासी भारतीयों को भी नहीं, क्योंकि अमेरिका के भारतीय हिंदी भूल जाएँगे तो रामचरितमानस भूल जाएँगे, प्रार्थनाएँ भूल जाएँगे, ताजमहल भूल जाएँगे, वहाँ की संस्कृति भूल जाएँगे, जो हजारों वर्षों से दुनिया का पथ-प्रदर्शन करती रही है।'

अंत में मुझे यह कहने में बिल्कुल हिचक नहीं है कि किसी भी भाषा का कार्यान्वयन केवल अनुदेशों और संसाधनों से ही नहीं होता है बल्कि उसके लिए संकल्पनिष्ठा की भी जरूरत होती है। भावनात्मक एकता के लिए 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की भावना होना नितांत आवश्यक है। भारत के लिए आप्रवासी भारतीयों की हिंदी, साहित्य के साथ-साथ भारत तथा विश्व के अनेक देशों के करोड़ों भारतीयों के हृदयों को जोड़नेवाली ऊर्जा भी है और प्रेम की गंगा भी है। मेरा अपना सपना है और मेरे देश के करोड़ों भारतवासियों का सपना है कि विश्व में हिंदी भाषा संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्य भाषा बने। इससे भारतीय भाषा और संस्कृति का झंडा विश्व में अनंतकाल तक लहराए।

साअ

हिंदी चेयर, हिंदी विभाग,
भारतीय भाषा अध्ययन संकाय,
महात्मा गांधी संस्थान, मोका,
रिपब्लिक ऑफ मॉरीशस, मॉरीशस
e-mail : umesh_jnu@rediffmail.com

मॉरीशस में हिंदी की यात्रा

● तनुजा पदारथ बिहारी

धरती पर विविध समाजों में जब-जब इतिहास मानव-विकास का साक्षी हुआ, तब-तब एक भाषिक परिदृश्य भी हमारे समक्ष प्रस्तुत हुआ है। स्वाभाविक है कि भाषा के अभाव में किसी भी समाज की उन्नति की कल्पना नहीं की जा सकती। मॉरीशस भी इस तथ्य से अछूता नहीं है। हालाँकि मॉरीशस टापू का इतिहास धरती के अनेक अन्य भू-खंडों की भाँति किसी चिरकालीन आदिम समाज की कथा नहीं सुनाता, तथापि चार शताब्दियों से इस टापू के तट अनेक भाषा-भाषियों से साक्षात्कार करते रहे हैं। हिंद महासागर में स्थित मदागास्कर देश के ७५५ किलोमीटर पूर्व में स्थित मॉरीशस मात्र २०४० वर्ग किलोमीटर का एक छोटा टापू है। सर्वप्रथम अरब मल्लाहों द्वारा खोजे गए इस टापू को 'दिना आरोबी' नाम से अभिहित किया गया था। फिर १५वीं शताब्दी में पुर्तगालियों तथा १६वीं शताब्दी में डच नाविकों द्वारा मॉरीशस टापू को क्रमश: 'इल्हा-दो-सेरने' तथा 'मॉरीशस' की संज्ञा दी गई। इन सभी की भेंट एक जन-रहित और जंगलों से आच्छादित मॉरीशस टापू से हुई। उस समय मॉरीशस का उपयोग नाविकों के लिए प्राय: एक पारगमन बंदरगाह के रूप में होता रहा। अत: स्वाभाविक है कि उस समय तक इस टापू पर किसी विशिष्ट भाषा की उपस्थिति अकल्पनीय है।

सोलहवीं शताब्दी में डचों के मॉरीशस में बसने के असफल प्रयासों के बाद सितंबर १७१५ में फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी ने निर्जन मॉरीशस पर अपनी सत्ता जमाई और टापू का नामकरण 'इल-दे-फ्रांस' हुआ। लगभग छह वर्षों के उपरांत यहाँ पर फ्रांसीसी लोगों ने बसना आरंभ किया और इस टापू के विकास ने तब जोर पकड़ा, जब तत्कालीन गवर्नर माहे दे लाबुर्दोने के साथ यहाँ दासों के माध्यम से टापू में बसेरा आरंभ हुआ। फ्रांसीसी जागीरदारों के बीच स्वाभाविक रूप से फ्रेंच भाषा ही तत्कालीन भाषिक विनिमय था। पुनरपि मदागास्कर, मोजांबिक आदि अफ्रीकी देशों से आए अधिकांश दासों के लिए फ्रेंच भाषा में विनिमय कठिन था। टापू पर दासों के लिए शैक्षिक सुविधाएँ कदाचित् न थीं। वस्तुत: अपने मूल देशों से दूर तत्कालीन भाषिक परिवेश में उभरनेवाले उन दासों के मध्य विनिमय की एक समानांतर भाषा पनपी, जिसकी चर्चा चार्ल्स बेसाक अपनी पुस्तक की प्रस्तावना में करते हैं और बताते हैं कि ज्यों ही फ्रांसीसी उपनिवेश ने 'इल-दे-फ्रांस' में मदागास्कर से दासों को लाना आरंभ किया, त्यों ही एक जनपदीय बोली 'क्रियोली' पनपने लगी।

दासों के माध्यम से मॉरीशस की अपनी एक निजी बोली को बढ़ावा मिला। शिक्षा व्यवस्था की स्थापना तथा फ्रांसीसियों को शिक्षित करना

सुपरिचित लेखिका। निबंध, आलोचना, यात्रा-वृत्तांत, लघुकथाएँ आदि प्रकाशित। मॉरीशस के विभिन्न सम्मेलनों में सहभागिता। संप्रति हिंदी अध्यापिका एवं हिंदी विभागाध्यक्षा, महात्मा गांधी संस्थान, माध्यमिक पाठशाला, मोका, मॉरीशस।

तत्कालीन सत्ता की प्राथमिकता कदाचित् न थी। जहाँ तक औपचारिक शिक्षा की चर्चा है, 'इल-दे-फ्रांस' इससे संबंधी दस्तावेज केवल फ्रांस की राजक्रांति के उपरांत ही मिलते हैं और १८वीं शताब्दी के अंत तक आते-आते अभिजात वर्ग के लिए एक केंद्रीय माध्यमिक पाठशाला की स्थापना हुई—'एकॉल सॉंट्राल' और शेष के लिए प्राथमिक पाठशाला का प्रावधान था, जो कि निजी पाठशालाओं के रूप में चलीं। यह प्राथमिक शिक्षा दासों के लिए कहाँ तक उपलब्ध रही, यह विचारनीय है। सन् १८०३ 'एकॉल सॉंट्राल' का पुन: नामकरण हुआ और इस बार इसे 'लिसे दे लिल दे फ्रांस ए बुर्बो' की संज्ञा दी गई। यहाँ फ्रेंच भाषा ही प्रधान रही, क्योंकि शिक्षा के लिए विशिष्ट अभिजात वर्ग के बच्चे ही उनकी प्राथमिकता थे। वस्तुत: मात्र फ्रेंच भाषा के मौखिक सान्निध्य में रहकर दासों के भाषिक-सांस्कृतिक संप्रेषण के लिए क्रियोली का उभरना स्वाभाविक था। ध्यातव्य है कि इन शैक्षिक संस्थाओं में फ्रेंच के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा-शिक्षण की व्यवस्था न थी। जो कतिपय कामगार भारत से आए तथा 'इल-दे-फ्रांस' में कार्यरत थे, वे अल्पसंख्यक थे, जिसके कारण उनकी भाषा को तत्कालीन परिवेश में स्थान न मिला।

'इल-दे-फ्रांस' के भाषिक परिदृश्य में सन् १८०९ तक मात्र फ्रेंच और एक तरुण क्रियोली बोली ही दृष्टिगोचर होते रहे। किंतु सन् १८१० के उपरांत राजनैतिक एवं भाषिक दृष्टि से एक विशेष परिवर्तन देखने को मिलता है। ब्रिटिश सेना द्वारा परास्त फ्रांसीसी उपनिवेश 'इल-दे-फ्रांस' पर ब्रिटिश राज घोषित हुआ। सन् १८१४ में पेरिस में एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए, जिसके फलस्वरूप 'इल-दे-फ्रांस' को पुन: मॉरीशस की संज्ञा दी गई। विवेच्य समझौते के अंतर्गत फ्रांसीसी जमींदारों को जो बड़ी सुविधा मिली, वह यह थी कि ब्रिटिश राज्य के अंतर्गत मॉरीशस के निवासियों को अपनी भाषा, रीति-रिवाजों, परंपराओं व कानूनों की सुरक्षा व उनका व्यवहार करने का अधिकार प्राप्त होगा। (नेपाल १९६२-८०) यह आश्वासन उन पूर्व फ्रांसीसी मालिकों के लिए एक महत्त्वपूर्ण कदम था। इस प्रकार ब्रिटिश राज्य के अधीन होते हुए भी

मॉरीशस में अंग्रेजी भाषा की तुलना में फ्रेंच भाषा ही अधिक प्रचलित रही। तत्कालीन शैक्षिक व्यवस्था में यह दृष्टिपात होता है।

ब्रिटिश उपनिवेश, मॉरीशस की शैक्षिक संस्थाओं में फ्रेंच के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा का आगमन दिखाई दिया। परंतु ब्रिटिश काल के तत्कालीन शासकों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रचार उनकी प्राथमिकता प्रतीत नहीं होती थी। अस्तु व्यापारिक व कार्यालयी भाषाओं के रूप में अंग्रेजी व फ्रेंच, ये दोनों भाषाएँ स्थित थीं। यहाँ तक कि ब्रिटिश राज्य के आरंभिक काल में कई महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों एवं आदेशों का फ्रेंच में अनुवाद होता रहा। उधर समाज में क्रियोली दासों की बोल-चाल की बोली के रूप में गति लेने लगी थी। सन् १८१५ से मॉरीशस में कुछ भारतीय अपराधी लाए जाते रहे, परंतु उनके आगमन पर भाषिक दृष्टि से समाज में उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। १ अगस्त, १८३४ में दास उन्मूलन की लहर उठी और दोसों पर आश्रित फ्रेंच जमींदारों व ब्रिटिश उपनिवेशकों की क्षतिपूर्ति के उपरांत मजदूरों के अभाव को लेकर उनके सामने एक विकट स्थिति पैदा हुई। फलत: वे शर्तबंद मजदूरों की ओर मुड़ने लगे थे। इस प्रकार मदागास्कर, चीन, मलेशिया व अफ्रीका से मजदूर लाने की प्रक्रिया आरंभ हुई। १ फरवरी, १८३५ को मॉरीशस में दासों का उन्मूलन हुआ, तब तक मॉरीशसीय समाज में अंग्रेजी, फ्रेंच और सिर उठाती क्रियोली ही भाषा की दृष्टि से वर्तमान थी।

दास उन्मूलन के उपरांत यद्यपि मॉरीशसीय जमींदार आस-पास के देशों पर आश्रित रहे, तथापि इस अभाव की पूर्ति के लिए वे अंतत: भारत के शर्तबंद मजदूरों की ओर अधिक मुड़े। एजेंटों द्वारा यह कार्य कुछ दशकों तक चलता रहा। उधर विविध प्रकार के प्रलोभन प्राप्त कर कठिन सामाजिक परिस्थितियों से बचने हेतु अनेक भारतीय लोग मन में सुखद जीवन के सपने सँजोए एक अनजान देश की ओर बढ़े। शर्तबंद की पहली टोली २ नवंबर, १८३४ में मॉरीशस के आप्रवासी घाट पर पहुँचे। इन्हें दासों की भाँति अलग-अलग मालिकों के साथ काम करने भेजा जाता रहा और इनका परिचय प्राय: इनको दी गई संख्याएँ होता था। ये शर्तबंद मजदूर भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार प्रांत, दक्षिण भारत, महाराष्ट्र आदि से लाए जाते रहे। ध्यातव्य है कि मजदूरों की संख्या की दृष्टि से अधिकांश उत्तर भारत व बिहार से लाए गए। अत: बहुसंख्यक होने के कारण भाषा की दृष्टि से इनकी पारस्परिक संचार भाषा मुख्य रूप से भोजपुरी थी। यद्यपि ये देश के विविध स्थानों पर भेजे जाते, फिर भी समान देश, समाज व परिजनों के साथ उनका आपसी मेल-मिलाप कठिनाइयों में ही सही, पर भोजपुरी भाषा उनके बीच विनिमय की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी रही। यह मात्र मौखिक रूप में प्रचलित थी, यथा बोलचाल व लोकगीत। यहाँ मॉरीशस का भाषिक परिवेश थोड़ा सा करवट बदलता हुआ दिखाई पड़ता है।

सन् १८४३ तक आते-आते भारत से ९००२ और ५८२ चीनी मजदूर मॉरीशस लाए जा चुके थे। (Carter, M. & Ng Foong Kwong , J. (1997)) भोजपुरी के साथ चीनी भाषा भी मॉरीशस के चीनी श्रमिक-समाज में बोली जाती थी। समय के साथ शेष स्थानों से मजदूरों का आयात कम होता गया और खेतों के मालिक मुख्य रूप से भारतीय श्रमिकों पर निर्भर होने लगे। फलत: सन् १८४४ से १८४९ के बीच ४३३४६ भारतीय मजदूर लाए जा चुके थे। स्वाभाविक है कि मॉरीशसीय समाज का भाषिक परिदृश्य बदलने लगा। एक ओर यदि क्रियोली उन्मुक्त दासों के लिए विकल्प भाषिक संचार-साधन बनती दिखाई पड़ी तो दूसरी ओर भारतीय समाज में तमिल, तेलुगु, मराठी के साथ-साथ भोजपुरी भाषा देश भर में उपस्थित थी। वे इसका प्रयोग अपने सीमित परिवेशों, खेतों, सायंकालीन जुटावों में करते थे। अनेक भारतीय शर्तबंद मजदूर अपने सांस्कृतिक धरोहर के रूप में अपने धार्मिक ग्रंथ अपने साथ लेकर आए थे, यथा रामचरितमानस, हनुमान चालीसा आदि। अत: उनके धार्मिक ग्रंथों का पठन-पाठन सायंकालीन जुटावों के मूल प्रयोजन बन गए। दासों के साथ काम करने के आदी तत्कालीन मालिक भारतीयों के साथ भी कई बार अमानुषिक व्यवहारों पर उतर आते थे। अपने संघर्षपूर्ण जीवन और शर्तबंदी की अवधि के समापन की प्रतीक्षा करने में ये जुटाव और धार्मिक रुझान उनको अपनी पीड़ा भुलाने में सहयोग देते थे और आत्मिक बल भी; उनकी कठिन स्थितियों के चलते संभवत: इनके अलावा और कोई समाधान न था।

धार्मिक ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ सांस्कृतिक धरोहर उनके लोकगीतों के रूप में सुरक्षित मॉरीशस की यात्रा कर पाए। ये लोकगीत भी प्राय: भोजपुरी में थे। इनमें शर्तबंद मजदूरों की व्यथा और मॉरीशस यात्रा की पीड़ा भी द्रष्टव्य है। यहाँ पर आने के उपरांत भी उनकी दशा विशेष अच्छी नहीं कही जा सकती। प्रह्लाद रामशरण अपनी पुस्तक 'मॉरीशस का इतिहास' में लिखते हैं—'भारतीय आप्रवासन के प्रथम दशक में मजदूरों के साथ दासों-सा बरताव किया जाता था। उनकी छोटी सी भूलों के लिए उनपर बाँसों की छड़ी से अथवा कोड़ों से मार पड़ती थी।'

शनै:-शनै: इन प्रताड़ित भारतीय मजदूरों की भोजपुरी भाषा फ्रेंच और क्रियोली से प्रभावित होने लगी—

अंगाजे रहल भइया,
अंगाजे रहल भइया हो,
एके महीनवा में पाँच गो रुपइया,
अंगाजे रहल भइया··· ' रामदीन सुचिता (१९८९, पृ. ××iii)

इस लोकगीत में मजदूरों के कठोर परिश्रम और पाँच रुपए वेतन की चर्चा की गई है। अत: स्पष्ट है कि ये शर्तबंद मजदूर भोजपुरी भाषा के व्यवहार के साथ-साथ क्रियोली का भी यत्र-तत्र मिश्रण करके बात करते या लोकगीत गाते।

दास उन्मूलन से पूर्व कुछ समय तक ईसाई अधिकारी एवं प्रचारक गोरों की ही भाषा बोलते थे। अत: वे दासों को मूलभूत शिक्षा के योग्य नहीं मानते थे। किंतु 'लंदन मिशनरी सोसाइटी' द्वारा भेजे गए युवा पादरी जॉ लेंब्रे उन ब्रिटिश मानवतावादियों में से एक थे, जो दासों के प्रति सहृदय थे। उन्होंने दासों की मुक्त शिक्षा की नींव डाली। (Ramdoyal, Ramesh Dutt, 1977, p. 68.) शिक्षा के स्तर पर भारतीय शर्तबंद मजदूरों की कहानी भी कुछ इसी प्रकार थी। भारतीय शर्तबंद मजदूरों के शर्तों में उनके पाँच साल की शर्तबंद मजदूरी, कुछ

मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति और एक अल्प वेतन था। उसमें उनके बच्चों की शिक्षा संबंधी कोई प्रावधान न था। अत: शैक्षिक दृष्टि से उनकी स्थिति उन दासों से बेहतर न थी। कालांतर में गवर्नर हिगिंसन ने भारतीय शर्तबंद मजदूरों की स्थिति में सुधार लाने के लिए स्थानीय एवं ब्रिटिश सरकारों का ध्यान आकृष्ट किया और सन् १८५६ में अनुदानों के सहयोग से सांप्रदायिक पाठशालाओं की स्थापना हुई और ये पाठशालाएँ सरकारी पाठशालाओं के समानांतर चलने लगीं। इस प्रकार सन् १८८२ तक आते-आते ४७ सरकारी पाठशालाएँ थीं और अनुदान पर आश्रित ५७ पाठशालाएँ। किंतु इन भारतीय मजदूरों के शिक्षण में जो मुख्य विघ्न उत्पन्न हुए, वे थे—शिक्षण का माध्यम तथा योग्य अध्यापकों की भरती।

स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी की अनेक कर्मठ संस्थाएँ आज भी उसी उत्साह के साथ हिंदी भाषा की सेवा में संलग्न हैं। हिंदी प्रचारिणी सभा हिंदी भाषा के संरक्षण में प्रौद्योगिक युग के साथ चलते हुए अपने आदर्श वाक्य 'भाषा गई तो संस्कृति गई' के प्रति समाज में सजगता लाती रहती है। संप्रति इस सभा में शनिवारीय हिंदी की कक्षाएँ लगती हैं, छात्रों को हिंदी साहित्य सम्मेलन का परिचय, प्रथमा, मध्यमा व उत्तमा परीक्षाओं के लिए तैयार की जाती है और 'पंकज' नामक पत्रिका का भी प्रकाशन हो रहा है।

उस समय गवर्नर हिगिंसन के सुझाव पर अमल नहीं किया गया कि भारतीय मजदूरों की संतानों को जनभाषा में पढ़ाया जाए। उनके लिए हिंदी भाषा या भोजपुरी भाषा औपचारिक रूप से पाठशालाओं में सिखाया जाए, इसकी अपेक्षा नहीं थी। वस्तुत: हिंदी भाषा के लिए उन्हें अपने ही समाज की ओर मुड़ना पड़ता था। सन् १९०१ में महात्मा गांधी के आगमन के बाद हिंदी भाषा शिक्षण को नवीन स्फूर्ति मिली। अपने ओजस्वी भाषणों के माध्यम से और भारतीय मजदूरों की दशा देखकर गांधीजी ने उनको राजनीति में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया तथा बच्चों की शिक्षा पर विशेष बल दिया। तब से सामान्य शिक्षा के साथ-साथ हिंदी भाषा को एक अभूतपूर्व गति मिली। अस्तु हिंदी भाषा के प्रति कर्मठ सेवक उभरे और विविध संस्थाओं की स्थापना हुई।

सन् १९०३ में क्युर्पिप में श्री खेमलाल लाला के द्वारा सर्वप्रथम 'आर्य प्रतिनिधि सभा' की स्थापना हुई और कालांतर में 'आर्य सभा मॉरीशस' नाम से अभिहित हुई। इस सभा का उद्देश्य वैदिक धर्म व संस्कृति के उत्थान के साथ-साथ हिंदी भाषा का प्रचार भी था। सन् १९०७ में गांधीजी के अनुरोध पर मगनलाल मणिलाल डॉक्टर मॉरीशस आए। उन्होंने राजनैतिक, सामाजिक व भाषिक गौरव उत्पन्न करने के उद्देश्य से 'हिंदुस्तानी' पत्रिका निकालना आरंभ किया, जो आरंभ में अंग्रेजी व गुजराती में निकली, किंतु बाद में इसको अंग्रेजी और हिंदी में निकाला गया। तत्कालीन हिंदी भाषी समाज में हिंदी के प्रति लगाव प्रखर हुआ और अनेक अन्य हिंदी प्रेमी उभरने लगे। भारत लौटने पर मणिलालजी ने चिरंजीव भारद्वाज को 'हिंदुस्तानी' पत्रिका के संपादन का भार सँभालते हैं और सन् १९११ में वाक्वा में 'आर्यन वैदिक स्कूल' की स्थापना करते हैं। इस पाठशाला में हिंदी की शिक्षा दी जाती थी और उसके प्रसार के लिए यह एक विशेष मंच बना। आर्य समाज की ओर से 'आर्य पत्रिका' तथा 'आर्यवीर' जैसी पत्रिकाएँ क्रमश: पं. काशीनाथ के कुशल संपादन में सन् १९२४ व १९२६ में छपीं। साथ ही 'दुर्गा' नामक हस्तलिखित पत्रिका भी उस काल के हिंदी-प्रेमियों की लगन का प्रमाण देती है।

सन् १९२६ से १९३२ तक निकलनेवाले 'मॉरीशस मित्र' दैनिक पत्र ने भी समाज में हिंदी भाषा का प्रचार किया। १२ जून, १९२६ में सूरजप्रसाद मंगर भगत द्वारा 'तिलक विद्यालय' नाम से एक हिंदी विद्यालय की स्थापना की गई। कालांतर में हिंदी के उत्थान के इसी उच्च उद्देश्य को लेकर 'हिंदी प्रचारिणी सभा' के नाम से इसको राष्ट्रीय स्तर पर पंजीकृत किया गया। हिंदी भाषा एवं साहित्य को प्रोत्साहन देने हेतु सूरजप्रसाद मंगर भगत के संचालन में इस संस्था ने सन् १९४१ में प्रथम भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया। 'आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा' की भी स्थापना इससे पूर्व के दशक में हुई, जिसने सामाजिक, सैद्धांतिक के अतिरिक्त भारतीय समाज की शैक्षिक उन्नति के लिए कार्यारंभ किया।

तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में हिंदी भाषा को लेकर एक महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया गया। औपनिवेशिक कार्यालय ने भारत से अध्यापक बुलवाने की स्वीकृति दी। तदनंतर भारत से हिंदी अध्यापक प्रोफेसर रामप्रकाशजी आए। उनके आने पर हिंदी शिक्षा, पाठ्यक्रम निर्धारण व उसके अनुकूल पुस्तकें तैयार हुईं और हिंदी भाषा की एक लहर सी चली। प्रो. रामप्रकाश के मार्गदर्शन में अनेक हिंदी-प्रेमी हिंदी की सेवा करने के लिए तत्पर हुए। हिंदी भाषा, साहित्य और भारतीय संस्कृति के विकास के लिए खेर जगत सिंह ने 'त्रिवेणी' संस्था का गठन किया; डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि द्वारा 'हिंदी लेखक संघ' की स्थापना हुई; विविध पत्रिकाएँ निकाली गईं, यथा—पंडित दौलतराम शर्मा द्वारा संपादित 'अनुराग', जयनारायण राय के संपादन में 'जनता'; डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि द्वारा संपादित 'बाल सखा' आदि। पं. रामअवध शर्मा, माहनलाल माहित, बासदेव विष्णुदयाल, दयानंद लाल बसंत राय, ठाकुर दत्त पांडेय, कृष्णलाल बिहारी 'बेखबर' आदि ऐसे अनेक कटिबद्ध हिंदी-प्रेमी देखे गए, जो हिंदी भाषा की उन्नति के लक्ष्य को साधकर अग्रसर हुए।

स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी की अनेक कर्मठ संस्थाएँ आज भी उसी उत्साह के साथ हिंदी भाषा की सेवा में संलग्न हैं। हिंदी प्रचारिणी सभा हिंदी भाषा के संरक्षण में प्रौद्योगिक युग के साथ चलते हुए अपने आदर्श वाक्य 'भाषा गई तो संस्कृति गई' के प्रति समाज में सजगता लाती रहती है। संप्रति इस सभा में शनिवारीय हिंदी की कक्षाएँ लगती हैं, छात्रों को हिंदी साहित्य सम्मेलन का परिचय, प्रथमा, मध्यमा व उत्तमा परीक्षाओं के लिए तैयार की जाती है और 'पंकज' नामक पत्रिका का भी प्रकाशन हो रहा है। यह संस्था १७५ बैठकों का निरीक्षण-परीक्षण करती है, कविता-लेखन व पठन प्रतियोगिताएँ आयोजित करती है और निरंतर हिंदी के प्रचार के लिए तत्पर रहती है।

१२ मार्च, १९६८ में मॉरीशस स्वतंत्र हुआ। भारतीय भाषाओं व संस्कृति की सुरक्षा और उनके विकास के लिए 'महात्मा गांधी संस्थान' का निर्माण जून १९७० को आरंभ हुआ। सन् १९७६ में विश्व हिंदी सम्मेलन का भव्य आयोजन किया गया और इसमें महात्मा गांधी संस्थान की विशेष भूमिका रही। यह संस्थान माध्यमिक स्तर पर हिंदी भाषा व अन्य भारतीय भाषाएँ पढ़ाने के अतिरिक्त सन् १९८० में एम.आई.ई. के साथ हिंदी को स्नातक स्तर पर पढ़ाया जाने लगा। साथ ही यहाँ भारतीय भाषा विभाग, सृजनात्मक लेखन व प्रकाशन विभाग तथा भोजपुरी व लोक संस्कृति विभाग स्थापित किए गए। आज ४८ वर्षों के उपरांत भी महात्मा गांधी संस्थान कार्यरत है और भारतीय भाषाओं के माध्यमिक व तृतीयक शिक्षण के लिए यह एक विशेष संस्था है। उनके पूर्ववर्ती विभागों के अतिरिक्त कला एवं संगीत संबंधी अन्य विभाग जुड़ गए। अब यहाँ पर हिंदी भाषा में डिप्लोमा से लेकर स्नातकोत्तर व एम.फिल/पी-एच.डी. के स्तर की शिक्षा भी प्राप्त की जा सकती है। हिंदी अध्यापकों को भी यहाँ प्रशिक्षित किया जाता है।

हिंदी की सेवा में हिंदी लेखक संघ का अनवरत प्रयास आज भी द्रष्टव्य है। इंद्रदेव भोलाजी ने इस संघ का कार्यभार सँभाला और सन् १९६५ में प्रकाशन की असुविधा के कारण रुकी 'बालसखा' पत्रिका का सन् २००६ से पुनर्प्रकाशन आरंभ कर दिया। आर्य समाज मॉरीशस भर की अपनी ४०० शाखाओं के साथ लगातार धर्म एवं हिंदी के प्रचार में कार्यरत है। १९९४ में विधानसभा में हिंदी संगठन की स्थापना के लिए प्रस्तावित अधिनियम पारित हुआ और सर रवींद्र घरबरन इस संगठन के जनक और संरक्षक बने। उनके उपरांत संप्रति श्री राजनारायण गति इस संस्था के उद्देश्यों को साकार करने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। फिर अगस्त सन् २००० में हिंदी भाषा और भारतवासियों के सांस्कृतिक उत्थान व संरक्षण में रामचरितमानस की भूमिका को भली-भाँति आँकते हुए 'रामायण सेंटर' की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य शेष संस्थाओं की भाँति धर्म, संस्कृति व हिंदी भाषा का संरक्षण है। इस समय पंडित राजेंद्र अरुण इस सेंटर का कार्यभार सँभाल रहे हैं।

मॉरीशस और भारत की हिंदी के प्रति कटिबद्धता विश्व हिंदी सचिवालय के रूप में आज मॉरीशस के फीनिक्स नामक गाँव में शोभायमान है। सन् १९७५ में प्रस्तावित इस योजना को मूर्त रूप लेने में पर्याप्त समय लगा। अंततः ११ फरवरी, २००८ को विश्व हिंदी सचिवालय मॉरीशस में सक्रिय रूप से हिंदी को अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए ठोस कार्य करने लगा। इसके उद्देश्यों में से विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन भी एक है। अब तक सचिवालय ने हिंदी भाषा की उन्नति व संवर्धन को ध्यान में रखकर अनेक कार्यशालाएँ, विविध साहित्यिक गोष्ठियाँ, प्रतियोगिताएँ व एक क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन का भी आयोजन कर लिया।

वर्तमान सरकारी तथा निजी शैक्षिक संस्थाओं में हिंदी भाषा प्राथमिक तथा माध्यमिक दोनों स्तरों पर विद्यमान है। प्राथमिक पाठशाला में ग्रेड १ से लेकर ग्रेड ६ तक के छात्रों के लिए भारतीय भाषा एक मूल विषय के रूप में देखी जाती है। अतः हिंदी भाषी परिवेश से आए छात्रों के लिए हिंदी का चयन पूर्वकाल की अपेक्षा अधिक एक सरल है। माध्यमिक पाठशाला में हिंदी भाषा शेष विषयों की ही भाँति ग्रेड ९ तक पढ़ाई जाती है, जिसके उपरांत उनके पास अधिक विकल्प आ जाते हैं, जहाँ पर हिंदी को चुनना अनिवार्य नहीं होता। कैंब्रिज की परीक्षाओं में हिंदी भाषा तथा हिंदी साहित्य स्कूल सर्टिफिकेट तथा हायर स्कूल सर्टिफिकेट, दोनों ही स्तरों पर उपलब्ध हैं। किंतु यहाँ पर विवेचनीय है कि बहुत कम बच्चे हायर स्कूल सर्टिफिकेट के लिए हिंदी विषय का चयन करते हैं। इसकी संख्या में यह गिरावट पिछले पाँच वर्षों से देखी जा रही है। अतः इस दिशा में कुछ कार्य अपेक्षित है।

शिक्षा के अतिरिक्त हिंदी मॉरीशस में मनोरंजन, साहित्य, मीडिया आदि कई क्षेत्रों में विद्यमान है। फिल्मों, धारावाहिकों तथा गानों के माध्यम से आज हिंदी भाषा प्रतिदिन मॉरीशस की हवाओं में तैरती है। मॉरीशस के सरकारी व निजी रेडियो व टी.वी. चैनलों में हिंदी अनिवार्य रूप से प्रस्तुत है। मॉरीशसीय समाज में कई अहिंदी परिवेश के दर्शक व श्रोता इनका आनंद उठाते हैं। समझ में न आने पर दिए गए अनुवादों का सहारा लेते हैं। कई स्थानीय कार्यक्रम, यथा—नाटक, गायन, नृत्य, अंत्याक्षरी अथवा प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताएँ दर्शकों की रुचि बढ़ाती हैं। अतः मनोरंजन की दृष्टि से हिंदी मॉरीशसीय समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जहाँ तक हिंदी भाषा में साहित्य व सृजन का प्रश्न है तो यहाँ पर भारत से इतर सर्वाधिक साहित्यिक रचनाएँ उपलब्ध हैं। दिवंगत मॉरीशसीय साहित्यकार श्री अभिमन्यु अनत एक हस्ताक्षर रहे। उनकी लीक पर चलनेवाले रामदेव धुरंधर, भानुमति नागदान, पूजानंद नेमा, हेमराज सुंदर, राज हीरामन, बलवंतसिंह नौबत सिंह, मुकेश जिबोध, महेश रामजियावन आदि कई ऐसे नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अपने पद्य अथवा गद्य से हिंदी जगत् में बहुमूल्य योगदान दिया है।

मॉरीशस में हिंदी भाषा की लंबी व संघर्षपूर्ण यात्रा को देखते हुए हिंदी की वर्तमान स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती। बैठकों की संख्या पूर्व की तुलना में घटती जा रही है। छात्रों के अतिरिक्त माता-पिता भी कुछ हद तक इस विषय को हाशिए पर रखकर शेष विषयों पर अधिक ध्यान दे रहे हैं। और जो छात्र हिंदी की पढ़ाई करते हैं, वे साहित्य के प्रति आकृष्ट नहीं होते। वस्तुतः हिंदी भाषा संस्कृति एवं मनोरंजन की भाषा कम, बस एक सामान्य स्कूली विषय बनकर रह जाती है। स्पष्ट है कि मॉरीशस में हिंदी भाषा से संबंधित नौकरियाँ सीमित व दुर्लभ हैं। तिस पर भी ध्यातव्य है कि 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल'। अतः अपनी उन्नति के लिए हिंदी भाषा की उन्नति अत्यावश्यक है। इसीलिए समय आ गया कि मॉरीशस के सभी हिंदी-संगठन व हिंदी प्रेमी पुनः हिंदी भाषा को भावी पीढ़ी के अनुकूल रोचक व रुचिकर बनाएँ।

तूरी रोड, बोन आकई

मॉरीशस

e-mail : justsap03@gmail.com

कैरिबियाई हिंदुस्तानी : सांस्कृतिक स्मृति और अस्मिता

● दुर्गा प्रसाद सिंह

धरती पर मनुष्य के आगमन से ही प्रवासन की प्रक्रिया चलती रही है। औपनिवेशिक काल के व्यापार और आर्थिक विकास के कारण यह प्रक्रिया तेज हो गई। लोग नए देश और संस्कृति और परिवेश में रहने लगे। परिणामस्वरूप अस्मिता, संस्कृति का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो गया। संस्कृति की निरंतरता में भाषा की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। कैरिबियाई भारतीय समुदाय की सांस्कृतिक अस्मिता में हिंदी की यही भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।

मनोवैज्ञानिक एरिक एरिक्सन का यह कथन कि 'मनुष्य के सामाजिक जंगल में जिंदा रहने की अनुभूति अस्मिता के बिना संभव नहीं है।' भूमंडलीकरण के दौर में अस्मिता का प्रश्न और भी प्रासंगिक हो जाता है। संस्कृति का अंतर्द्वंद्व दूसरे देश के प्रवासन की स्वाभाविक परिणति मानी जा सकती है। इस द्वंद्व के बीच अस्मिता का सवाल स्वाभाविक है। संस्कृति और भाषा उस अस्मिता की निरंतरता का माध्यम बनती हैं।

भारतीय संदर्भ में डायस्पोरा की अस्मिता का प्रश्न औपनिवेशिक काल से प्रासंगिक है; क्योंकि यही वह समय है, जब भारतीय बड़े पैमाने पर अनुबंधित मजदूर के रूप में बसे। ऐतिहासिक नजरिए से दुनिया में भारतीय डायस्पोरा के प्रवासन की दो धाराएँ हैं। एक धारा, जो औपनिवेशिक प्रक्रिया के दौरान कैरिबियन, फिजी, मॉरीशस और अफ्रीका जैसे सुदूर देशों में बसी। दूसरी धारा, बीसवीं शताब्दी के उन प्रवासी भारतीयों की है, जो आर्थिक बेहतरी की आकांक्षा लेकर यूरोप और अमेरिका में बसे। दोनों धाराओं में विभिन्नता के बावजूद तमाम समानताएँ भी हैं। समानता की सबसे अहम जमीन है—'अस्मिता' की जिज्ञासा और प्रचलन। आज जब भारतीय डायस्पोरा की आर्थिक समृद्धि के साथ 'अस्मिता' का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो गया है, तब इसकी अभिव्यक्ति संस्कृति के अलावा अब राजनीति के क्षेत्र में भी दिखती है। 'भाषा' अस्मिता की निर्मिति के साथ उसकी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भी है। डिजिटल युग की सिकुड़ती दुनिया में बॉलीवुड की बढ़ती लोकप्रियता इसी का उदाहरण है।

'अस्मिता किसी देश या समाज की संस्कृति में रहनेवाले लोगों के दिल, दिमाग और स्मृतियों में बसती है' गांधी का यह कथन सात समुंदर पार कैरिबियन ईस्ट इंडियन समुदाय के लिए बेहद प्रासंगिक है। गुलामी प्रथा के अंत ने दुनिया के उपनिवेशों में गिरमिटिया प्रथा की शुरुआत की। सन् १९३८ में कलकत्ता से ब्रिटिश गयाना के लिए चले समुद्री

'हिंदी प्रिंट मीडिया की भाषा में लैंगिकता', 'हिंदी में समाजशास्त्रीय आलोचना का विकास' पुस्तकें प्रकाशित एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेखन। संप्रति विजिटिंग प्रोफेसर (हिंदी चेयर आई.सी.सी.आर.) यूनिवर्सिटी ऑफ केलानिया, श्रीलंका।

जहाज ने कैरिबियाई देश में ईस्ट इंडियन समुदाय के अनुबंधित मजदूरों के प्रवास का नया सिलसिला शुरू किया। ये अनुबंधित मजदूर अपने साथ लाई गठरी में ऐसा कुछ नहीं लाए थे, जिससे वे अपनी मिट्टी की याद को जिंदा रखते। यदि कुछ साथ था, तो वह थी अपनी 'स्मृतियाँ'। आज लगभग दो सौ साल बाद भी कैरिबियाई भारतीय डायस्पोरा ने अपनी संस्कृति को जिस जज्बे से जिंदा रखा, वह इस बात का गवाह है कि दिल और दिमाग की स्मृतियाँ दुनिया की तमाम भौतिक चीजों से ज्यादा गहरी व स्थायी होती हैं।

बेनेडिक्ट एंडरसन के प्रख्यात अध्ययन 'इमेजिण्ड कम्युनिटी' में भाषा और मीडिया के माध्यम से यूरोपीय अस्मिताओं की निर्मिति का रोचक अध्ययन किया गया था। इस अध्ययन में एंडरसन ने मध्यकालीन यूरोप में लैटिन के वर्चस्व के बीच छापेखाने के उदय को जर्मन, फ्रेंच, अँगरेजी, स्पेनिश और पुर्तगाली मीडिया को विकास का प्रमुख कारण माना। इस भाषायी मीडिया ने यूरोप की क्षेत्रीय अस्मिताओं और भू-राजनीतिक सीमाओं का निर्माण किया। इसे भारतीय डायस्पोरा के संदर्भ में भी देखा जा सकता है।

कैरिबियाई देशो में ट्रिनिडाड-टोबैगो, सूरीनाम और गयाना में आज भी भारतीय डायस्पोरा ने अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को किसी-न-किसी रूप में कायम रखा है। ये देश अपनी सांस्कृतिक विविधताओं के कारण बेहद दिलचस्प है। यहाँ भारतीय, अफ्रीकी चीनी और इंडोनेशियाई समुदाय के साथ सभी महाद्वीप के लोग रहते हैं। इनके मेल से एक खास तरह की कैरिबियाई संस्कृति बनी है। यह जानना दिलचस्प है कि कैरिबियाई संस्कृति में अफ्रीकी संस्कृति की परंपराओं ने अपनी पहचान कैसे खो दी, जबकि भारतीय संस्कृति की तमाम परंपराएँ न सिर्फ कायम रहीं, बल्कि उन्होंने नए सांस्कृतिक प्रतीक भी निर्मित किए।

भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं की निरंतरता

कैरिबियन देशों में भारतीय डायस्पोरा की सांस्कृतिक एकरूपता

इस लिहाज से महत्त्वपूर्ण है कि अफ्रीकी डायस्पोरा से अलग भारतीय अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को बचाए और सहेज पाए। इन देशों में भारतीय संस्कृति की निरंतरता का इतिहास बेहद दिलचस्प है। इस सांस्कृतिक निरंतरता का एक पक्ष यह है कि कैरिबियाई देशों में भारत के विभिन्न प्रदेशों से आए अलग-अलग भाषा बोलनेवाले बहुसंख्यक भोजपुरी भाषा में समाहित हो गए। भारतीय मजदूरों (गिरमिटिया) और उससे पहले के अफ्रीकी गुलामों के बीच सबसे बड़ा फर्क था, अपनी भाषा और परिवार के साथ रहने की आजादी। औपनिवेशिक युग के गुलाम प्रथा के दौर में समान भाषा और संस्कृति वाले अफ्रीकियों को साथ नहीं रखा जाता था। इसका कारण यह था कि समान भाषा और संस्कृति वाले अफ्रीकी अपनी सामुदायिक एकता से अपने मास्टर के लिए खतरा बन सकते थे। औपनिवेशिक काल के भारतीय मजदूर अपनी भाषा (भोजपुरी) बोलते हुए साथ रहते थे। यही कारण है कि कैरिबियन ईस्ट इंडियन समुदाय में भाषा और संस्कृति की निरंतरता कायम रही।

प्रसिद्ध मानवशास्त्री राबर्ट रेडफिल्ड ने (Peasant Society and Culture, १९५६) भारतीय समुदायों के अध्ययन में यह सिद्धांत दिया कि वर्चस्वकारी परंपरा की सांस्कृतिक निरंतरता में नई या छोटी परंपराएँ अपनी पहचान खो देती हैं। आरंभिक भारतीय मजदूर उत्तर प्रदेश और बिहार के भोजपुरी भाषी क्षेत्रों से आए और उन्हें साथ काम करने का मौका मिला, परिणामस्वरूप उनके संवाद की भाषा भोजपुरी ही रही। बाद के दिनों में जब ब्रिटिश भारत के दूसरे क्षेत्रों, जैसे बंगाल और तमिलनाडु से अनुबंधित मजदूर लाने लगे, तब तक भोजपुरी ग्रेट-ट्रेडिशन बन चुकी थी। बाद में आनेवाली बांग्ला और तमिल की लिटिल ट्रेडिशन ने भोजपुरी में अपनी पहचान खो दी।

अस्मिता के बसते गाँव

भारतीय अनुबंधित मजदूर अधिकांशत: ग्रामीण थे। समान सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के कारण वे शुगर-स्टेट के बैरक में भी अपनी संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज और त्योहारों को जारी रख सके। इस निरंतरता का सबसे बड़ा कारण था—भाषा। १८४५ के बाद शुगर-स्टेट में अफ्रीकी मूल के लोगों की संख्या नगण्य हो चुकी थी, इसलिए किसी अन्य संस्कृति के प्रभाव की संभावनाएँ कम होती गईं। १८९० के बाद शुगर प्लांटेशन की व्यावसायिक संभानाओं के कम होने और अनुबंध कि समाप्ति के कारण भारतीय मजदूर वहाँ से निकलकर दक्षिण ट्रिनिडाड में बसने लगे। गंगा के मैदान से आनेवाले मजदूरों ने शुगर-स्टेट के पास के मैदानी इलाकों में बसना पसंद किया। इन बस्तियों ने बाद में कैरोनी, फैजाबाद, बरकपुर जैसे भारतीय गाँवों का रूप ले लिया। ये नाम उन्हें भारत की स्मृतियों को सँजोने का काम करते थे। भारतीय गाँव की याद ताजा होने के कारण उनकी बसावट भी भारतीय गाँवों जैसी हुई। यही हाल सूरीनाम का भी था; लेकिन अंतर केवल इतना था कि वह ब्रिटिश उपनिवेश नहीं, बल्कि एक डच उपनिवेश था।

बोन्हम एच. रिचर्डसन ने १८९० से १९१० के बीच बसनेवाले दो गाँवों देबे और बेजुकल के अध्ययन में बताया कि १९२० तक इन गाँवों की १०० प्रतिशत आबादी भारतीय थी। यहाँ आकर भारतीय वही खेती करने लगे, जो उनका सदियों पुराना कौशल था। चूँकि ग्रामीण समुदाय में संस्कृति के साझेपन की परंपरा होती है, इसलिए ट्रिनिडाड के ईस्ट इंडियन गाँव इसके अपवाद नहीं थे। शादी-विवाह, त्योहार से लेकर पारिवारिक मूल्य भी भारतीय बने रहे। इस दिलचस्प मोह के कारण ही ट्रिनिडाड में शादी-विवाह, जन्म के भारतीय कर्मकांड और परंपराएँ कायम रहीं, जिसकी अभिव्यक्ति सबसे ज्यादा इन अवसरों पर गाए जानेवाले गीत व गानों में दिखाई पड़ती है।

रामचरितमानस : धर्म और अस्मिता का महाकाव्य

पूरी दुनिया में भारत से जानेवाले गिरमिटिया मजदूर प्राय: सामाजिक व आर्थिक रूप से समाज के हाशिये के लोग थे। इनके प्रवासन की कहानियाँ दिलचस्प हैं। ये भारतवंशी अनुबंधित मजदूर प्राय: सामान्य सहमति से नहीं गए थे; अधिकांश बेहतर जिंदगी की उम्मीद में अचानक निकले थे। इन सभी के पास अपनी सांस्कृतिक स्मृतियों के सिवाय अगर कोई बेहद बहुमूल्य चीज थी तो वह थी तुलसीदास की लिखी 'रामचरितमानस'। आज कैरिबियन देशों में जितने भी हिंदू बचे हैं, उनके धर्म की धारणा को पिछले डेढ़ सौ सालों से कायम रखने में 'रामचरितमानस' की सबसे बड़ी भूमिका है। शेरी एन. सिंह कहती हैं कि 'रामचरितमानस' ने अपने चरित्रों के माध्यम से उचित और अनुचित ही नहीं, सही-गलत कर्म के परिणाम की शिक्षा भी दी। बीसवीं सदी के मध्य तक इसे 'पंचम वेद' के रूप में उद्धृत किया जाता था। दरअसल 'रामचरितमानस' में चरित्रों की बनावट और बुनावट दोनों इतने मुकम्मिल हैं कि वे जन-मानस में आसानी से घुल जाते हैं। 'रामचरितमानस' ऊपर से देखने में सरल और नैतिक दीखता है, पर यह अपनी सहजता में एक रहस्य की भी निर्मिति भी करता है, जो किसी धार्मिक पाठ्य के लिए जरूरी होता है। 'रामचरितमानस' की छाप और स्मृति गिरमिटिया प्रवासियों में किसी भी कल्पना से ज्यादा गहरी और स्थायी है। परिवार, समाज से लेकर परिस्थितियों तक में इसके आदर्श रास्ता दिखाते प्रतीत होते हैं, फिर चाहे वह आदर्श राजा हो या आदर्श भाई।

भोजपुरी संवाद की सिमटती दुनिया से मनोरंजन की लोकप्रिय भाषा तक संस्कृतियों की निर्मिति में भाषा की अहम भूमिका होती है। भाषा ही वह माध्यम है, जिससे सामजिक मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरंतरता पाते हैं। कैरिबियाई देशों, जैसे फिजी, सूरीनाम, की तरह ट्रिनिडाड में भोजपुरी का प्रभाव सिर्फ भाषा के स्तर पर ही नहीं, बल्कि यहाँ के सांस्कृतिक विस्तार में भी दिखाई देता है। भोजपुरी के लोकगीत, कहानियाँ, परंपरा और संगीत ने जिन भारतवंशियों की सामुदायिक अस्मिता को आधार दिया, वही भाषा आगे चलकर उन्हें अपनी शैक्षिक उन्नति में बाधा लगने लगी। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में ईसाई मिशनरियों ने औपचारिक शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए अंग्रेजी भाषा को माध्यम बनाया। गुलामी की प्रथा के खत्म होने के कारण अफ्रीकी मूल के लोग शहरों में बसने लगे थे, परिणामस्वरूप उन्हें शिक्षित होने का

अवसर भी मिला। बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों तक गन्ने की खेती खत्म होने लगी, लेकिन भारतीय मूल के लोग शुगर-फार्म से निकलकर दक्षिणी ट्रिनिडाड के ग्रामीण परिवेश में बस गए। यही समय था जब उन्होंने वैकल्पिक आजीविका की तलाश में शिक्षा पर ध्यान देना शुरू किया। इसी क्रम में उन्होंने अंग्रेजी भाषा के महत्त्व को महसूस किया, क्योंकि ब्रिटिश उपनिवेश के कारण शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही था। अंग्रेजी सीखने की जल्दी में उन्होंने अगली पीढ़ी से भोजपुरी में संवाद बंद कर दिया। भोजपुरी 'संवाद से गोपनीय जीवन की भाषा' बन गई, जिसमें माता-पिता आपस में संवाद किया करते थे। परिणामस्वरूप भोजपुरी बोलने व समझनेवालों कि संख्या तेजी से कम होती गई। अगले दो दशकों में भोजपुरी लोक परिदृश्य से लुप्त हो चुका था और जो बचा रह गया, वह था धार्मिक व सांस्कृतिक जीवन के पारिभाषिक शब्द, जो आज भी कायम है।

भारतीय अस्मिता का संगीत : चटनी

'चटनी' शब्द भारतीयों के स्वाद ग्रंथि को जगानेवाला है। वहीं दक्षिणी कैरिबियाई देशों में 'चटनी' एक व्यंजन नहीं, बल्कि यहाँ का लोकप्रिय संगीत है। इसीलिए 'चटनी' कहते ही लोग यहाँ के संगीत का जिक्र करने लगते हैं। कैरिबियाई भारतीय समुदाय में अपनी भाषा खत्म होने की प्रक्रिया में सांस्कृतिक अभाव तो बढ़ा, किंतु इसी पृष्ठभूमि में 'चटनी' जैसे सांस्कृतिक प्रतीक की उत्पत्ति भी हुई। ट्रिनिडाड का यह विरोधाभास कई मायनों में दिलचस्प है, क्योंकि यहाँ भोजपुरी 'संवाद' से कल्चरल डोमेन कि भाषा हो गई है। यह सब इसलिए संभव हो पाया, क्योंकि ट्रिनिडाड के भारतवंशी समुदाय को अपनी सांस्कृतिक अस्मिता से लगाव था।

ईस्ट इंडियन समुदाय में 'चटनी' के विकास की कहानी बेहद दिलचस्प है। १९६२ तक भारतीय समुदाय के लोग खेतों के पास सामूहिक रूप से रहा करते थे, जो भारत में उत्तर प्रदेश व बिहार के भोजपुरी भाषी क्षेत्रों से आए थे। भोजपुरी भाषी होने और अन्य समुदायों से अलग रहने के कारण कैरिबियाई ईस्ट इंडियन समुदाय में पारंपरिक भोजपुरी लोकगीतों की परंपरा प्रचलित थी। त्रिनिदाद या कैरेबियन में 'चटनी' के लोकप्रिय होने का समय वही है, जब ईस्ट इंडियन समुदाय मुख्य धारा में शामिल होने कि कोशिश कर रहा था। इनमें अपनी अगली पीढ़ी को शिक्षित करने, अंग्रेजी सिखाने की कोशिश शामिल थी। इन सभी के साथ भारतीय परंपरा को जारी रखने की चाह से जो विरोधाभास उभरा उसकी अभिव्यक्ति 'चटनी' संगीत है। पारंपरिक भोजपुरी लोकगीतों की धीमी लय व ताल की जगह 'चटनी' संगीत में लय और बीट तेज होते थे। जैसे-जैसे 'चटनी' लोकप्रिय होकर भारतीय डायस्पोरा के दायरे से बाहर निकली, वैसे-वैसे इसमें नए प्रयोग होने लगे। इसमें भारतीय वाद्यों के साथ गिटार, सिंथेसाइजर, स्टील पैन और ड्रम का प्रयोग होने लगा। शुरू के गीतों में भोजपुरी वाक्यों में अंग्रेजी के शब्द होते थे, लेकिन धीरे-धीरे अंग्रेजी के शब्द बढ़ते गए और वाक्य का ढाँचा अंग्रेजी का हो गया तथा शब्द हिंदी के। 'चटनी' के नामकरण के बारे में तमाम बातें बताई जाती हैं। दरअसल 'चटनी' की तेज धुन पूर्वी-पश्चिमी वाद्यों के मिश्रण के साथ 'चटनी' के चटखारे बोल के कारण इसकी तुलना 'चटनी' से होने लगी और इसका यही नाम भी हो गया।

१९९६ में 'कलकत्ता वूमेन' अमेरिका और यूरोप के 'पाप चार्ट' में रिलीज होते ही जबरदस्त हिट हुआ तथा पश्चिम में इस नए किस्म के संगीत के लिए उत्सुकता बढ़ी। इसे 'चटनी' के इतिहास की बड़ी घटना माना जाता है। इसी समय ट्रिनिडाड के संगीत परिदृश्य में तेजी से बदलाव आ रहा था। 'कैलिप्सो' की लोकप्रियता कम हो रही थी और 'सोका' संगीत तेजी से उभर रहा था। अमेरिकी लय और ब्लू के प्रभाव से चटनी भी अछूता नहीं रहा और कैरिबियाई संगीत की एक नई धारा चल निकली, जिसे 'चटनी सोका' के नाम से जाना गया। चटनी सिर्फ कैरिबियन तक सीमित नहीं रहा। करीबियाई चटनी हिंदी सिनेमा में भी अपनी छाप छोड़ने में कामयाब रहा है। 'फुलौरी बिना चटनी' के पारंपरिक कलेवर में आई फिल्म 'गैंग ऑफ वासेपुर' का गाना 'आई एम अ हंटर' चटनी सोका का नया रूप भारत में भी लोकप्रिय हुआ।

कैरिबियन जुबान में हिंदी : अस्मिता के बढ़ते दायरे

कैरिबियाई समाज सांस्कृतिक विभिन्नताओं के सहअस्तित्व का बेहतरीन उदहारण है। भाषा में इसकी आभिव्यक्ति और भी दिलचस्प है। यहाँ की क्रियोल संस्कृति में मिश्रण का आयाम उल्लेखनीय है। कैरिबियाई क्षेत्र में 'रोटी' सबसे लोकप्रिय व्यंजन ही नहीं, बल्कि यह सबसे आम शब्दों में से एक है। हिंदी के तमाम शब्द वहाँ की भाषा में अपनी जगह बना चुके हैं, जिसे सिर्फ भारतीय ही नहीं, बल्कि सभी बोलते हैं। भारतीय खान-पान की संस्कृति और परंपरा लगातार लोकप्रिय हो रही है। इसके साथ-साथ भारतीय रसोई के तमाम शब्द कैरिबियाई ही नहीं, बल्कि दुनिया की तमाम भाषाओं में प्रचलित हो रहे हैं। 'गरम मसाला' अंग्रेजी ही नहीं स्पेनिश भाषा में भी प्रचलित है।

बॉलीवुड : भारतीय जुड़ाव की अस्मिता

बॉलीवुड, डायस्पोरा के भारतीय जुड़ाव का सबसे बड़ा स्रोत है। इसकी पहुँच ग्लोबल है। कहते हैं कि जहाँ अंग्रेजी फिल्में भी नहीं पहुँचीं, वहाँ बालीवुड की उपस्थिति का सबसे बड़ा कारण इसका नेरेटिव और उसका ट्रीटमेंट है। यह भारतीय संस्कृति का नेरेटिव है। इसकी पहुँच का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि यह समय और तकनीक के अनुसार बदलता रहा है। दरअसल हिंदी फिल्में भारतीय डायस्पोरा की सांस्कृतिक वंचना की भूख को बेहद प्रभावी ढंग से पूरा करती हैं। कैरिबियाई भारतवंशी इस मायने में अलग रहे हैं कि उनका यूरोपीय और अमेरिकी भारतीय डायस्पोरा की तरह भारत से जीवित संपर्क नहीं रहा है। ऐसे में मिट्टी की भूख को मिटाने का जरिया बॉलीवुड की फिल्में और गाने ही थे। यह बात कैरिबियाई भारतीयों ही नहीं, बल्कि फिजी मॉरीशस और दक्षिण अफ्रीका के संदर्भ में भी प्रासंगिक है।

केलनिया विश्वविद्यालय, श्रीलंका
e-mail : doctordpsingh@gmail.com

हिंदी की वैश्विकता यू.के. के संदर्भ में

● कृष्ण कुमार

जाने-माने साहित्यकार। अब तक 'क्यों, क्यों और आखिर क्यों' (कहानी-संग्रह); 'मैं अभी मरा नहीं', 'चिंतन बना लेखनी मेरी', 'लेकिन पहले इनसान बनो', 'एक त्रिवेणी ऐसी भी' (कविता-संग्रह); 'अक्षर-अक्षर गीत बने' (गीत-संग्रह); 'भाषा, साहित्य एवं राष्ट्रीयता' (निबंध-संग्रह) तथा अनेक संपादित पुस्तकें। इमर्ज, यू.के., प्रवासी भारतीय भूषण सम्मान तथा महर्षि अगस्त्य सम्मान से सम्मानित।

सातवीं शताब्दी में अपभ्रंश से उत्पन्न हिंदी भाषा नागरी लिपि का स्वरूप लगातार बदलता रहा है किंतु लिपि का वर्तमान ढाँचा ११०० ईस्वी तक स्थापित हो चुका था। भाषा को लिपि से अलग-थलग करके देखना और समझना गलत होगा, क्योंकि दोनों के बीच शरीर-आत्मा सा संबंध है।

यू.के. में हिंदी के इतिहास की रूपरेखा परिवेश के कारण श्री रामचंद्र शुक्ल आदि के ग्रंथों से भिन्न होगी। डॉ. श्यामधर तिवारी के मॉरीशस के हिंदी साहित्य के इतिहास से कुछ मदद अवश्य मिल सकती है। सब चीजों को ध्यान में रखते हुए यू.के. में हिंदी साहित्य के इतिहास को नीचे दिए गए रूप में विभाजित किया जा सकता है—

कालखंडों का विभाजन

१६००-१९४७	यू.के. में हिंदी/हिंदुस्तानी का आदिकाल
१९४७-१९८०	यू.के. में हिंदी का प्रारंभिक काल
१९८०-१९९०	यू.के. में हिंदी का संघर्षकाल
१९९०-	यू.के. में हिंदी का विकास काल/ डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी काल

यू.के. में हिंदी शिक्षण

यू.के. में हिंदी/हिंदोस्तानी शिक्षण की शुरुआत १७वीं शताब्दी में हो गई थी; ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के उन अफसरों के लिए, जो भारत जाते रहते थे। शिक्षा अंग्रेजी लिपि के माध्यम से होती थी। उस समय वे हिंदी को गँवारों की भाषा के रूप में देखते थे। जनमानस के लिए देव नागरी लिपि के माध्यम से विधिवत् हिंदी शिक्षण की शुरुआत १९७० के दशक में शुरू हुई थी। इंग्लैंड के कई परीक्षण केंद्र 'ओ एवं ए' लेवल में परीक्षाएँ लेते थे। बाद में 'ओ' लेवल की परीक्षा को जी.सी.एस.ई. (जेनरल सर्टिफिकेट ऑफ सेकंडरी एग्जामिनेशन) में बदल दिया गया, जो १९९४ तक चली और फिर आर्थिक कारणों से पूर्णतया बंद हो गई और यही हुआ 'ए' लेवल की परीक्षा के साथ, जो १९९८ में बंद हुई थी। कुछ विश्वविद्यालयों में स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर वैकल्पिक विषय के रूप में हिंदी का शिक्षण चलता रहा और अब वह भी बंद है। अब केवल अन्य विषयों के साथ एक भाषा को पढ़ने का प्रावधान है; जिसमें हिंदी भी सम्मिलित है। कुल मिलाकर स्नातक पर केवल ५-१० विद्यार्थी ही होते हैं, किंतु स्नातकोत्तर स्तर पर यही संख्या २०-३० तक पहुँच जाती है। इस प्रकार यू.के. में हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण, पठन-पाठन की स्थिति बड़ी ही दयनीय एवं चिंताजनक है।

भारत से बाहर अनेकानेक कारणों से हिंदी पठन-पाठन की प्रक्रिया में अंतर होना आवश्यक है। बहुराष्ट्रीय विविधताओं के कारण कोई एक पाठ्यक्रम सभी देशों के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता—

१. स्थानीय भाषा भिन्नता के कारण

२. स्थानीय संस्कृति भिन्नता के कारण

अत: विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के लिए एक बीज पाठ्यक्रम का निर्माण कर उसे विभिन्न देशों के लिए उपयुक्त बनाना होगा। अभी तक हिंदी का पठन-पाठन-शिक्षण निम्नरूप में होता रहा है—१. प्रथम भाषा के रूप में, २. द्वितीय भाषा के रूप में।

अभी तक विश्व के विभिन्न कोनों में हिंदी के शिक्षकों द्वारा स्वनिर्मित पाठ्यक्रमों का प्रयोग द्वितीय भाषा के रूप में होता रहा है। किंतु ऐसी स्थितियाँ, विशेष रूप से विदेशों में, उत्पन्न होती रही हैं, जहाँ विद्यार्थियों को हिंदी सीखने में कठिनाइयाँ आती रही है। क्योंकि हिंदी उनकी द्वितीय भाषा न होकर तृतीय या चतुर्थ भाषा है। अत: अब यह नितांत आवश्यक हो गया है कि एक नए पाठ्यक्रम का निर्माण हो, जिसमें इस पक्ष-सत्य का पूरा ध्यान रखा जाए। एक मानक बीज हिंदी पाठ्यक्रम बनना चाहिए, ताकि सबके हिंदी का स्तर लगभग सामान्य हो। वैश्वीकरण के दौर में जब लोग आसानी से देशों की सीमाओं को पार करते हैं, तब शिक्षार्थी भी ऐसा कर सकते हैं। अत: जैसा अब विश्वविद्यालयों में होने लगा है कि विद्यार्थी अपने कोर्स को स्थानांतरित कर लेते हैं, उसी प्रकार की सुविधा अब हिंदी के लिए भी उपलब्ध करानी होगी। इस प्रक्रिया को 'क्रेडिट ट्रांसफर' कहते हैं। यह हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के मानकीकरण से ही संभव हो सकता है। ऐसी परियोजना का विश्व हिंदी समाज स्वागत ही करेगा। आजकल विद्यार्थी हिंदी का प्राथमिक ज्ञान अपने-अपने देशों में लेकर भारत आते हैं अपनी हिंदी को परिमार्जित करने के लिए। ऐसा करने में उनको अपने ही देश में दो वर्षों तक पढ़ना पड़ता है। पाठ्यक्रमों का मानकीकरण न होने के कारण उनमें से कुछ को पुन: उसी सामग्री से गुजरना पड़ता है, जिससे समय और धन का नुकसान होता है। विश्व में हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के मानकीकरण का दायित्व विदेश एवं गृह मंत्रालयों के साथ विश्व हिंदी सचिवालय, केंद्रीय हिंदी संस्थानों और अंतरराष्ट्रीय माहात्मा गांधी विश्वविद्याालयों जैसे संगठनों का हो जाता है। इस विषय पर काफी गंभीरता से प्रोफेसर जगन्नाथन ने एक प्रस्ताव रखा था। उन्होंने तो उच्च

शिक्षा में मानकीकरण की आवश्यकता पर बल दिया था, किंतु इस प्रक्रिया को प्रथमा, मध्यमा एवं उत्तमा स्तर के हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए भी करने पर ही अपेक्षित परिणाम मिलने की संभावना बन सकती है।

मशीनी उत्पाद की गुणवत्ता का सूचक इसकी एकरूपता और समानता होती है। और यह उत्पादन प्रक्रिया के मानकीकरण से ही संभव होता है। इससे विवाद घटता और व्यापार बढ़ता है। यही होगा अगर विश्व स्तर पर हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण का मानकीकरण हो जाता है। कार्य कठिन अवश्य है किंतु असंभव नहीं। दीर्घकालिक सुपरिणाम प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि सामूहिक चेतना-विवेक को संगृहीत कर इस कार्य में लगा जाए। ऐसा होने से हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण का सही मूल्यांकन एवं भविष्य के लिए सम्यक् विद्या निर्देशन भी होगा।

ऐसे मानकीकरण के लिए सुझाए गए संस्थानों के तत्त्वावधान में एक स्थायी समिति का निर्माण होना चाहिए। इस कार्य को गति प्रदान करने के लिए निम्न बिंदुओं पर विचार किया जा सकता है—

१. विश्व के सभी राष्ट्रों में हिंदी में कार्यरत संस्थाओं एवं विद्यालयों से प्रतिनिधि चुने जाएँ। इस कार्य को भारतीय दूतावास या कौंसुलावास के माध्यम से संयोजित करना चाहिए।

२. केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा के निर्देशन पर प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाषा के रूप में हिंदी पाठ्यक्रम का मानकीकरण करना चाहिए।

३. पाठ्यक्रम में भारतीय-स्थानीय संस्कृति पर आधारित सामग्री होनी चाहिए।

४. जहाँ तक संभव हो सके, पाठ्यक्रमों का निर्माण स्थानीय हिंदी विद्वानों द्वारा ही होना चाहिए, जिससे भाषा संबंधी तमाम समस्याओं का निवारण सरलता से हो सके।

५. हिंदी अध्यापकों के प्रशिक्षण मानकीकरण के लिए दूतावासों में हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण अधिकारी की नियुक्ति होनी चाहिए, जो इस कार्य को ठीक से नियोजित कर सके।

६. परीक्षा प्रश्नपत्र एवं मूल्यांकन के लिए कैब्रिज विश्वविद्यालय बोर्ड का अनुकरण किया जा सकता है।

७. सभी परीक्षार्थियों को प्रथमा, मध्यमा या उत्तमा के प्रमाण-पत्रों को केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा द्वारा दिया जाना चाहिए।

८. समय-समय पर पूरी प्रक्रिया का निरीक्षण एवं पुनर्मूल्यांकन भी होना चाहिए।

९. विदेशों में हिंदी शिक्षण से संलग्न अध्यापकों का सम्मान करते हुए विदेश मंत्रालय द्वारा कुछ मानदेय भी निर्धारित होना चाहिए।

१०. यथासंभव प्रौद्योगिकी, वेब एवं मोबाइल फोन का प्रयोग कर युवा पीढ़ी के लिए सारे कार्यक्रम को उपयोगी एवं आकर्षक बनाना चाहिए।

अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों में संस्कृति

अधिकतर हिंदी पाठ्यक्रमों में संस्कृति का अभाव रहता है, जिसके कारण भाषा का प्रभाव भी अधूरा ही रह जाता है। यह बात और भी अधिक आवश्यक हो जाती है, जब हम भारत से बाहर हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण की बात करते हैं। मेरे विचार से अंग्रेजी के प्रचार-प्रसार में यही गलती ब्रिटिश काउंसिल ने की। अंग्रेजी अपने दबाव के कारण निष्प्राण आगे बढ़ती गई। भारत को इससे बचना चाहिए और सायास प्रयास करना चाहिए हिंदी के पाठ्यक्रमों का निर्माण करते समय कि भाषा के साथ-साथ भारत-स्थानीय संस्कृति गुंफित रहे। ऐसा करने से हिंदी सजीव एवं अर्थप्रद रहेगी। टोक्यो विश्वविद्यालय, जापान ने हिंदी पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा। प्रोफेसर कृष्ण दत्त पालीवालजी बताते हैं कि किस प्रकार जापान में भारतीय संस्कृति के प्रतीकों का समावेश हिंदी शिक्षण में किया गया है। कहना न होगा कि जापान में हिंदी शिक्षण का अर्थ है—'भाषा के साथ भारतीय संस्कृति-परंपरा साहित्य का ज्ञान।' मेरे विचार से भारतीय संस्कृति के साथ स्थानीय संस्कृति का समावेय भी पाठ्यक्रम में होना चाहिए, विशेष रूप से बच्चों को पढ़ाने में।

प्रौद्योगिकी के युग में हिंदी शिक्षण

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निरंतर विस्फोट होता रहा है। नए-नए उपकरणों से जहाँ एक ओर सुविधाएँ एवं संभावनाएँ बढ़ी हैं, वहीं इनसान आलसी होते हुए उन पर आश्रित होने लगा है। कुछ समय के लिए अगर बिजली चली जाती है या इंटरनेट की सुविधा नहीं मिलती है तो जीवन थम सा गया लगने लगता है। किंतु आज बच्चों और नवयुवकों को इनके माध्यम से बहुत कुछ पहुँचाया भी जा सकता है, यह सत्य सिद्ध हो चुका है।

बदलते समय में हमारी सोच तथा कार्यप्रणाली भी बदल रही है। अत: हमको हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के क्षेत्र में भी परिवर्तन लाना ही पड़ेगा। तख्ती और स्लेट या ब्लैकबोर्ड का समय समाप्त हो चुका है। मुझे याद है जब १९६४-६५ में जब मैं पढ़ाकर घर आता था तो सारे सर के बाल चाक की सफेदी से सफेद होते थे और घर पहुँचते ही नहाना पड़ता था। अब ये सारे काम प्रौद्योगिकी के माध्यम से होते हैं और पहले की अपेक्षा अधिक सुचारु रूप से होते हैं। कहने का अर्थ है कि प्रौद्योगिकी और सूचना-तंत्र का अधिक से अधिक प्रयोग होना चाहिए।

जहाँ एक ओर विश्व में पुस्तकों की बिक्री कम हुई है, वहीं पुस्तकों का पठन बढ़ रहा है। अपनी पसंदीदा पुस्तकों को लोग अब 'आई पैड' पर ई बुक के रूप में पढ़ने लगे हैं। यह उपकरण कुछ ही वर्षों पहले बाजार में आया था और अब साहित्य एवं ज्ञान के विस्तार में क्रांति ला रहा है। जो सुविधाएँ पहले बड़े-बड़े संघटकों में भी नहीं होती थी वे अब लैपटॉप और चल फोन पर उपलब्ध होने लगी हैं। हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के क्षेत्र में इनका प्रयोग आरंभ हो गया है, जिसका अधिक से अधिक विस्तार होना चाहिए। चल टेलीफोन के माध्यम से सारी सामग्री सुदूर गाँवों में भी भेजी जा रही है।

मानकीकरण की विद्या में प्रथम-मध्यम के स्तर पर कोई नियोजित

प्रयास नहीं हुआ है। मेरे विचार से यह अब समय की आवश्यकता हो गई है। अगर ऐसा नहीं किया गया तो उच्च स्तर की शिक्षा पर इसका असर पड़ेगा। यह बात सच है कि उत्तमा स्तर के पाठ्यक्रमों को मानक बनाने के प्रयास हो रहे हैं। किंतु विभिन्न प्रकार के वैविध्य के कारण यहाँ भी परेशानियाँ हैं। प्रशिक्षण की ओर अगर यथोचित ध्यान दिया जाए तो सुविधा हो सकती है।

बहुभाषिता बनाम हिंदी सशक्तीकरण

सकारात्मक विचारों का आदान-प्रदान हर प्रकार से लाभप्रद होता है। यू.के. में हिंदीतर प्रांत के लोगों ने हिंदी भाषा की वृद्धि में तरह-तरह से योगदान दिया है। प्रारंभ में गीतांजलि समुदाय के अनेक सदस्य अपनी-अपनी भाषाओं में ही रमे रहते थे किंतु पिछले कई वर्षों के अथक प्रयास के बाद भाषायी परिवर्तन नजर आने लगा। तेलुगू भाषी कवयित्री सुश्री अरविंदा राव ने हिंदी में बात करने के साथ-साथ रचनात्मक कार्यों में भी दक्षता प्रदर्शित की। २५ जुलाई, १९९९ को एक अद्‌भुत साहित्यिक कार्यक्रम का संचालन सुश्री राव ने हिंदी में किया था, जिसमें भारत एवं यू.के. की कवयित्रियों ने हिंदी में कविता पाठ कर अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में भी श्रोताओं को बताया था। सुश्री राव ने जिस दक्षता के साथ हिंदी में पूरे कार्यक्रम का संचालन किया, उससे सभी बहुत प्रभावित थे। इसी प्रकार श्री प्रफुल्ल अमीन, जो गुजराती भाषी हैं, प्रारंभ में हिंदी में बहुत कम बात करते थे किंतु अब वे हिंदी भाषी की तरह बातें करते हैं और देवनागरी लिपि में हिंदी में कविताएँ भी लिखते हैं। प्रफुल्ल भाई ने स्वर्ण तलवाड़ के साथ अंतरराष्ट्रीय कवि सम्मेलन का सुंदर संचालन हिंदी में किया था। इसी प्रकार ईस्ट अफ्रीका में जनमे श्री रजनी राय एवं सुश्री कैथी गांगुली हैं, जिन्होंने हिंदी में कविताएँ लिखना प्रारंभ किया है किंतु इन दोनों ने रोमन लिपि का सहारा लिया, क्योंकि उन्हें देवनागरी लिपि नहीं आती है। इन चारों के माध्यम से हिंदी के साथ-साथ समाज एवं समुदाय में सौहार्द भी बढ़ा है। यही स्थिति तेलुगू भाषी सुश्री पुष्पा रावजी की है, जो बर्मिंघम शहर में रह रही हैं, जिन्होंने हिंदी में (देवनागरी लिपि) कविताएँ लिखना प्रारंभ किया है और इसके पूर्व बच्चों को हिंदी पढ़ाने के लिए पुस्तकें लिखी एवं पाठ्यक्रम तैयार किए थे। कृति इंटरनेश्नल के माध्यम से कई महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम हुए हैं, जिनसे हिंदी का प्रचार-प्रसार हिंदीतर लोगों के बीच हुआ है। इनमें अनुवाद एवं गोष्ठियाँ भी सम्मिलित हैं। इनमें भी अनेक हिंदीतर भाषी सम्मिलित थे और इनमें बंगाली भाषियों ने तो हिंदी को आगे बढ़ाने में काफी योगदान दिया है। हिंदी के साथ-साथ अन्य भाषाओं के साझे कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं, जिनके माध्यम से हिंदी के प्रति लोगों के पूर्वग्रहों का खंडन हुआ है। निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि बहुभाषिता एवं बहुभाषी परियोजनाओं को बढ़ावा दिया जाए तो हिंदी का भविष्य और भी उज्ज्वल हो सकता है तथा राजभाषा जनभाषा शीघ्रता से बन सकती है और तब हिंदी को संपूर्ण राष्ट्र हृदय से राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लेगा। इस संदर्भ में सर्वश्री रमेश पटेल, के.सी. मोहन, सोहन राही, राज मोडगिल, सरोज सूरी और स्वर्गीय नीना पॉल का भी उल्लेख होना आवश्यक है, क्योंकि हिंदीतर होने के बावजूद इन सबकी हिंदी (देवनागरी लिपि) में कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ अन्य हिंदीतर साहित्यकार ऐसे भी हैं, जो हिंदी में लिखते तो जरूर हैं, किंतु उनकी कृतियाँ अब तक प्रकाश में नहीं आ पा पाई हैं।

हिंदी का भूमंडलीकरण और भूमंडलीकरण में हिंदी

इस सार्थक, सामयिक एवं राष्ट्र की सार्वभौमिकता को ध्यान में रखते हुए अत्यंत आवश्यक विषय के साथ न्याय करने के लिए इसके दो मुख्य अवयवों, हिंदी-भूमंडलीकरण, को इक्कीसवीं सदी के परिप्रेक्ष्य में देखना और समझना होगा। हम यहाँ पर किस हिंदी की चर्चा करना चाहते हैं? हिंदी ने अपने गर्भ में अनेक बोलियों को कई सदियों से सँजोकर रखा है। उदाहरण के लिए, अवधी, ब्रज, भोजपुरी, अंगिका, मगही, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, हिमाचली या बंबइया हिंदी। अथवा 'साहबी हिंदी' जिसकी चर्चा सरस्वती पत्रिका के जनवरी १९०८ के अंक में की गई थी, जब ''अंग्रेज लोग इस बात पर अकसर दिल्लगी उड़ाया करते हैं कि हिंदुस्तानियों को अंग्रेजी लिखना और बोलना नहीं आता।'' या 'मूर्स, हिंदोस्तांस, जार्गन, हिंदुस्तानी, हिंदी या उर्दू' जैसा कि पीटर जी. फ्रीलैंडर लिखते हैं। कुछ समय से हिंदी की ये बहनें हिंदी से इतर आवाज उठाती नजर आ रही हैं, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। ये भारतीय संविधान में अपना हिंदी से अलग स्थान माँग रही हैं। यक्ष प्रश्न है कि हिंदी वस्तु है या विचार? गंभीरतापूर्वक सोचने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह दोनों है। वस्तु इसलिए कि यह अर्थ से जुड़ जाता है और विचार इसलिए इसका व्यापार अन्य वस्तुओं की तरह नहीं हो सकता। यह भी वैदिक धर्म, भारतीयता, योग या अहिंसा की तरह एक विचार है, जिनका भूमंडलीकरण हो चुका है। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अहिंसा दिवस एवं योग के लिए २ अक्तूबर एवं २१ जून घोषित किया है। इनके माध्यम से हिंदी का भूमंडलीकरण गति से होगा, इसमें कोई संशय नहीं। आगे चलकर हम यह निरीक्षण करेंगे कि क्या हिंदी में वे सारे गुण हैं जिससे कि कोई उत्पाद वैश्विक बनने की क्षमता रखता है। इसके लिए निवेश को वांछित उत्पाद के अनुकूल होना पड़ेगा। हिंदी को भी किसी कारखाने में बननेवाली वस्तुओं के सिद्धांतों का पालन करना पड़ेगा। इसके लिए कुछ नियमों का पालन करते हुए समझौते भी करने पड़ सकते हैं। इसके अर्थ यह निकलते हैं कि हिंदी के भूममंडलीकरण के लिए शुद्ध संस्कृतनिष्ठ भाषा के स्थान पर बोलचाल की हिंदी को बढ़ावा देना होगा। इसके अर्थ यह नहीं कि मैं हिंदुस्तानी की वकालत कर रहा हूँ। हिंदी एवं हिंदुस्तानी के भेद को समझने के लिए फ्रेडरिक पिंकॉट के आलेखों को देखना होगा। अत: जिस हिंदी का भूमंडलीकरण गति से हो रहा है, वह व्यावहारिक बोलचाल की हिंदी ही है और हमको यह नहीं भूलना चाहिए कि इस कार्य में बॉलीवुड का बहुत बड़ा योगदान रहा है। अनेकानेक अहिंदी भाषियों को हिंदी न तो लिखना आती है न पढ़ना ही, फिर भी हिंदी फिल्मों के गाने गाते हैं। साल के प्रारंभ में ही अमेरिका के प्रेसीडेंट बॉरक ओबामा ने भी हिंदी गाने के माध्यम से अपनी बात लोगों के सामने बड़े ही प्रभावी ढंग से रखी थी।

वैश्विक स्तर पर लोग हिंदी को प्रथम से लेकर तीसरे स्थान पर

रखते रहे हैं। सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन के समय सूरीनाम में भारत के प्रतिनिधि श्री केशरी नाथ त्रिपाठीजी ने कहा था, 'यह सम्मेलन इस बात पर खेद प्रकट करता है कि विश्व में बोली जानेवाली दूसरी बड़ी भाषा हिंदी, जिसका प्रयोग लगभग १८० देशों में ८० करोड़ लोगों के द्वारा किया जाता है, अभी तक संयुक्त राष्ट्र की भाषा नहीं बन सकी।' जयंती प्रसाद नौटियाल अपने आँकड़ों के आधार पर इसे पहले स्थान पर रखते हैं।

उदाहरण के लिए, अवधी, ब्रज, भोजपुरी, अंगिका, मगही, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, हिमाचली या बंबइया हिंदी। अथवा 'साहबी हिंदी' जिसकी चर्चा सरस्वती पत्रिका के जनवरी १९०८ के अंक में की गई थी, जब ''अंग्रेज लोग इस बात पर अकसर दिल्लगी उड़ाया करते हैं कि हिंदुस्तानियों को अंग्रेजी लिखना और बोलना नहीं आता।'' या 'मूर्स, हिंदोस्तांस, जार्गन, हिंदुस्तानी, हिंदी या उर्दू' जैसा कि पीटर जी. फ्रीलैंडर लिखते हैं।

क्या हिंदी भाषा का भूमंडलीकरण हो सकता है?

सूक्ष्म निरीक्षण यह स्थापित करता है कि हिंदी भाषा में वे सारे तत्त्व विद्यमान हैं, जो किसी विचार या उत्पाद को वैश्विक बनाते हैं। जैसे—

१. सुलभता,
२. ग्राह्यता,
३. सर्व जनीयता,
४. धर्म, जाति, आयु, देश एवं कालादि बंधनों से परे,
५. आस्था, विश्वास, भक्ति एवं तर्क परखता।

हिंदी की देवनागरी लिपि सबसे अधिक वैज्ञानिक मानी जा चुकी है। अत: अगर सब मिलकर श्रीरामजी की गिलहरी की तरह अपना-अपना यथोचित योगदान इस राष्ट्रीय महायज्ञ में करें तो हिंदी भाषा एक दिन पूर्णरूप से वैश्विक बनकर अपना परचम फहरा सकती है। हिंदी के इस भूमंडलीकरण के साथ भारत में निवेश भी बढ़ेगा तथा अन्य क्षेत्रों में सहायता मिलेगी। इस कार्य में लाखों प्रवासी भारतीय बहुत बड़ी भूमिका निभा सकते हैं।

यू.के. में हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न संस्थाएँ

भारत के गणराज्य बन जाने के बाद ही यू.के. में हिंदीसेवी संस्थाओं के जन्म की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई थी। प्राप्त सूचना के अनुसार १९५१ में डॉ. हरिवंश राय बच्चनजी अध्ययन के लिए लंदन पहुँचे। उन्होंने यहाँ पर हिंदी में काम कानेवाले लोगों को संगठित रूप से काम करने के लिए प्रेरित किया। इस सुझाव का लाभ उठाते हुए तत्कालीन हिंदीसेवियों ने मिलकर 'हिंदी परिषद् लंदन' की स्थापना की। इस प्रकार इसके माध्यम से एक सुनियोजित ढंग से नियमित रूप से गोष्ठियों का सिलसिला चल निकला। इसी दशक में 'हिंदी प्रचार संस्था' का गठन हुआ। इसी दौर में 'नैवेद्य', 'अमर दीप' एवं 'चेतक' नामक पत्रिकाओं का प्रादुर्भाव भी हुआ। १९७० में यॉर्क विश्वविद्यालय के श्री महेंद्र किशोर वर्मा के नेतृत्व में 'हिंदी परिषद्' की स्थापना हुई, जिसका बाद में नाम बदलकर 'भारतीय भाषा संगम' हो गया, जो आज भी सक्रिय है तथा इसके माध्यम से तरह-तरह के कार्यक्रम आयोजित होते हैं। १९९९ के बाद से यह प्रतिवर्ष एक बहुभाषीय कवि सम्मेलन, भारतीय दूतावास के सहयोग से कराती रही, किंतु विगत २-३ वर्षों से अनेकानेक कारणों से इसमें कुछ शिथिलता आ गई है। प्रसन्नता की बात यह है कि विगत ८ वर्षों से यही संस्था 'सुनिए-सुनाइए' के नाम से प्रतिवर्ष ४ कार्यक्रम करती आई है, जिसमें विभिन्न तरह के विद्वान् संवाद करते हैं। भारतीय भाषा संगम ने २०१३ में 'यॉर्क फेस्टिवल ऑफ इंडिया' आयोजित किया था। इस एक माह के समारोह में ६ विभिन्न तरह के कार्यक्रम संपन्न हुए थे।

यू.के. में डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी काल की शुरुआत १९९०-९१ में हुई, जब वह लंदन में भारत के उच्चायुक्त होकर आए। यू.के. में हिंदी एवं भारतीय संस्कृति का यह स्वर्णिम काल था, जब अनेकानेक संस्थाओं का जन्म ही नहीं हुआ वरन् तरह-तरह के साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजनों का सूत्रपात भी हुआ। इस दौरान लंदन में डॉ. पद्म गुप्त के माध्यम से १९९१ में 'यू.के. हिंदी समिति', डॉ. रंजीज सुम्रा के माध्यम से मैनचेस्टर में 'अहिंसम भारतीय', १९९५ में डॉ. कृष्ण कुमार के माध्यम से प्रथम बहुभाषीय संस्था 'गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय' बर्मिंघम एवं १९९७ में मैनचेस्टर में डॉ. अंजनी कुमार के माध्यम से 'हिंदी भाषा समिति' की स्थापना हुई। 'भारतीय भाषा संगम' एवं इन तीनों संस्थाओं ने मिलकर १९९९ में छठे विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन १४ से १९ सितंबर तक लंदन में किया; इसकी कार्यकारिणी समिति से संयोजक डॉ. पद्मेश गुप्त तथा अध्यक्ष डॉ. कृष्ण कुमार थे। इन चारों में 'यू.के. हिंदी समिति' एवं 'गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय' अंतरराष्ट्रीय वार्षिक कवि-सम्मेलनों के अलावा अन्य कई साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आयोजन भी कराती आई है। गीतांजलि समुदाय की सबसे बड़ी पहचान इसकी नियमित गोष्ठियाँ रही हैं। १९९५ से अब तक लगभग २०० गोष्ठियाँ संपन्न हो चुकी हैं। 'यू.के. हिंदी समिति' २००३ से प्रतिवर्ष बच्चों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य, हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन कर सफल बच्चों को भारत का भ्रमण भी कराती रही है। गीतांजलि समुदाय ने अपने सदस्यों के कई कविता-संग्रह एवं एक कहानी-संग्रह भी प्रकाशित किए। ऐसा करने वाली यह विश्व की पहली संस्था है; जिसने बच्चों की रचनात्मकता को उभारने के लिए २०१२ में 'गीतांजलि सर्कल फॉर यंग क्रिएटिव राइटर्स' की स्थापना की। इसमें लगभग ३० बच्चे नियमित रूप से मिलते हैं अपने अभिभावकों के साथ। १५ वर्षीय मदीहा शेहर इसकी अध्यक्षा एवं कवयित्री-कथाकार स्वर्ण तलवाड़ संयोजक हैं। इन बच्चों की रचनाओं के दो संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं तथा बड़े गर्व की बात है कि २०१५ में 'संपद' नामक संस्था द्वारा आयोजित एक अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता

में एक बच्चे जैमी जॉन ने, ८ से १५ वर्ष के वर्ग में पहला स्थान प्राप्त किया था। जैमी की कविता 'साल्ट मार्च' की चर्चा निरंतर हो रही है। गीतांजलि के विश्वव्यापक आयोजनों की सूची बहुत लंबी है। १९९८ में कथाकार तेजिंदर शर्मा की 'कथा यू.के.' का जन्म हुआ। भारत में 'इंदू शर्मा कथा सम्मान', तेजिंदर शर्मा द्वारा स्थापित, अब तक मशहूर हो चुका था। कथा विधा को आगे बढ़ाने एवं यू.के. के जनमानस में इसको अधिक प्रचलित करने में कथा यू.के. ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। यू.के. रचनाकारों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कथा यू.के. ने सन् २००० में 'पद्मानंद साहित्य सम्मान' की घोषणा की और इसका पहला सम्मान यू.के. के प्रतिनिधि रचनाकार डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव (स्वर्गीय) को प्रदान किया गया था।

२००० के दशक में लंदन में कई अन्य हिंदी सेवी संस्थाओं के जन्म हुए; जिनमें से मुख्य हैं—२००३ में कवयित्री एवं कथाकार सुश्री दिव्या माथुर की 'वातायन' एवं सुश्री पुष्पा भार्गव (स्वर्गीय) की 'काव्य धारा', जिसकी देख-रेख अब श्री सन्मुख बक्शी एवं बहुआयामी डॉ. इंदिरा आनंदजी कर रही हैं। वातायन प्रतिवर्ष किसी एक रचनाकार को सम्मानित करती है तथा कई बड़े ही सार्थक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया है। काव्य धारा ने ६ वयस्क कवयित्रियों का, जिनकी औसत आयु ६५ वर्ष के करीब थी, बहुत ही सारगर्भित कविता-संग्रह 'क्षितिज के इस पार' प्रकाशित किया। इनमें से एक ने तो यू.के. आकर ६० वर्ष की आयु में हिंदी सीखी थी। इसी दशक में बर्मिंघम में गुजराती भाषी तितीक्षा शाह के नेतृत्व में 'कृति यू.के.' का गठन हुआ। कुछ वर्षों तक बहुत ही सार्थक हिंदी सेवा करने के बाद अब यह संस्था काफी शिथिल हो गई है। इसी प्रकार ब्रैडफैर्ड में गीता उपाध्याय के नेतृत्व में 'कला संगम एवं कृति इंटरनेशनल' हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के संवर्धन में जुटी रही है। सन् २०११ में श्रीमती जय वर्मा के नेतृत्व में नॉटिंघम में 'काव्य रंग' की स्थापना हुई, जो इसके पूर्व २००३ से 'गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय ट्रेंट' के नाम से तरह-तरह के आयोजन करती रही। पैतृक गीतांजलि की तरह ही यह संस्था भी नियमित रूप से गोष्ठियों का आयोजन करती रही हैं।

यू.के. के हिंदीसेवी

हिंदी को लोकप्रिय बनाने एवं प्रचारित करने में संस्थाओं के साथ-साथ रचनाकारों, समर्पित स्वयंसेवकों एवं स्थानीय-सरकारी संस्थानों की अहम भूमिका रही है। १९९० के दशक में स्वर्गीय डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, उच्चायुक्त लंदन एवं उनकी पत्नी श्रीमती कमला सिंघवीजी के अथक प्रयासों से यू.के. में हिंदी बोल रही है; लेखकों एवं उनकी रचनाओं की संख्या तथा वैविध्यता निरंतर बढ़ रही है। जहाँ १९८० के पूर्वार्ध में प्रथम हिंदी एवं संस्कृति अधिकारी श्रीमती सरोज श्रीवास्तव ने भविष्य में क्या होना चाहिए, उसकी नींव रखी। वहीं श्री अनिल शर्मा, डॉ. राकेश दुबे एवं श्री आनंद कुमार ने नए-नए आयाम जोड़े। पिछले ५ वर्षों से बर्मिंघम का स्थानीय कौंसलावास भी इस दिशा में बहुत बढ़-चढ़कर काम करने लगा है, जिसकी नींव श्री प्रधानजी ने रखी व कौंसल जेनरल श्री जे.के. शर्माजी ने, और अब डॉ. अमन पुरी के साथ चांसरी प्रमुख श्री सुनंदो चक्रवर्ती ने जो वातावरण बनाया है, उससे हिंदीसेवियों का मनोबल बढ़ा और नए उत्साह का प्रस्फुटन हुआ है। लंदन में रहनेवाले स्वयंसेवी श्री कृष्ण बिहारी लाल सक्सेना ने भारतीय दूतावास के साथ मिलकर बहुत ही सराहनीय कार्य कर अंतरराष्ट्रीय कवि-सम्मेलनों को सुदूर आयरलैंड एवं वेल्स तक पहुँचाया है।

इस श्रेणी में प्रथम प्रवासी यू.के. निवासी सबसे आगे रहनेवाले डॉ. धनीराम 'प्रेम' का नाम आता है, जिनकी कहानी 'डोरा' १९३० के पूर्वार्ध में तत्कालीन चर्चित प्रसिद्ध पत्रिका 'चाँद' में प्रकाशित एवं सम्मानित हुई थी। इनकी रचनाओं की प्रशंसा कथासम्राट् मुंशी प्रेमचंद ने भी की थी। और इसके बाद जो नाम आता है, वह है डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव का, जो १९५८ में यू.के. आए थे। ये दोनों अब हमारे बीच नहीं हैं।

देव नागरी लिपि में काम करनेवाले हिंदी रचनाकारों को कई श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। मुख्यत: लगभग ७० प्रतिशत पुस्तकें काव्य की विभिन्न शैलियों में प्रकाशित होती रही हैं और इसके बाद लगभग २४ प्रतिशत कहानी-संग्रह छपे हैं। अन्य विधाओं में कुछ गिने-चुने रचनाकार ही काम कर रहे हैं। खासतौर पर बच्चों के लिए स्थानीय परिवेश को ध्यान में रखते हुए लिखने की ओर लोगों का ध्यान गया ही नहीं। और यही हाल उपन्यास, यात्रा-वृत्तांत एवं नाटकों का है। यू.के. में हिंदी रचनाकारों की सूची लंबी है और सबके साथ उचित न्याय करने के लिए समय एवं स्थान चाहिए। इस खंड को तैयार करने में डॉ. राकेश दुबे के शोध ग्रंथ से सहायता ली गई है। दुर्भाग्यवश विगत कुछ वर्षों में यहाँ के कुछ मूर्धन्य साहित्यकारों के निधन ने यू.के. को जो क्षति पहुँचाई, उसकी भरपाई असंभव है। प्राप्त सूचानाओं के आधार पर उनका उल्लेख बाद में किया गया है। इस आलेख में हम वर्तमान में कार्यरत रचनाकारों के नाम ही दे पा रहे हैं और विभिन्न विधाओं का वर्गीकरण न कर सारे नाम एक ही स्थान पर दिए गए हैं। इस सूची में हमने उन सभी रचनाकारों को सम्मिलित करने का प्रयास किया है, जिनकी कम-से-कम, किसी भी विधा में एक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।

यू.के. के हिंदी रचनाकार

श्रीमती उषा राजे सक्सेना, श्री तेजिंदर शर्मा, डॉ. निखिल कौशिक, श्री मोहन राण, श्रीमती दिव्या माथुर, डॉ. पद्मेश गुप्त, श्री महेंदर दवेसर, श्री रमेश पटेल, श्री भारतेंदु विमल, श्रीमती शैल अग्रवाल, श्रीमती उषा वर्मा, श्रीमती कादंबरी मेहरा, श्रीमती अरुण सब्बरवाल, श्रीमती श्यामा कुमार, डॉ. इंदिरा आनंद, श्री नरेश अरोड़ा, श्रीमती अचला शर्मा, श्रीमती चंचल जैन, श्रीमती स्वर्ण तलवाड़, डॉ. कृष्ण कन्हैया, श्रीमती जय वर्मा, श्री सुरेंद्र नाथ लाल, श्री रमेश मुरादाबादी, श्री सोहन राही, श्रीमती रमा जोशी, श्री इस्माइल चुनारा, श्रीमती तोशी अमृता, श्रीमती राज मोद्गिल, श्रीमती उर्मिल भारद्वाज, श्री चमनलाल चमन, श्रीमती निर्मल प्रिंजा, डॉ. वंदना मुकेश शर्मा, श्री संदीप नैयर, श्रीमती पुष्पा राव, श्री गोपाल ऐरी, श्री चिरंजीव शर्मा, श्रीमती नीरजा त्यागी, श्री नरोत्तम पांडेय, श्रीमती शन्नो अग्रवाल, डॉ. श्याम मनोहर पांडेय, श्रीमती जकिया जुबैरी, श्रीमती

शिखा वार्ष्णेय, श्रीमती शशि माथुर, श्री महेंद्र किशोर वर्मा, श्रीमती सरोज श्रीवास्तव, श्री जगदीश मित्र कौशल, श्रीमती मधु शर्मा, डॉ. श्री हर्ष शर्मा एवं डॉ. कुष्ण कुमार।

यू.के. के हिंदी रचनाकार (स्वर्गीय)

डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव, डॉ. गौतम सचदेव, श्रीमती पुष्पा भार्गव, श्रीमती प्रियंवदा देवी मिश्रा, श्रीमती विद्या मायर, श्रीमती कीर्ति चौधरी, श्री ओंकार श्रीवास्तव, श्री वेद मित्र मोहला, श्रीमती नीना पॉल, श्रीमती रमा भार्गव एवं श्री प्राण शर्मा।

यू.के. में हिंदी का भविष्य : दशा-दिशा

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है कि यू.के. में हिदी का भविष्य अंधकार की ओर जाता हुआ प्रतीत हो रहा है, क्योंकि संगठित रूप से विद्यालयों के पाठ्यक्रमों से इसके पठन-पाठन को आर्थिक कारणों से समाप्त किया जा चुका है। इस प्रकार पहले क्या आया— मुरगी या मुरगी का अंडा जैसी स्थिति यू.के. में खड़ी कर दी गई है। अगर शिक्षण प्रणाली से ही हिंदी को हटा दिया जाएगा तो लोग पढ़ेंगे कैसे और जब लोग पढ़ेंगे ही नहीं तो इसका प्रभाव धन पर तो पड़ेगा ही। किंतु २०१५ से एक आशा की सुनहरी किरण क्षितिज पर आती दिखाई पड़ रही है। १९८० के दशक में जो प्रयोग सत्संग के माध्यम से हिंदी को बढ़ाने में दक्षिण अफ्रीका के बेनोनी शहर में विरजानंद बदूलू गरीब द्वारा किया गया था, वैसा ही प्रयोग बर्मिंघम में श्री कवींद्र सिंह एवं श्रीमती गीता सिंह के माध्यम से हो रहा है। बाद में गरीबजी की योजना को साकार करने एवं हिंदी के पाठन-पाठन को आगे बढ़ाने के लिए हीरा लाल सिवनाथजी आगे आए। दोनों के साथ 'इंडिया संवाद' की सुनंदा वर्मा अस्थाना की बातचीत हुई, जिसमें कई खुलासे किए और बताया कि हिंदी को व्यापक बनाने के लिए भारत सरकार को क्या करना चाहिए। वास्तव में बर्मिंघम से पहले यह दंपती आबूधाबी में रहता था, जहाँ इसी प्रकार का सत्संग ग्रुप विगत चार दशकों से चलता आ रहा था। अकेलेपन को कम करने तथा त्योहारों एवं उत्सवों को सामूहिक रूप से मनाने के इरादे से बर्मिंघम का यह अनुष्ठान शुरू हुआ था। विधि के विधान के अनुसार परिवारों के बच्चों ने भी इसमें भाग लेना प्रारंभ कर दिया। प्रति सप्ताह ९० मिनट के इस सत्संग की पूरी रूपरेखा दी गई है। १० वर्षीय आकर्ष बंसल, जिसका जन्म बर्मिंघम में ही हुआ था, अपनी इच्छा एवं माता-पिता के प्रोत्साहन से, सभी बच्चों में आगे निकल गया। वह हिंदी पढ़, बोल और लिख भी सकता है। उसकी रचनात्मकता का प्रमाण उसकी पुस्तक के पृष्ठ ६९ पर प्रकाशित मार्मिक कविता 'मेरी भाषा हम सबकी भाषा' है। आकर्ष से प्रेरणा लेकर अन्य बच्चे भी अब हिंदी सीखना चाहते हैं।

इस प्रकार सत्संग ग्रुप एवं गीतांजलि समुदाय की सुंदर साझा वैचारिक मुहिम की नींव पड़ी। बच्चों को देव नागरी लिपि का ज्ञान देते हुए हिंदी में साक्षरता प्रदान करने की शुरुआत हो रही है। उपयुक्त सामग्री मिलने में दिक्कतें हो रही हैं किंतु इस समस्या का समाधान भी मिल रहा है यॉर्क के श्री महेंद्र वर्मा के अनुभव से। हम बूँद-बूँद कर सागर भरने का प्रयास तो कर रहे हैं, दु:ख तो इस बात का है कि भारत सरकार की ओर से वांछित सहयोग न मिलने के कारण शिक्षण सामग्री, जो पहले तत्काल मिल जाती थी, अब कई बार अनुरोध करने पर भी नहीं मिल पा रही है। स्थानीय दूतावास में हिंदी एवं संस्कृति अधिकारी ने भी विवशता के कारण अपने हाथ खड़े कर दिए हैं यह कहकर कि उनकी प्रार्थनाओं पर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है, पत्रों के उत्तर तक नहीं मिलते। ऐसे रवैये के कारण हिंदी एवं भारतीय संस्कृति को आगे बढ़ाने में बाधाएँ आ गई हैं। इस सबके बावजूद स्थानीय कौंसलावास के अधिकारियों से सीमित सहयोग मिल रहा है और हम शीघ्र ही अपनी इस परियोजना के रथ को मार्ग पर चलाने लगेंगे। इस प्रयास से हिंदी का भविष्य यू.के. में सुधरता प्रतीत हो रहा है तथा ६ वर्ष के बच्चे भी उत्साहित हैं।

यू.के. में हिंदी की दिशा में यदि हम सही सकारात्मक बदलाव चाहते हैं तो यहाँ पर स्थानीय विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण को पुन: प्रारंभ करना होगा। और यह तभी हो सकता है, जब यू.के. की शिक्षा नीति-सोच में लचीलापन आए। इसके लिए यह आवश्यक है कि भारत सरकार एक उच्च स्तरीय समिति का गठन कर ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाले कि आपसी रिश्तों एवं विनिमय को मजबूत कर चिरस्थायी बनाने के लिए यह जरूरी है कि भारतीयों को ध्यान में रख सकारात्मक अनुकूल वातावरण बनाते हुए हिंदी शिक्षण को पूर्ववत् किया जाए। भारतीय प्रस्ताव के पक्ष में अधोलिखित तर्क दिए जा सकते हैं—

१. भारतीय मूल के लोगों की संख्या १८.२ लाख है, जो यू.के की जनसंख्या, ६३१.८२ लाख, का २.८८ प्रतिशत होता है।

२. ये भारतीय यू.के की अर्थ व्यवस्था को सुधार रहे हैं; यू.के. की जी.डी.पी. में इनकी भागीदारी ६ प्रतिशत है। यह इन भारतीयों के कठिन परिश्रम का परिणाम है।

३. यू.के के यूरोपियन संगठन से बाहर आने (ब्रेक्सिट) के बाद दोनों देशों के बीच व्यापार बढ़ रहा है। इसमें और अधिक उछाल लाने के लिए यह आवश्यक है कि आपसी भाषा-संस्कृति को जानें एवं समझें। भारत में अधिकतर लोग अंग्रेजी जानते और समझते हैं।

यू.के. में हिंदी-हिंदुस्तानी का इतिहास बहुत पुराना है और अब आपसी संबंध पहले की अपेक्षा बेहतर हो रहे हैं। हिंदी के लिए अनुकूल वातावरण बनाने के लिए भारत सरकार को अपनी संकल्प ऊर्जा को बढ़ाना होगा। प्रवासी भारतीयों की भूमिका का सही आकलन करने से ही यथोचित मार्ग निकल सकता है। इस सबके लिए यह भी आवश्यक है कि हिंदी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं को भी बढ़ाया जाए। सबके साथ से ही हमारा सही विकास हो सकता है।

21 Bidefor, Drive,
Selly Oak, Birmingham
B29 6QG (U.K.)
e-mail : profdrkrishna@gmail.com

हिंदी-रूसी भाई-भाई

• राजेश कुमार

जब भी हम भारतीय रूस के बारे में सोचते हैं, तो सबसे पहले जेहन में आनेवाला जुमला यही होता है—हिंदी-रूसी भाई-भाई। भारत और रूस में कुछ अलौकिक, अव्याख्येय (गूँगे केरी सरकरा) किस्म का रिश्ता है, और हिंदी भाषा एवं देश की अन्य भाषाएँ भी इस रिश्ते के विकास में योगदान करती हैं।

रूस की भारत के प्रति रुचि पंद्रहवीं शती में ही दिखाई देने लगी थी, जब रूसी विश्वयात्री अफनासी निकितिन ने भारत की यात्रा की थी। वे १४६८ में रूस के प्राचीन नगर त्वेर से भारत के लिए रवाना हुए थे और काले सागर को पार करके अजरबेजान और ईरान के रास्ते भारत पहुँचे थे। यह तथ्य उस लोकप्रिय मान्यता के विपरीत है कि भारत की खोज वास्कोडिगामा ने की थी, क्योंकि वास्कोडिगामा अफनासी के २५ साल बाद भारत पहुँचे थे। भारत के बारे में अफनासी के संस्मरण हम आज 'तीन समुद्रों के पार की यात्रा' के नाम से जानते हैं।

भारत-रूस संबंधों का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्रोत हिंदुस्तानी भाषा से सीधे जुड़ा हुआ है। रूसी संगीतकार गेरासिम लेबिदेव (१७४९-१८१७) बारह साल तक भारत में रहे थे। शुरू में कुछ साल मद्रास (अब चेन्नै) में बिताने के बाद वे कलकत्ता (अब कोलकाता) चले गए थे और लंबे समय तक वहाँ रहे। उन्होंने भारत की भाषाओं पर महत्त्वपूर्ण काम किया। वर्ष १८०१ में उनकी किताब 'ए ग्रामर ऑफ द प्यूर एंड मिक्स्ड ईस्ट इंडियन डायलेक्ट्स' प्रकाशित हुई थी, जिसमें उन्होंने कलकत्ता में बोली जानेवाली हिंदुस्तानी भाषा के व्याकरण पर चर्चा की है।

रूसी लोगों में भारत और हिंदी के प्रति बहुत आकर्षण है। आप मॉस्को या किसी भी रूसी शहर की सड़कों पर निकल जाएँ, तो लोग आपको रोककर आपसे बात करना चाहेंगे और 'इंदी-इंदी (भारतीय-भारतीय)' कहेंगे और कुछ तो 'हिंदी-रूसी भाई-भाई' भी बोलेंगे। ऐसा नहीं है कि इन सभी लोगों को हिंदी भाषा का ज्ञान होता है, पर वे भारत, भारतीय संस्कृति, हिंदी फिल्मों, भारतीय नृत्य आदि में रुचि रखते हैं।

अगर आपको थोड़ी रूसी आती है, तो लोग आपसे मिथुन चक्रवर्ती (हाँ, मिथुन ही रूसियों के प्रिय कलाकार हैं), इंदिरा गांधी, आदि के बारे में पूछेंगे और बहुत दिलफेंक हुए तो आपको उपहार भी दे सकते हैं। एक बार एक कारवाले ने (मॉस्को में लोग अपनी कार को टैक्सी की तरह चलाकर कुछ पैसा कमाने की फिराक में रहते हैं) मुझसे पैसा लेने से मना कर दिया था। सुनते हैं कि बहुत पहले तो भारतीयों को देखकर रूसी अपनी गाड़ी रोक देते थे, उनका हालचाल पूछते थे, महिलाओं को फूल उपहार में देते थे और बच्चों को चॉकलेट देते थे। हम लोग उस दौर के बहुत बाद में रूस में पहुँचे थे। आगे की पंक्तियों में हम लोग रूस में हिंदी की स्थिति के बारे में चर्चा करेंगे।

सुपरिचित लेखक। प्रमुख कृतियाँ हैं—पद के दावेदार, इमरजेंसी वार्ड (व्यंग्य-संकलन); भुजिया होटल, आप कौन (व्यंग्य-नाटक); परसाई की पारसाई (आलोचना); बातूनी बटुआ, बैंजामिल फ्रेंकिलन, कैलाश सत्यार्थी, हमारे पूर्वज (बाल साहित्य); त्रुटियाँ : विश्लेषण और सुधार (भाषाशास्त्र); हिंदी-रूसी शब्दकोश। आकाशवाणी दिल्ली और दिल्ली दूरदर्शन में समाचार वाचक और समाचार संपादक; अनेक लघु फिल्मों का निर्देशन; 'प्रवासी इंडिया', 'युगतेवर' और 'हैलो इंडिया' पत्रिकाओं में संपादन सहयोग। उत्तर प्रदेश साहित्य अकादमी, टेलीग्राफ, श्री रामजी वोरा सेवा समिति से सम्मानित।

आम तौर पर किसी देश में विदेशी भाषा, इस लेख के संदर्भ में रूस में हिंदी, की स्थिति का जायजा लेने के लिए निम्नलिखित बातों पर दृष्टिपात किया जाना चाहिए—

१. रूस में हिंदी से संबंधित संस्थान
२. हिंदी की शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्वान्/अध्यापक
३. अध्ययन सामग्री और अन्य संसाधन
४. विद्यार्थियों की संख्या और रुचि
५. हिंदी में अनुसंधान-कार्य
६. हिंदी के प्रसार-प्रचार के लिए राजकीय सहायता
७. हिंदी में रोजगार के अवसर

आइए, हम इन पर एक-एक करके उपर्युक्त क्रम में चर्चा करें।

रूस में हिंदी से संबंधित संस्थान

हिंदी से संबंधित संस्थान दो तरह के हो सकते हैं—

१. हिंदी-अध्ययन की सुविधा देनेवाले संस्थान,
२. हिंदी में कामकाज करने वाले संस्थान।

सोवियत संघ के विखंडित हो जाने के बाद भी रूस बहुत बड़ा देश है, जो एक ओर तो यूरोप में गिना जाता है और दूसरे छोर पर जिसकी गिनती एशिया में होती है। ऐसे देश में सामान्य स्तर पर किया

जानेवाला काम भी बड़े पैमाने का काम लगना स्वाभाविक है। हिंदी-अध्ययन की सुविधाएँ देनेवाले संस्थानों के बारे में भी यही बात सही है।

देश की राजधानी मॉस्को में हिंदी-अध्ययन की सुविधाएँ देनेवाले संस्थान दो प्रकार के हैं—एक, वे जो रूसी सरकार के हैं, और दूसरे वे, जिन्हें भारत सरकार ने आपसी सहयोग के तहत स्थापित किया है। रूसी संस्थानों में मुख्यत: चार संस्थान शामिल हैं—लोमोनोसोव मॉस्को राज्यकीय विश्विद्यालय जिसमें भारतीय भाषाशास्त्र विभाग में एशियाई और अफ्रीकी अध्ययन संस्थान है, रूसी मानविकी विश्वविद्यालय, मॉस्को सरकारी अंतरराष्ट्रीय अध्ययन संस्थान (एम.जी.आई.एम.ओ.), और हिंदी विद्यालय। इन संस्थानों में प्रारंभिक स्तर से लेकर अनुसंधान तक की सुविधाएँ उपलब्ध हैं, और हिंदी विद्यालय में विद्यालय स्तर की शिक्षा दी जाती है। इसके अलावा रूसी राजकीय मानविकी विश्वविद्यालय में भी हिंदी शिक्षण का काम होता रहा है। भारत सरकार ने मॉस्को में जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र की स्थापना की है, जहाँ प्रमाण-पत्र और डिप्लोमा स्तर पर हिंदी पढ़ाई जाती है। इसके अलावा भारत सरकार ने मॉस्को में एक केंद्रीय विद्यालय भी खोला है, लेकिन वहाँ मुख्यत: भारतीय राजदूतावास के कर्मचारियों या रूस में रह रहे भारतीय व्यापारियों के बच्चे पढ़ते हैं। कभी-कभार वहाँ एशियाई और अफ्रीकी बच्चे भी पढ़ने के लिए आ जाते हैं, किंतु वे हिंदी भाषा नहीं पढ़ते।

रूस का दूसरा बड़ा शहर है—सेंट पीटर्सबर्ग। यहाँ भी सेंट पीटर्सबर्ग विश्विद्यालय में सभी स्तरों पर हिंदी के अध्ययन की सुविधा है। इसके अलावा यहाँ भी मॉस्को की तरह ही एक हिंदी विद्यालय भी है। यहाँ रूसी विज्ञान अकादमी में भी हिंदी शिक्षण का काम होता रहा है। इन दो शहरों के अलावा व्लादिवोस्तोक में भी फार ईस्टर्न विश्वविद्यालय (सुदूर पूर्व विश्वविद्यालय) में हिंदी में विश्वविद्यालय स्तर के और जिम्नेजियम नंबर २ में विद्यालय स्तर के पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं।

रूस का दूसरा बड़ा शहर है—सेंट पीटर्सबर्ग। यहाँ भी सेंट पीटर्सबर्ग विश्विद्यालय में सभी स्तरों पर हिंदी के अध्ययन की सुविधा है। इसके अलावा यहाँ भी मॉस्को की तरह ही एक हिंदी विद्यालय भी है। यहाँ रूसी विज्ञान अकादमी में भी हिंदी शिक्षण का काम होता रहा है। इन दो शहरों के अलावा व्लादिवोस्तोक में भी फार ईस्टर्न विश्वविद्यालय (सुदूर पूर्व विश्वविद्यालय) में हिंदी में विश्वविद्यालय स्तर के और जिम्नेजियम नंबर २ में विद्यालय स्तर के पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं।

इसके अलावा छिटुपट तौर पर भारत-प्रेमी लोगों ने हिंदी-अध्ययन के समूह बनाए हुए हैं। इनमें रिजान शहर में गोर्की विश्वविद्यालय में एक समूह है, जहाँ लोग स्वाध्याय से हिंदी सीखते हैं। हिंदी सीख चुके वरिष्ठ लोग भी इस कार्य में मदद करते हैं।

हिंदी में कामकाज करनेवाले संस्थान तो भारत में भी कम ही हैं, अत: विदेशों में उनका बड़ी संख्या में न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए। इनमें मॉस्को राजकीय रेडियो ही ऐसा संस्थान था, जहाँ हिंदी में कार्यक्रम प्रसारित किए जाते रहे हैं, लेकिन दुर्भाग्यवश अब बंद हो गए हैं। काफी समय तक रादुगा प्रकाशन (प्रगतिशील प्रकाशन) ने रूसी साहित्य को हिंदी (और अन्य भारतीय भाषाओं) में अनुवाद और प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। गोर्की, तोल्स्तोय, पुश्किन, तुर्गनेव आदि महान् रूसी लेखकों की कृतियों के हिंदी अनुवाद के साथ इसने 'सोवियत भूमि', 'सोवियत नारी', 'मीशा' आदि पत्रिकाएँ भी हिंदी में प्रकाशित की हैं, जिन्हें भारतीय लोग अब तक भूले नहीं होंगे। किंतु अब उसने हिंदी में काम करना बंद कर दिया है।

हिंदी की शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्वान्/अध्यापक

विदेशी भाषा के प्रचार-प्रसार में दूसरा महत्त्वपूर्ण संसाधन उस भाषा में काम करनेवाले विद्वान् और अध्यापक होते हैं। यदि आप इसका उदाहरण देखना चाहते हैं तो भारत में अंग्रेजी अध्यापकों के संदर्भ में देख सकते हैं। यहाँ प्रारंभिक शिक्षा से लेकर उच्चतम स्तर पर अंग्रेजी भाषा के योग्य अध्यापक मिल जाते हैं। रूस में भी हिंदी को लेकर एक समय में यही स्थिति थी। रूसी विद्वानों ने श्रमपूर्वक हिंदी भाषा सीखी और उसके अध्यापन का काम किया। इन दिग्गजों में पुराने समय के, एलेक्सी पी. बारान्निकोव, ओ.ए. उल्त्सिफेरोव, वी. सिकोर्स्की, सुश्री नतालिया एम. सजानोवा शामिल हैं। वर्तमान समय के अध्यापकों में बी.ए. जखारिन, जो फिलहाल एशियाई और अफ्रीकी अध्ययन संस्थान के अध्यक्ष हैं। सुश्री ल्युदमिला खखलोवा, सुश्री तात्याना ओरंस्काया, सुश्री ल्युदमिला वी. ब्लाजेंकोवा, सुश्री तात्याना दुब्यांस्काया, सुश्री इंदिरा वी. गाजियेवा (इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री बनने के अवसर पर बहुत से लोगों ने अपनी नवजात पुत्रियों के नाम इंदिरा रखे थे), व्लादिमीर पी. लिपेरोव्स्की, सुश्री एन.डी. गावरियुशीना, सुश्री आई.पी. ग्लुश्कोवा, सुश्री यूल्या बेस्चुक, सेर्गई एस. तावास्श्रेरना, सुश्री स्वेतलाना ओ. त्स्वेतकोवा, वी.पी. लिपरोव्स्की, सुश्री गुजेल स्ट्रेल्कोवा, सुश्री अन्ना पानिना, सुश्री मारिया दिदेन्को और सुश्री अनास्तासिया गुरिया प्रमुख हैं।

इस सूची को देखकर लग सकता है कि वहाँ हिंदी विद्वानों और अध्यापकों की भरमार है, किंतु यह प्रभावपूर्ण होने के बावजूद काफी नहीं है, क्योंकि इनमें से अनेक विद्वान् अवकाश-प्राप्त कर चुके हैं और रूस जैसे बड़े देश के लिए यह संख्या बहुत कम है।

अध्ययन सामग्री और अन्य संसाधन

तीसरी बात है, अध्ययन सामग्री और अन्य संसाधन की। भारत द्वारा रूसी विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-सामग्री आदि बनाने का कोई गंभीर

प्रयास कभी नहीं हुआ, लेकिन खुद रूसी विद्वानों ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। बहुत पहले सन् १९७७ में यहाँ तीन विद्वानों : जाल्मन म. दीमशित, व.ई. गोरूनोव और ओ.ए. उल्त्सफेरोव ने हिंदी पाठ्यपुस्तक तैयार की थी, जिसे एम.जी.आई.एम.ओ. ने हिंदी पढ़ाने के लिए अपनाया था। प्रारंभ में इस पाठ्यपुस्तक के तीन खंड थे, जो विभिन्न स्तरों पर हिंदी सीखनेवाले विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को देखते हुए विभाजित किए गए थे। पाठ्यपुस्तक में व्याकरणिक इकाइयों और रूसी परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा के लिए अध्ययन सामग्री प्रस्तुत की गई है। इसके अंत में हिंदी-रूसी शब्दकोश भी दिया गया है। अब तक इस पाठ्यपुस्तक के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। सन् १९९९ में इस पाठ्यपुस्तक का संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित हुआ, जिसके साथ उच्चारण में सहायता के लिए एक ऑडियो कैसेट भी दी गई थी। हिंदी सीखना शुरू करनेवाले विद्यार्थियों के लिए यह पाठ्यपुस्तक बहुत भारी पड़ती है, साथ ही इसमें व्याकरणिक और प्रयोग संबंधी कुछ कमियाँ भी हैं।

राजकीय सहायता वह महत्त्वपूर्ण पक्ष है, जो किसी भी भाषा के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रूस में पुनर्जागरण से पहले हिंदी (और तमिल, पंजाबी आदि अन्य भाषाओं) को रूसी सरकार से बहुत प्रोत्साहन मिलता था। यही कारण है कि उस समय में हिंदी में अनुवाद, अनुसंधान और प्रकाशन का काम बड़े पैमाने पर होता था। रूसी सरकार भारतीय विद्वानों को अपने यहाँ आमंत्रित करके कार्य करवाती थी। इन विद्वानों में प्रो. मदनलाल मधु, श्री भीष्म साहनी आदि का नाम हम सब लोग बहुत आदर से लेते हैं।

इसके बाद से एम.जी.आई.एम.ओ. सहित अन्य संस्थानों ने अपने-अपने लिए अद्यापन मैनुअल और अभ्यास, और शब्दावली के साथ कहानी-संग्रह तैयार किए हैं। एम.जी.आई.एम.ओ. के लिए क्लारा द्रुकोवा ने भारतीय अर्थशास्त्र पर हिंदी पाठ तैयार किए हैं। भारतीय राजदूतावास के जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र ने वर्ष २००० में विशेष रूप से हिंदी विद्यालय के लिए 'शिशु भारती भाग-१ और भाग-२' नाम से दो पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित की थीं, जिन्हें इस लेख के लेखक ने तैयार किया था। पुस्तक की वैज्ञानिक संरचना और अंत में दिए गए रूसी-हिंदी और हिंदी-रूसी बालोपयोगी शब्दकोश इन पाठ्यपुस्तकों को हिंदी सीखना शुरू करनेवाले विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से लाभदायक बना देते हैं।

पाठ्यपुस्तकों के अलावा रूसी विद्वानों ने व्याकरण-ग्रंथ और शब्दकोशों की भी रचना की है, जो विद्यार्थियों के लिए मददगार साबित हुए हैं। व्याकरण-ग्रंथों जाल्मन म. दीमशित्स द्वारा रूसी में लिखा गया 'हिंदी व्याकरण' (१९८३) प्रमुख हैं। बाद में इसका हिंदी अनुवाद भी किया गया। यह ग्रंथ क्रमबद्ध तरीके से हिंदी व्याकरण पर प्रकाश डालता है, और हिंदी की व्यवस्था के रहस्य खोलता है। सन् १९८० में अ.स. बरखुदारोव, व.म. ब्रेस्कोव्नी, ग.अ. जोग्राफ और व.प. लिपेरोव्स्की ने बृहदाकार 'हिंदी-रूसी शब्दकोश' तैयार किया, जिसमें ७५,००० प्रविष्टियाँ हैं और दो खंडों में प्रकाशित किया गया है। जाल्मन म. दीमशित्स ने 'रूसी-हिंदी शैक्षिक शब्दकोश' के नाम से १९८१ में प्रकाशित ग्रंथ में अद्‌भुत प्रयोग किया है। इसमें शब्दों के अर्थ के साथ-साथ उनके प्रयोग भी दिए गए हैं, जो विद्यार्थी को हिंदी भाषा-व्यवहार सीखने में मदद करते हैं। इसमें ५,००० प्रविष्टियाँ हैं। ये ग्रंथ अब मुद्रित नहीं होते और इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र ने वर्ष १९९९ में हिंदी-रूसी शब्दकोश प्रकाशित करवाया था, जिसमें १५,००० प्रविष्टियाँ हैं। यह शब्दकोश इलेक्ट्रोनिक रूप में भी उपलब्ध है, जिसमें हिंदी के साथ-साथ रूसी शब्दों के अर्थ भी ढूँढ़े जा सकते हैं। इस शब्दकोश का संकलन भी प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने ही किया है। इसके अलावा केंद्र ने महान् कवि पुश्किन की जन्म-द्विशताब्दी के अवसर पर उनकी चुनिंदा कविताएँ हिंदी अनुवाद के साथ प्रकाशित (२०००) की थीं।

विद्यार्थियों की संख्या और रुचि

विश्वविद्यालय और संस्थान स्तर पर हर पाठ्यक्रम में लगभग छह से आठ तक विद्यार्थी होते हैं। रूसी शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी को डिग्री प्राप्त करने के लिए छह वर्ष तक पढ़ाई करनी होती है। इसके बाद उसे हमारे यहाँ के कला-निष्णात (मास्टर) के समकक्ष उपाधि प्राप्त हो जाती है। अनुसंधान का कार्य इसके बाद होता है, जिसमें प्राय: ३-४ विद्यार्थी हर संस्थान में रहते हैं। विद्यालय के स्तर पर लगभग २५ विद्यार्थियों का वर्ग ऐसा होता है, जो पहले दर्जे से लेकर विद्यालय पूरा होने तक हिंदी भाषा का अध्ययन करता है। पहले यह संख्या इससे बहुत अधिक रहती थी, किंतु पुनर्जागरण के बाद से अनेक कारणों से हिंदी के विद्यार्थियों की संख्या और रुचि में बहुत गिरावट आई है। इन कारणों पर हम आगे चर्चा करेंगे।

हिंदी में अनुसंधान-कार्य

रूस में अनुसंधान-कार्य अब बहुत कम हो रहा है। अध्यापन कार्य में लगे विद्वान् हिंदी भाषा और साहित्य पर लेख लिखते रहते हैं। ये लोग विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में भाग लेने के लिए भारत और अन्य देशों की यात्रा भी करते हैं। अतीत में हिंदी में यहाँ अच्छा अनुसंधान कार्य हुआ है। हिंदी की संयुक्त क्रियाओं पर दीमशित्स का किया गया कार्य अपने आप में अनूठा उदाहरण है। विश्वविद्यालय स्तर पर विद्यार्थियों द्वारा किए जानेवाला अनुसंधान कार्य हिंदी भाषा और साहित्य पर रूसी माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, अत: वहाँ विश्लेषण की योग्यता तो प्रकट होती है, किंतु हिंदी भाषा और साहित्य पर प्रत्यक्ष रूप से कोई कार्य

नहीं होता। शोध कार्यों में अन्य के अलावा सुश्री ल्युदमिला खखलोवा के अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित शोध-पत्र और लिपरोव्स्की द्वारा हिंदी व्याकरण और वाक्य-रचना पर लिखित अनेक पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। लेकिन कोई रूसी विद्वान् हिंदी में रचनात्मक लेखन नहीं करता। यहाँ से अब कोई पत्रिका भी हिंदी में प्रकाशित नहीं होती।

हिंदी के प्रसार-प्रचार के लिए राजकीय सहायता

राजकीय सहायता वह महत्त्वपूर्ण पक्ष है, जो किसी भी भाषा के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रूस में पुनर्जागरण से पहले हिंदी (और तमिल, पंजाबी आदि अन्य भाषाओं) को रूसी सरकार से बहुत प्रोत्साहन मिलता था। यही कारण है कि उस समय में हिंदी में अनुवाद, अनुसंधान और प्रकाशन का काम बड़े पैमाने पर होता था। रूसी सरकार भारतीय विद्वानों को अपने यहाँ आमंत्रित करके कार्य करवाती थी। इन विद्वानों में प्रो. मदनलाल मधु, श्री भीष्म साहनी आदि का नाम हम सब लोग बहुत आदर से लेते हैं।

भारत सरकार की ओर से रूस में मॉस्को में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र करता है। एक ओर जहाँ इस केंद्र में नियमित रूप से विभिन्न स्तरों पर मूल (भारतीय) अध्यापक द्वारा हिंदी अध्यापन की नि:शुल्क सुविधा प्रदान की गई है, वहीं दूसरी ओर यह केंद्र विद्यार्थियों के लिए अध्ययन सामग्री तैयार करने का काम भी करता है। केंद्र प्रति वर्ष दो विद्यार्थियों को हिंदी सीखने के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में विद्यार्थीवृत्ति पर भी भेजता है। इसके अलावा केंद्र नियमित रूप से फिल्म प्रदर्शन, चर्चाएँ, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि भी आयोजित करता है, जो रूसी लोगों को हिंदी भाषा से परिचित होने में मदद करते हैं।

हिंदी में रोजगार के अवसर

हिंदी में रोजगार के अवसर जब हमारे भारत देश में ही कम हैं, तो विदेशों में तो उनकी तलाश करना अँधेरे कमरे में काली बिल्ली ढूँढ़ने जैसा ही होगा। लेकिन हमें नहीं भूलना चाहिए कि रोजी-रोटी जीवन की अभिन्न आवश्यकता है और जो चीज उससे जुड़ेगी, वह अपने आप महत्त्वपूर्ण हो जाएगी। दुर्भाग्य की बात है कि हिंदी पढ़नेवालों के लिए रूस में रोजगार के अवसर न के बराबर ही हैं। विश्वविद्यालयों और विद्यालयों में गिने-चुने पद हैं और विद्यार्थियों की गिरती माँग को देखते हुए उन्हें भी खत्म किया जा रहा है। हिंदी सीख रहे विद्यार्थी अनिवार्य रूप से अंग्रेजी या कोई अन्य यूरोपीय भाषा अवश्य सीखते हैं, ताकि उन्हें काम तलाश करने में सुविधा रहे। हिंदी के विद्यार्थियों के लिए अनुवाद और लेखन से भी कोई आमदनी का जरिया अब रूस में नहीं है। विडंबना यह है कि भारतीय राजदूतावास और सेंट पीटर्सबर्ग तथा व्लादिवोस्तोक में स्थित भारतीय कौंसुलेट में भी रोजगार के लिए हिंदी जाननेवाले नहीं, अपितु अंग्रेजी जाननेवाले व्यक्तियों को ही वरीयता दी जाती है, क्योंकि वहाँ सब काम अंग्रेजी में ही होता है। राजदूतावास से प्रकाशित होनेवाली समाचार पत्रिका भी अंग्रेजी भाषा में ही प्रकाशित होती है। ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जब हमारे राजनयिक अंग्रेजी भाषा में भाषण देते हैं और उसी कार्यक्रम में रूस के प्रतिनिधि हिंदी भाषा का उपयोग करते हैं। इसे देखते हुए इस बात में कोई आश्चर्य नहीं होना कि रूसी लोग हिंदी से विमुख होकर अन्य विदेशी भाषाओं की ओर रुख कर रहे हैं, जो उन्हें रोजगार आदि के प्रचुर अवसर प्रदान करती हैं।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि रूस में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन और प्रकाशन आदि की समृद्ध परंपरा रही है, किंतु रूसी सरकार द्वारा उपेक्षा और भारत सरकार द्वारा अनदेखी किए जाने के कारण वह परंपरा अब अवरुद्ध होती जा रही है। हिंदी विद्यार्थियों के लिए न तो अपनी प्रतिभा दिखाने के कोई अवसर हैं और न ही हिंदी के आधार पर आजीविका कमाने के मार्ग दिखाई देते हैं। यदि समय रहते इस दिशा में उपयुक्त प्रयास नहीं किए गए, तो वह दिन दूर नहीं जब रूस में हिंदी के अध्ययन के लिए विद्यार्थियों में कोई रुचि नहीं रह जाएगी। इस दिशा में मुख्य रूप से भारत सरकार को ही प्रयास करने होंगे, क्योंकि रूस की अर्थव्यवस्था अब पूँजीवादी और उदार अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो चुकी है और वहाँ की सरकार हर निवेश को उसकी उपयोगिता के आधार पर आँकने लगी है।

सा अ

सी-२०५, सुपरटेक इको सिटी
सेक्टर-१३४, नोएडा-२०१३०५ (उ.प्र.)
e-mail : drajeshk@yahoo.com

जय-जय राष्ट्रभाषा जननि। जयति जय-जय गुण उजागर राष्ट्रमंगलकरनि। —देवी प्रसाद गुप्त

मैं दुनिया की सब भाषाओं की इज्जत करता हूँ, परंतु मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो, यह मैं नहीं सह सकता। —विनोबा भावे

हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य को सर्वांगसुंदर बनाना हमारा कर्तव्य है। —डॉ. राजेंद्र प्रसाद

हिंदी की वैश्विक यात्रा का अहम पड़ाव विश्व हिंदी सचिवालय

• विनोद कुमार मिश्र

हिंदी की वैश्विक यात्रा

विश्व व्यवस्था उन्हीं के अधीन रही है, जिनका 'ज्ञान' पर आधिपत्य रहा है। इक्कीसवीं सदी को 'सूचना व प्रौद्योगिकी से सुसज्जित ज्ञान की सदी' कहना समीचीन होगा। ऐसे समय में हिंदी को ज्ञान की वैकल्पिक भाषा के रूप में प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता है, ताकि बहुआयामी वैश्विक व्यवस्था के अनुकूल हिंदी अपनी अस्मिता की तलाश कर चिंतन एवं अनुसंधान के नए गवाक्ष खोल सके। हिंदी संसार की एक समृद्ध भाषा है। चाहे बात विचार, व्यवहार या संचार की हो, हिंदी की उपस्थिति प्रशंसनीय है। हिंदी अपनी वैचारिकी की महायात्रा के दौरान कई पड़ावों को संस्पर्श करते हुए विविध धाराओं को अपने भीतर समेटे हुए सतत प्रवहमान है। आज हम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'विश्वग्राम' के चिंतन के बीच उपस्थित हैं। एक का आधार आध्यात्मिकता है तो दूसरे का बंधनमुक्त व्यापार, जहाँ सिर्फ बाजार बनकर रहा जा सकता है। एक ओर आज दुनिया के बहुसंख्यक देश अपनी भाषा के बलबूते ज्ञान-विज्ञान और प्रौद्योगिकी में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर रहे हैं, वहीं से अनुसंधान एवं सृजन के लिए उपयुक्त, उदात्त सांस्कृतिक एवं भाषाई विरासत से संपन्न हिंदी के बहुआयामी विकास में रचनात्मक लेखन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आदिकाल से लेकर अब तक हिंदी जन-सरोकारों की भाषा रही है। फारसी और अंग्रेजी के अंत:संघर्ष से उपजी यह भाषा आज जहाँ है, उसमें सतत प्रवाह बना हुआ है।

भाषा जनोन्मुखी तभी होती है, जब उसमें लिखा गया साहित्य जन-गण-मन की आकांक्षाओं को पूर्ण करने में सफल हो। भाषाएँ जब सतत संघर्ष करते हुए आगे बढ़ती हैं, तभी उसमें स्तरीय सृजन कर्म होता है। हिंदी वह भाषा है, जो कभी मर नहीं सकती और अपने जीवन-प्रवाह में निरंतर गतिमान रहकर भारतीयता को परिभाषित करते हुए वैश्विक विस्तार दे रही है। इसकी उर्वरा शक्ति कभी कम नहीं हो सकती, क्योंकि इसमें पढ़ने लायक हमेशा लिखा जाएगा तथा इसके भावी विकास का रथ निरंतर बढ़ता रहेगा। भारत में यह निरंतर समग्र चेतना को वाणी देने का प्रयास करते हुए उस भारतीयता की नैसर्गिक हमराही बनी हुई है, जो न धर्म, न भाषा और न ही संस्कृति पर आधारित है। किंतु तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो यह पता चलता है कि उन्नीसवीं सदी समूचे विश्व को हिंदी की ओर आकर्षित करती रही, किंतु बीसवीं सदी में उसकी गति थोड़ी मंद पड़ी, पर इक्कीसवीं सदी में भूमंडलीकरण ने हिंदी को नए अर्थ दिए तथा रचनाधर्मिता में कमी के आसन्न खतरे से सावधान भी किया। बदले हुए वैश्विक परिदृश्य में हिंदी को अपनी स्थिति और उपस्थिति का एहसास कराने के लिए सृजनात्मकता को सशक्त बनाना ही होगा, अन्यथा बाजार से इतर पाठकों का एक बड़ा वर्ग साहित्य का रसास्वादन करने से वंचित रह जाएगा। हिंदी की साहित्यिक विरासत को आगे बढ़ाने के लिए नए सृजनकर्मी तैयार किए जाने की आवश्यकता है। प्रवासी देशों की युवा पीढ़ी प्रोत्साहन के अभाव में सृजन कर्म से विमुख होती जा रही है। ऐसी स्थिति में 'कल, आज और कल' के बीच समरसता कायम करने की आवश्यकता है। यद्यपि विश्व स्तर पर विकसित बाजारवाद ने हिंदी के क्षितिज को व्यापक विस्तार दिया है और बाजार के अनुरूप हिंदी का प्रयोजनमूलक रूप दुनिया के सामने आया भी है, जो उपभोक्ता समाज की आवश्यकता के अनुरूप है एवं हिंदी के पारंपरिक साहित्य से एकदम भिन्न भी। हिंदी के प्रसार का यह एक नवीन आयाम है। क्रय-विक्रय की प्रक्रिया में भी हिंदी अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में सफल रही है।

हिंदी दुनिया की गिनी-चुनी भाषाओं में एक है, जो सहज, सरल एवं वैज्ञानिक है। सीखने, बोलने, पढ़ने, लिखने आदि हर लिहाज से एक सक्षम भाषा है। फिर भी इसे और संप्रेषणीय बनाने के लिए सहज, सरल, सुबोध शब्दावली का प्रयोग तथा व्याकरण को आसान बनाकर पारिभाषिक शब्दावलियों को और व्यावहारिक रूप प्रदान करने की महती आवश्यकता है। भारतीय तथा भारतेतर भाषाओं से शब्दों को ग्रहण कर विश्व के समक्ष तरल और संप्रेषणीय रूप को पेश किया जा सकता है। बाजार में कम-से-कम भाषाओं की उपस्थिति सुखद मानी जाती है। इतना ही नहीं, शब्दों की वैकल्पिक व्यवस्था भी जितनी कम होगी, बाजार का उतना ही भला होगा। इसका एक दुष्परिणाम यह होगा कि शब्द-भंडार एवं पर्यायवाची शब्द लुप्त हो जाएँगे।

सुपरिचित लेखक, अध्यापक। अब तक ५ पुस्तकें, ३० आलेख प्रकाशित। पूर्व में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग त्रिपुरा केंद्रीय विश्वविद्यालय। अरुणाचल प्रदेश के सरकारी महाविद्यालयों में सहायक प्राध्यापक व सह-प्राध्यापक के रूप में कार्य किया। २० राष्ट्रीय व १२ अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी, सम्मेलन, २० कार्यशाला विभिन्न विषयों पर। विभिन्न विश्वविद्यालयों/संस्थाओं की अकादेमिक समितियों के सदस्य। संप्रति महासचिव, विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस।

हिंदी का प्रचुर साहित्य जैसे कविता, कहानी, नाटक और उपन्यास सहित अन्य सभी विधाओं में हो रहा अनवरत लेखन पूरी दुनिया को आकर्षित कर रहा है। इसकी हजार वर्ष की साहित्यिक यात्रा गर्व का विषय है। आज इसने अपनी संपूर्णता में पूरे वैश्विक परिदृश्य को बदलकर रख दिया है।

आज बाजार से लेकर विचार तक एवं संचार से व्यवहार तक भूमंडलीकृत भाषा का प्रसार हो रहा है। हिंदी की समावेशी प्रकृति ने उसे और गतिशील बना दिया है तथा जन स्वीकृति भी मिल रही है। मीडिया और साहित्य की मैत्री ने भी हिंदी को स्वर्ण पंख लगा दिए हैं। सूचना-क्रांति द्वारा हिंदी की अभिव्यक्ति का कौशल भी बढ़ा है। हिंदी की साहित्य-संपदा और शब्द-शक्ति में गुणात्मक वृद्धि हुई है तथा इसकी शब्द-संपदा की संख्या लाखों तक पहुँच गई है। समावेशी प्रकृति के कारण ही अन्य भाषाओं के शब्दों की स्वीकृति भी तेजी से बढ़ी है। हिंदी के पठन-पाठन का दायरा भी काफी बढ़ा है। दुनिया के सैकड़ों विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन आरंभ हुआ है। शोध और सृजन के नए गवाक्ष खुले हैं। हिंदी संचार एवं संपर्क के अलावा वित्त, वाणिज्य, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, मीडिया, विज्ञापन का भाषिक मेरुदंड बन चुकी है। इसका सार्थक विस्तार इसके सुनहरे भविष्य की कहानी लिखने को तत्पर है। विश्व मानव की आशा-आकांक्षा की पूर्ति में हिंदी ही एकमात्र सहायक है। आज आर्थिक प्रगति एवं मानसिक अशांति और प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न संघर्ष मानव-मूल्य से ओत-प्रोत साहित्य की माँग करता है। ऐसे में कुछ नया करने की प्रक्रिया सतत चलती रहे, तभी मानवीय संबंधों की ईमानदार परिणति सही अर्थों में हो सकेगी। तब रंचमात्र भी संदेह नहीं कि हिंदी भी वैश्विक भाषाई विकल्प के रूप में उभरेगी तथा भारत की पेशेवर युवा-शक्ति भी हिंदी की हैसियत को ठोस जमीन और पूरा आकाश देने में सक्षम हो सकेगा तथा हिंदी प्रौद्योगिकी के रथ पर आरूढ़ होकर विश्व-विजय की ओर उन्मुख होगी और सार्वभौमिक विस्तार एवं स्वीकृति को प्रामाणिकता प्रदान करने की दिशा में सतत अग्रसर होगी तथा वैचारिकी एवं प्रौद्योगिकी सहित अन्य विधाओं को सक्षम भी बनाएगी। बाजार और प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप मुक्त अंकीय तकनीकी (Digital Technology) के द्वारा वैश्विक स्तर पर विलुप्त होती भाषाओं के संरक्षण की दिशा में प्रयास किए जा सकते हैं तथा अत्यंत अविकसित इलाकों से भी भाषा समुदायों के बीच पहुँचकर उन भाषाओं की पूँजी को अंकीय तकनीकी के जरिए 'ऑडियो' के रूप में सुरक्षित किया जा सकता है। भाषा विलुप्ति को सोशल नेटवर्किंग व आपसी संवाद के जरिए नए गवाक्ष खोलकर भी बचाने की प्रेरणा दी जा सकती है।

अपने स्थापना वर्ष से सचिवालय लगातार अपनी वैश्विक गतिविधियों द्वारा हिंदी को विश्व भाषा बनाने का मार्ग प्रशस्त करता आ रहा है। १२ मार्च, २०१५ को भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी तथा मॉरीशस गणराज्य के प्रधानमंत्री, माननीय सर अनिरुद्ध जगन्नाथ द्वारा विश्व हिंदी सचिवालय के मुख्यालय निर्माण का आधिकारिक शुभारंभ किया गया। ८ अक्तूबर, २०१६ को भूमि-पूजा की गई तथा निर्माण कार्य आरंभ हुआ। दोनों देशों के परस्पर सहयोग से सचिवालय का नवनिर्मित परिसर बनकर तैयार हुआ एवं १३ मार्च, २०१८ को मॉरीशस के प्रधानमंत्री माननीय श्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ की गरिमामयी उपस्थिति में भारत के महामहिम राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंदजी के करकमलों द्वारा इसके मुख्यालय का उद्घाटन हुआ।

भविष्य में किन्हीं दो-तीन भाषाओं में विश्व को संबोधित करने का अवसर आता है तो उनमें से एक हिंदी अवश्य होगी। आज के बदले परिवेश में हिंदी को अपने परंपरागत आवरणों से बाहर निकलकर एक वैश्विक पहचान बनानी होगी। इसकी झोली में जो भी गिरेगा, निखरकर बाहर आएगा। यद्यपि पिछले दो दशकों में इस भाषा ने विकास के कई नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं। वैश्विक हिंदी विचार, संचार व संवाद की मशाल ले अग्रिम पंक्ति में खड़ी भाव से कर्म की ओर नई ऊर्जा एवं नए प्रकाश के साथ अग्रसर है।

विश्व हिंदी सचिवालय हिंदी की वैश्विक यात्रा का अहम पड़ाव है, जो भारत व मॉरीशस सरकार की एक द्विपक्षीय अंतरराष्ट्रीय संस्था है, पिछले एक दशक से हिंदी प्रचार-प्रसार में संलग्न है, जो सन् १९७५ में नागपुर में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के मंथन का परिणाम है। सम्मेलन में मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने 'विश्व हिंदी केंद्र' की स्थापना का प्रस्ताव रखा था, जिसका समर्थन तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा किया गया। इस प्रस्ताव को १९७६ में मॉरीशस में आयोजित द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन में साकार रूप दिया गया और मॉरीशस में 'विश्व हिंदी सचिवालय' की स्थापना का प्रस्ताव दृढ़ संकल्प के साथ पारित हुआ। सन् १९९६ में मॉरीशस सरकार ने सचिवालय के निर्माण से संबंधित कार्यों के लिए डॉ. सरिता बुद्धू को शिक्षा मंत्रालय में बतौर सलाहकार नियुक्त किया। इसके बाद मॉरीशस स्थित भारतीय उच्चायोग के सहयोग से विश्व हिंदी सचिवालय की इकाई का गठन किया गया। २० अगस्त, १९९९ को दोनों सरकारों की ओर से सचिवालय के उद्देश्यों, संचालन एवं वित्तपोषण से संबंधित समझौते पर हस्ताक्षर किए गए, जिसके तहत मॉरीशस सरकार की ओर से सचिवालय निर्माण हेतु भूमि का आवंटन हुआ तथा भारत सरकार की ओर से भवन के प्रारूप तथा निर्माण के खर्च की जिम्मेदारी ली गई।

१७ सितंबर, २००१ को सचिवालय का अस्थायी कार्यालय किराए के भवन के रूप में बना और कार्य आरंभ हुआ तथा अद्यावधि इसी भवन से सचिवालय की गतिविधियों का संचालन हो रहा है। विश्व हिंदी सचिवालय के मुख्यालय का शिलान्यास नवंबर २००१ में भारत के तत्कालीन मानव संसाधन, विज्ञान व प्रौद्योगिकी मंत्री माननीय श्री मुरली मनोहर जोशी द्वारा फेनिक्स, मॉरीशस में किया गया। १२

नवंबर, २००२ को मॉरीशस की नेशनल असेंबली द्वारा विश्व हिंदी सचिवालय अधिनियम-२००२ पारित किया गया तथा २१ नवंबर, २००३ को मॉरीशस एवं भारत सरकार के बीच एक द्विपक्षीय करार पर हस्ताक्षर किए गए। १२ सितंबर, २००५ को नेशनल असेंबली द्वारा पारित अधिनियम की औपचारिक उद्घोषणा की गई। मॉरीशस की ओर से प्रथम महासचिव की नियुक्ति १८ जनवरी, २००७ को की गई तथा ११ फरवरी, २००८ से विश्व हिंदी सचिवालय ने औपचारिक रूप से कार्य आरंभ किया। अपने स्थापना वर्ष से सचिवालय लगातार अपनी वैश्विक गतिविधियों द्वारा हिंदी को विश्व भाषा बनाने का मार्ग प्रशस्त करता आ रहा है। १२ मार्च, २०१५ को भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी तथा मॉरीशस गणराज्य के प्रधानमंत्री, माननीय सर अनिरुद्ध जगन्नाथ द्वारा विश्व हिंदी सचिवालय के मुख्यालय निर्माण का आधिकारिक शुभारंभ किया गया। ८ अक्तूबर, २०१६ को भूमि-पूजा की गई तथा निर्माण कार्य आरंभ हुआ। दोनों देशों के परस्पर सहयोग से सचिवालय का नवनिर्मित परिसर बनकर तैयार हुआ एवं १३ मार्च, २०१८ को मॉरीशस के प्रधानमंत्री माननीय श्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ की गरिमामयी उपस्थिति में भारत के महामहिम राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंदजी के करकमलों द्वारा इसके मुख्यालय का उद्घाटन हुआ। इस वर्ष सचिवालय नौ सोपानों को पार कर दसवें सोपान पर कदम रख चुका है। इन बीते नव वर्षों में सचिवालय ने कामयाबी की कई इबारतें लिखी हैं, किंतु बहुत कुछ लिखा जाना बाकी है। वर्ष २०१८ हिंदी, विश्व के लिए, सचिवालय के लिए और मॉरीशस के लिए ऐतिहासिक होगा। १८-२० अगस्त तक विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन सहित कई और नए अध्याय लिखे जाएँगे तथा हिंदी के स्वर्णिम इतिहास एवं उसकी गौरव गाथा-गायन का संपूर्ण हिंदी-जगत् साक्षी बनेगा।

उद्देश्य

विश्व हिंदी सचिवालय अधिनियम-२००२ के अनुसार इसका उद्देश्य हिंदी को अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रोन्नत करना, संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए एक सशक्त मंच प्रदान करना तथा अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी का संवर्धन एवं विकास करना रहा है।

लक्ष्य

भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विस्तार करना भी सचिवालय का अभीष्ट है। इसके अतिरिक्त विश्व हिंदी सम्मेलनों को सांस्थानिक स्वरूप प्रदान करने में सहयोग के साथ-साथ वैश्विक स्तर पर हिंदी की गतिविधियों का समन्वयन, विभिन्न सरकारी, स्वायत्तशासी एवं स्वयंसेवी संस्थानों को रचनात्मक एवं अकादमिक सहयोग प्रदान करते हुए हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण का दायरा, परिमाण और गुणवत्ता बढ़ाने के लिए सतत सहयोग करना, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए कारगर नीतियों का निर्माण, स्तरीय प्रकाशन, सूचना एवं संचार तकनीकों के माध्यम से हिंदी से जुड़ी सूचनाओं को विश्व भर में प्रचारित-प्रसारित करना सचिवालय का लक्ष्य रहा है।

विश्व हिंदी सचिवालय वैश्विक स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न भारत और मॉरीशस सरकार की एक द्विपक्षीय संस्था है। अनेक विश्व हिंदी सम्मेलनों में हुए विचार-विमर्श के फलस्वरूप मॉरीशस और भारत के बीच द्विपक्षीय समझौते के आधार पर मॉरीशस की विधानसभा में एक अधिनियम पारित करते हुए सचिवालय की स्थापना की गई।

प्रशासनिक ढाँचे का गठन

विश्व हिंदी सचिवालय के कुशल संचालन हेतु एक शासी परिषद् (Governing Council) तथा एक कार्यकारिणी बोर्ड (Executive Board) तथा तीन उप-समितियों के गठन व मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में एक महासचिव व उनके सहयोगी के रूप में एक उप-महासचिव की नियुक्ति का प्रावधान है। फिलहाल सचिवालय में महासचिव व उप-महासचिव सहित कुल १० कर्मचारी कार्यरत हैं तथा भविष्य में इसकी कुल संख्या लगभग तीस होगी।

अकादमिक कार्यक्रम व गतिविधियाँ

सचिवालय निरंतर अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलनों, गोष्ठियों और सामूहिक चर्चाओं तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों, कवि-सम्मेलनों आदि के आयोजन करता रहा है। मल्टीमीडिया और सूचना प्रौद्योगिकी में शोध करने एवं हिंदी लेखकों, कवियों, विद्वानों, संस्थाओं, विश्वविद्यालयों तथा हिंदी के संवर्धन में लगे गैर-सरकारी संगठनों के लगभग १००० डाटा-बैंक तैयार हैं। २००८ में आधिकारिक कार्यारंभ से सचिवालय अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु नियमित रूप से निर्धारित गतिविधियों का आयोजन करता आया है। २००८ से सचिवालय एक त्रैमासिक सूचना पत्र 'विश्व हिंदी समाचार' का प्रकाशन करता है। इसमें दुनिया भर में हिंदी से संबंधित कार्यक्रमों व गतिविधियों की जानकारियाँ व रिपोर्ट प्राप्त होती हैं। २००९ से सचिवालय प्रतिवर्ष एक शोध-पत्रिका 'विश्व हिंदी पत्रिका' का प्रकाशन करता आ रहा है, जिसमें वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिंदी की स्थिति, हिंदी का उद्भव और विकास, हिंदी के क्षेत्र में हो रही गतिविधियाँ तथा अनुसंधान, हिंदी शिक्षण और अधिगम से संबंधित शोधपरक गतिविधियों से परिचय होता है। यह पत्रिका विचार तथा शोध के आदान-प्रदान के लिए विशेष मंच प्रदान करती है। पत्रिका के सभी अंक सचिवालय की वेबसाइट पर उपलब्ध हैं।

सचिवालय एक अन्य वार्षिक पत्रिका 'विश्व हिंदी साहित्य' का शीघ्र ही प्रकाशन करने जा रहा है, जिसमें साहित्यिक विधाओं—कविता, कहानी, नाटक, एकांकी सहित गद्य की अन्य तमाम विधाओं को स्थान दिया जाएगा। विश्व भर से रचनाएँ आमंत्रित की गई हैं।

विश्व हिंदी दिवस व अन्य समारोह

सचिवालय के प्रमुख कार्यों में विश्व हिंदी दिवस का आयोजन शामिल है, जो २००९ से संस्था द्वारा प्रतिवर्ष १० जनवरी को मनाया जा रहा है। इस अवसर पर विदेश से एक हिंदी विद्वान् द्वारा बीज वक्तव्य, सांस्कृतिक कार्यक्रम, हिंदी के प्रसार व प्रगति से संबंधित प्रस्तुतियाँ

आदि होती हैं।

सचिवालय २००९ से प्रतिवर्ष ११ फरवरी को अपना आधिकारिक कार्यारंभ दिवस मनाता आ रहा है। इस अवसर पर भारत से एक हिंदी विद्वान् वक्तव्य प्रस्तुति व कार्यशाला संचालन आदि के लिए आमंत्रित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त हिंदी दिवस के सफल आयोजन हेतु विश्व भर की अनेक संस्थाओं को अनुदान प्रदान किया जाता है।

अन्य गतिविधियाँ

उक्त प्रकाशनों व समारोहों के अतिरिक्त विश्व हिंदी सचिवालय हिंदी प्रचार संस्थाओं व व्यक्तियों के सहयोग तथा हिंदी और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनेक योजनाएँ चलाता आ रहा है। सचिवालय हिंदी साहित्य आदि अनेक विषयों भाषा-शास्त्र, सूचना-प्रौद्योगिकी, जन-संचार, शिक्षण पर सम्मेलनों, कार्यशालाओं, मॉरीशस व अन्य देशों में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संगोष्ठियों का आयोजन भी करता रहा है। विगत वर्षों में सचिवालय ने सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी शिक्षण में प्रौद्योगिकी को केंद्र में रखते हुए कार्यशालाओं व अनेक संगोष्ठियों का आयोजन किया है। सृजनात्मक लेखन की ओर युवकों को प्रेरित करने के उद्देश्य से भी कार्यशाला का आयोजन किया गया है। 'विचार मंच' कार्यक्रम के द्वारा सचिवालय विचार, संचार व व्यवहार के नए गवाक्ष खोलने में सक्षम रहा है। सचिवालय वार्षिक अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं का भी आयोजन करता रहा है तथा अब तक सचिवालय ने विश्व हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में अंतरराष्ट्रीय हिंदी निबंध, वाचन, लघुकथा, कविता, एकांकी आदि कई प्रतियोगिताओं का आयोजन कर चुका है। सचिवालय भाषाविदों और हिंदी समाज, स्थानीय व अंतरराष्ट्रीय संस्थानों के साथ संचार अभियानों में भी सक्रिय है और समय-समय पर इन सभी को सहयोग, मार्गदर्शन व सलाह प्रदान करता है। सचिवालय द्वारा हिंदी प्रचार संबंधी विविध योजनाओं तथा हिंदी दिवस के आयोजन के लिए विश्व की कुछ संस्थाओं को प्रत्येक वर्ष आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया जाता है। हिंदी के विविध पक्षों को जनता के समक्ष उभारने व प्रचलित करने के उद्देश्य से सचिवालय द्वारा विशेष अवसरों पर संगीत कार्यक्रम, नाटक-मंचन, कवि-सम्मेलन आदि समारोहों का भी आयोजन होता रहा है। वेबसाइट व विश्व हिंदी सचिवालय से जुड़ने तथा संस्था के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए सचिवालय का वेबसाइट vishwahindi.com तथा फेसबुक पृष्ठ https://www.facebook.com/groups/vishwahindisachivalay/ देखा जा सकता है।

ऑनलाइन डेटाबेस

सचिवालय का एक ऑनलाइन डेटाबेस vishwahindidb.com भी है, जिसपर विश्व भर के हिंदी विद्वानों एवं संस्थाओं के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध है।

भावी परियोजनाएँ

विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी के विकास की बेहतर समझ के उद्देश्य से विश्व हिंदी सचिवालय की ओर से विश्व हिंदी भाषा और साहित्य का वैश्विक इतिहास लेखन प्रस्तावित है। हिंदी के किसी कवि, लेखक, विचारक और चिंतक का कहीं भी स्मारक दिखाई नहीं देता। देश की स्वाधीनता आंदोलन में राष्ट्रीय चेतना जगाने में जिन कवियों और लेखकों के अवदानों को रेखांकित किया जाता है, उनके नाम पर कहीं कोई स्मारक दिखाई नहीं देता, अत: विश्व हिंदी सचिवालय ने एक विश्व हिंदी संग्रहालय के निर्माण का प्रस्ताव रखा है, जिसमें कृति एवं कृतिकार सहित हिंदी जगत् के सभी प्रचारकों व सेवियों के कार्यों की झाँकी होगी। विश्व हिंदी सचिवालय हिंदी को समग्रता में समझने और समझाने के क्रम में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण में संलग्न प्रतिष्ठित व्यक्तियों, संस्थाओं आदि का संजाल (नेटवर्क) विकसित करने का प्रयास तथा उनके साथ समझौता ज्ञापन किया जाएगा। ऑनलाइन एवं दूरस्थ पाठ्यक्रमों के संचालन हेतु अध्ययन केंद्र की स्थापना, विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण की मानक सामग्री निर्माण में सहयोग करना, दुनिया भर की भाषाओं में संचित ज्ञान की धरोहरों का हिंदी अनुवाद एवं प्रकाशन के क्षेत्र में सहयोग किया जाएगा। इसके अतिरिक्त संगोष्ठी, सम्मेलन, कार्यशाला आदि के आयोजनों के माध्यम से समझ और संवाद को विकसित करना, हिंदी का अंतरराष्ट्रीय भाषाओं के साथ नेटवर्क संयोजन एवं अंत:संपर्क के द्वारा समन्वयन का प्रयास करना, वैश्विक ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों में हिंदी में स्तरीय सामग्री निर्माण के द्वारा ज्ञान के नए क्षितिज के उदय में सहयोग करना, हिंदी के माध्यम से अंतर-आनुशासनिक ज्ञान-प्रणाली के संवर्धन में सहयोग तथा सचिवालय को शैक्षिक, व्यावसायिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी दस्तावेजों, संसाधनों एवं सूचनाओं का व्यापक, सक्रिय तथा बहुआयामी आदान-प्रदान के लिए एक अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान सह-विमर्श केंद्र की स्थापना का भी प्रस्ताव है।

११वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन

१८-२० अगस्त को आयोजित ११वें विश्व हिंदी सम्मेलन में विश्व हिंदी सचिवालय की अकादमिक सत्रों के आयोजन, प्रतिवेदन तैयार करना, न्यूज बुलेटिन के प्रकाशन, सम्मेलन की समाप्ति के बाद अनुशंसाओं को तैयार करना तथा इससे जुड़ी अन्य सभी गतिविधियों के संचालन में प्रमुख भूमिका होगी। विश्व हिंदी सम्मेलनों को सांस्थानिक रूप प्रदान करने में सहयोग देना सचिवालय की स्थापना का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। अत: यह सुखद संयोग है कि मॉरीशस में विश्व हिंदी सम्मेलन होने जा रहा है, जिसमें सचिवालय की महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी तथा आगामी विश्व हिंदी सम्मेलन २०२१ की तैयारियों में भी रचनात्मक सहयोग रहेगा।

सा अ

महासचिव
विश्व हिंदी सचिवालय
मॉरीशस
e-mail : sg@vishwahindi.com

श्रीलंका में हिंदी का पठन-पाठन

• शीरीन कुरैशी

श्रीलंका और भारत के संबंध हजारों वर्षों से माने जाते हैं। दोनों देश हजारों वर्षों से सभ्यता, धर्म और संस्कृति से जुड़े हुए हैं। हम जानते हैं कि भारतवासी रामायण काल से श्रीलंका से परिचित हैं और बुद्ध के श्रीलंका पर्दापण से भारत और श्रीलंका के संबंध और भी मजबूत हुए हैं। वर्तमान में भारत और श्रीलंका के संबंध धार्मिक, राजनयिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यटन और औद्योगिक परिप्रेक्ष्य में और भी आत्मीय हुए हैं।

हिंदी मात्र एक भाषा ही नहीं, भारतीय संस्कृति की समर्थ संवाहिका हैं। जो विदेशी लोगों के बीच आत्मीयता के मधुर संबंध स्थापित कर उन्हें भारतीय संस्कृति से जोड़े रखने का कार्य भी कर रही है। वैश्वीकरण के इस युग में हिंदी की लोकप्रियता निरंतर बढ़ती ही जा रही है। आज हिंदी विश्व के अनेक देशों में पढ़ी और बोली जा रही है। भाषा ने सभी को जोड़ने का कार्य किया है। संस्कृति का आदान-प्रदान किया है, अगर हम श्रीलंका में हिंदी की बात करें तो हिंदी भाषा की लोकप्रियता चरम शिखर पर है। लोग दीवाने है पुराने हिंदी गानों के, हिंदी फिल्मों के, शास्त्रीय नृत्य-संगीत के, हिंदी साहित्य, पर्यटन, धर्म और संस्कृति के।

श्रीलंका में हिंदी की लोकप्रियता

श्रीलंकावासियों का हिंदी भाषा के प्रति प्रेम कोई आज से नहीं है। सिंहली तथा हिंदी दोनों भाषाएँ आर्य परिवार की हैं। दोनों भाषाओं के शब्द, वाक्य-रचना के स्तर में पर्याप्त समानताएँ हैं। भारतीय संस्कृति से प्रभावित विदेशी लोगों में हिंदी भाषा के प्रति असीम प्रेम है। हिंदी की लोकप्रियता कई कारणों से मानी जा सकती है। हिंदी फिल्मों के लोग दीवाने हैं। हिंदी फिल्मी गीत यहाँ बहुत लोकप्रिय है, 'लग जा गले से फिर ये हसी रात होना हो ना हो' या फिर अभिमान के गाने किशोर, लता, रफी, मुकेश के गाने आज भी सब की जुबान पर हैं। युवा वर्ग नए गायक भी बहुत पसंद करता है। आजकल बड़े पैमाने पर हिंदी धारवाहिक भी पसंद किए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त धार्मिक यात्रा के कारण बोध गया बिहार, लखनऊ और साँची आदि स्थानों की यात्रा के प्रोयजन से भी हिंदी सीखी जाती है। मिडिल ईस्ट में गए हुए लोग वहाँ पर भारतीय लोगों के साथ रहने के कारण हिंदी जान लेते हैं। चिकित्सा और शास्त्रीय नृत्य संगीत के कारण भी हिंदी की लोकप्रियता यहाँ बरकरार हैं हिंदी लोकप्रियता में व्यापार संवाद और पर्यटन भी प्रमुख हैं। आजकल योग भी हिंदी सीखने का एक कारण बनता जा रहा है।

जानी-मानी लेखिका एवं शिक्षिका। श्रीलंका हिंदी समाचार-प्रथम अंक, श्रीलंका हिंदी समाचार भाग-द्वितीय अंक, इ-प्रयास भारत श्रीलंका के साहित्यिक संदर्भ में इ-पत्रिका, संपादित पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति हिंदी शिक्षक पीठ, स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो।

हिंदी का श्रीलंका में आगमन

हम देखते हैं तो हिंदी का श्रीलंका में आगमन १३ दशकों से पहले का माना जाता है। श्रीलंका में हिंदी भाषा के अस्तित्व का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता है। परंतु सन् १८८१ में डॉ. पवन कुमार जैन कृत 'विदेशों में हिंदी पत्रकारिता' नामक पुस्तक से हिंदी के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है तथा उन दिनों में श्रीमती हेमंत कुमारी के संपादन में 'सुगृहणी' नामक पत्रिका माहवार श्रीलंका में प्रकाशित होती थी।

उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जो लोग श्रीलंका में मजदूरी करने के लिए भारत से अन्य देशों के साथ श्रीलंका भी गए थे, वे अपने साथ भारत की संस्कृति, परंपराएँ, धर्म, रीति-रिवाज, लोकगीत, लोककथाएँ लेकर गए और वहीं बस गए। १९वीं शताब्दी में एक फारसी नाटक दल मुंबई से श्रीलंका आया (The Elphiniston Dramatic Company), जिसने न सिर्फ सिंहली रंगमंच को प्रभावित किया बल्कि सिंहली रंगमंच में नई प्रक्रिया का आरंभ करवाया। जिसके अंतर्गत रामायण, राजा हरिश्चंद्र आदि प्राचीन कथाओं का अनुवाद, रूपांतरण व मंचन भी होने लगा। श्रीलंकन रंगमंचीय कलाकार भारतीय संस्कृति से न सिर्फ ओत-प्रोत हुए बल्कि हिंदी भाषा से भी प्रभावित हुए।

बीसवीं शती के पूर्वार्ध में १९३४ तथा १९४१ के मध्य महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर की श्रीलंका यात्रा ने भारत श्रीलंका के साहित्य तथा कला की दिशा में एक मुख्य भूमिका निभाई। महात्मा गांधी की स्वतंत्रता की लड़ाई, अंग्रेजों को भारत से भगाने के लिए अहिंसात्मक आंदोलन

आदि उनके महान् व्यक्तित्व तथा जीवन-शैली ने श्रीलंकावासियों को अत्यंत प्रभावित किया। हिंदी की शिक्षा दिए जानेवाले प्रमुख पिरिवनों में विद्यालंकार पिरिवन, विद्योदय पिरिवन, सरस्वती पिरिवन आदि प्रमुख थे। शिक्षा का स्तर बढ़ाने की दृष्टि से विद्यालंकार व विद्योदय को विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान किया गया एवं विद्यालंकार विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना की गई। साथ-ही-साथ हिंदी विषय के अध्यापन कार्य हेतु भारतीय विद्वानों को बुलाया गया। उनमें प्रमुख है महापंडित राहुल सांकृत्यायन, प्रोफेसर हेमचंद्र राय, बाबा नागार्जुन, पूज्य भिक्षु आनंद कौसल्वायन थेरो, प्रोफेसर शांति भिक्षु शास्त्री। विद्यालंकार विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा के अध्ययन तथा अध्यापन का श्रीगणेश हिंदी के प्रोफेसर के रूप में पूज्य भिक्षु आनंद कौसल्वायन थेरो द्वारा किया गया। जबकि विद्योदय विश्वविद्यालय (वर्तमान में श्री जयवर्धनपुर विश्वविद्यालय) में पूज्य भिक्षु गलंगदर प्रज्ञानंद थेरो द्वारा, जो वर्तमान में लखनऊ स्थित महाबोधि संस्था के बौद्ध मंदिर के अधिपति हैं।

हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए श्रीलंका हिंदी प्रचार मित्र-मंडल बनाया गया है। जिसके अंतर्गत हिंदी की विभिन्न गतिविधियाँ व कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। हिंदी मित्र-मंडल में लगभग ७० सदस्य हैं, केलिनीय विश्वविद्यालय के संकायाध्यक्ष और बुद्धिस्ट एंड पालि विश्वविद्यालय आर्ट एंड परफॉर्मिंग कॉलेज, जयवर्धनपुरे विश्वविद्यालय, सबरगमुवा विश्वविद्यालय के प्राध्यापक, सरकारी विद्यालयों के हिंदी शिक्षक और गैर-सरकारी हिंदी संस्थानों के हिंदी शिक्षक संचालक, हिंदी विद्यार्थी, हिंदी प्रेमी आदि इसके सदस्य बन चुके हैं और भी हिंदीप्रेमी इस मित्र मंडल से जुड़ना चाहते हैं, यह निरंतर उन्नति की ओर अग्रसर है।

श्रीलंका में भारतीय साहित्यकारों का योगदान

महापंडित राहुल विद्यालंकार : सिंहली भाषा आर्य परिवार की भाषा है। सिंहली भी ब्राह्मी से निकली है। सम्राट् अशोक के समय में ही बौद्ध धर्म श्रीलंका पहुँच गया था। पिछली सदी के उत्तरार्ध में श्रीलंका में बौद्ध पुरुत्थान का ने युग शुरू हुआ। पालि और संस्कृत की समुचित शिक्षा देने के उद्देश्य से यहाँ दो विहार विद्यापीठों की स्थापना हुई। कोलंबो में १८७४ ई. विद्योदय पिरिवेन (विहार) और कोलंबो में से थोड़ी दूर केलनिया में १८७५ ई. में विद्यालंकार पिरिवेन से दूर और नारियल था। दूसरे हरे-भरे पेड़ों के खेतों के बीच में होने के कारण विद्यालंकार का नजारा बहुत ही मनोरम था। १६ मई, १९२७ को जब ३४ साल का युवा विद्यालंकार पहुँचा विहार के साधुओं को यह समझने में देर नहीं लगी कि यही 'दंबदीउ ब्राह्मण पंडितुमा' अर्थात् जंबू द्वीप का ब्राह्मण पंडित है। और वे कोई और नहीं थे, वे बाबा रामोदरदास बाद में महापंडित राहुल सांकृत्यायन। श्रीलंका में करीब १८ महीने रहे थे।

वे यहाँ के विद्यालंकार विहार में संस्कृत के अध्यापक नियुक्त हुए संस्कृत के कारण पालि सीखने में उन्हें कठिनाई नहीं हुई। विद्यार्थियों को संस्कृत में शिक्षा प्रदान करने के साथ ही उन्होंने हिंदी भाषा भी सिखाई, साथ ही साथ बौद्ध दार्शनिक वसुबंधु ४०० 'अधिधर्मकोष' के खंडित अंशों को फ्रेंच अनुवाद से पूरा कर उस पर संस्कृत की टीका लिख डाली।

बाबा नागार्जुन : बिहार के तरौनी गाँव में जनमे वैद्यनाथ मिश्र एक संस्कृत के पंडित राहुल सांस्कृत्यानजी के अनुयायी बनकर श्रीलंका के विद्यालंकार पिरिवेन में आ गए। जो मैथिली साहित्य में 'यात्री' नाम से प्रचलित हैं। और अद्यतन हिंदी साहित्य में 'बाबा नागार्जुन' नाम से। इन्होंने विद्यालंकार में रहते समय श्री धर्मालोक शतक संज्ञक ग्रंथ संस्कृत में लिखा, जिसमें इस पिरिवेन के प्रणेता पूज्य भिक्षु रत्मलाने की धर्मालोक नामक थेरो के निधन होने की ५०वीं वर्षगाँठ का स्मरण किया गया, इससे संबंधित समारोह अगस्त १९३७ में संपन्न हुआ।

संचार-साधनों की भूमिका

'६० के दशक में रेडियो सीलोन (राष्ट्रीय रेडियो) यानी श्रीलंका ब्रॉड कास्टिंग कॉरपोरेशन पर हिंदी गाने प्रसारित होने लगे। जिन्होंने हिंदी भाषा के प्रति श्रीलंकन लोगों के प्रेम को जाग्रत् किया, जिससे वे गानों के अर्थ व भावों का मतलब समझने के लिए हिंदी सीखने की ओर प्रेरित होने लगे। रेडियो सीलोन के गाने आज भी सुने जा सकते हैं। हिंदी फिल्मों की महत्त्वपूर्ण भूमिका भी हिंदी भाषा के प्रचार में रही। श्रीलंका के सिनेमा घरों में हिंदी फिल्मों का प्रदर्शन होता था। नई हिंदी फिल्में श्रीलंका के बड़े शहरों में दिखाई जाती थीं। इन सिनेमाघरों में हिंदी फिल्में देखने के लिए हजारों की भीड़ रहती थी। कुछ फिल्में सिनेमाघरों में दो-तीन वर्षों तक लगी रहती थी।

'७० के दशक के उत्तरार्ध में जनसंचार के नए साधन के रूप में टेलीविजन का आगमन हुआ। इस माध्यम के द्वारा जब हिंदी फिल्में हिंदी गानों एवं हिंदी धारावाहिकों का प्रसारण होने लगा, तभी से हिंदी को सिखनेवालों की संख्या बढ़ने लगी। आज दीया-बाती को सपना के रूप में तो अशोक को अदरज अशोक, ये जो मोहब्बतें को में आदराई और नागिन को नागिना कुमकुम भाग्य को आदरेय मा आदरेय के रूप में इन धारावाहिकों को हिंदी से सिंहली में डबिंग कर श्रीलंका के रूप वाहिनी चैनल पर दिखाए जा रहा है।

इस क्षेत्र में फिल्म अनुवाद, टेली ड्रामा अनुवाद का कार्य भी जोर से चलने लगा और हिंदी शिक्षित अनेक विद्वान अनुवाद के क्षेत्र में अपना योगदान प्रदान कर रहे हैं, उनमें प्रमुख हैं—सिरि कहवलजी हिंदी उद्घोषक के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं, रोहन विक्रम सिरिवर्धनजी, नधीरा शिवंतिजी—इनके द्वारा चैनल पर पुराने हिंदी गीतों का कार्यक्रम

संचालित किया जाता था, निमका मेरिनाजी आदि अनेक विद्वानों द्वारा भी योगदान दिया जा रहा है।

हिंदी गीत-संगीत की भूमिका

संगीत के द्वारा भी हिंदी भाषा के प्रचार में सहयोग मिला। यहाँ के कई विद्यार्थी स्कॉलरशिप पर भारत जाते हैं। भारत के भातखंडे संगीत विश्वविद्यालय तथा कोलकाता शांति निकेतन जाते हैं तथा वहाँ से संगीत की शिक्षा पूर्ण कर यहाँ पर संगीत सिखाना और संगीत का कार्यक्रम आयोजित करते हैं। उत्तर भारतीय संगीत और नृत्य हेतु विद्यार्थियों के जाने का क्रम निरंतर जारी है। इसलिए संगीत को समझने के लिए उनका हिंदी जानना आवश्यक होता हैं। भारतीय लंका फॉउंडेशन, पुरानी हिंदी गीत सोसायटी, पेरणी हिंदी गीत संगमय आदि हिंदी गीत संस्थाओं के द्वारा पुराने हिंदी गीत गाए जाते हैं और इनके कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय भी रहते हैं।

साहित्य की भूमिका

हिंदी भाषा के प्रचार में साहित्य की भी अहम भूमिका रही है। भिक्षु बबरंदे सीरी सिवली ने 'हिंदी भाषण' नामक पुस्तक की रचना की। पूज्य भिक्षु गलगेदर पन्नानंद ने 'हिंदी रचना मालती' नामक पहली देवनागरी लिपि की पुस्तक की और 'हिंदी प्रबोधिनी' की भी रचना की तथा ए. दसनायक ने 'हिंदी गुरुवरय' भिक्षु दरमिटीपल रतनसार ने 'लंका हिंदी रीडर' नामक पुस्तक तथा भिक्षु ओरुवल धम्म रतन ने 'हिंदी भाषक' नामक पुस्तक की रचना की। डॉ. इंद्रा दसनायक ने भी अनेक पुस्तकें, लेख, अनुवाद की रचना की है, जिनमें प्रमुख हैं—हिंदी पद्य संग्रह, हिंदी कहानी संग्रह, अच्छी हिंदी १, २, ३, ४, ५ पद्यांजली। संजय रंगलाल के द्वारा भी हिंदी व्याकरण, भारत में पर्यटन के लिए हिंदी, हिंदी-सिंहली शब्दकोष, हिंदी शब्दमाला सिंहली में, स्वागत-पर्यटन आदि कई किताबें इनके द्वारा लिखी गई हैं।

श्रीलंका हिंदी प्रचार मित्र-मंडल

हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए श्रीलंका हिंदी प्रचार मित्र-मंडल बनाया गया है। जिसके अंतर्गत हिंदी की विभिन्न गतिविधियाँ व कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। हिंदी मित्र-मंडल में लगभग ७० सदस्य हैं, केलिनीय विश्वविद्यालय के संकायाध्यक्ष और बुद्धिस्ट एंड पालि विश्वविद्यालय आर्ट एंड परफॉर्मिंग कॉलेज, जयवर्धनपुरे विश्वविद्यालय, सबरगमुवा विश्वविद्यालय के प्राध्यापक, सरकारी विद्यालयों के हिंदी शिक्षक और गैर-सरकारी हिंदी संस्थानों के हिंदी शिक्षक संचालक, हिंदी विद्यार्थी, हिंदी प्रेमी आदि इसके सदस्य बन चुके हैं और भी हिंदीप्रेमी इस मित्र मंडल से जुड़ना चाहते हैं, यह निरंतर उन्नति की ओर अग्रसर है।

हिंदी शिक्षण में मुख्य भूमिका निभानेवाली शिक्षण संस्थाएँ

NIE (National Institute of Education) इस संस्था के द्वारा श्रीलंका के समस्त सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों को विभिन्न भाषाओं के प्रक्षिक्षण के साथ हिंदी भाषा का प्रक्षिक्षण भी दिया जाता है। जिससे की हिंदी भाषा के क्षेत्र में उनके शिक्षण कौशलों को विकसित करता है।

हिंदी भाषा का शिक्षण करवानेवाले प्रमुख सरकारी विद्यालय

हिंदी भाषा का शिक्षण एक वैकल्पिक भाषा के रूप में सरकारी विद्यालयों में चल रहा है। माध्यमिक स्तर Ordinary level व उच्चस्तर Advanced level पर हिंदी भाषा हिंदी भाषा का शिक्षण कार्य वर्ष १९५६ से कला विषय के अंतर्गत चल रहा है। लगभग ८० सरकारी विद्यालय में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। कुछ प्रमुख विद्यालय, जहाँ हिंदी भाषा का शिक्षण कार्य चल रहा है—

आनंद बालिका विद्यालय, कोलंबो
समुद्रदेवी बालिका विद्यालय, कोलंबो
देवी बालिका विद्यालय, कोलंबो
मलय देवी बालिका विद्यालय, कुरुनेगल
रॉयल कॉलेज, कुरुनेगल
महामाया गर्ल्स स्कूल कैंडी
बटपोल महाविद्यालय अंबलनगोड़ा।

हिंदी भाषा का शिक्षण करवानेवाले विश्वविद्यालय

केलनिय विश्वविद्यालय : इस विद्यालय में हिंदी का एक स्वतंत्र विभाग है। यहाँ पर सुचारू रूप से हिंदी शिक्षण होता है। बी.ए. हिंदी (सामान्य), बी.ए. हिंदी (विशेष) तथा यह एक मात्र विश्वविद्यालय है, जहाँ एम.फिल. तथा पी-एच.डी.की उपाधियों से संबंधित शोध कार्य हिंदी में किए जा रहे हैं। '८० के दशक में विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन का विस्तार हुआ। इस संबंध में डॉ. दसनायकजी इंद्रा के अथक प्रयासों से हिंदी विभाग की पृथक् स्थापना हो पाई।

हिंदी सेवी डॉ. इंद्रा दसनायक : हिंदी के लिए इंद्राजी के प्रयास बहुत ही सराहनीय है। भारत की राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल के हाथों से ग्रियर्सन अवार्ड प्राप्त इंद्राजी ने हिंदी विभाग की स्वतंत्र स्थापना के साथ-साथ उत्तर भारतीय संस्कृति से भी सबको परिचित करवाया है। इन्होंने हिंदी भाषा के प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इंद्रा दसनायक ने भी अनेक पुस्तकें, लेख, अनुवाद की रचना की है, जिनमें प्रमुख हैं—हिंदी पद्य संग्रह, हिंदी कहानी-संग्रह, अच्छी हिंदी १, २, ३, ४, ५ पद्यांजली।

हिंदी सेवी वरिष्ठ प्रोफ्रसर उपुल रंजीत हेवावितांगमगे : श्रीलंका में हिंदी साहित्य एवं हिंदी की विशिष्ट रचनाओं का मूल हिंदी ग्रंथों से सिंहली भाषा में अनुवाद करने में आपका स्थान सर्वोपरि है। ईद उलेला : हिंदी लघु कहानियाँ, हिंदी साहित्य इतिहास, सिरकार्य : हिंदी लघु कहानियाँ, नागालंतय जनकथा (नागालैंड की लोक कथाएँ), नुताना सिन्हा भाषण व्यावराहरय पुरुषवाची सर्वनाम, एक मोनोग्राफ २००५ गामवतुरा : हिंदी-लघु कहानियाँ, मांच : हिंदी लोक नाटक, हिंदी लोक नाटक एक मोनोग्राफ, बसंथी हवा : हिंदी श्लोक-प्रोज संग्रह, (हिंदी सर्टिफिकेट कोर्स के लिए पाठ्य पुस्तक); हिंदी साहिता संवेद :

हिंदी श्लोक-प्रोज संग्रह, (हिंदी डिप्लोमा कोर्स के लिए पाठ्य पुस्तक); समुदरेही अतारामनवु मिनिसा (कमलेश्वर का हिंदी उपन्यास), डोगरी जनकथा (डोगरी लोक कथान), भील आदिवासी जनकथा, गोडसे-गांधी.कॉम, (प्रोफेसर असगर वज़ाहत द्वारा हिंदी नाटक), इस्कोल महाट्टय, (महाश्वेता देवी का उपन्यास 'मस्टर सब'), पुण्य-पाप एवं कुशल-अकुशल एक परिचय आदि पुस्तकें इनके द्वारा लिखी और अनुवादित की गईं। वर्तमान में ये वरिष्ठ प्राध्यापक के रूप में केलिनीय विश्वविद्यालय में शिक्षण कार्य कर रहे हैं। इनके द्वारा श्रीलंका में हिंदी के प्रचार-प्रसार में अमूल्य योगदान प्रदान किया जा रहा है।

हिंदी सेवी प्रो.लक्ष्मण सेनेविरत्न: हिंदी भाषा-विज्ञान एवं व्याकरण के क्षेत्र को अपनी रचनाओं से समृद्ध बनाते हुए इनके द्वारा हिंदी भाषा में अध्ययन व अध्यापन करनेवाले श्रीलंकाई छात्रों को अनुपम सहायता प्रदान की गई। इनके द्वारा रचित प्रमुख पुस्तकें निम्न हैं—प्रायोगिक शब्द संग्रह, हिंदी सिंहली हिंदी व्याकरण प्रशिक्षा, लेखन प्रशिक्षा हिंदी लेखन, मौखिक हिंदी प्रक्षिक्षा, डॉ. रामकुमार वर्मा के ऐतहासिक नाटक, हिंदी नाटक स्वरूप और विकास।

वर्तमान में ये केलिनीय विश्वविद्यालय में उप-कुलपति के रूप में कार्यरत हैं और निरंतर हिंदी की सेवा में लगे हुए हैं। इनके अतिरिक्त अनुषा सल्वातुर और नीता सेनेविरत्न आनंद अबय सुंदर भी हिंदी की सेवा में लगे हुए हैं। जयवर्धनपुर विश्वविद्यालय में बी.ए. हिंदी (सामान्य), बी.ए. हिंदी (विशेष) तक हिंदी का शिक्षण होता है।

हिंदीसेवी श्रीमति बंडार मॉनिके विजेतुंगे : विद्योदय विश्वविद्यालय में हिंदी की स्थापना में मुख्य भूमिका निभाई और विश्व विद्यालयीन स्तर के विद्यार्थियों को हिंदी भाषा अध्ययन-अध्यापन कार्य करवाने में विशेष योगदान प्रदान किया है। इनकी कृतियाँ हैं—प्राचीन श्रीलंका का इतिहास, सिंहल स्वयं शिक्षक, हिंदी कहानियाँ (अनुवाद), हिंदी व्याकरण (हिंदी-सिंहली में अनुवाद)। वतर्मान डॉ. नीलंति राजपक्षे और डॉ. वजीरा गुणशेखर यहाँ अध्ययन-अध्यापन का कार्य सँभाले हुए हैं। सबरगमु विश्वविद्यालय में बी.ए. हिंदी (सामान्य), बी.ए. हिंदी (विशेष) तक हिंदी का शिक्षण होता है।

हिंदी सेवी ब्रसील नागोड़ वितान : यहाँ हिंदी के लैक्चरर हैं, इनके प्रमुख प्रकाशन हैं—व्यावहारिक हिंदी अभ्यास और हिंदी से सिंहली अनुवाद प्रेमचंद के बलिदान का दीविपदुमा नाम से।

वास्तव में श्रीलंका में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है। आनेवाले कल में श्रीलंका में हिंदी और विस्तार पाएगी। भाषा ने हमेशा सभी को जोड़ने का कार्य किया है। श्रीलंका और भारत के बीच संबंधों को मजबूत किया हैं। दोनों देशों के सांस्कृतिक एवं धार्मिक पहलुओं को देखा जाए तो दोनों के बीच एकरूपता पाई जाती है। हिंदी भाषा ने इन संबंधों को स्थायित्व तथा प्रगाढता प्रधान की हैं। दोनों देशों के बीच में हिंदी भाषा ने अनुपम और अद्‌भुत संबंध कायम किए। निश्चित रूप से सांस्कृतिक आदान-प्रदान में हिंदी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। आज हिंदी श्रीलंकाई सभ्यता का एक अभिन्न अंग बन चुकी है।

हिंदी सेवी डॉ. संगीत रत्नायक : यहाँ हिंदी के लैक्चरर हैं। ये भी हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभा रहे हैं।

बुद्धिस्ट एवम पॉली विश्वविद्यालय में हिंदी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जा रहा है। हिंदीसेवी निरोशा सल्वातुर के द्वार हिंदी अध्ययन-अध्यापन करवाया जा रहा है। आर्ट एंड परफार्मिंग विश्वविद्यालय में हिंदी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जा रहा है। मोरटुवा विश्वविद्यालय, कटुबद्द में हिंदी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जा रहा है। हिंदीसेवी सुहासिनी रत्नायक के द्वारा हिंदी अध्ययन-अध्यापन करवाया जा रहा हैं।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो (भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो) : वर्ष १९९८ से यहाँ पर हिंदी का शिक्षण कार्य प्रारंभ हुआ और अनवरत रूप से चल रहा है। उससे पूर्व भारतीय उच्चयोग द्वारा वर्ष १९५७ से हिंदी भाषा का शिक्षण कार्य चलाया जा रहा था। पहले भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो में दक्षिण भारतीय पाठ्यक्रम संचालित थे,परंतु वर्तमान में केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा के डिप्लोमा प्रमाण-पत्र पाठ्यक्रम १००, २००, ३०० तथा ४०० संचालित हैं। हिंदी के लगभग ५०० विद्यार्थी इन पाठ्यक्रमों से हिंदी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं। लिखित ज्ञान के साथ व्यावहारिक ज्ञान के विकास पर ध्यान दिया जाता है। कई सारी हिंदी की गतिविधियों और कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है, जिसके कि हिंदी के प्रति लोगों का रुझान बढ़े।

भारतीय कला केंद्र, कैंडी : यहाँ वर्ष २००० से हिंदी भाषा का शिक्षण चल रहा हैं। दक्षिण भारतीय पाठ्यक्रम के विद्यार्थी यहाँ पर हिंदी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं।

वाणिज्य दूतावास, हंबनटोटा : यहाँ हिंदी भाषा का शिक्षण कार्य चल रहा है। विद्यार्थी यहाँ पर हिंदी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं।

वाणिज्य दूतावास, जाफना : यहाँ हिंदी भाषा का शिक्षण कार्य चल रहा है। विद्यार्थी यहाँ पर हिंदी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं।

श्रीलंका की स्वैच्छिक हिंदी संस्थाएँ

श्रीलंका की स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा भी हिंदी का अध्यापन कार्य करवाया जा रहा है।

श्रीलंका हिंदी निकेतन कोलंबो : (शरणगुप्त वीरसिंह तथा श्रीमती पद्मा वीरसिंह द्वारा संचालित) पति-पत्नी द्वय सन् १९९३ से श्रीलंका में हिंदी प्रचार-प्रसार के पुनीत कार्य में निरत हैं। बड़े हर्ष की

बात है कि यह वर्ष (सन् २०१८) इनकी हिंदीसेवा कार्य का पच्चीसवाँ वर्ष है। शरणगुप्त वीरसिंह (पति) तथा पद्मा वीरसिंह (पत्नी) ने सन् १९९३ में श्रीलंका में स्थित भारतीय उच्चायोग के शिक्षा एवं संस्कृति विभाग की छत्रच्छाया में मार्गदर्शन में श्रीलंका हिंदी निकेतन की स्थापना की। इनकी संस्था का आदर्श वाक्य बड़ा ही सुंदर और हृदयस्पर्शी है—'हिंदी मन में प्रेम जगाए'। पति-पत्नी द्वय संस्थान के संस्थापक, संचालक एवं प्रशासक हैं। मो. रफी के हिंदी गानों के दीवाने शरणगुप्तजी ने एक बार उन्हें पत्र भी लिखा था। इनके हिंदी कार्यक्रमों में अधिकतर विद्यार्थियों द्वारा लता और मो. रफी के कर्णप्रिय गीत प्रस्तुत किए जाते हैं। इनके कई कार्यक्रमों में सम्मिलित होकर विद्यार्थियों द्वारा गाये गए हिंदी गीतों का आनंद लिया है। हिंदी के प्रति इनकी आस्था अगाध है।

श्रीलंका हिंदी संस्थान कुरुनेगल (अतिला कीषानी कोतलावाला द्वारा संचालित) : वर्ष २००० से स्थापित श्रीलंका हिंदी संस्थान हिंदी की दिशा में निरंतर अग्रसर हैं। यह संस्था १८ वर्षों से कुरुनेंगल उपनगर में स्थित है। जो श्रीलंका से १०० किलोमीटर की दूरी पर है। अतिला कोतलवाला द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों को हिंदी भाषा का शिक्षण दिया जा रहा है। विभिन्न सांस्कृतिक पर्व-उत्सव एवं हिंदी कार्यक्रमों का आयोजन भी इनके द्वारा किया जाता है। कई बार इनके कार्यक्रम का भी हिस्सा रही हूँ। इन्होंने अपनी संस्थान में एक सार्वजानिक हिंदी पुस्तकालय भी खोल रखा है।

शिल्पकला आश्रम, गोल (वसंथा पद्मनी द्वारा संचालित) : वसंता पद्मिनी जन्मांध होते हुए भी हिंदी-सिंहली अनुवाद क्षेत्र को समृद्धता प्रदान की एवं अनवरत रूप से हिंदी के सेवा में संलग्न है।

गुरुकुल (वरुणी नानायक्कर द्वारा संचालित) : गुरुकुल भाषा केंद्र का आरंभ सन् २०११ में हुआ। आज श्रीलंका में गरुकुल हिंदी भाषा का विश्वसनीय एवं सफल केंद्र हैं। गरुकुल में श्रीलंका की ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में हिंदी की तैयारी के साथ-साथ केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा के १००वीं, २००वीं एवं ३००वीं की भी तैयारी करवाई जाती है। हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए समय-समय पर अनेक कायक्रमों का सफल आयोजन किया जाता है।

हिंदी भाषा केंद्र (अमालि विरक्कोडी द्वारा संचालित) : श्रीलंका की सेना को हिंदी में प्रक्षिक्षित करने का कार्य इनके द्वारा किया जा रहा है।

पद्यांजलि हिंदी निकेतन-कैंडी (कौशल्या सुमाली द्वारा संचालित)

बंडारनायक मेमोरियल इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस हॉल : यहाँ पर भी हिंदी भाषा का शिक्षण कार्य कई वर्षों से चल रहा है।

इसके अतिरिक्त भी अनेक हिंदी संस्थाएँ हिंदी के प्रचार-प्रसार में जुटी हुई हैं।

श्रीलंका में हिंदी का भविष्य

वास्तव में श्रीलंका में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है। आनेवाले कल में श्रीलंका में हिंदी और विस्तार पाएगी। भाषा ने हमेशा सभी को जोड़ने का कार्य किया है। श्रीलंका और भारत के बीच संबंधों को मजबूत किया है। दोनों देशों के सांस्कृतिक एवं धार्मिक पहलुओं को देखा जाए तो दोनों के बीच एकरूपता पाई जाती है। हिंदी भाषा ने इन संबंधों को स्थायित्व तथा प्रगाढता प्रधान की है। दोनों देशों के बीच में हिंदी भाषा ने अनुपम और अद्‌भुत संबंध कायम किए। निश्चित रूप से सांस्कृतिक आदान-प्रदान में हिंदी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। आज हिंदी श्रीलंकाई सभ्यता का एक अभिन्न अंग बन चुकी है।

श्रीलंका में हिंदी स्वयंसेवी संस्थाओं की सूची : श्रीलंका हिंदी निकेतन (श्री सरनगुप्त वीरसिंग), श्रीलंका हिंदी संस्थान (श्रीमती अतिला कोतलावला), शिल्पा कला आश्रम (श्रीमती वसंत पद्मिनी), गुरुकुल हिंदी संस्थान (श्रीमती वारुणी नानायक्कारा), सौहार्द भूमि निकेतन (श्रीमती कंचनमाला सेनेविरत्न), असंसिपीठा (श्रीमती मनोरी रतनशेखरा), हिंदी भाषा केंद्र (श्रीमती अमालि विरक्कोडी), पद्यांजलि हिंदी निकेतन (श्रीमती कौशल्या सुमाली)।

श्रीलंका के विद्वान्—श्री सरनगुप्त वीरसिंग (श्रीलंका हिंदी निकेतन), श्रीमती अतिला कोतलावला (श्रीलंका हिंदी संस्थान), श्रीमती वसंत पद्मिनी (शिल्प कला आश्रम), श्रीमती वारुणी नानायक्कारा (गुरुकुल हिंदी संस्थान), श्रीमती कंचनमाला सेनेविरत्न (सौहार्द्र भूमि निकेतन), श्रीमती मनोरी रतनशेखरा (असंसिपिठा), श्रीमती अमालि विरक्कोडी (हिंदी भाषा केंद्र), श्रीमती कौशल्या सुमाली (पद्यांजलि हिंदी निकेतन)।

(सा.अ.)
हिंदी शिक्षक पीठ
स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र
कोलंबो (श्रीलंका)
e-mail : shirinqureshi801@gmail.com

राष्ट्रभाषा हिंदी का किसी क्षेत्रीय भाषा से कोई संघर्ष नहीं है। —अनंत गोपाल शेवड़े

दक्षिण की हिंदी विरोधी नीति वास्तव में दक्षिण की नहीं, बल्कि कुछ अंग्रेजी भक्तों की नीति है। —के.सी. सारंगमठ

विदेशी भाषा का किसी स्वतंत्र राष्ट्र के राजकाज और शिक्षा की भाषा होना सांस्कृतिक दासता है। —वाल्टर चेनिंग

संयुक्त अरब अमीरात में हिंदी

• पूर्णिमा वर्मन

संयुक्त अरब अमीरात के प्रवासियों में हिंदी बोलने और समझनेवालों की संख्या सबसे ज्यादा है। वर्ष २०१७ के आँकड़ों के अनुसार इस देश में १८ लाख से अधिक भारतीय रहते हैं, जो समस्त यू.ए.ई. जनसंख्या का २७ प्रतिशत हैं। इन भारतीयों में से १२ प्रतिशत राजस्थान, उ.प्र., बिहार, गुजरात, गोवा और महाराष्ट्र के निवासी हैं। जो अधिकतर तरह-तरह के व्यापार में संलग्न हैं, पूरी तरह से हिंदी लिखना, पढ़ना, बोलना और समझना जानते हैं। गोवा के निवासी अधिकतर होटल के व्यवसाय में हैं और महिलाएँ विशेष रूप से सौंदर्य-प्रसाधन के व्यवसाय में। आम जन से जुड़े ऐसे व्यापारों के कारण इन सभी प्रवासियों को हिंदी लिखने, पढ़ने, बोलने और समझने की जानकारी है। ८ प्रतिशत (लगभग १.४ लाख) पंजाबी, जो भवन निर्माण के व्यवसाय में हैं, भारी वाहनों के चालक हैं, अल्युमिनियम या स्टील फेब्रिकेशन के काम में हैं, भी हिंदी ठीक से लिखना, पढ़ना, बोलना और समझते हैं। दक्षिण भारतीय आप्रवासियों में केरल के ५० प्रतिशत आप्रवासी, जिनकी मातृभाषा मलयालम है, तमिलनाडु के १५ प्रतिशत आप्रवासी, जिनकी मातृभाषा तमिल है, और १० प्रतिशत आंध्र प्रदेश के आप्रवासी, जिनकी मातृभाषा तेलुगु है, यहाँ निवास करते हैं। इनमें से सभी लोग हिंदी लिखना, पढ़ना, बोलना और समझना जानते हैं।

इस देश में लगभग सवा लाख नेपाली हैं, जो हिंदी पढ़ना, लिखना व बोलना जानते हैं। नेपाली आप्रवासी अधिकतर सुरक्षा-कर्मियों के व्यवसाय में हैं। कुछ नेपाली श्रमिक भी हैं, महिलाएँ भारतीय परिवारों में गृह-परिचारिका या सौंदर्य-प्रसाधन के व्यवसाय में हैं। इन सभी कामों में हिंदी की आवश्यकता को समझते हुए वे स्वाभाविक रूप से हिंदी बोलते-समझते, लिखते-पढ़ते हैं। लगभग १२ लाख पाकिस्तानी यहाँ हिंदी बोलते और समझते हैं, जो यू.ए.ई. की जनसंख्या के २१ प्रतिशत हैं। भले ही उनकी लिखने और पढ़ने के लिए अलग लिपि का प्रयोग होने के कारण वे हिंदी लिखना-पढ़ना नहीं जानते हैं। पाकिस्तान से आए पंजाबी, पश्तो, सिंधी, बलूची आदि अन्य भाषाएँ बोलनेवाले भी हिंदी को ठीक से समझते और बोलते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ रहनेवाले लगभग ३ लाख अफगानिस्तान, ६ लाख बांग्लादेश और ३ लाख श्रीलंका के आप्रवासियों में से जो लोग प्लंबिंग, मजदूरी, गृह-परिचारिका, होटल या इस प्रकार के व्यवसायों में हैं, जिनमें जनसाधारण से निरंतर संपर्क हो, वे सब हिंदी बोलते और समझते हैं।

वेब पर हिंदी की स्थापना करनेवालों में पूर्णिमा वर्मन का नाम अग्रगण्य है। १९९६ से निरंतर वेब पर सक्रिय, उनकी जाल पत्रिकाएँ 'अभिव्यक्ति' तथा 'अनुभूति' अंतर्जाल पर नियमित प्रकाशित होनेवाली पहली हिंदी पत्रिकाएँ हैं। 'प्रवासी मीडिया सम्मान', 'जयजयवंती सम्मान', 'हिंदी गौरव सम्मान', 'विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ, भागलपुर द्वारा मानद 'विद्यावाचस्पति', 'पद्मभूषण डॉ. मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार' से सम्मानित।

कुल मिलाकर यह बात कि संयुक्त अरब अमीरात में हिंदी बोलने और समझनेवालों की संख्या कुल जनसंख्या की ६० प्रतिशत से अधिक है। हालाँकि लिखने-पढ़नेवालों की संख्या इतनी नहीं है। इसके अतिरिक्त दुबई और शारजाह में धनी, यूरोपीय और शासक वर्ग के अरबी लोगों को छोड़ दें तो लगभग हर व्यक्ति हिंदी बोलता और समझता है।

दैनिक जरूरतों के काम करनेवाले लोग, जैसे घरों में काम करनेवाली महिलाएँ, टैक्सी ड्राइवर, घर की सफाई का काम करनेवाले लोग, सब्जी बेचनेवाले, सुपर मार्केट के कर्मचारी और सोने या कपड़े की दुकानवाले, सब हिंदी समझते और बोलते हैं। यह सच है कि इसमें से ज्यादातर भारतीय हैं, लेकिन जो लोग भारतीय नहीं हैं या जो भारतीय हैं, पर उनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है, वे भी यहाँ हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, श्रीलंका की महिलाएँ, जो घर की सफाई का काम करती हैं, उनमें से ९९ प्रतिशत हिंदी बोलती हैं। टैक्सी ड्राइवर भले ही अरबी हो, पर वह हिंदी बोलता और समझता है। अपने बाईस साल के प्रवास में मुझे शायद कभी एक टैक्सी ड्राइवर मिला होगा, जो हिंदी नहीं जानता होगा। यही नहीं पुलिस, अस्पताल, हवाई अड्डे और डाकखाने जैसे सभी सरकारी कार्यालयों में लगभग सभी अरबी मूल के लोग हिंदी बोलते हैं।

यू.ए.ई. के भारतीय विद्यालयों में हिंदी एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। फिर चाहे वे दक्षिण भारतीय हों या उत्तर भारतीय, सभी सामान्य रूप से आठवीं कक्षा तक हिंदी पढ़ते हैं। क्योंकि केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम ऐसा है कि ८वीं कक्षा पास करते-करते विद्यार्थी ठीक से हिंदी लिखना, पढ़ना, समझना और बोलना सीख जाता है, इसलिए इन स्कूलों के बच्चे हिंदी लिखना, पढ़ना, समझना और

बोलना ठीक से जानते हैं। इनमें से अनेक बच्चे १२वीं कक्षा तक भी हिंदी पढ़ते हैं।

कॉलेज के स्तर पर यू.ए.ई. में किसी भी संस्था में हिंदी पढ़ने या पढ़ाने की व्यवस्था नहीं है। यू.ए.ई. के स्कूलों में हिंदी से परिचय करवाने की कोई सरकारी नीति अभी तक नहीं है, न ही यहाँ स्थित अन्य देशों के स्कूलों में हिंदी सिखाने का प्रबंध है। इसका एक कारण यह भी है कि अरबी या विदेशी स्कूलों में भारतीय बच्चे बहुत ही कम प्रवेश लेते हैं। यदि उनकी संख्या अधिक हो और यह भय हो कि बच्चे अपनी भाषा सीखने से वंचित रह जाएँगे, तभी अभिभावक स्कूलों पर अपनी भाषा सिखाने का दबाव बनाते हैं। दूसरे, इतनी अधिक संख्या में भारतीय स्कूलों में बच्चे हिंदी पढ़ते हैं कि हर ओर हिंदी पर्याप्त रूप में सुनाई देती है। यहाँ तक कि भारतीय बच्चों के साथ खेलनेवाले विदेशी बच्चे भी हिंदी बोलते दिखाई देते हैं। पाकिस्तानी स्कूलों में उर्दू अनिवार्य होने के कारण उनकी हिंदी बोलने और समझने की क्षमता बहुत अच्छी होती है। अनेक व्यक्तिगत ट्यूशनों में भी हिंदी सीखने की व्यवस्था है, इस कारण हिंदी सिखाने का दबाव या इसकी आवश्यकता अभी अरबी या विदेशी स्कूलों में नहीं दिखाई देती। २००९ में आबूधाबी में भारतीय दूतावास के सांस्कृतिक पक्ष की स्थापना हुई, जिसमें हिंदी सिखाने की व्यवस्था की गई। इसके साथ ही एक पुस्तकालय भी बना (इंडियन काउंसिल ऑफ कल्चरल रिलेशन) के कार्यक्रमों को भी इसमें जोड़ा गया, ये सब प्रयत्न धीरे-धीरे सक्रिय हो रहे हैं।

विदेशी दूतावासों में अपनी-अपनी भाषा के अति संपन्न पुस्तकालय होते हैं। ब्रिटिश लाइब्रेरी तो अंग्रेजी की श्रेष्ठतम पुस्तकों के लिए हर जगह प्रसिद्ध होती है। इसी के समकक्ष भारतीय दूतावास में एक अंतरराष्ट्रीय स्तर का हिंदी पुस्तकालय होना चाहिए, जो अन्य पुस्तकालयों से कंप्यूटर द्वारा जुड़ा हो और अगर कोई पुस्तक पुस्तकालय में उपलब्ध न हो तो उसको एक हफ्ते के अंदर मँगाकर दिया जा सके। इसके अतिरिक्त यहाँ किताबों की दुकान चलानेवाले लोगों को हिंदी पुस्तकें व पत्रिकाएँ बेचने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

इस सबके बावजूद हिंदी का विकास यहाँ एक बोली के रूप में हो रहा है। ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, संस्कृति और कला की समृद्ध भाषा के रूप में जो सम्मान इसे मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला है। यह प्रतिष्ठित लोगों की भाषा नहीं बन सकी है। हिंदी के नाटक, कवि-सम्मेलन और फिल्मों को देखने के लिए जो आभिजात्य भीड़ उमड़ती है, वह आपस में बातचीत के लिए भारतीयों की तरह अंग्रेजियत पर ही उतर आती है। इसका एक बहुत बड़ा कारण यह है कि स्वयं भारत के भीतर हम हिंदी को वह सम्मान नहीं दे सके हैं, जो इसे मिलना चाहिए। इसी कारण भारतीय दूतावास भी या तो हिंदी के विकास का काम करते ही नहीं या बहुत ही ढीला-ढाला करते हैं।

इसकी तुलना में अगर हम विदेशी दूतावासों को देखें तो पता चलेगा कि वे अपनी भाषा के विकास के लिए कितना ज्यादा काम करते हैं। अगर आज विश्व में अंग्रेजी और फ्रेंच भाषाओं की इज्जत है, तो वह इसलिए कि उस देश के लोग अपनी भाषा के विकास में, जी-जान लगा रहे हैं, इसके पीछे उन देशों की सरकारों का प्रबल सहयोग है। अगर हमें हिंदी के प्रेमी खाड़ी देशों में अपनी भाषा के विकास का काम करना है तो विदेशी दूतावासों से सबक लेना जरूरी है।

ब्रिटेन तथा यूनाइटेड स्टेट्स की तरह खाड़ी के देशों में अरबी-हिंदी के संयुक्त प्रयासों को बढ़ाने की जरूरत है। भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में अरबी की स्नातक या स्नातकोत्तर की पढ़ाई की व्यवस्था है। लेकिन संयुक्त अरब अमीरात (यू.ए.ई.) के किसी भी विश्वविद्यालय में हिंदी स्नातक या परास्नातक कक्षाओं में नहीं पढ़ाई जाती है। अगर इसी प्रकार यदि यहाँ हिंदी की व्यवस्था हो जाए तो हिंदी और अरबी के समकालीन साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की व्यवस्था हो सकती है। इस प्रकार की व्यवस्था दोनों देशों के साहित्यिक और सांस्कृतिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है।

मैं बहुत सी ऐसी विदेशी महिलाओं से मिली हूँ, जो गृहणियाँ हैं। वे खाली समय में हिंदी लिखना, पढ़ना या बोलना सीखना चाहती हैं। अनेक यूरोपीय व अमरीकी छात्र-छात्राएँ भारत-पर्यटन के लिए सामान्य हिंदी बोलने व लिखने-पढ़ने की इच्छा रखते हैं। कपड़ों के उद्योग तथा अन्य कार्यों में लगे अनेक लोग हिंदी सीखना चाहते हैं, ताकि वे अपने सहकर्मियों (जो अधिकतर हिंदी में बात करते हैं) के साथ हिंदी बोलने का आनंद उठा सकें। हम इन सबके लिए विभिन्न स्तरों की हिंदी पढ़ाए जाने की व्यवस्था कर सकते हैं। यह व्यवस्था दूतावास की ओर से हो सकती है या हिंदी संस्थाओं की ओर से या फिर शिक्षा संस्थाओं की ओर से। जिस प्रकार ब्रिटिश और फ्रेंच दूतावास अंग्रेजी और फ्रेंच कक्षाएँ चलाते हैं और उनका धुआँधार विज्ञापन करते हैं, ऐसी व्यवस्था भारतीय दूतावास से हिंदी के लिए होनी चाहिए।

विदेशी दूतावासों में अपनी-अपनी भाषा के अति संपन्न पुस्तकालय होते हैं। ब्रिटिश लाइब्रेरी तो अंग्रेजी की श्रेष्ठतम पुस्तकों के लिए हर जगह प्रसिद्ध होती है। इसी के समकक्ष भारतीय दूतावास में एक अंतरराष्ट्रीय स्तर का हिंदी पुस्तकालय होना चाहिए, जो अन्य पुस्तकालयों से कंप्यूटर द्वारा जुड़ा हो और अगर कोई पुस्तक पुस्तकालय में उपलब्ध न हो तो उसको एक हफ्ते के अंदर मँगाकर दिया जा सके। इसके अतिरिक्त यहाँ किताबों की दुकान चलानेवाले लोगों को हिंदी पुस्तकें व पत्रिकाएँ बेचने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

इतनी शिकायतें करने का मतलब यह नहीं है कि यहाँ हिंदी के विकास के लिए कुछ नहीं हो रहा है। प्रवासी भारतीय परदेस जाकर हिंदी

तथा भारत का महत्त्व अधिक गहराई से महसूस करता है। जब तक वह भारत में रहता है तो हिंदी तथा भारतीय संस्कृति उसके लिए 'घर की मुरगी दाल बराबर' होती है। विदेश में जाकर वहाँ की चकाचौंध के पीछे छिपी वास्तविकता को देखने के बाद उसे हिंदी तथा हिंदी में अभिव्यक्त होनेवाली भारतीय संस्कृति की याद आती है। तब वह हिंदी के विकास और जुड़ाव में लगता है। प्रवासी भारतीयों में ऐसे हजारों लोग खाड़ी के देशों में भी हिंदी के विकास में संलग्न हैं।

यू.ए.ई. में हिंदी कार्यक्रमों का आयोजन करनेवाली कई संस्थाएँ हैं, जो विशेष रूप से कवि-सम्मेलन आयोजित करती हैं। प्रतिबिंब और थियेटरवालों ने कुछ साहित्यिक नाटकों का मंचन करने का काम यदा-कदा वह लंबा न चल सका। कुछ वेब पत्रिकाएँ और ब्लॉग हैं, जो अनियतकालीन रूप से प्रकाशित होते रहे हैं। लेकिन नियमित रूप से साहित्यिक काम या भाषा के लिए काम करनेवाली संस्थाओं का विकास नहीं हो सका है।

यू.ए.ई. में एफ.एम. के कम-से-कम तीन ऐसे चैनल हैं, जिन पर चौबीसों घंटे हिंदी गाने, समाचार और अन्य कार्यक्रम सुने जा सकते हैं। दिन भर इन पर अंतरराष्ट्रीय उत्पादों के विज्ञापन सुने जा सकते हैं। यह इस बात का सबूत है कि हिंदी खूब लोकप्रिय है और अंतरराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने माल बेचने के लिए हिंदी के महत्त्व को गंभीरता से महसूस करती हैं। व्यापार में इस प्रकार हिंदी की अंतरराष्ट्रीय जरूरत को इसकी ताकत समझा जाना चाहिए।

व्यक्तिगत रूप से यदि साहित्य-साधना की बात करें तो कहानी के क्षेत्र में एक प्रमुख नाम कृष्ण बिहारी का है, जिन्होंने १९८७ से अमीरात में रहते हुए चार कहानी-संग्रह 'दो औरतें', 'पूरी हकीकत पूरा फसाना', 'नातूर', तीन एकांकी नाटक 'यह बहस जारी रहेगी', 'एक दिन ऐसा होगा', 'गांधी के देश में', एक नाटक 'संगठन के टुकड़े', चार कविता-संग्रह 'मेरे मुक्तक : मेरे गीत', 'मेरे गीत तुम्हारे हैं', 'मेरी लंबी कविताएँ', चार उपन्यास 'रेखा उर्फ नौलखिया', 'पथराई आँखोंवाला यात्री', 'पारदर्शिया' और एक यात्रा-वृत्तांत 'सागर के इस पार से'। अभी 'उस पार से' लिखकर यहाँ के जीवन को हिंदी में उतारने का एक सफल और सच्चा प्रयास किया है। वे 'निकट' नाम से एक अर्धवार्षिक साहित्यिक पत्रिका भी तीन वर्षों से प्रकाशित कर रहे हैं। यह यू.ए.ई. में प्रकाशित होनेवाली हिंदी की पहली और एकमात्र साहित्यिक पत्रिका है।

सन् १९९५ से शारजाह में रहते हुए पूर्णिमा वर्मन ने १९९६ में जियोसिटीज पर हिंदी की पहली वेब पत्रिका स्थापित की थी, जो वर्ष २००० से नियमित हुई और २०१६ तक साप्ताहिक रूप से प्रति सोमवार प्रकाशित होती रही है। ये पत्रिकाएँ आज भी मासिक रूप में प्रकाशित होती हैं। पूर्णिमा वर्मन के तीन कविता-संग्रह 'पूर्वा', 'वक्त के साथ' तथा 'चोंच में आकाश' नाम से प्रकाशित हुए हैं। नवगीत की अंतरराष्ट्रीय लोकप्रियता स्थापित करने के उनके प्रयत्नों को भी काफी सराहना मिली है। थियेटरवाले के साथ मिलकर उन्होंने कुछ हिंदी कहानियों के मंचन के प्रयत्न भी किए, जिनमें प्रेमचंद का 'बड़े भाई साहब' और कामतानाथ का 'संक्रमण' काफी सफल रहे। संप्रति वे लखनऊ में सांस्कृतिक संस्थान के विकास में संलग्न हैं, जिसमें नियमित रूप से सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

१९६९ से दुबई में रहनेवाले गंगाधर जसवानी का कविता-संग्रह 'देह दुबई, दिल देश' काफी चर्चित रहा था, जो २००५ में प्रकाशित हुआ था। २०१३ में मुंबई में उनका असामयिक निधन हो गया। रेडियो से जुड़ी मधु नोएल और गजाला फारुकी के नाम रेडियो नाटकों के लिए जाने जाते हैं। नरेंद्र साधवानी और प्रकाश सोनी ने हिंदी नाटकों के क्षेत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रस्तुतियाँ दी हैं। नूर मोहम्मद 'नूर' हास्य-व्यंग्य लेखन के लिए जाने जाते हैं। कांता भाटिया ने मोती प्रकाश के सिंधी में प्रकाशित यात्रा-संस्मरणों का हिंदी में 'यादों के काफिले' शीर्षक के रूपांतर किया है। इसके अतिरिक्त गीतांजलि सक्सेना, जगमोहन कौर, अफसर खान, प्रदीप लालजानी, कुलभूषण व्यास, समीक्षा तैलंग आदि हिंदी लेखन के क्षेत्र में योगदान करते रहे हैं।

गुलमुहर ग्रीन स्कूल,
ओमैक्स सिटी, बिजनौर रोड, शहीद पथ,
लखनऊ-२२६०२५
e-mail : purnima.varman@gmail.com

हमारी नागरी दुनिया की सबसे अध वैज्ञानिक लिपि है। —राहुल सांकृत्यायन

हिंदी जाननेवाला व्यक्ति देश के किसी कोने में जाकर अपना काम चला लेता है। —देवव्रत शास्त्री

उसी दिन मेरा जीवन सफल होगा, जिस दिन मैं सारे भारतवासियों के साथ शुद्ध हिंदी में वर्त्तालाप करूँगा।
—शारदाचरण मित्र

हिंदी जाननेवाला व्यक्ति देश के किसी कोने में जाकर अपना काम चला लेता है। —देवव्रत शास्त्री

आलेख

सिंगापुर में हिंदी की दशा, दिशा और भविष्य

● संध्या सिंह

हिंदी महज एक भाषा नहीं है बल्कि अपने साथ पूरी संस्कृति को जोड़े हुए है। यह ऐसी संस्कृति है, जिसने भारत से बाहर भी भारत को जीवित रखा है। संस्कृत भाषा के 'सिंह' और 'पुर' शब्दों के मेल से बना सिंगापुर हिंदी से दूर भला कैसे रह सकता है। सिंगापुर में हिंदी के इतिहास को जानने से पहले सिंगापुर का संक्षिप्त इतिहास जानना समीचीन होगा।

सिंगापुर विश्व-नक्शे पर एक छोटा सा बिंदु है, जिसे अकसर 'लिटल रेड डॉट' कहा जाता है। इस आकार के या इससे बहुत बड़े कई शहर हैं भारत में। सरकारी आँकड़ों के अनुसार सिंगापुर का कुल क्षेत्र लगभग ७२१५ वर्ग किलोमीटर है, जो करीब ६० द्वीपों का मेल है। लेकिन खूबी यही है कि इस देश ने अपने आकार को अपनी पहचान बनाने में कभी आड़े नहीं आने दिया। सन् २०१७ में इसकी कुल जनसंख्या ५६१ मिलियन थी। यह देश बनाम शहर दक्षिण-पूर्व एशिया में निकोबार द्वीप समूह से लगभग १५०० कि.मी. दूर है।

इस देश की खोज के पीछे एक किंवदंती है कि सुमात्रा के राजकुमार 'सांगनीलाउत्तामा' चौदहवीं शताब्दी में इस द्वीप पर पहुँचे। उन्होंने एक चौपाया देखा, जो संभवत मलायन शेर था, अत: इस द्वीप का नामकरण संस्कृत भाषा के सिंह अर्थात् शेर और पुर यानी शहर के आधार पर 'सिंगापुर' कर दिया। सांगनीलाउत्तामा की यात्रा के दौरान बिजली की कड़कड़ाहट वाला तूफान आ गया था, जिसके कारण उनकी नौका इस द्वीप की ओर आ गई। सांगनीलाउत्तामा की कहानी के कई रूप किंवदंतियों के रूप में प्रचलित हैं। 'सागनीलाउतामा' के मिथक की 'जावा, चीनी, पुर्तगाली और सियामी' स्रोतों ने भी पुष्टि की है।

सन् १८१८ में भारत के ब्रितानी गवर्नर जनरल लॉर्ड हॉस्टिंग ने 'सर थॉमस स्टैंफर्ड रैफल्स' को मलाया प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर पर व्यापारिक केंद्र बनाने के लिए नियुक्त किया और इस तरह आधुनिक सिंगापुर की जानकारी सन् १८११ में सर थॉमस स्टैंफर्ड रैफल्स के सिंगापुर आने के लिखित साक्ष्यों से प्राप्त होती है।

सिंगापुर में हिंदी का आगमन विश्वयुद्ध के पहले से दिख जाता है। सन् १८७४ के आसपास 'हिकायत अब्दुला', 'ऑटोबायोग्राफी ऑफ अब्दुल्ला', जो 'मुंशी अब्दुल्ला' द्वारा रचित है, इसमें 'हिंदुस्तानी' शब्द का भाषा के रूप में जिक्र मिलता है। उनके अनुसार 'सिपॉय' यानी सिपाही हिंदुस्तानी बोलते हैं। हिंदुस्तानी जो हिंदी व उर्दू का मिश्रित रूप है। सन् १८२५-१८७३ के मध्य भारत से काफी कैदी इस भू-भाग पर लाए गए और उन लाए गए कैदियों की 'कॉलोनी' में हिंदुस्तानी ही 'लिंगुआ फ्रांका' थी। करीब दो सौ साल पहले प्रवेशित हिंदी भले ही सिंगापुर की आधिकारिक भाषा न हो, पर आज हिंदी की जो पहचान है, वह प्रशंसनीय है।

सिंगापुर के 'नान्यांग टेक्नोलॉजिकल यूनिवर्सिटी' के सेंटर फॉर मॉडर्न लैंग्वेजेज में हिंदी को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाने के लिए पाठ्यक्रम संयोजन से लेकर सभी जरूरी कार्य किए। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलेख और शोध-पत्र प्रकाशित। हिंदी को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाने के लिए पुस्तक लिख रही हैं। साथ ही अन्य कई प्रोजेक्ट्स पर कार्य कर रही हैं।

यह तथ्य तो जगजाहिर है कि सिंगापुर एक बहुप्रजातीय देश है और इसकी यही बहुप्रजातीय संस्कृति इसे अन्य देशों से अलग, सबके समक्ष मिसाल बनाकर खड़ी करती है। सिंगापुर यद्यपि मलय भूमि है पर सिंगापुर में चीनी, मलय और भारतीय जनसंख्या मुख्य है। भारत के तमिल भाषी अन्य भारतीयों की तुलना में कहीं अधिक संख्या में हैं, इसीलिए अंग्रेजी, चीनी और मलय भाषा के साथ भारतीय भाषाओं में से केवल तमिल को ही आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है।

अब बात करते हैं हिंदी भाषा की। समाचार-पत्रों और 'कैंब्रिज' परीक्षाओं के अभिलेखों से हिंदी पढ़ने के साक्ष्य सन् १९२० के आसपास से ही दिखाई पड़ने लगते हैं । सिंगापुर को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में १ अगस्त, १९६५ को पहचान मिली। उस समय 'मलय' भाषा को राष्ट्र भाषा का दर्जा दिया गया, जबकि चीनी, अंग्रेजी और तमिल को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिया गया। सिंगापुर की सरकार ने धर्मनिरपेक्षवाद और समानता प्रेरित नीतियों में अपनी तटस्थ भूमिका का निर्वाह किया है और एक समानतावादी समाज का निर्माण किया है, इसलिए अंग्रेजी, मलय, चीनी और तमिल चार-चार भाषाओं को आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है। सिंगापुर सरकार ने अपने बहुप्रजातीय समाज में मातृभाषा को संरक्षित रखने तथा सिंगापुर को अपने पड़ोसी मुल्कों व विश्व की मुख्य भाषाओं से जुड़े रहने के योग्य बनाने के लिए एक कदम उठाया और सन् १९६६ में विद्यालयों में द्विभाषी नीति की शुरुआत की। द्विभाषी नीति अर्थात् अंग्रेजी के साथ अपनी मातृभाषा का अध्ययन आवश्यक है। चूँकि द्वितीय भाषा के रूप में भारतीय भाषाओं में से सिर्फ तमिल को ही मान्यता मिली थी, अत: सभी भारतीय छात्रों को चीनी, मलय या तमिल में से ही एक भाषा को द्वितीय भाषा मातृभाषा के रूप में पढ़ना पड़ता था। इसका परिणाम यह हुआ कि अपनी मातृभाषा न पढ़कर अन्य भाषाएँ पढ़ने के कारण तमिल के अलावा अन्य भारतीय बच्चों के अंक काफी नीचे गिरने लगे, जिससे उनकी आगे की पढ़ाई पर भी खतरा मँडराता नजर आने लगा। सिंगापुर की शिक्षा व्यवस्था 'मेरिटोक्रेसी' पर आधारित

है, अतः समुदाय के कुछ लोगों ने बीड़ा उठाया और लग गए इस प्रयास में कि अन्य भारतीय बच्चे भी अपनी मातृभाषा पढ़ने का मौका पा सकें, ताकि मातृभाषा अंक के कारण उनके अंक कम न हों। विदेशी शिक्षा प्रणाली में हिंदी को मान्यता दिलाना इतना सहज नहीं था। इसके पीछे कई लोगों का अथक प्रयास है। ६ अक्तूबर, १९८९ का दिन सिंगापुर में हिंदी भाषियों के लिए अत्यंत खास रहा, क्योंकि इसी दिन संसद् में उस समय के शिक्षामंत्री श्री टोनी तानजी ने घोषणा की कि गैर तमिल भाषी भारतीय छात्र माध्यमिक विद्यालय में पाँचों (हिंदी, गुजरती, पंजाबी, बंगाली, उर्दू में से एक भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में सन् १९९० से पढ़ सकते हैं और यहीं से शुरुआत हुई आधुनिक सिंगापुर में हिंदी शिक्षण की।

सिंगापुर में जब हिंदी को स्थानीय विद्यालयों में दर्जा मिला तो अग्रणी भूमिका में हिंदी सोसाइटी ही थी। चूँकि आर्यसमाज में १९३० के आसपास से हिंदी की कक्षाएँ चलती रही थीं, अतः हिंदी को मान्यता मिलने के बाद डी.ए.वी. में भी इस दिशा में एक धीमा प्रयास शुरू हुआ। डी.ए.वी. हिंदी स्कूल के छात्रों की संख्या पर गौर करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जब हिंदी शिक्षण एक अच्छे व्यावसायिक फलक के रूप में नजर आया तो इस संस्था ने कदम तेज किया।

आज हिंदी की दशा पर बात करें तो यह सिंगापुर के स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों के साथ ही दो मुख्य विश्वविद्यालयों में भी पढ़ाई जाती है। हिंदी शिक्षण के अलावा कई सांस्कृतिक संस्थाएँ हैं, जो भाषा की धरोहर के साथ ही संस्कृति की धरोहर को भी जीवित रखे हुए हैं।

सिंगापुर के स्थानीय विद्यालयों में हिंदी

हिंदी सोसाइटी सिंगापुर : हिंदी सोसाइटी सिंगापुर ही वह संस्था है, जिसने इस भूमि पर हिंदी शिक्षण रूपी दीपक की लौ को न सिर्फ प्रज्वलित किया अपितु उसके प्रकाश से विद्यार्थियों व हिंदी-प्रेमियों के जीवन को प्रकाशित भी किया। इसी संस्था ने द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी की शिक्षा देने का उत्तरदायित्व लिया और इसे उस मुकाम तक पहुँचाया कि आज सिंगापुर में रहते हुए अपनी भाषा की धरोहर पर गर्व महसूस हो। रविवार जो बाद में शनिवार हो गया, वह भाषा अध्ययन का दिन बन गया। अर्थात् हिंदी पढ़नेवाले छात्र अपने विद्यालय में मातृभाषा के घंटे में खाली रहते थे, पर सप्ताहांत में हिंदी सोसाइटी सिंगापुर द्वारा लगनेवाली कक्षाओं में आकर हिंदी पढ़ते और एक राष्ट्रीय स्तर की परीक्षा में शामिल होते थे। सन् १९९० में मात्र १०० छात्र हिंदी सोसाइटी के बैनर तले हिंदी की शिक्षा ले रहे थे। वर्ष-प्रति-वर्ष की बढ़त पर अगर ध्यान दें तो सबकुछ खुद स्पष्ट हो जाएगा। हिंदी सोसाइटी के स्वयंसेवकों और मुखिया श्रीमान सिवाकात तिवारीजी की निस्स्वार्थ सेवा का फल था कि दस वर्षों का अगर लेखा देखें तो हिंदी सोसाइटी में १०० छात्रों की संख्या १८०० हो गई थी। उसके उपरांत भी इसी तरह की बढ़त जारी रही और २००९ तक लगभग २३०० छात्र इस संस्था के माध्यम से हिंदी की शिक्षा ले रहे थे। सन् २०१४ में इस संस्था ने अपने पच्चीस वर्ष पूरे किए हैं और लगभग ३००० छात्रों को हिंदी की शिक्षा दे रही है। सप्ताहांत में छात्रों का समय बचाने के लिए भी प्रयास हुआ और स्थानीय विद्यालयों में मातृभाषा के घंटे में हिंदी की कक्षाएँ शुरू करने का श्रेय भी हिंदी सोसाइटी को ही जाता है।

डी.ए.वी. हिंदी स्कूल

डी.ए.वी. हिंदी स्कूल में हिंदी कक्षाएँ काफी पहले से लगती हुई दिखाई देती हैं। वह द्वितीय भाषा विद्यालय के रूप में नहीं बल्कि एक भाषा केंद्र के रूप में विकसित था, जिसे आर्य समाज की संज्ञा मिली थी। १९३०-४० के दशक में भी काफी समय तक हिंदी कक्षाएँ लगती रहीं। शुरुआत में छात्रों की संख्या दस से अधिक नहीं थी। उस समय हिंदी मान्यता प्राप्त भाषा नहीं थी, अतः बहुत कम बच्चे अपनी मातृभाषा के नाम पर एक और विषय का बोझ ढोने को तैयार थे। वैसे ही उन्हें दो भाषाएँ विद्यालय में पढ़नी थीं। हालाँकि इस संस्था में सन् १९६० के उत्तरार्ध में विद्यार्थियों की संख्या में बढ़ोतरी हुई, पर यह हिंदी भाषी परिवार के बच्चों के कारण नहीं बढ़ी, बल्कि हिंदी भाषा वयस्क मलय लोगों के बीच काफी लोकप्रिय हुई। मलय लोगों के बीच हिंदी फिल्में, हिंदी गीत और हिंदी फिल्म कलाकार खासे लोकप्रिय थे। राज कपूर, शम्मी कपूर, परवीन बॉबी आदि नाम मलय समुदाय में अति प्रिय थे। उन्हें समझकर देखने की ललक इन मलय भाषियों को हिंदी कक्षाओं तक खींच लाई।

सिंगापुर में जब हिंदी को स्थानीय विद्यालयों में दर्जा मिला तो अग्रणी भूमिका में हिंदी सोसाइटी ही थी। चूँकि आर्यसमाज में १९३० के आसपास से हिंदी की कक्षाएँ चलती रही थीं, अतः हिंदी को मान्यता मिलने के बाद डी.ए.वी. में भी इस दिशा में एक धीमा प्रयास शुरू हुआ। डी.ए.वी. हिंदी स्कूल के छात्रों की संख्या पर गौर करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जब हिंदी शिक्षण एक अच्छे व्यावसायिक फलक के रूप में नजर आया तो इस संस्था ने कदम तेज किया।

सन् २०१६ की रिपोर्ट के अनुसार इन दोनों संस्थाओं में लगभग ७००० विद्यार्थी हिंदी पढ़ रहे हैं।

सिंगापुर के अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों में हिंदी

सिंगापुर में भारतीय मूल के काफी लोग होने के कारण यही के कई अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों में भी हिंदी शिक्षण का कार्य सुचारू रूप से किया जा रहा है। सिंगापुर में अनेक उच्च स्तरीय अंतरराष्ट्रीय विद्यालय भी इसे शैक्षणिक 'हब' बना रहे हैं। यहीं के ज्यादातर भारतीय अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों में दो या तीन भाषाओं के अध्यापन का कार्य होता है, जिनमें से एक भाषा हिंदी होती है। उन विद्यालयों में हिंदी लेनेवाले छात्रों की संख्या हजारों में है, जो अन्य भाषाओं के मुकाबले कहीं ज्यादा है, जो हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता को दर्शाती है। इन विद्यालयों में 'एन.पी.एस.' अंतरराष्ट्रीय पाठशाला, 'ग्लोबल इंडियन स्कूल', 'डी.पी.एस.', 'युवा भारती' आदि हैं। इनके साथ ही 'यूनाइटेड वर्ल्ड कॉलेज', 'स्कूल ऑफ द आर्टस', 'ए.सी.एस. इटरनेशनल', 'सेंट जोसेफ इंटरनेशनल' आदि कुछ नाम हैं, जो भारतीय अंतरराष्ट्रीय विद्यालय न होते हुए भी हिंदी

को द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ा रहे हैं। इन विद्यालयों में 'आई.जी.सी. एस.ई.', 'आई. बी.', 'आई.सी.एस.ई.', 'जी.सी.ई.' या 'सी. बी.एस.ई.' पाठ्यक्रम के तहत हिंदी शिक्षण का कार्य जोरों से चल रहा है।

विश्वविद्यालयों में हिंदी

देश में नई पीढ़ी पर भले ही अंग्रेजी का भूत चढ़ रहा हो, लेकिन विदेशों में हिंदी की महत्ता पिछले कुछ सालों में काफी बढ़ी है और विदेशी विश्वविद्यालयों ने इसे एक महत्त्वपूर्ण भाषा विषय के रूप में अपनाया है। देश में उपेक्षित होने के बावजूद दुनिया में हिंदी अपना रुतबा कायम करने में सफल रही है। सिंगापुर के दोनों मुख्य विश्वविद्यालयों में हिंदी को 'इलेक्टिव' कोर्स के रूप में पढ़ाया जा रहा है। जहाँ 'नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर' एन.यू.एस. में हिंदी को २००७ से ही पढ़ाना शुरू किया गया था, वहीं नायाग टेक्नोलॉजिकल यूनिवर्सिटी एन.टी.यू. में हिंदी को २०१४ से पढ़ाना शुरू किया गया है। सिंगापुर के विश्वविद्यालयों में भारत और दक्षिण एशिया के प्रति रुचि उस रुझान का प्रतिबिंब है, जिसका प्रचलन विश्वभर के विश्वविद्यालयों और अकादमिक संसार में पिछले दो दशकों में बढ़ा है। आज भारत को एक उदय होती शक्ति के रूप में देखा जा रहा है और बाजारीकरण के इस युग में हिंदुस्तान व हिंदुस्तानियों के प्रभुत्व को कैसे नकारा जा सकता है। फिर सिंगापुर तो बाजार व निवेश के लिए ही अपनी पहचान कायम किए हुए है। जहाँ लगभग सभी पश्चिमी देशों के विश्वविद्यालय भारत संबंधी विषयों और भारतीय भाषाओं को अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर रहे हैं, वहाँ एन.यू.एस. और अब एन.टी.यू. भी इस दौड़ में पीछे नहीं रहना चाहता है। दक्षिण एशियाई भाषाओं की सूची में हिंदी का नाम सबसे ऊपर बोलनेवालों की संख्या के कारण तो आता ही है, बल्कि यह तो किसी हद तक भारत के लोगों की लिंग्वा फ्रांका (संपर्क भाषा) भी है। जाहिर है, भारत की अगर प्रतिनिधि भाषा को चुना जाए तो वह हिंदी ही होगी। पश्चिमी देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता का एक कारण भारतीय डायस्पोरा भी है, एन.यू.एस. व एन.टी.यू. में भी इसी तरह का चलन है। इन विश्वविद्यालयों में हिंदी लेनेवाले कुछ दूसरी या तीसरी पीढ़ी के भारतीय भी होते हैं, पर एक बहुत बड़ा वर्ग बॉलीवुड प्रेमियों का भी है। दक्षिण एशियाई लोग चाहे कहीं भी रहें, उनके मनोरंजन का सबसे बड़ा स्रोत बॉलीवुड तो होता ही है। बॉलीवुड की लोकप्रियता की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। प्रवासी भारतीय ही नहीं, बल्कि मलय और किसी हद तक चीनी छात्र भी बॉलीवुड की रंगीन दुनिया एवं थिरकते संगीत से प्रेरित होकर हिंदी सीखने आते हैं। और फिर भारत की अर्थव्यवस्था जिस पर सबकी नजर है, को कतई नजरअंदाज नहीं कर सकते।

सिंगापुर में स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों में लगभग ११०००-१२००० छात्र हिंदी किसी-न-किसी रूप में पढ़ रहे हैं और इतने छात्रों को पढ़ानेवाले शिक्षकों की संख्या भी सैकडों में है। ऐसी स्थिति में यहाँ से कोई प्रकाशन न निकलना मलाल की बात थी। कई वर्षों के प्रयास के बाद इस वर्ष यह पथ भी तय हो ही गया। इस पत्रिका की खूबी यह भी है कि इसमें छात्रों को हिंदी के वाहक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, साथ ही जो लोग विदेशी भाषी होते हुए भी हिंदी काफी तन्मयता से सीख रहे हैं, उन्हें भी सबके सामने लाने का प्रयास किया जा रहा है। उम्मीद यही है कि यह पत्रिका हिंदी की दशा को नई और बेहतर दिशा देने में कामयाब हो।

साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रयास

हिंदी शिक्षण की बात करने के बाद भाषा के संवर्धन की ओर ध्यान आकर्षित करवाना जरूरी हो जाता है। एक संस्था 'ग्लोबल हिंदी' द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर पिछले तीन वर्षों से 'प्रेरणा अवार्डस' का वार्षिक रूप से आयोजन किया जा रहा है, जिसमें विद्यालयों के छात्रों के साथ ही वयस्कों के लिए प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। सिंगापुर में इस तरह के कार्य से हिंदी के प्रति साहित्यिक रुचि का विकास भी हो रहा है। समय-समय पर काव्य-गोष्ठियों का आयोजन भी पिछले दो-तीन वर्षों से होने लगा है। हिंदी रचनाएँ लिखनेवाले ज्यादातर लोग किसी-न-किसी व्यावसायिक पेशे जुड़े हैं, जैसे आई.टी. या बैंकिग। हिंदी भाषा से लगाव पहले से रहा है और अब सुनने-सुनाने का मंच मिलने लगा है तो लोगों की प्रतिभा में निखार भी आने लगा है। पिछले दो वर्षों से सिंगापुर में हिंदी नाटक 'दस्तक' का मंचन भी वार्षिक रूप में शुरू हुआ है। धीरे-धीरे ही सही, पर भाषा से जुड़े लगभग हर क्षेत्र में कुछ-न-कुछ काम शुरू हो गया है। पढ़ने-पढ़ाने के अलावा सिंगापुर में कई सांस्कृतिक आयोजन होते रहते हैं, जो हिंदी भाषा के विस्तार को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

सिंगापुर और हिंदी का नाता पुराना रहा है। यद्यपि यह गिरमिटिया संस्कृति से प्रभावित देश नहीं है, पर यहीं की पुरानी पीढ़ी, जो हिंदी जानती और समझती है, वह उसी गिरमिटिया संस्कृति के करीब है, जिसने कई देशों में हिंदी के एक ठेठ रूप को आज तक जीवित रखा है। श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर या भारती भवन जैसी संस्थाओं में जाने पर आज से ७०-८० साल पुरानी भोजपुरी और हिंदी के भाव आपको सुनाई देंगे। हर मंगलवार को श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर में हनुमान चालीसा, सुंदर कांड और दुर्गा पाठ का आयोजन उन्हीं लोगों के कारण जीवित है, जो बहुत पहले इस धरती पर कुछ मूर्त और अमूर्त साधनों के साथ आए थे।

इसी वर्ष से सिंगापुर की पहली हिंदी पत्रिका 'सिंगापुर संगम' ने भी अपने पैर दुनिया तक फैलाए हैं। यह त्रैमासिक पत्रिका सिंगापुर में भारत का संगम तो है ही, साथ ही यहाँ के हिंदी भाषियों को दुनिया से जोड़ने का एक माध्यम भी है। सिंगापुर में स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों में लगभग ११०००-१२००० छात्र हिंदी किसी-न-किसी रूप में पढ़ रहे हैं और इतने छात्रों को पढ़ानेवाले शिक्षकों की संख्या भी सैकडों में है। ऐसी स्थिति में यहाँ से कोई प्रकाशन न निकलना मलाल की बात थी। कई वर्षों के प्रयास के बाद इस वर्ष यह पथ भी तय हो ही

गया। इस पत्रिका की खूबी यह भी है कि इसमें छात्रों को हिंदी के वाहक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, साथ ही जो लोग विदेशी भाषी होते हुए भी हिंदी काफी तन्मयता से सीख रहे हैं, उन्हें भी सबके सामने लाने का प्रयास किया जा रहा है। उम्मीद यही है कि यह पत्रिका हिंदी की दशा को नई और बेहतर दिशा देने में कामयाब हो।

अभी तक तो बातें हुईं कि आखिर हिंदी आई कैसे और आज कहाँ तक पहुँची है। शिक्षा-व्यवस्था में हिंदी को स्थान मिला, यह वाकई एक मील का पत्थर है, पर हिंदी क्या बोलचाल की भाषा के रूप में पुराने हिंदी भाषी परिवारों में जीवित है? यह प्रश्न वाकई महत्त्वपूर्ण है, जिसका उत्तर आसान नहीं है। सिंगापुर में उत्तर भारतीयों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है; पुराने उत्तर भारतीय, जिनकी अब यही दूसरी या तीसरी पीढ़ी रह रही है और नए भारतीय, जो नब्बे के दशक में हुए तकनीकी क्रांति के बाद से अहिंदी देशों की तरह सिंगापुर आए। हालाँकि कई नए भारतीय भी अब अपनी दूसरी पीढ़ी के साथ रह रहे हैं और सिंगापुर को अपना घर बना चुके हैं। पुराने भारतीयों के आगमन के समय हिंदी न तो आधिकारिक मान्यता प्राप्त भाषा थी न ही बाजार की भाषा। ११वीं सदी के प्रारंभ में यह भू-भाग मलय क्षेत्र ही माना जाता था और मलय ही यहाँ की मुख्य भाषा थी। चीनी भाषा की लिपि चित्रात्मक होती है तो ऐसी मान्यता बन गई है कि वह मलय भाषा की अपेक्षा ज्यादा मुश्किल है। मलय भाषा में रोमन अक्षरों का प्रयोग होता है, अत: ऐसा लगता है कि वह आसान है। कम-से-कम अक्षर तो आसानी से पढ़े जा सकते हैं। तमिल भाषा के अक्षरों की बनावट भी अनोखी है, जिसे समझना इतना आसान नहीं। सिंगापुर अतीत में मलय शासित क्षेत्र रहने के कारण मलय को बाजार की भाषा की संज्ञा भी मिली हुई थी, इसलिए पुराने भारतीय परिवारों, जो अंग्रेजी पर प्रभुत्व न जमा सके, उन्होंने मलय को अपनी लिंगुआ फ्रांका के रूप में चुना। मलय पहले बाजार की भी भाषा थी तो सामान खरीदने से लेकर दूसरों से बातचीत का माध्यम मलय बन गई। ये पुराने उत्तर भारतीय ज्यादातर घर में भोजपुरी बोलते थे। घर में भोजपुरी, बाहर मलय और बच्चों ने अंग्रेजी पढ़ना शुरू किया तो इस बीच हिंदी कहाँ गुम हो गई पता ही नहीं चला। हिंदी को विद्यालयों में मान्यता मिलने के कुछ समय बाद तक काफी उत्तर भारतीय परिवारों के बच्चे मलय ही द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ते रहे जिससे लगभग पूरी एक पीढ़ी हिंदी की सुंदरता और मधुरता से वंचित रह गई। आज इसी का परिणाम है कि कई पुराने उत्तर भारतीय परिवारों में न तो कोई हिंदी बोलता है न पढ़ता है। हाँ, बॉलीवुड ने हिंदी समझने के गुण को खोने से बचा लिया। भले ही पूरी फिल्म न समझ आए और 'सबटाईटल्स' का सहारा लेना पड़ता है फिर भी भाषा का कुछ अंश तो इन उत्तर भारतीयों के पल्ले पड़ ही जाता है। अगर घर में भाषा न बोली जाए तो उसके लुप्त होने में बहुत अधिक समय न लगेगा, इसलिए इस दिशा में प्रयास होना आवश्यक है और यह व्यक्ति विशेष पर ही निर्भर होता है कि वह क्या चाहता है।

हिंदी का भविष्य

हिंदी के भविष्य की बात करें तो वह सिंगापुर की द्विभाषी नीति के कारण उज्ज्वल ही रहेगा। जब तक सिंगापुर सरकार की द्विभाषी नीति अनिवार्य है, तब तक तो इस द्वीप पर हिंदी शिक्षण का कार्य अवश्य जोर-शोर से चलता रहेगा। भारतीय अभिभावकों की प्रवृत्ति ही ऐसी है कि शैक्षणिक उपलब्धियों के प्रति किसी भी प्रकार का समझौता नहीं कर सकते। अत: शिक्षा के रूप में तो यह अवश्य फलता-फूलता दिखाई देगा। शिक्षण के क्षेत्र में हिंदी के लिए जो कार्य हो रहा है, वह अवश्य सराहनीय है। स्थानीय पाठ्यक्रम में लगभग सात हजार विद्यार्थी हिंदी को मातृभाषा के रूप में पढ़ रहे हैं। इतनी बड़ी संख्या में हिंदी लेनेवालों को देखकर भविष्य में हिंदी की बढ़त को नकारा नहीं जा सकता। हालाँकि शिक्षण व प्रशिक्षण से संबंधित कई सवाल समय-समय पर उठते रहे हैं और रहेंगे, पर कम-से-कम आधार तो भारतीय जनता को मिल ही रहा है। एकभाषी देशों में तो धीरे-धीरे हिंदी सिर्फ बोलचाल तक ही कुछ घरों में सीमित रह गई है, जबकि सिंगापुर की द्विभाषी नीति ने पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर इसके लिखित रूप को भी जीवित रखा है। यहाँ बालक व किशोर पढ़ाई व अंकों के डर से ही सही, भाषा पढ़ने-लिखने-बोलने का प्रयास कर रहे हैं। जहाँ तक बात बोलचाल की हिंदी की है या हिंदी भाषा के जीवित रहने की है, तो नई पीढ़ी में यह जोश या लगाव अभी तो नहीं है, पर जो लोग भारत से काम करने आते हैं, वे हिंदी को पूरी तरह से तो नहीं छोड़ सकते। उनके बीच बातचीत के रूप में भी हिंदी जीवित है। सिंगापुर के पुराने भारतीयों की दूसरी-तीसरी या चौथी पीढ़ी हिंदी ज्यादा नहीं बोलना चाहती। वे सिर्फ एक भाषा के रूप में भले पढ़ लें, पर 'हिंदी स्कूल' के बाहर शायद ही किसी स्थान पर इसका प्रयोग करें। हालाँकि हिंदी फिल्में और 'शो' नई पीढ़ी को भी बहुत भाते हैं, पर हिंदी बोलना उन्हें शायद धरा से खुद को अलग मोड़ने का आभास दिलाता है। वे खुद को अंग्रेजी से ही जुड़ा देखना या दिखाना चाहते हैं।

विश्वविद्यालयों में हिंदी का भविष्य एक अलग मंच लिये खड़ा है। यहाँ सीखनेवाले किसी मजबूरी या बोझ का शिकार नहीं हैं। उनकी अपनी रुचि उन्हें हिंदी कक्षाओं तक खींच लाती है। आज भारत के प्रति एक तरह की सोच लोगों में विकसित हो रही है, खासकर युवाओं में आज जहाँ काम है, पैसा है, वही उन्हें आकर्षित कर रहा है। भारत को एक नई शक्ति के रूप में हर कोई देख रहा है तो सिंगापुर के विश्वविद्यालयों में पढ़नेवाले युवा भी अपने इस विकल्प को भाषा के कारण बंद नहीं करना चाहते। वैसे इन कक्षाओं में नई भाषा सीखने आनेवाले समूह का एक बड़ा भाग बॉलीवुड से भी आकर्षित है।

भाषा संस्कृति का विशिष्ट अंग होती है। अगर सिंगापुर में सांस्कृतिक पहचान के प्रति जागरूकता बढ़ने लगी है, सकारात्मकता आने लगी है तो हिंदी भाषा की स्थिति भी और बेहतर होने की स्थिति में है। पिछले २५-३० वर्षों में काफी बदलाव दिखाई दे रहा है और आनेवाले समय में यह बदलाव बेहतर होने की संभावना है। हिंदी का भविष्य बेहतर होने के साथ ही यह देश हिंदी की दशा को भी नई दिशा दे रहा है।

सा अ

Centre for Language Studies
Faculty of Art & Social Science
National University of Singapure
e-mail : sangam.singapore@gmail.com

सूरीनाम में हिंदी की दिशा व दशा

• ममता मिश्रा

हिंदुस्तान के बाहर हिंदी को बचाए रखने में प्रवासी भारतीयों का योगदान अद्‌भुत है। प्रवासी भारतीय विश्व के जिस कोने में भी गए, अपने साथ अपनी संस्कृति, साहित्य तथा अपनी भाषा भी ले गए। जिस देश में भी वे गए अपनी मूल भाषा को भूले नहीं अपितु अपनी भाषा व संस्कृति को सीने से लगाए रखा। भाषा व संस्कृति रूपी अमूल्य निधि की सुरक्षा और सम्मान के प्रति सदा सजग रहे। उन्होंने यह समझ लिया था कि अपनी संस्कृति को बचाए रखने के लिए भाषा की सुरक्षा व सम्मान आवश्यक है। आजीविका की खोज में सुनहरे भविष्य को सँवारने हेतु भारतीय विदेशों में मजदूरों के रूप में गए थे, किंतु परिश्रम, लगन तथा ईमानदारी से वे प्रत्येक देश में सुशिक्षित तथा सम्मानित नागरिक बन गए। उनकी प्रतिष्ठित सामाजिक स्थिति के कारण ही उनकी भाषा भी सम्मानित भाषा बनी। भाषा के प्रति सजगता के कारण ही फिजी, मॉरीशस सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना व दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में हिंदी प्रवासी भारतवंशियों के बीच आज भी मातृभाषा के रूप में ससम्मान बोली जाती है।

भारतीयों के प्रवास का दौर सर्वप्रथम मॉरीशस (१८३४), त्रिनिदाद (१८४५), दक्षिण अफ्रीका (१८००), गुयाना (१८७०), सूरीनाम (१८७३) तथा फिजी (१८७९ ई.) में समुद्री जहाज से हुआ। इन देशों में जानेवाले अधिकतर भारतीय मूलत: पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बिहार से थे। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रांतों से भी थे, जिनकी संख्या नगण्य थी। उनकी बोलचाल की भाषा अवधी, भोजपुरी व मैथिली थी। उनमें से कुछ हिंदी खड़ी बोली का भी प्रयोग करते थे। अन्य प्रांतों से जानेवालों की संख्या कम थी, अत: वे आपसी व्यवहार के लिए अवधी तथा भोजपुरी को ही संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग करते थे। समुद्री यात्रा करते हुए कुछ अन्य भाषा-शब्दों का समावेश इनकी बोलचाल में सम्मिलित हो गया।

विदेशी भूमि पर कदम रखते ही डच या अंग्रेजी अफसरों तथा वहाँ के मूल निवासियों से संपर्क होने पर कुछ प्रचलित शब्द उनकी व्यावहारिक हिंदी में तद्‌भव शब्द के रूप में सम्मिलित हो गए। शनै:-शनै: उनकी शुद्ध अवधी या शुद्ध भोजपुरी का रूप बदलने लगा और एक नवीन भाषा-शैली विकसित होने लगी। विश्व के विभिन्न देशों में

सुपरिचित लेखिका। २ अक्तूबर, १९६१ को कानपुर में जन्म। एम.ए. हिंदी, बी.एड., बंगला, राजस्थानी, पंजाबी, सिंधी, मराठी व अंग्रेजी भाषाओं का ज्ञान। कविता, कहानी, ब्लॉग, लेख, प्रहसन तथा कुछ अनुवाद प्रकाशित। सचिव, हिंदी पीठ (स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, सूरीनाम) संप्रति अध्यापिका, स्वतंत्र लेखन।

जा पहुँचे इन भारतीयों की मूल भाषा से अनेक भाषा शैलियों का विकास हुआ तथा उनके नए-नए नाम रखे गए। फिजी में बोली जानेवाली हिंदी को वहाँ के प्रवासी भारतीय 'फिजीबात' कहते हैं, दक्षिण अफ्रीका की हिंदी को 'नैताली' तथा सूरीनाम की हिंदी को 'सरनामी हिंदी' या 'सरनामी' कहा जाता है। इन शैलियों का व्यावहारिक रूप अधिकतर प्रवासी भारतीयों के घर या औपचारिक बातचीत में मिलता है।

सूरीनाम में हिंदी का स्वरूप

सूरीनाम में रहनेवाले भारतवंशियों ने सन् १८७३ में यहाँ अपना पहला कदम रखा। कलकत्ता से लालारुख जहाज पर शर्तबंद मजदूरों के रूप में लाए गए इन ४१० व्यक्तियों में सूरीनाम पहुँचते-पहुँचते ३९८ ही शेष रहे, जो ५ जून, १८७३ को सूरीनाम पहुँचे। सूरीनाम प्रवास का यह क्रम अनवरत चलता रहा। अंतिम जहाज २४ मई, १९१६ को पहुँचा। इसके पश्चात् शर्तबंद मजदूरों के रूप में भारतीयों का सूरीनाम प्रवेश वैधानिक रूप से बंद हो गया।

आरंभ से ही सूरीनाम का नैसर्गिक सौंदर्य, यहाँ के निवासियों का गौरव और विदेशियों के आकर्षण का केंद्र रहा है तथा इसे सँवारने में भारतवंशियों की अहम भूमिका रही है। यहाँ सरनामी हिंदी समेत सोलह भाषाएँ बोली जाती हैं। सूरीनाम में भारतीय मूल के लोग सबसे अधिक हैं। इन प्रवासी भारतीयों के मध्य आपसी बोलचाल की भाषा हिंदी है। इसी हिंदी को 'सरनामी हिंदी' या 'सरनामी' से अभिहित किया गया है। 'सरनामी हिंदी' भोजपुरी, अवधी, ब्रज, मगही, मैथिली तथा खड़ीबोली का मिश्रित स्वरूप प्रस्तुत करती है। सूरीनाम के भारतवंशी अपने दैनिक व्यवहार में केवल दो भाषाओं को मुख्यत: प्रयोग करते हैं—डच तथा सरनामी। डच राजभाषा है तथा हिंदी या सरनामी हिंदुस्तानियों की भाषा है। कैरेबियन देशों में सूरीनाम की स्थिति त्रिनिदाद, टोबेगो, गयाना

आदि से भिन्न है। सूरीनाम में हिंदी दैनिक व्यवहार की भाषा है, जबकि उपरोक्त अन्य द्वीपों में नहीं।

यहाँ भारतीयों के आगमन के साथ ही उनमें शिक्षित लोगों द्वारा आरंभ से ही हिंदी की परंपरा को बनाए रखने का प्रयत्न किया गया और सभी प्रवासियों ने भावी पीढ़ी के भविष्य को ध्यान में रखकर पूरा सहयोग दिया। गाँवों तथा मंदिरों में खोली गई पाठशालाओं में हिंदी और उससे जुड़ी बोलियों का शिक्षण होने लगा। यह हिंदी शिक्षण 'कुली स्कूल', तत्पश्चात् सरकारी स्कूलों में भाषा के रूप में अनवरत चलता रहा। परिस्थितियों वश सरकारी प्रयास बंद होने पर भाषाई तथा सांस्कृतिक अस्मिता को बचाए रखने के लिए कुछ संस्थाएँ सामने आईं। तब से हिंदी साहित्य सृजन व शिक्षण कार्य की बागडोर पूर्णरूपेण स्वैच्छिक संस्थानों ने सँभाली, जो वर्तमान में भी कुशलता से हिंदी भाषा के प्रति क्रियाशील हैं। इसमें नाथूरामजी की पुस्तकों का बहुत योगदान रहा है। उनकी लिखी पुस्तकों से हिंदी पढ़नेवालों की नींव आज भी हिंदी में सशक्त है। हिंदी भाषी नींव की मजबूती का श्रेय बाबू महातम सिंह को भी जाता है।

वर्तमान में 'सूरीनाम हिंदी परिषद्', जो यहाँ की सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त संस्था है, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के पाठ्यक्रम के अनुसार यहाँ हिंदी का शिक्षण और परीक्षाएँ होती हैं। यहाँ प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, प्रवेशिका, परिचय, कोविद तक छह स्तरों के लिए शिक्षण व परीक्षा कार्य संस्था 'सूरीनाम हिंदी परिषद्' यहाँ स्थित 'भारतीय सांस्कृतिक केंद्र' की सहायता से करती है। पाठ्य पुस्तकें भारतीय राजदूतावास के माध्यम से नि:शुल्क प्रदान की जाती हैं। कोविद के पश्चात् भाषा-रत्न है, जिसे स्नातक स्तर का माना गया है। भाषा-रत्न की परीक्षाओं का आयोजन वर्धा द्वारा होता है। स्नातकोत्तर स्तर पर भाषा-आचार्य की परीक्षाओं का प्रावधान वर्धा समिति की ओर से विदेशों में नहीं है।

इसके अतिरिक्त हिंदी प्रेमी, 'केंद्रीय हिंदी संस्थान', आगरा द्वारा हिंदी के विभिन्न पाठ्यक्रम पढ़ने के लिए सूरीनाम से नं-२ विद्यार्थी प्रतिवर्ष भारत जाते हैं। संख्या कम होने से कुछ विद्यार्थी चाहकर भी लाभान्वित नहीं होते। सूरीनाम एक बहुसांस्कृतिक व बहुभाषी देश है और राष्ट्रभाषा डच होने के कारण यहाँ स्थित एकमात्र विश्वविद्यालय में हिंदी को आज तक स्थान प्राप्त नहीं हुआ है। भारतवंशियों का हिंदी प्रेम उन्हें अभिव्यक्ति से रोक नहीं पाया है। सीमित संसाधनों के होने पर भी यहाँ साहित्य-सृजन हुआ, जो हिंदी और सरनामी भाषाओं में है।

सूरीनाम में अन्य जातियों के साथ लगभग चालीस प्रतिशत संख्या भारतवंशियों की है, जो अपने अथक प्रयत्नों से भारतीयता और भारतीय संस्कृति को प्रतिष्ठापित करने में तत्पर हैं। साहित्य भी इन्हीं माध्यमों में से एक है, जिसकी रचना रोमन लिपि में लिखी जानेवाली 'सरनामी हिंदी' में की गई। सरनामी का विकास मुख्यत: दो विधाओं कविता और कथा में हुआ। नाटक शिल्प में लिखी जानेवाली इन कथाओं की विषयवस्तु समाज सुधार और दैनिक जीवन की समस्याओं से ली गई या भारतीय विषयों का रूपायन किया गया।

सूरीनाम में हिंदी साहित्य व साहित्यकार

भारत से आए इन गिरमिटिया हिंदुस्तानी दिनभर की थकन के बाद संध्या में आपस में जुड़ी मिल-बैठकर लोरिया, बुझौनी, लोकगीत, खजड़ी और मसला सुनते हुए जीवन-यापन करते थे। साथ ही महात्मा गांधी, विवेकानंद और स्वामी दयानंद के विचारों (सुने-सुनाए किस्सों पर आधारित) का आदान-प्रदान करते थे। धार्मिक यज्ञ-हवन पर बच्चों को कंठस्थ श्लोक, मंत्र, दोहा, चौपाइयाँ, लोकगीतों का पाठ कराया जाता था। विश्व स्तर पर आज भारतवंशियों को जोड़ने में हिंदी की जो भूमिका है, वही भूमिका सूरीनाम के भारतवंशियों को एकजुट करने में 'सरनामी' की है। आरंभ में जिस भाषा में सूरीनाम के भारतवंशी अपने मनोभावों, अंतर्द्वंद्वों एव उद्वेगों को सुंदर-सरल रूप में अभिव्यक्त कर पाते थे, वह उनकी मातृभाषा 'सरनामी' थी। इसलिए सरनामी के गद्य एवं पद्य लेखकों की संख्या मानक हिंदी की अपेक्षा अधिक है।

सूरीनाम में आजादी से पूर्व साहित्य-सृजन कम हुआ। रामलीला-रासलीला का प्रचार-प्रसार होता था। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य नाटक-नौटंकी खेले जाते थे, जैसे हरिश्चंद्र-तारामती, श्रवणकुमार, नौलखाहार, कृष्णावतार, रूपबसंत, रसरंगबहार, हकीकतराय, भक्त प्रह्लाद, गरीबों की पुकार। १९७० से १९८५ में पंचवटी, दूसरी बीबी, आज, कल और आज, हाय रे पैसा, बहू भी बेटी है, मैं औरत हूँ, सैनिक का पिता, प्रवासी आदि प्रसिद्ध हुए। यह मौखिक साहित्य था। सन् १९७८ में 'सूरीनाम हिंदी परिषद्' की स्थापना के पश्चात् हिंदी और सरनामी के जोर-शोर से प्रचार के परिणामस्वरूप भारतवंशियों का आत्मविश्वास जागा। अब सरनामी व हिंदी ने मौखिक से लिखित की गति पकड़ी। हिंदी, सरनामी भाषा का साहित्य-सृजन देवनागरी व रोमन दोनों लिपियों में हुआ।

सूरीनाम में अन्य जातियों के साथ लगभग चालीस प्रतिशत संख्या भारतवंशियों की है, जो अपने अथक प्रयत्नों से भारतीयता और भारतीय संस्कृति को प्रतिष्ठापित करने में तत्पर हैं। साहित्य भी इन्हीं माध्यमों में से एक है, जिसकी रचना रोमन लिपि में लिखी जानेवाली 'सरनामी हिंदी' में की गई। सरनामी का विकास मुख्यत: दो विधाओं कविता और कथा में हुआ। नाटक शिल्प में लिखी जानेवाली इन कथाओं की विषयवस्तु समाज सुधार और दैनिक जीवन की समस्याओं से ली गई या भारतीय विषयों का रूपायन किया गया। रचनाकारों का मुख्य उद्देश्य धार्मिक-सांस्कृतिक अस्मिता को बचाए रखना तथा भारतवंशियों को

संगठित बनाए रखना था।

यों तो सूरीनाम में साहित्य-सृजन विरासत में ही आया, इसका उदाहरण बाबू चंद्रमोहन रंजीत सिंह तथा मुंशी एम.के. रहमान हैं। रहमान ने कबीर की शैली अपनाते हुए भारतवंशियों को, 'दोहा शिक्षावली', शिक्षाप्रद दोहे व कुंडलियों के माध्यम से सचेत किया। अपनी भाषा संस्कृति की ओर लौटने, सामाजिक कुरीतियों से बचने, हिंदु-मुस्लिम एकता, नीति, इतिहास, ईष्ट वंदना और स्वतंत्रता के लिए लिखा—

यह दोहा शिक्षावली रची धर्म दोउ हेत।
पढिहें मुसलिम हिंदुजन होवे धर्म सचेत॥ १॥
दुई जाती भारत से आए। हिंद मुसलमान कहलाए।
रही प्रीति दोनहू में भारी। जस दुई बंधु एक महतारी॥ २॥

किंतु हिंदी लेखन इनके पूर्व ही आरंभ हो चुका था। पं. लक्ष्मी प्रसाद बलदेव, श्री मंगल प्रसाद, श्री लक्ष्मी प्रसाद मन् व श्री महादेव खुनखुन आदि लेखकों की पांडुलिपियाँ भी प्राप्त हुई। सन् १९६० में भारतीय सांस्कृतिक संबद्ध परिषद् की ओर से श्री महातम सिंह हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु सूरीनाम आए। इनके प्रयत्नों से यहाँ के साहित्यकारों को यह आत्मविश्वास हुआ कि उनका सृजन अब पृष्ठों में उभरेगा। अपनी पीड़ा, द्वंद्व व अस्तित्व बोध को लेखनी द्वारा उजागर किया। १८१० से १९६० के दशकों में रचित गद्य-पद्य साहित्य प्रकाशित होकर सूरीनाम के लिखित साहित्य का प्रमाण बना।

दूसरों को मानने लगे थे अपना ही देहांश

सूनारीम के प्रसिद्ध लेखक

मुंशी रहमान खान—इन्होंने सूरीनाम एवं अन्य उपनिवेशों के भारतवंशियों का लघुतम इतिहास व गणित की कई किताबें लिखीं, अधिकांश अप्रकाशित रहीं किंतु ज्ञान-प्रकाश, दोहा-शिक्षावली प्रकाशित होकर प्रसिद्ध हुईं। **महादेव खुनखुन**—इनकी रचनाएँ कबीर के दोहों की तर्ज पर लिखी गई हैं। जिनमें सांसारिक मुक्ति के रस्ते बताए गए हैं। **मार्लिन हरिदत्त लाचामन श्रीनिवासी**—डच, स्त्रनांगतोंग और अंग्रेजी भाषा के कवि रूप में ये यूरोप और कैरेबियन देशों में प्रसिद्ध हैं। **चंद्रमोहन**—सरनामी और हिंदी के प्रसिद्ध हैं। कवि भक्ति व समाजसुधार इनके मुख्य विषय हैं। 'प्रभाकर' प्रसिद्ध रचना है। **श्री अमर सिंह रमण**—सरनामी, हिंदी व डच भाषा के प्रसिद्ध नाटककार और कवि। लोकगीतों व कविताओं में प्रभावशाली व्यंग्य हैं। नाट्य निर्देशन भी किया। **रामदेव रघुवीर**—कवि तथा नाटककार। संस्कृति के प्रति सदा सजग। **रामनारायण झाव**—प्रसिद्ध कवि और गद्य लेखक। समयानुसार सूरीनाम देश पर कई निबंध लिखे। **श्री हरदेव सहतू**—बीस वर्षों तक सूरीनाम हिंदी परिषद् के निदेशक पद पर रहे, कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। गद्य-पद्य दोनों में लिखा। **श्री जीत नारायण**—सरनामी हिंदी के प्रथम कवि सरनामी आंदोलन के प्रणेता और प्रवक्ता रहे। पत्रिकाओं का संपादन किया। सरनामी नीदरलांस (डच) में लिखते हैं। **कवि सुरजन परोही**—इन्होंने हिंदी, सरनामी, डच, अंग्रेजी भाषा में नाटक, कविताएँ, लोकगात लिखे हैं। कबीरपंथी सुरजनजी की रचनाएँ जनभाषा में हैं।

इनके अतिरिक्त वे साहित्यकार, जो हॉलैंड में बसे हैं, पर अपनी मातृभाषा सरनामी में लिखते हैं—चित्र गयादीन, श्रीमती चांदनी, गुरुदत्त कला सिंह, श्रीराज रामदास, श्री राबिन बलदेव सिंह, मोतीलाल रामोन। नए साहित्यकारों में—पंडिता सुशीला बलदेव, जन सुरजनाराइन सिंह सुआग, पं. सूर्य प्रशाद बिरे, संध्या भग्गू तेज प्रसाद खेदु, सुशीला सुक्खू धीरज कंधे, कर्मन जगलाल आदि हैं।

जिस साहित्य की रचना सूरीनाम भारतवंशियों ने की, उसमें उनकी और उनके पुरखों की प्राणलेवा संघर्ष-गाथा तो ध्वनित है ही, उनके वर्तमान जीवन के रंग भी घुले हैं। विशेषत: उनकी कविता में धार्मिक आस्था को भी वाणी मिली है।

मैं, छोड़ आया 'माँ'
पर छूटी नहीं तुम, जहाज भर साथ रहीं
मैंने पहचाना नहीं—
सूरीनाम नदी तट पर
देश में, तुम मेरे साथ हो
अपनी पर्ची में तुम्हें ही देखता हूँ 'माँ' (सुरजन परोही)

उपरोक्त उदाहरण से हिंदी भाषा के प्रति प्रेम और भाषा का ज्ञान परिलक्षित होता है। हिंदुस्तानी हिंदी को सीखना अपनी आत्मसंतुष्टि व अस्मिता का प्रतीक मानते हैं। साहित्य लेखन को सँवारने, प्रकाशन तथा प्रोत्साहन का भार जिन स्वैच्छिक संस्थाओं व पत्रों ने लिया, उनमें प्रमुख हैं—सूरीनामी प्रवासी संस्था, इख्तियार और हक, आर्य समाज, सनातन धर्म, भारत उदय, आर्य दिवाकर आदि संस्थाएँ।

सरीनाम में भारतीयों की संस्कृति

भाषा की ही भाँति अपनी संस्कृति को आज भी सरनामी प्रवासियों ने सीने से लगा रखा है। ५ जून, २०१८ को सूरीनाम में अप्रवासी भारतीयों के १४५ वर्ष पूरे हो गए। इस वर्ष को यादगार बनाने की धूमधाम से तैयारियाँ हैं। ये वर्ष भारतवंशियों के लिए ऐतिहासिक होने जा रहा है, क्योंकि भारतीय राष्ट्रपति महामहिम श्री रामनाथ कोविंद इसी माह में राजकीय यात्रा पर सूरीनाम पधार रहे हैं, इससे भारतवंशियों का उत्साह दुगुना हो गया है।

भारतीय संस्कृति की झलक, भारत देश के बाहर बसे अप्रवासी भारतवंशियों की जीवन-शैली में आज भी अनुभव की जा सकती है। सरनामी उनकी मातृभाषा है तो हिंदी सांस्कृतिक भाषा है। उनके घर-मंदिरों में भारतीयता ही परिलक्षित होती है। हर मंदिर में सप्ताहांत हिंदी भाषा तथा धर्म से संबंधित शिक्षण होता है।

दशहरा से पूर्व रामलीलाओं का मंचन होता है। दीपावली पर सामूहिक रूप से एक बड़ा दीया जलाया जाता है। पूर्णिमा को होलिका दहन के पश्चात् फगवा खेला जाता है। हिंतुस्तानी व सनातनियों के घरों में

किसी धार्मिक अनुष्ठान के प्रतीक स्वरूप नारंगी, लाल, पीली, झंड़ियाँ गड़ी रहती हैं। समय परिवर्तन के साथ यों तो पाश्चात्य पहनावा खानपान का असर इन पर भी है किंतु मंदिर व विशेष अवसरों पर भारतीय पारंपरिक परिधान ही पहने जाते हैं। विशेष अवसरों पर, कथा-पूजा, निमंत्रण या न्योता पर भारतीय भोजन ही भारतवंशियों की पहली पसंद है। रोटी, कढ़ी, दाल फुलौरी, सहना, गुझिया, समोसा, चटनी आदि पकाए जाते हैं। गुरुजी, बहिनजी, भाईजी, मौसी, काका-काकी, आजा-आजी आदि संबोधन हिंदुस्तानियों में आम है।

भारतवंशियों में हिंदू-मुसलिम दोनों साथ गए थे और वर्तमान में भी आपसी भाईचारे से रहते इस्कॉन मंदिर, सूर्यमंदिर, साँई मंदिर, ब्रह्मऋषि आश्रम हिंद धर्म के प्रतीक हैं, वहीं विभिन्न मसजिदें मुसलिम धर्म की, गिरजाघर व सर्वधर्म प्रार्थना-गृह भी शोभायमान हैं। संस्कृति का हिस्सा संगीत तथा नृत्य भी है। प्रवासी भारतीयों दवारा लाई गई मौखिक परंपरा का एक हिस्सा इनके लोकगीत हैं। विभिन्न टोलियों के रूप में अपनी विरासत को सँजोए पीढ़ी-दर पीढ़ी लोकगीतों को विरासत के रूप में सौंपा जाता रहा। रामचरितमानस की चौपाइयों, दोहों के साथ विभिन्न अवसरों पर गाए जानेवाले लोकगीत इनके विश्राम में मनोरंजन का साधन थे। १४५ वर्ष बीत गए, पर आज भी सूरीनाम में लोकगीतों की परंपरा बनी हुई है।

गौर पूजो, गौर पूजो, गौरी गणेश हो
टिकहु धरती मैरया माँग तोहारो।
आओ ना धरती मैटया बैठो मोरे द्वारे
देवे सतरगिया बिछाय हो
चलो तोड़ लाए राजा महनीय के डार।
सोने की थारी में ज्योना परोसियो
ज्योना के जिवइया बसे गंगा पार
सोने के गड़वा गंगाजल पानी
गरुआ के घुटईया बसे गंगा पार

सूरीनाम में बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के भारतवंशियों का बाहुल्य होने से इनका संगीत भोजपुरी, अवधी, मैथिली भाषाओं में अधिक सुनाई पड़ता है। परंपराओं का निर्वाह करते हुए विभिन्न अवसरों पर सुमिरन, गौर पूजा, ढोलक पूजा, सोहर, बधौना, सिल्पौहना, भजन, बैठकगाना, चौताल, बिरहा और किस्से-कहानी गायन का विषय होते हैं। इनके वाद्य ढोलक, हारमोनियम दंडताल, खंजड़ी तथा आधुनिक आर्केस्ट्रा होते हैं। अपने पारस्परिक गीतों के साथ-साथ 'चटनी' गीत भी संगीत का अहम हिस्सा हैं।

मूल आबादी के लगभग ३५ से ४० प्रतिशत हिंदुस्तानियों द्वारा सूरीनाम देश को विषम परिस्तिथियों में भी कड़ी मेहनत से सँवारा गया। वर्तमान पीढ़ी के स्वर में आज भी अपने आजा-आजी की पीड़ा व्यक्त होती है। पूर्वजों की धर्मगत, जातिगत तथा सांस्कृतिक धरोहर को सँभाल और सँवार रहे हैं तथा आनेवाली पीढ़ी को हस्तांतरित कर पितृ-ऋण चुका रहे हैं। समयानुसार उनमें बहुत से परिवर्तन हुए हैं, किंतु हृदय में आज भी भारत बसा है। हर कोई जीवन में एक बार भारत जाने की लालसा रखता है। भारत से आनेवाले व्यक्ति को सम्मान देते हैं।

कोई भी शुभ कार्य पंडित के परामर्श से किया जाता है, जैसे घर की नींव पूजन से गृहप्रवेश तक जन्म से मृत्यु तक के सभी संस्कारों को विधि-विधान से किया जाता है। मुंडन, यज्ञोपवीत विवाह आदि संस्कार रीति व सामर्थ्य अनुसार संपन्न होते हैं। विवाह हिंदू रीति से संपन्न होते हैं। विवाह से पूर्व भात्वान, लावा भूजना, मेहँदी व कन्यादान की रस्में आज भी प्रचलित हैं। किसी घर में मृत्यु होने पर दस दिन तक प्रति संध्या मृतात्मा की शांति हेतु प्रार्थना सभा होती है तथा प्रवचन व भजन भी होते हैं।

जन सुरजनारायण सुआग, 'हिंतुस्तानियों का जीवन संस्कार, धर्म और समाज के आधार पर चलता है और इसी पर संस्कृति कायम है। नाच-गाना और कला सब इसी से जुड़े हैं और इनके बिना हिंदुस्तानी संस्कृति अधूरी है। अत: हिंतुस्तानी संस्कृति में कलाकारों का स्थान महत्त्वपूर्ण है।'

संगीत तथा नाट्य के साथ चित्रकला, मूर्तिकला, गायन, नृत्य आदि यहाँ के भारतवंशियों के जीवन का अहम हिस्सा है। यहाँ के प्रसिद्ध कलाकारों में कृष्णप्रसाद खेदू व जगदीश प्रसाद मनोरथ (मूर्तिकार), योहान शिवशंकर शिउबालक (संगीतकार बैठकगाना), आनंद बिंदा, जार्ज रामजियावन सिंह (चित्रकार), बिहारी नंदलाल, आनंद रामचरण, माधुरी जगमोहन (नर्तक), श्री सुरजन परोही (कुंभकार), अमरसिंह रमण, सुरजन परोही (अभिनेता) हेरोल्ड मदन सिंह, विष्णुवती कुसल, राभुनाथ मंगरे, बिहारी नंद लाल और अनेक उच्च कोटि के कलाकारों ने संस्कृति को कला के माध्यम से सँजोए रखा है।

मूल आबादी के लगभग ३५ से ४० प्रतिशत हिंदुस्तानियों द्वारा सूरीनाम देश को विषम परिस्तिथियों में भी कड़ी मेहनत से सँवारा गया। वर्तमान पीढ़ी के स्वर में आज भी अपने आजा-आजी की पीड़ा व्यक्त होती है। पूर्वजों की धर्मगत, जातिगत तथा सांस्कृतिक धरोहर को सँभाल और सँवार रहे हैं तथा आनेवाली पीढ़ी को हस्तांतरित कर पितृ-ऋण चुका रहे हैं। समयानुसार उनमें बहुत से परिवर्तन हुए हैं, किंतु हृदय में आज भी भारत बसा है। हर कोई जीवन में एक बार भारत जाने की लालसा रखता है। भारत से आनेवाले व्यक्ति को सम्मान देते हैं।

सूरीनामी विद्वानों के मत हिंदी भाषा के विषय में—प्रवासी भारत रत्न महाकवि प्रो. हरिशंकर आदेश (त्रिनिदाद) कैरेबियन में हिंदी की स्थिति सदा से ही डाँवाँडोल रही है। यह सूरीनाम ही है, जो भारत से बाहर, मॉरीशस और फिजी की भाँति हिंदी की गरिमा बनाए हुए है,

क्योंकि हिंदी के प्रति डच सरकार की उदार नीति के साथ-साथ सूरीनाम के भारतीयों का हिंदी प्रेम, दृढ़संकल्प, अपनी भाषा-संस्कृति में अटूट आस्था और कठिन परिश्रम है। हिंदी के क्षेत्र में सूरीनाम अपने आप में समर्थ है।

प्राय: कहा जाता है कि प्रवासी भारतीयों के समक्ष दो संस्कृतियों व दो भाषाओं का प्रश्न बड़ी जटिल समस्या उत्पन्न करता है, किंतु ऐसा सोचना निर्मूल है, आज हर देश में विद्यार्थियों को उनकी राष्ट्रभाषा के अतिरिक्त स्पेनिश, फ्रेंच, जर्मन, इंग्लिश और कई विश्व की भाषाएँ सिखाई जातीं हैं तो हिंदी को भी एक भाषा मानकर पढ़ने में क्या हानि हो सकती है। संक्षेप में यदि हमें अपनी संस्कृति, धर्म, राष्ट्र, स्वाभिमान और अपनी अस्मिता की रक्षा करनी है तो हिंदी की रक्षा करनी होगी।

हरिदेव सहतू (संपादक, लेखक, सूरीनाम में हिंदी भाषा के मुख्य स्तंभ) कई चरणों से गुजरकर सरनामी, सूरीनाम की धरती पर एक नई मातृभाषा बनी है। इस भाषा में अनायास ही यहाँ की अन्य भाषाओं के शब्द आने लगे हैं। इन्हें सरनामी के व्याकरण के नियमों के आधार पर प्रयोग किया जाता है। इसी लचीलेपन के कारण सरनामी एक दृढ़ भाषा होती जाती है। किसी भी भाषा को जीवित रखने के लिए ध्यान रखें—

उस भाषा का स्थान (घर, समाज) में ठीक हो और इसको प्रयोग करने के लिए प्रेरणा मिले। उस भाषा का दैनिक प्रयोग करनेवाली संख्या बड़ी हो। (सरनामी आपस में ही विवाह करते हैं व अपने बच्चों से सरनामी में ही बात करते हैं, अत: सरनामी का प्रयोग करनेवालों की संख्या अधिक है। उस भाषा के प्रचार प्रसार में संस्थाओं और सरकार का सहयोग हो।

अन्य भाषाओं से बाधा

डच व स्त्रनांग तोंगो से बाधा आ सकती है, क्योंकि इनका प्रयोग भारतीय मूल के लोगों के बीच बढ़ रहा है, पर हिंदी की ओर से नहीं क्योंकि हिंदी मातृभाषावत् हमारे घरों में नहीं बोली जाती। डच राज्य भाषा है, स्त्रनांग को सरकार का सहयोग प्राप्त है, सरनामी को नहीं।

सुशीला बीरबल सुक्खू (हिंदी संस्थान निकेरी, सूरीनाम) कैरेबियाई देशों के भारतवंशियों, हम सबका यह उत्तरदायित्व ही नहीं, परम कर्तव्य है कि अपने पूर्वजों की धरोहर अर्थात् अपनी भारतीय पहचान को सुदृढ़ व उन्नतशील बनाएँ। हिंदुस्तानी धर्म-संस्कृति की उन्नति तभी संभव है, जब हम अपनी हिंदी भाषा की उन्नति करें। हिंदी भाषा की उन्नति उसके अधिक-से-अधिक उपयोग पर ही संभव है। हम बहुसांस्कृतिक, बहुजातीय व बहुभाषीय देश में रहते हैं। अपनी रोजी-रोटी के लिए हमें राष्ट्रभाषा व अन्य भाषा भी अपनानी पड़ती है। मैं यह भी मानती हूँ कि अधिक-से-अधिक भाषाएँ सीखना बड़प्पन है किंतु उससे भी अधिक बड़प्पन अपनी भाषा को ठीक से जानने, बोलने तथा उसे अपने देश में मजबूत बनाने में है। आज सभी कैरेबियाई देशों के आपस में निकट होने पर भी घनिष्ठ संबंध नहीं हैं, क्योंकि हम इस संबंध को अन्य भाषाओं के माध्यम से स्थापित करना चाहते थे, जो सालों से नाकाम रहा, किंतु आज सरल रूप में हिंदी से संभव हो गया। हमारे ही पास अमूल्य धन है और हमें आभास तक नहीं।

हिंदुस्तानी धर्म-संस्कृति की उन्नति तभी संभव है, जब हम अपनी हिंदी भाषा की उन्नति करें। हिंदी भाषा की उन्नति उसके अधिक-से-अधिक उपयोग पर ही संभव है। हम बहुसांस्कृतिक, बहुजातीय व बहुभाषीय देश में रहते हैं। अपनी रोजी-रोटी के लिए हमें राष्ट्रभाषा व अन्य भाषा भी अपनानी पड़ती है। मैं यह भी मानती हूँ कि अधिक-से-अधिक भाषाएँ सीखना बड़प्पन है किंतु उससे भी अधिक बड़प्पन अपनी भाषा को ठीक से जानने, बोलने तथा उसे अपने देश में मजबूत बनाने में है। आज सभी कैरेबियाई देशों के आपस में निकट होने पर भी घनिष्ठ संबंध नहीं हैं, क्योंकि हम इस संबंध को अन्य भाषाओं के माध्यम से स्थापित करना चाहते थे, जो सालों से नाकाम रहा, किंतु आज सरल रूप में हिंदी से संभव हो गया।

हमारे पिछड़ जाने का कारण है, हममें आत्मसम्मान व आत्मविश्वास की कमी, यह हमें हिंदी ही दे सकती है। हिंदी की उन्नति के साथ-साथ ही हिंदी साहित्य सृजन और प्रकाशन को भी बढ़ाना होगा। हमें प्रारंभ तो नींव में सुधार से ही करना होगा। यदि आत्मसम्मान है तो अपनी भाषा का महत्त्व हिंदुस्तानियों को स्वयं ही समझ आ जाएगा, अन्यथा आर्थिक विकास भी दूर तक साथ नहीं दे पाएगा। अपनी हिंदी भाषा व संस्कृति की पहचान के लिए भारतवंशियों में उसके प्रति समझ तथा सम्मान की भावना हो, कुछ अनुशासन हो और त्याग की इच्छाशक्ति हो और संगठित रहने के महत्त्व का कुछ ज्ञान हो। (हिंदिशा—सन् २००७)

एच. जानकी प्रसाद सिंह—भारत की ही तरह सूरीनाम एक बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषी देश है। हिंदी हमारे सामुदायिक सद्भाव में बिना कोई खलल डाले हुए हमारे कंपोजिट कल्चर को अभिव्यक्त करने में कामयाब रही है, इसलिए धर्म-जाति की भावना से ऊपर उठकर यहाँ की सरकार सहित हर एक सुरीनामी ने हिंदी को हमेशा सम्मान दिया है। 'सुमन हिंदी पाठशाला से शुरू होकर सूरीनाम हिंदी परिषद्' तक आ पहुँचे, हमारे कारवाँ ने अपने सफर के दौरान विकास के अनेक पड़ाव पार किए हैं। परिषद् ने न केवल इस पूरे देश में हिंदी के प्रचार-प्रसार के काम को संस्थागत रूप से सँभाला है बल्कि इसे विश्व हिंदी सम्मलेन के सफल एवं ऐतिहासिक आयोजन आयोजन का गौरव भी हासिल है। आने वाले दिनों में हिंदी के विश्वव्यापी प्रभाव को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि परिषद् को और अधिक सशक्त और कामयाब बनाया जाना आवश्यक है। (अध्यक्ष हिंदी परिषद्—सन् २००७)

पंडिता सुशीला बलदेव—परिष्कृत हिंदी का प्रयोग करनेवाली सुशीलाजी हिंद संस्कृति से तो जुड़ी हैं, किंतु वर्तमान के प्रति भी सजग हैं और उसी के अनुरूप चलने की सीख देतीं हैं। वर्तमान में हिंदी भाषा और संस्कृति प्रचार-प्रसार में सक्रिय हैं, उनके अनुसार विश्वविद्यालय में मंदारिन (चीनी) व अन्य भाषाओं को मान्यता मिली है, पर हिंदी या सरनामी को नहीं, इसका मुख्य कारण 'पॉलिटिक्स' है। यहाँ के हिंदुस्तानी राजनीतिज्ञों ने भी हिंदी के लिए कम मेहनत की है। इसके अतिरिक्त यहाँ के नीग्रो डरते हैं कि हिंदुस्तानी संस्कृति वैसे ही बहुत मजबूत है, फिर यदि उन्हें अपनी संस्कृति के 'टूल्स' दे दिए गए तो वह और मजबूत हो जाएगी।

यहाँ की सरकार ने हिंदी परिषद् को मान्यता दी, तब से हिंदी का 'कोर्डिनेशन' अच्छा हो गया। प्रारंभ में हिंदी परिषद् संस्था ने हिंदी भाषा के लिए अपना कार्य सफलतापूर्वक किया, किंतु फिर इनके ठोस कार्य में कमी आने लगी, परिषद् की कुछ आंतरिक समस्याएँ हैं, उन्हें संगठित होकर दूर करना पड़ेगा तभी सरकार का पुनः सहयोग पा सकते हैं। पुस्तकों में कुछ परिवर्तन की आवश्यकता है, व्याकरण की शुद्धता आवश्यक है। अब तक यह कार्य योग्य लोगों के द्वारा होता था, किंतु उनके पश्चात् इसमें कमजोरी आ गई है।

राजनैतिक-आर्थिक स्थिति का प्रभाव भी भाषा पर पड़ता है। जैसे हिंदी भाषा के इतिहास में 'भक्तिकाल' में विदेशी व मुगलों के कारण भारतीय धर्म संस्कृति पर संकट आने के परिणाम स्वरूप लोगों में जागृति हेतु भक्ति साहित्य की रचना अधिक हुई। सूरीनाम में भी आर्थिक तंगी के कारण लोगों का ध्यान धर्म-संस्कृति की अपेक्षा रोजी-रोटी पर अधिक है। हिंदी सीखने में आर्थिक फायदा नजर नहीं आता। आज आवश्यकता है भावी पीढ़ी में भाषा-संस्कृति के संस्कार घर से आरंभ हों। उनके सामने स्वयं उदाहरण बनकर कुछ प्यार और कुछ कड़ाई से समझाते हुए इसका जीवन में महत्त्व समझाएँ।

वस्तुतः कई वर्षों से हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के बाद भी सरनामी व हिंदी साहित्य समय व परिस्थितियों की परिधि में सिमटकर रह गया है। प्रो. दमिस्तेख को भय था कि आगामी बीस वर्षों में यह भाषा मर जाएगी। यह अनुभूत होता है कि सूरीनाम ऐसा देश है, जहाँ के भारतवंशियों में हिंदी भाषा के प्रति प्रेम तो बहुत है किंतु आर्थिक, राजनैतिक व भौगोलिक कारणों से हिंदी को चाहकर भी अंगीकार नहीं कर पा रहे। पाश्चात्य संस्कृति तथा अन्य भाषाओं का प्रभाव छात्रों में बढ़ रहा है। वे इसे जीविकोपार्जन में सहायक नहीं मानते। विद्यालय अथवा विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी को मान्यता प्राप्त नहीं है।

वर्तमान में यहाँ हिंदी साहित्य की भी कमी है। पूर्वजों द्वारा भोजपुरी, सरनामी तथा डच में रचित साहित्य बिखरा हुआ है। या तो वह संपादित नहीं हुआ अन्यथा कहीं दबा है। प्रकाशन की कठिनाइयों के कारण सूरीनाम के लेखकों को उँगलियों पर गिना जा सकता है। इसी कारण युवा भारतवंशियों को पूर्वजों की भाषा का मर्म और अहमियत की अनुभूति नहीं होती। हिंदी को व्यवसाय के रूप में देखने के कारण हिंदी पढ़ने का लाभ नजर नहीं आ रहा है।

यह प्रशंसनीय है कि अभावों के होते हुए भी अधिकतर भारतवंशियों में हिंदी प्रेम भरा है। हिंदी के प्रसार हेतु हिंदी परिषद्, युवादल, अन्य सूरीनामी संस्थाएँ व मंदिरों ने जो प्रयास जारी रखे हैं, उन्हीं में एक कड़ी और जुड़ जाती है, 'भारतीय राजदूतावास' व 'स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र'। इनका निरंतर साझा प्रयत्न हिंदी की लोकप्रियता को बढ़ाना है। इसमें सफलता भी प्राप्त हो रही है। भारतीय राजदूतावास तथा भारतीय सांस्कृतिक केंद्र (वर्तमान स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र) हिंदी परिषद् को पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध कराने के साथ हिंदी भाषा से संबंधित हर सहायता को सदा तत्पर हैं। भारत सरकार की ओर से विद्यालयों व शिक्षकों को वार्षिक मानदेय निर्धारित है। यह हर्ष का विषय है कि आगरा हिंदी संस्थान से अध्ययन कर लौटे छात्र सूरीनाम में हिंदी शिक्षण व प्रचार-प्रसार ही नहीं, साहित्य-सृजन भी कर रहे हैं। इनके प्रयत्न सराहनीय हैं।

सा.अ.
तृतीय सचिव
हिंदी पीठ, पारामारिबो, सूरीनाम
दक्षिण अमेरिका
e-mail : mishramamtamishra@gmail.com

राष्ट्रीय एकता की कड़ी हिंदी ही जोड़ सकती है। —बालकृष्ण शर्मा नवीन

इस विशाल प्रदेश के हर भाग में शिक्षित-अशिक्षित, नागरिक और ग्रामीण सभी हिंदी को समझते हैं—राहुल सांकृत्यायन

समस्त आर्यावर्त या ठेठ हिंदुस्तान की राष्ट्र तथा शिष्ट भाषा हिंदी या हिंदुस्तानी है। —सर जॉर्ज ग्रियर्सन

हिंदी भाषा अपनी अनेक धाराओं के साथ प्रशस्त क्षेत्र में प्रखर गति से प्रकाशित हो रही है। —छविनाथ पांडेय

सूरीनाम की हिंदी भाषा : स्वरूप, साहित्य और अस्मिता

● अकरम हुसैन

भौगोलिक दृष्टि से 'सूरीनाम' पश्चिमी गोलार्ध में दक्षिण अमेरिका के शीर्ष पर जल-जंगल और अटलांटिक महासागर के सौंदर्य से परिपूर्ण एक समृद्ध लोकप्रिय पर्यटक देश है। जहाँ पर अनेक देश के गिरमिटिया, प्रवासी और भारतवंशी निवास करते हैं, जिनमें डच, नीग्रो, चाइनीस तथा भारतीय गिरमिटिया श्रमिकों के वंशज आज भी वहाँ रहते हैं।

इतने प्रकार की संस्कृति, संस्कार, भाषाएँ होने पर भी गिरमिटिया श्रमिकों को कोलोनाइजर ५ जून, १८७३ में शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत अपने व्यक्तिगत लाभ तथा कृषि कार्य के लिए लाए थे। जिन्होंने अनेक कठिनाइयाँ, वेदना, देश छोड़ने की व्यथा सही, फिर भी दूसरे देश में अपनी योग्यता, ईमानदारी से कार्य किया। जबकि उनकी स्त्रियों के साथ उपनिवेशक दुराचार भी करते थे। एक ओर मातृभूमि से भावनात्मक लगाव तो दूसरी तरफ अपनी पत्नी के साथ ऐसा व्यवहार। सच में बहुत ही दर्दनाक स्थिति का सामना किया होगा गिरमिटिया श्रमिकों ने, जिसको कलम से लिख पाना संभव नहीं लगता है, उनकी संवेदनाओं को देश छोड़नेवाला व्यक्ति ही लगभग समझ सकता है, जबकि उस समय स्थितियाँ बिल्कुल भिन्न रही होंगी। गिरमिटिया श्रमिकों ने अनेक भयंकर पीड़ाओं को धत्ता बताकर अपने धर्म, संस्कृति, संस्कार, परंपराओं और भाषा को बचाकर रखा, जो उनके जीवन की सबसे अमूल्य और अद्वितीय उपलब्धि है। यद्यपि भारतीय अनेक देशों में गिरमिटिया के रूप में गए थे और उन्होंने वहाँ अपनी संस्कृति, संस्कार, धर्म और भाषा को संरक्षित करके रखा था।

आज कैरेबियन क्षेत्र में लगभग दस लाख लोगों की मातृभाषा हिंदी है, क्योंकि यह उन्हीं भारतवंशियों की पीढ़ियाँ हैं, जिन्होंने उत्तरोत्तर मानसिक विकास तो किया ही, लेकिन कभी अपनी संस्कृति, संस्कार और भाषा से समझौता नहीं किया। भारत से बाहर पश्चिमी गोलार्ध में सूरीनाम ही एक देश है, जहाँ हिंदी भाषा का प्रयोग 'सरनामी' के रूप में भारतवंशियों के तीज-त्योहार, घर, मंदिर, मसजिद सब स्थान और उत्सवों में होता है। १९६० ई. से भारत सरकार की सहायता से हिंदी भाषा की शिक्षण व्यवस्था का श्रीगणेश हुआ। सूरीनाम में अनेक देशों के लोग आकर बसे हैं, इसलिए वहाँ पर १६ मातृभाषाएँ बोली जाती हैं, ६ आकाशवाणी केंद्र, ४ दूरदर्शन केंद्र तथा धार्मिक प्रचार-प्रसार, साक्षात्कार, संगीत, सूचनाएँ और विज्ञापन आदि का प्रचार हिंदी भाषा में ही होता है। धारावाहिक, नाटक, विचार-विमर्श और हिंदी फिल्में ही सूरीनाम के दूरदर्शन का आधार हैं। सरनामी और हिंदी के बीच की खाई

लेखक एवं शिक्षक। 'भारतीय समाज और हिंदी' 'उपन्यास' (मूल लेखन)। 'थर्ड जेंडर कथा की हकीकत', 'प्रवासी साहित्य का यथार्थ' (संपादित पुस्तकें)। संप्रति स्वतंत्र लेखन एवं हिंदी विभाग अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटी से सबंद्ध।

को पाटने के लिए सरनामी शिक्षा के दौरान की हिंदी की शिक्षा भी देनी चाहिए, इससे सरनामी के लेखक हिंदी के लेखक भी बन सकते हैं।

सूरीनाम में अनेक घमासानों, जीवन को बचाने के साथ-साथ वहाँ पर गिरमिटिया श्रमिकों ने दिनभर की कठोर मजदूरी के बाद साँझ के भजन-कीर्तन और लोकगीतों में बची रही भाषा ने बचाए रखे संस्कार और संस्कारों ने बचाई रखी भाषा। जीवन-मूल्य, परंपराएँ, धर्म, रीति-रिवाज, लोकगीत, लोककथाएँ, किस्सा, जो उनके प्रवासी पूर्वज अपने साथ लेकर आए थे, उस संस्कृति को भारतवंशियों ने पर्याप्त मात्रा में आज तक सुरक्षित रखा है। सूरीनाम में गए गिरमिटिया श्रमिकों ने अपने पूर्वजों की परंपराओं को लगभग चौदह हजार किलोमीटर दूर जाकर भी संरक्षित रखा, यह भारतीय संस्कृति, संस्कार और भाषा की जीत है, जब गिरमिटिया श्रमिकों को उपनिवेशक लेकर जा रहे थे, उस समय वे पानी के जहाज के साथ काफी समय बाद सूरीनाम की धरती पर पहुँचे, लेकिन उन्होंने अपने कंठ में रामचरितमानस की चौपाई, गीता के श्लोक और कबीर की कहनी को संरक्षित करके रखा। इसके बाद वे अनेक तीज-त्योहारों में इन चौपाइयों, श्लोकों को गाया करते थे, जिससे आज भी वहाँ के भारतवंशी भाषा को बचाने का पुनीत कार्य कर रहे हैं।

शारीरिक गुलामी ने ही मानसिक शक्ति की ओर अग्रसर किया, उनके हृदय में भक्ति के राग जगाए, जिससे वे पूरे दिन खेतों में मजदूरी करते, उसके बाद नित्य पूजा-पाठ करते थे, जो उनकी मातृ-भाषा में ही होती थी। क्योंकि उनके लहू में हिंदू संस्कृति और हिंदी भाषा का निवास था। 'जुलाहे कबीर के हाथ में मजदूरी के लिए करघा था तो कैरेबियाई सहित सूरीनाम देश के भारतवंशियों के हाथ में जंगल उजाड़ने, खेत बनाने, घर बनाने-बसाने और बस्ती सजाने की जिम्मेदारी थी।' इन सब कार्यों से मुक्त होकर वे रामचरितमानस और गीता के गुटकों ने संजीवनी शक्ति का संचार किया। जिससे वे अपने देश से मानसिक तौर से जुड़े रहे और अपनी धार्मिक पद्धतियों का निर्वहन करते रहे, जो वर्तमान में भी चल रहा है। जहाँ आम-बोलचाल की भाषा कबीर

की देन थी तो रामचरितमानस पूजा-पाठ की भाषा थी, अंतत: हम कह सकते हैं अवधी, भोजपुरी का मिला-जुला असर वर्तमान में भी उनकी भाषा में दिखता है।

सन् १८७३ के बाद दस वर्षों तक प्रवासी भारतीय शिक्षा से वंचित रहे, क्योंकि खेतों में कार्य करनेवाले श्रमिक गाँव-देहात में रहते थे, बाकी लोग अधिकतर सूरीनाम की राजधानी या दूसरे शहरों में रहते थे, जिससे इन प्रवासी भारतीयों को शिक्षा से वंचित रहना पड़ा, फिर धीरे-धीरे शर्तबंदी प्रथा का प्रकोप कुछ कम हुआ तो उनको दूसरी धरती पर भी रहने के लिए धरती मिल गई, जहाँ पर वे रहने लगे और वहाँ की सरकार ने उनकी शिक्षा-दीक्षा, संस्कृति, संस्कार का जिम्मा सँभाला। ऐसे में २८ मार्च, १८७८ में यह कानून बना कि माँ-बाप को अपने बच्चों को स्कूल अवश्य भेजना चाहिए। ऐसे में भारतीय सात वर्ष तक के अपने लड़के को स्कूल भेज देते, लेकिन लड़की को घर के काम-काज के लिए घर में ही रखते। अनुबंधी गुलामों के लिए व अपनी मातृभाषा सीखने-पढ़ने के लिए विशेष स्कूलों की व्यवस्था की गई, जिन्हें 'कुली स्कूल' के नाम से जाना गया। ये सिर्फ गाँव-देहात में खुले हुए थे, जिससे प्रवासी भारतीय बच्चों को शिक्षा नसीब हुई, फिर भी लड़कियों को शिक्षा से दूर रखा गया, क्योंकि इसमें भी उपनिवेशकों की चाल थी, उनको काम करने के लिए पढ़े-लिखे श्रमिकों की आवश्यकता थी, वे यह भी भली-भाँति जानते थे कि यदि लड़के को पढ़ाया जाएगा तो परिवार का लड़का ही पढ़ेगा, जबकि एक लड़की को पढ़ाया जाएगा तो कई पीढ़ियाँ पढ़ जाएँगी, जिससे भविष्य में उनको हानि होगी। जब सब पढ़-लिख जाएँगे तो उनकी खेती का कार्य कौन करेगा।

दूसरी तरफ भारतवंशियों की योग्यता, ईमानदारी और उनके सरल विचारों के साथ-साथ संस्कृति, संस्कारों को भाषा की पैनी दृष्टि से भी डर था कि वह हिंदी के अलावा डच भी सीख गए तो स्वयं काम करेंगे और व्यापार भी स्वयं करेंगे, जिससे उनका व्यापार लगभग समाप्त हो जाएगा। इस सब दूरदर्शिता के कारण उपनिवेशक उनको डराना चाहते थे, लेकिन गिरमिटिया श्रमिकों ने अपनी योग्यता, लगन और कर्तव्यनिष्ठा से स्वयं को सिद्ध किया, तदुपरांत उनके व्यवसाय, कृषिकार्य में उन्नति हुई, लेकिन उन्होंने सब तरह के दौर देखने के बाद भारतीय संस्कृति की मुख्य कड़ी हिंदी भाषा को नहीं छोड़ा; वे लोग आपस में हिंदी या उसकी बोलियाँ भोजपुरी-अवधी को ही बोलते थे।

गिरमिटिया श्रमिकों के सूरीनाम पहुँचने के बाद उनकी पीढ़ियों को हिंदी भाषा का ज्ञान सूरीनाम के लेखकों ने रोमन लिपि में लिखकर कराया, जिससे उनको उनकी भाषा का सही ज्ञान रहे, सूरीनाम के लेखक उस रोमन लिपि में लिखी अवधी, भोजपुरी, हिंदी बोली को सरनामी हिंदी या 'महतारी भाषा' के नाम से पुकारते थे, जिसके कारण उनके हृदय में कहीं-न-कहीं हिंदी के प्रति ललक और उसके स्वाभिमान को जिंदा रखने में सहायता मिली। यदि महतारी भाषा के लेखकों की हम चर्चा करें तो हम देखते हैं कि उन्होंने किस प्रकार हिंदी भाषा और उसकी बोलियों को संरक्षित कर रखा है—'हिंदी परिवार की अनेक बोलियों के समुच्चय के कारण इन सबका अलग-अलग व्याकरण भी निर्मित हो गया और देखते-देखते हिंदुस्तानी बोली सरनामी भाषा में रूपांतरित हो गई।' सरनामी भाषा के प्रमुख रचनाकार जो रोमन लिपि में हिंदी लिखते थे, मुंशी रहमान खान, चंद्रमोहन रणजीत सिंह, महादेव खुनखुन, मार्तिन हरिदत्त लक्ष्मण, अमरजीत नाराइन, कवि अमन सिंह रमण, सुरजन परोही, आदि रचनाकारों ने अपनी सरनामी कविताओं से सरनामी हिंदी का विकास किया। उपरोक्त वही लेखक हैं, जिन्होंने मातृभाषा के मर्म को समझते हुए उसको सूरीनाम के भारतवंशियों में जीवंत रखा तथा इसके लिए अनेक संस्थाएँ बनाईं और उन संस्थाओं के माध्यम से ही हिंदी भाषा की अमूल्य सेवा की। सूरीनाम की प्रमुख हिंदी संस्थाओं ने भी महतारी भाषा को हिंदी भाषा में बदलने का भरसक प्रयास किया, जिसके कारण वर्तमान में भारतवंशी अच्छी तरह से हिंदी या उसकी बोलियों को समझते और उसी भाषा में सोचते हैं। यह कड़वा सत्य है कि यदि सोचने की भाषा ही उसकी मातृभाषा होगी तो उसके हाव-भाव, चाल-चरित्र में भी उसकी भाषा और संस्कृति का अनूठा संगम ही अद्वितीय होगा, जो संस्कार से भी परिपूर्ण अवश्य दिखेगा।

सरनामी भाषा की रोमन लिपि से देवनागरी लिपि में रचनाओं को एकत्र करके उनको हिंदी देवनागरी से जोड़ने का कार्य प्रेम की कवयित्री, यायावर, संवेदनाओं से परिपूर्ण, हिंदी साहित्य-जगत् की प्रसिद्ध विदुषी रचनाकार प्रोफेसर पुष्पिता अवस्थीजी ने जोड़ने का कार्य किया, जिन्होंने सरनामी लेखकों से सूरीनाम के भारतीय दूतावास में रहकर लगभग सन् दो हजार के आसपास सरनामी लेखकों से मिलकर उनके साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार के माध्यम से सरनामी हिंदी और हिंदी को जोड़ने का जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया, उनको मुख्यधारा में समृद्ध करके साहित्य के आयामों से परिचित कराया, उनके हृदय में संस्कृति का संचार हुआ और उनके पूर्वजों की मातृभूमि से जोड़ने का उत्कृष्ट कार्य किया। मातृभूमि से जुड़ने के लिए उन्होंने सूरीनाम के सुदूर क्षेत्रों में घूम-घूमकर भारत की संस्कृति, संस्कार और हिंदी भाषा की बोलियों भोजपुरी, मगही और अवधी का सहारा लिया, जिसने भारतवंशी भारतीयों के हृदय को झकझोर दिया, उनमें अपनी मातृभाषा के प्रति आगाध प्रेम उमड़ पड़ा और वहाँ के रचनाकारों में देवनागरी लिपि के प्रति रचनाएँ लिखने का रुझान उत्पन्न हुआ, जिसमें सूरीनाम भारतीय दूतावास के राजदूतों ने भी उनका सहयोग किया, जिससे वहाँ के प्राचीन भारतवंशी लेखकों की रचनाओं को संगृहीत करके सरनामी और हिंदी भाषा के मध्य प्रेम स्थापित किया, तत्पश्चात् वर्तमान में अनेक भारतवंशी रचनाकार हिंदी में रचनाएँ कर रहे हैं तथापि सृजनात्मक साहित्य-जगत् में चार चाँद लग गए। वर्तमान में जितना भी सूरीनाम और दूसरे देशों में हिंदी का पुण्य कार्य हो रहा है, वह प्रोफेसर पुष्पिता अवस्थी जैसी विदुषी दूरदर्शी रचनाकारों की ही देन है। कैरेबियाई देशों में हिंदी का परचम स्वतंत्रतापूर्वक लहरा रहा है, निकट भविष्य में हम उम्मीद करते हैं, भारतवंशियों को जोड़ने के लिए हिंदी ही एकमात्र भाषा होगी, जो एक सुंदर सेतु का कार्य करेगी, भारत और हिंदी की सेवा सही अर्थों में स्थापित होने की संभावना बनेगी, जैसे मानवतावादी पत्रकार यशस्वी श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने कहा है, ''एक दिन हिंदी एशिया नहीं, विश्व की पंचायत में महत्त्वपूर्ण

भूमिका अदा करेगी।''

दूरदर्शी पत्रकार हिंदी के सच्चे प्रहरी के शब्दों को प्रोफेसर पुष्पिता अवस्थी सही शब्दों में हिंदी की सेवा करके पूरे विश्व के भारतवंशियों को एक धागे में पिरोने का सार्थक कार्य कर रही हैं, प्रेम की कविताओं के माध्यम से दूसरी भाषाओं में भी उनकी कविताओं को स्थान मिल रहा है, यह हिंदी संसार के लिए सुनहरा अवसर है, जिसके कारण भारतवंशी ही नहीं, कैरेबियाई, डच, अंग्रेज भारत की अमूल्य संस्कृति से जुड़ रहे हैं।

पूर्व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, ''मेरा सिर शर्म से झुक जाता है, जब एक भारतीय दूसरे भारतीय से विदेशी भाषा अंग्रेजी में बात करता है, खासतौर से विदेशों में।'' प्रोफेसर पुष्पिता अवस्थी ने पूर्व प्रधानमंत्री के शब्दों को चुनौती के रूप में स्वीकार करते हुए हिंदी भाषा, संस्कृति, संस्कार का प्रचार-प्रसार सृजनात्मक साहित्य के अलावा अनेक पत्र-पत्रिकाओं को साथ जोड़कर किया। इसके अतिरिक्त सूरीनाम, नीदरलैंड तथा कैरेबियाई देशों में सांस्कृतिक कार्यक्रम स्थापित करके हिंदी का प्रचार-प्रसार किया और सरनामी हिंदी की रोमन-लिपि को खत्म कराकर देवनागरी लिपि में साहित्य सृजन कराया, जिसके सैंतीस प्रतिशत गिरमिटिया श्रमिकों के भारतवंशी पीढ़ियों में हिंदी भाषा के प्रति अगाध प्रेम उमड़ पड़ा है, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा कि ''भाषा मानव हृदय का कल्पवृक्ष है, भाषा के द्वारा जीवन की सारी कल्पनाएँ साकार होती हैं, भाषा के द्वारा व्यक्ति के भीतर संस्कार पड़ते हैं। संस्कारों से भाषा और अभिव्यक्ति की छवि बनती है। भाषा व्यक्ति के व्यक्तित्व की रचना करती है। भाषा का इतिहास व्यक्ति के बोलने से बनता है और समाज का इतिहास भाषा से निर्मित होता है।''

प्रोफेसर पुष्पिता अवस्थीजी ने भाषा की महत्ता को समझाकर विश्व को एक सूत्र में पिरोने का पुण्य कार्य किया है, जो वास्तव में एक अद्वितीय कार्य है, जिसके द्वारा निश्चय ही हिंदी भाषा का भविष्य विदेशों में उज्ज्वल होगा और जो बीज पुष्पिता अवस्थीजी ने बोए हैं, वे निश्चित ही एक वटवृक्ष बनेंगे, जिसकी छाया भारतवंशियों और उनकी पीढ़ियों पर पड़ेगी।

सूरीनाम में प्रमुख हिंदी सेवी संस्थाएँ, जिनके माध्यम से भारत की संस्कृति, संस्कार, भाषा और बोलियों का प्रचार-प्रसार अनवरत रूप से संचालित हो रहा है, जैसे—

१. सार्वदेशिक हिंदी परीक्षा
२. जयप्रकाश हिंदी संस्थान
३. अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन
४. राष्ट्रभाषा समन्वय समिति
५. सूरीनाम भारतभ्रातृ संघ
६. हिंदीसंस्कृति मंच
७. हिंदी प्रकाशन केंद्र
८. जवाहर साहित्य अकादमी
९. परिषद् महिला समाज

हिंदी भाषा की सेवा के लिए उपरोक्त संस्थाओं के अतिरिक्त अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने नए-नए रचनाकारों को तैयार किया तथा उनको हिंदी भाषा, संस्कार, संस्कृति से जोड़ने का अद्‌भुत कार्य किया है। प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ निम्नलिखित हैं—

१. 'सरनामी' पत्रिका, संपादक जीत नाराइन
२. भाषा पत्रिका
३. शब्द शक्ति, अतिथि संपादक प्रो. पुष्पिता अवस्थी, जनवरी २००३
४. हिंदी नामा, प्रो. पुष्पिता अवस्थी

उपरोक्त रचनाकारों, पत्र-पत्रिकाओं ने सूरीनाम और कैरेबियाई देशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जो सच में एक अद्वितीय और अविस्मरणीय कार्य है। इसको हिंदी जगत् ने काफी सराहा, दूसरी तरफ सरनामी हिंदी को देवनागरी लिपि में हिंदी भाषा को लिखा गया। इसके लिए भारतीय दूतावास सूरीनाम और प्रोफेसर पुष्पिता अवस्थी का महत्त्वपूर्ण योगदान है, जिसको सारा हिंदी संसार भली-भाँति जानता और समझता है। प्रो. पुष्पिता अवस्थी लगभग दो दशक से सरनामी हिंदी की देवनागरी लिपि में साहित्य रचना करने में सेतु का काम कर रही हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति एवं हिंदी भाषा का परचम पूरे यूरोप में लहराने का जो बीड़ा उठाया है, उसमें वे कहीं-न-कहीं कामयाब होती प्रतीत हो रही हैं। जिस प्रकार से सूरीनाम देश के भारतवंशी रचनाकार प्रोफेसर पुष्पिता अवस्थी से श्रद्धा रखते हैं, वह सच में उनकी साहित्य साधना और हिंदी भाषा के प्रति प्रेम की ही देन है, जिसको आज साहित्य-जगत् आदर से देखता है।

साअ
मोहल्ला तिगड़ी, न्यूरिया हुसैनपुर
जिला पीलीभीत
(उत्तर प्रदेश)
e-mail : akramhussainqadri@gmail.com

हिंदी संस्कृत की बेटियों में सबसे अच्छी और शिरोमणि है। **—ग्रियर्सन**

राष्ट्रभाषा के विषय में यह बात ध्यान में रखनी होगी कि यह राष्ट्र के सब प्रांतों की समान और स्वाभाविक राष्ट्रभाषा है। **—लक्ष्मण नारायण गर्दे**

हिंदी अपनी भूमि की अधिष्ठात्री है। **—राहुल सांकृत्यायन**

स्विट्जरलैंड तथा अन्य देशों में हिंदी की स्थिति

• मीरा जायसवाल

सुपरिचित लेखिका। उत्तर प्रदेश के मीरजापुर में १९ जून, १९४८ को एक मध्यम परिवार में जन्म। बी.ए., बी.एड. तक की शिक्षा-दीक्षा वहीं। विवाहोपरांत जमशेदपुर में एम.ए. की पढ़ाई। टिस्को के शिक्षा-विभाग में सत्ताईस वर्षों तक अध्यापन। यहीं रंगकर्म में सक्रियता। जीवन के अवरोह काल में मुंबई-पुणे में निवास के बाद संप्रति स्विट्जरलैंड में निवास।

यह सही है कि मैं यहाँ वर्षों पहले आई थी, किंतु न हिंदी पढ़ने न पढ़ाने आई थी। अपने निवास के दौरान स्विट्जरलैंड या अन्य देशों में जहाँ-जहाँ और जिस रूप में हिंदी मुझे मिली उसका उल्लेख मैंने अपने अनुभव के आधार पर इस आलेख में किया है।

जब मैं स्विट्जरलैंड आई तो यहाँ का पहला अनुभव भी भाषाई रहा। अपनी पहली विदेश यात्रा मैंने अकेले ही तय की थी। जब पहली बार मैं ज्युरिख एअरपोर्ट पर उतरी सुबह के छह बजे थे। दो बजे दोपहर में मेरी बेटी को लोजान से मुझे लेने आना था। मुझे वहाँ आठ घंटे तक बैठना था। उस दिन उसकी परीक्षा थी। परीक्षा समाप्त होने के बाद ही मुझे लेने आ सकती थी। लोजान से ज्युरिख आने में तीन घंटे का समय लगेगा। यह सब मुझे मालूम था, फिर भी घबरा रही थी। लगता था, अरे अभी तक बिटिया आई नहीं। घड़ी की ओर देखती तो लगता, कहीं स्विस घड़ी खराब तो नहीं। मैं इतनी देर से यहाँ बैठी हूँ, अब तक दो क्यों नहीं बजे। अभी तक बेटी आई क्यों नहीं? पता नहीं···

असल में मैं जानना चाहती थी की मेरी बेटी क्यों नहीं आई। अपनी घबराहट के कारण मैं जिस-तिस से पूछती—डू यू नो इंग्लिश? लगभग सभी से बड़ा ऐंठा हुआ जवाब मिलता—'व्हाई शुड आई नो इंग्लिश?'

बड़ी-बड़ी खिड़कियों से झाँककर देखा तो पूरा वातावरण बहुत ग्रे लग रहा था। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, सबकुछ सुरमई लगता था। इसलिए शाम न होने के बावजूद अँधेरा-अँधेरा लग रहा था। लोग-बाग भी कम थे। छत्रपति शिवाजी एयरपोर्ट जैसा मानव सैलाब नहीं था यहाँ, थोड़ी दूर पर एक लहीम-शहीम स्विस व्यक्ति ट्रॉलियों को व्यवस्थित करने में लीन था। मैं उसके पास गई और अपना प्रश्न दुहराया—डू यू नो इंग्लिश?

आश्चर्य! उसने मुझसे पूछा, 'आप हिंदी बोलती हैं? मैं हिंदी बोलता हूँ।'

मेरी तो बाँछें खिल गईं। उसके मुँह से निकली हिंदी ने मेरी आधी घबराहट दूर कर दी। मैंने उसे अपनी समस्या बताई। उसने भरसक मेरी मदद की। अपने स्विस फ्रैंक से पब्लिक फोनबूथ से मेरी बेटी से बात करवाई, क्योंकि मेरे पास स्विस नोट तो थे, लेकिन छुट्टे नहीं थे।

दरअसल वह एक पाकिस्तानी व्यक्ति था। तीस सालों से ज्युरिख एअरपोर्ट पर ट्रॉली समेटने का काम करता था। बेटी के आने के पहले उसने मुझे अपना कुछ समय भी दिया।

इस घटना का उल्लेख मैंने केवल इसलिए किया है कि उससे बातचीत के दौरान यह पता चला कि उसने एवं उसके हमवतनी लोगों ने हिंदी की लौ वहाँ जला रखी है। निश्चित रूप से उसकी हिंदी उर्दू मिश्रित थी। कनाडा, इंग्लैंड और अमेरिका की तुलना में स्विट्जरलैंड में भारतीय कम हैं। नेस्ले कंपनी में काम करनेवाले भारतीय कर्मचारी यदा-कदा मॉल में मिलते हैं। लेकिन हिंदुस्तानी होने के बावजूद क्या मजाल जो हिंदी में बात कर लें।

यहाँ रहने के दौरान फ्रेंच, जर्मन, इटैलियन, स्पैनिश सुन-सुनकर अपने पके कानों पर फाहा लगाने की गरज से मैं हुलसकर पर्यटन के लिए यहाँ आए स्वदेशी यात्रियों के पास जाती। अपने देश में छूट गई हिंदी सुनने के लिए, किंतु मेरी हुलस उस समय झुलस जाती, जब वे हिंदी में नहीं अंग्रेजी में बात करना आरंभ कर देते। मुझे बहुत निराशा होती। मुझे दुःख होता कि कैसे हिंदी भाषा-भाषी लोग भी धीरे-धीरे अपनी भाषा हिंदी का साथ छोड़ने को विवश होते दिखे। (यह विवशता क्यों है? यह अलग से वाद-विवाद का विषय है।)

इसके विपरीत यहाँ के हिंदी की औपचारिक शिक्षा प्राप्त स्विस नागरिक जब हिंदी बोलते हैं तो बिल्कुल शुद्ध बोलते हैं। हम लोग जैसे नहीं कि दस वाक्य हिंदी बोलने में कम-से-कम पाँच शब्द अंग्रेजी के बोलेंगे। ऐसा मैं अपने अनुभव के आधार पर कह रही हूँ।

मेट्रो में मुझे एक ऐसे ही सज्जन मिले थे। मेरी बेटी उनसे परिचित थी। उसने उनसे मेरा परिचय करवाया। मुझे इतना आनंद आया, जब उन्होंने बोंजूर के बदले नमस्ते और फिर पूरा वार्त्तालाप शुद्ध हिंदी में किया। वाक्य तो छोड़िए, एक शब्द भी अंग्रेजी का नहीं प्रयुक्त किया। कोई उच्चारण त्रुटि नहीं और न टोन से ही उन्होंने अपने विदेशी होने

का भान होने दिया। शक्ल-सूरत से ही स्विस लग रहे थे। हिंदी वार्त्तालाप में बहुत सहज थे। मैं मंत्रमुग्ध थी।

बेटी ने बताया, ये लोजान यूनिवर्सिटी में हिंदी के प्रोफेसर हैं। बेटी के फ्रेंच भाषी होने पर भी वे उससे भी हिंदी में ही बात करते रहे। मैं ऐसा महसूस कर रही थी, जैसे वे हमारे हिंदुस्तानी होने का मान रख रहे हैं।

जमशेदपुर में मेरी एक बंगाली सहेली कहा करती थी, 'कोलकातार नामइ सुने की भालो लागे।' (कोलकाता का नाम सुनकर ही कितना अच्छा लगता है।) उसके कथन का मर्म मुझे स्विट्जरलैंड में समझ में आया, जब स्वदेश से हजारों किलोमीटर की दूरी पर हूँ। जबकि मेरी बंगाली सहेली का कोलकाता उससे केवल तीन घंटे की दूरी पर था।

स्विस प्रोफेसर की हिंदी ने मुझे भी उस दिन शिद्दत से एहसास दिलाया कि हिंदी आर हिंदुसतानेर कोथा सुने की भालो लागे! (हिंदी और हिंदुस्तान के बारे में सुनना कितना अच्छा लगता है)

एक दशक से भी ज्यादा स्विट्जरलैंड में निवास और यूरोप के कई देशों के भ्रमण के दौरान विश्व के कई भाषा-भाषी लोगों से मिलने का सुअवसर मिला। रोमानिया छोड़कर लगभग सभी देशों में हिंदुस्तानी मिले, परंतु हिंदी नहीं मिली।

स्विट्जरलैंड में सात विश्वविद्यालय हैं—ज्यूरिख, जेनेवा, लोजान, बर्न, फ्रीबुर्ग, बाजल और सेंट गालेन। सात विश्वविद्यालयों में से दो को मैं जानती हूँ, जिनमें लोजान और जेनेवा विश्वविद्यालय में हिंदी की पढ़ाई, स्नातक, स्नातकोत्तर। एम.फिल. और पी-एच.डी. स्तर तक होती है। कम-से-कम 'रोमोंद रीजन' (जिस क्षेत्र में फ्रेंच भाषा बोली जाती है) में हिंदी की पढ़ाई होती है।

लोजान यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय से तो कई बार मैं हिंदी की पुस्तकें लाकर पढ़ती हूँ। ज्यादा तो नहीं, चार बड़ी आलमारियाँ हिंदी की पुस्तकों से भरी हुई हैं। जिनमें वेद-पुराण, उपनिषद् के अतिरिक्त अमृता प्रीतम, अमृत लाल नागर, भीष्म साहनी, अमर गोस्वामी, मैत्रेयी पुष्पा और कई अन्य लेखकों की रचनाएँ हैं।

स्पष्ट है, जब पढ़ाई होती है तो हिंदी के शिक्षक भी हैं। प्राय: ये शिक्षक स्विस ही हैं। किसी-किसी देश में डेपुटेशन पर आए भारतीय हिंदी शिक्षक भी हैं। वर्तमान में नीदरलैंड की एक यूनिवर्सिटी में एक भारतीय शिक्षक भी हैं। पूर्व में भी हमारे देश के हिंदी के विद्वान् और कहानीकार असगर वजाहत साहब हंगरी में और अब्दुल बिस्मिल्लाह साहब वारसा (पोलैंड) यूनिवर्सिटी में 'विजिटिंग प्रोफेसर' रह चुके हैं। हिंदी साहित्य, विदेशी भाषाओं में अनूदित होकर लोगों तक पहुँचने लगा है और बहुत चाव से पढ़ा भी जाता है।

यहाँ हिंदी समाचार-पत्र रोज उपलब्ध न हों, किताबों की दुकानों में हिंदी का साहित्य उपलब्ध न हो, आम नागरिक निस्संदेह हिंदी में बात न करता हो, लेकिन हिंदी फिल्म को देखने की भीड़ इस बात का द्योतक है कि हिंदी संवादवाली फिल्में पसंद की जाती हैं और कहीं-न-कहीं हमें जोड़ती हैं तथा हिंदी को प्रचारित-प्रसारित करती हैं और यही वह मौका होता है, जब अलग-अलग मुल्कों से आए लोग, जैसे बांग्लादेशी, नेपाली, श्रीलंकाई, पाकिस्तानी एक जगह मिल जाते हैं और फिर हिंदी इनके संचार का माध्यम बनती है। कुछ बालीवुड के प्रेमी इस कारण भी हिंदी सीखते हैं कि हिंदी फिल्मों का आनंद ले सकें।

मेरी पुत्री ने अपनी पढ़ाई के दौरान अपनी टीम के साथ डॉ. राही मासूम रजा के 'टोपी शुक्ला' का फ्रेंच में अनुवाद किया है, जिसको लोगों ने बड़े चाव के साथ पढ़ा। कोई भी भाषा अपने में वहाँ की संस्कृति सामाजिक सरोकार इतिहास और जन-जीवन की छाप लिये चलती है। इस मामले में भारतीय जीवन लोगों में हमेशा से आकर्षण और कौतूहल का विषय रहा है। यही कारण है कि यहाँ के विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा के विद्यार्थियों की संख्या कम नहीं। शोधार्थी विद्वान् भी हैं और इन्हीं की वजह से हिंदी विदेशों में फल-फूल रही है।

वैश्वीकरण और उदारीकरण ने देशों की दूरियाँ कम की हैं। विभिन्न देशों के बीच पारस्परिक विचार-विमर्श बढ़ रहे हैं। व्यापारिक-औद्योगिक और उदार अर्थनीति ने भी विदेशों में हिंदी के महत्त्व को बढ़ावा दिया है। व्यापारिक और औद्योगिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए जो भी हिंदुस्तान जाना चाहते हैं, उनकी बलवती इच्छा होती है कि वे हिंदी सीखें और इन कारणों से हिंदी की आवश्यकता भी अधिक महसूस की जाने लगी है।

एक ऐसा पहलू है, जिसे हमेशा नजरअंदाज किया जाता रहा, किंतु देखा जाए तो हिंदी के विस्तार और प्रचार के लिए वह एक बहुत बड़ा और सशक्त माध्यम है और वह हैं हिंदी फिल्में। हिंदी फिल्में मनोरंजन जगत् का एक ऐसा पहलू है, जो हमें विश्व के दूसरे देशों में भी काफी मशहूर करता है। दशकों पहले 'मेरा जूता है जापानी' और 'ईचक दाना बीचक दाना' ने रूस में हिंदी और हिन्दुस्तानी को बहुत मशहूर किया था। फिल्में एक ऐसा माध्यम हैं, जिसके कारण न केवल हिंदी देखी-सुनी जाती है, वरन् एन्जॉय की जाती है।

यहाँ हिंदी समाचार-पत्र रोज उपलब्ध न हों, किताबों की दुकानों में हिंदी का साहित्य उपलब्ध न हो, आम नागरिक निस्संदेह हिंदी में बात न करता हो, लेकिन हिंदी फिल्म को देखने की भीड़ इस बात का द्योतक है कि हिंदी संवादवाली फिल्में पसंद की जाती हैं और कहीं-न-कहीं हमें जोड़ती हैं तथा हिंदी को प्रचारित-प्रसारित करती हैं और यही वह मौका होता है, जब अलग-अलग मुल्कों से आए लोग, जैसे बांग्लादेशी, नेपाली, श्रीलंकाई, पाकिस्तानी एक जगह मिल जाते हैं और फिर हिंदी इनके संचार का माध्यम बनती है। कुछ बालीवुड के प्रेमी इस कारण भी हिंदी सीखते हैं कि हिंदी फिल्मों का आनंद ले सकें।

ज्यूरिख, लोज़ान, जेनेवा, बर्न में लगभग हर रविवार को केवल एक शो में हिंदी फिल्में लगती थीं। अब तो कभी-कभी एक ही फिल्म दूसरे रविवार को भी लगती है। इससे पता चलता है की हिंदी फिल्मों की

माँग उत्तरोतर बढ़ रही है, जो हिंदी के लिए शुभ संकेत है। पिछले रविवार को राजी फिल्म लगी थी और अब दूसरे रविवार को भी उसी हॉल में दिखाई जाएगी। भारतीयों के अतिरिक्त स्विस लोग भी हिंदी फिल्में देखने जाते हैं और आनंदित होते हैं।

हिंदी के प्रसिद्ध फिल्म-निर्माता यश चोपड़ा के नाम पर यूरोप के सबसे ऊँची जगह पर बसे 'यंग फ्राऊ' में बने एक रेस्तराँ का नाम है। एक झील का नाम भी उनके नाम पर है। स्विस सरकार द्वारा यश चोपड़ा को सम्मानित किए जाने के अवसर पर उनकी 'वीर जारा' फिल्म प्रदर्शित की गई थी। उस दिन 'हाउस फुल' था और स्वयं यश चोपड़ा भी उपस्थित थे।

विशेष बात यह थी कि आयोजकों ने 'वीर जारा' को हिंदी में ही रहने दिया, डब नहीं किया था। सबटाइटल फ्रेंच में था। तितलिस के बर्फीले पहाड़ पर 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएँगे' के हीरो-हीरोइन शाहरुख खान और काजोल का कट आउट लगा हुआ मैंने देखा है।

बनारस में ब्राह्मण गुरु से नृत्य सीखती थीं, उन्हीं के घर में रहती थीं। इसलिए स्वयं को भी ब्राह्मण ही समझने लगी हैं। यहाँ अपने देश में भी फ्रिज में मांस नहीं रखतीं। नहीं-नहीं हम ब्राह्मण हैं, कहकर भोजन के समय सिदहा-सकुरी भी मानने लगी हैं। कथक और हिंदी के साथ-साथ वे वहाँ की रीतियाँ भी संग ले आई हैं। मेरे स्विस दामाद की पत्नी भारतीय हैं। इसलिए दामादजी भी हिंदी सीखने के मार्ग पर उत्तरोत्तर अग्रसित हैं। भारतीय रेस्टोरेंट में चना-मसाला, आलू-गोभी और दाल का ऑर्डर वेटर को अच्छी तरह से देते हैं। चपल (चप्पल) और 'चलो' 'आओ खाओ', जैसे क्रियावाचक शब्द भी बोलते हैं। यहाँ एक विशाल तबका है, जो भारत जाने को बहुत आतुर रहता है। जाते भी हैं। कई-कई लोग अनेक बार गए हैं।

फ्लोरेंस, फ्रांस, माल्टा, क्राको, सेविया, मलागा आदि में एक दिलचस्प चीज देखने को मिली। कई रेस्तराँ ऐसे हैं, जो हैं तो पाकिस्तानी किंतु हिंदुस्तान के नाम पर चलाए जाते हैं। जिनका साइनबोर्ड हिंदी में भी होता है। अंदर जाने पर वेटर लोगों से पता चलता था कि ये हिंदुस्तानी नहीं, पाकिस्तानी रेस्तराँ है। (वेटर लोग चोरी से बताते हैं।)

इस तरह हिंदी को और इसके विकास और प्रचार-प्रसार को खासकर विदेशों में हम चार भागों में बाँटकर देख सकते हैं : पहला—एकेडमिक, जिसमे हिंदी साहित्य-दर्शन, संस्कृति और अध्यात्म का पठन-पाठन और अध्ययन विश्वविद्यालयों में किया जाता है। दूसरा पहलू है—जहाँ हिंदी साहित्य का अनुवाद विश्व की दूसरी भाषाओं में किया जाता है। यह कार्य भी संस्थागत रूप से होता है। कई विद्वान् इस दिशा में काम कर रहे हैं, जहाँ हिंदी के कई नामचीन हस्तियों की उत्कृष्ट रचनाओं का रूपांतरण और अनुवाद विश्व की दूसरी भाषाओं में होता है। तीसरा पहलू—जहाँ हिंदी उन्हीं क्षेत्रों में बोली जाती है, जहाँ भारतीयों की संख्या अधिक है।

जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, चौथा स्तंभ है—सिनेमा और मनोरंजन जगत्, जिसका काफी व्यापक प्रभाव यहाँ देखने को मिलता है और यह भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर कर रहा है। चाहे इसका रेखांकन कहीं साहित्यिक फलक पर होता हो या नहीं। गीत-संगीत का पिटारा लेकर कभी यहाँ उदित नारायण आते हैं तो कभी अलका याज्ञनिक तो कभी ए.आर. रहमान। हिंदी गीतों की छटा बिखेरने वाले इन कार्यक्रमों में स्विस या अन्य अहिंदी भाषियों की भीड़ हिंदी भाषियों से कम नहीं होती। बहुत चाव से और मगन होकर ऐसे कार्यक्रमों का आनंद उठाते हैं।

हिंदुस्तान की फिल्मों के अतरिक्त यहाँ का आयुर्वेद विज्ञान, कला-संस्कृति, पर्यटन और अंतर्देशीय विवाह विदेशों में हिंदी को बढ़ावा देने में अहम भूमिका अदा करते हैं। यहाँ प्रवास के दौरान कई घटनाओं ने इसकी पुष्टि की है।

अभी कल ही अपने स्लिप-डिस्क की चिकित्सा के लिए नेचुरोपैथ के यहाँ जाने के लिए जिस टैक्सी में मैं जा रही थी, उसके चालक ने बताया कि अभी दो सप्ताह पहले ही वह भारत से वापस आया है। वह नेचुरोपैथी और आयुर्वेद-विज्ञान सीखने के लिए छह बार भारत के विभिन्न भागों में जा चुका है।

संयोग की बात है कि उस दिन जिस नेचुरोपैथ के पास मैं गई, उन्होंने बताया कि उनकी एक सखी जरूरतमंद भारतीयों के लिए भारत में सामाजिक कार्य करती हैं। हिंदी और हिंदुस्तानियों से इतनी प्रभावित हैं कि अपना अधिक-से-अधिक समय भारत में ही व्यतीत करती हैं और धाराप्रवाह हिंदी बोलती हैं।

जेनेवा की दो स्विस बहनों ने जेनेवा में ही अपना कथक नृत्य सिखाने के लिए स्कूल खोल रखा है। उन्होंने बनारस के विश्वनाथ की सँकरी गलियों में रहकर छह साल तक कथक नृत्य सीखा है। भारत के छह वर्षों के प्रवास ने उन्हें हिंदी में प्रवीण कर दिया है। अब तो भगिनीद्वय न केवल हिंदी बोलती हैं वरन् बनारसी बोली भी धड़ाधड़ बोलती हैं, 'अरे चच्चा अगवा से हट। चला जल्दी' और 'यू नो न कि आई हेट चीज एंड शहद' और 'यू गेट डाउन फ्रॉम द आगेवाला रास्ता ऐंड आई विल गेट डाउन फ्रॉम द पीछे वाला रास्ता' जैसी हिंदी बोलने वाली अपनी हिंदुस्तानी छात्राओं से वे दोनों शिक्षिकाएँ, हिंदी में, वह भी शुद्ध हिंदी में ही बात करती हैं।

बनारस में ब्राह्मण गुरु से नृत्य सीखती थीं, उन्हीं के घर में रहती थीं। इसलिए स्वयं को भी ब्राह्मण ही समझने लगी हैं। यहाँ अपने देश में भी फ्रिज में मांस नहीं रखतीं। नहीं-नहीं हम ब्राह्मण हैं, कहकर भोजन के समय सिदहा-सकुरी भी मानने लगी हैं। कथक और हिंदी के साथ-साथ वे वहाँ की रीतियाँ भी संग ले आई हैं। मेरे स्विस दामाद की पत्नी भारतीय हैं। इसलिए दामादजी भी हिंदी सीखने के मार्ग पर उत्तरोत्तर अग्रसित हैं। भारतीय रेस्टोरेंट में चना-मसाला, आलू-गोभी और दाल

का ऑर्डर वेटर को अच्छी तरह से देते हैं। चपल (चप्पल) और 'चलो' 'आओ खाओ', जैसे क्रियावाचक शब्द भी बोलते हैं। यहाँ एक विशाल तबका है, जो भारत जाने को बहुत आतुर रहता है। जाते भी हैं। कई-कई लोग अनेक बार गए हैं।

मेरे एक स्विस मित्र हैं। भारत जाने से पहले उन्होंने मुझसे उतनी हिंदी सीखनी चाही, जितनी किसी यात्री के लिए आवश्यक होती है। लेकिन कुछ ही दिनों में बेहतरीन हिंदी बोलने लगे। उन्होंने हिंदुस्तान की यात्रा की। उन्होंने बताया था, 'मैंने भारत में जिस-जिस से भी बात की हिंदी में की। लेकिन जवाब मुझे हिंदी में कहीं नहीं मिला। शायद मेरी सफेद त्वचा की वजह से मेरे हिंदी बोलने के बावजूद बार-बार मेरे प्रश्नों का उत्तर लोगों ने अंग्रेजी में ही दिया।

प्रश्न दिमाग में कुलबुला रहा है कि क्या हिंदी की दिशा-दशा हिंदुस्तान में ठीक-ठाक है। क्या अंग्रेजी के स्कूल अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व हिंदुस्तान में ही हिंदी के वर्चस्व पर प्रश्न-चिह्न नहीं लगा रहे? हम देखते हैं कि प्राय: भाषा को धर्म और देश से जोड़कर देखा जाता है। किंतु ऐसा नहीं है। वर्तमान समय में भाषा देश की सीमाओं से आगे निकल चुकी है।

इस लेख का आशय भी यही है की हिंदी भाषा ने विदेशों में कितना स्थान बनाया है। मेरा अनुभव है कि भाषाएँ अपने साथ उस देश की मिट्टी की सुगंध साथ लेकर चलती हैं। भाषा वह मंजूषा है, जिसमें वहाँ के संस्कार, वहाँ की रूढ़ियाँ, खुलापन, रीति-रिवाज, परंपराएँ, वहाँ की संस्कृति और इतिहास को सँजोकर रखती हैं। स्पष्ट है, जब हम हिंदुस्तान को जानना चाहेंगे तो हिंदी की उस मंजूषा को खोलना पड़ेगा और हिंदी को जानना आवश्यक होगा। यही बात आप दूसरी भाषा और देश के लिए भी कह सकते हैं। यह सही है कि हिंदुस्तान में कई भाषाएँ हैं किंतु हिंदुस्तान की आत्मा से परिचित होने के लिए हिंदी का आश्रय लेना ही पड़ेगा।

अंग्रेजी को इंग्लैंड-अमेरिका से जोड़कर देखते हैं, जबकि दुनिया के कई भागों में अंग्रेजी न केवल बोली जाती है वरन् इंग्लैंड अमेरिका से इतर देशों के बहुत से ऐसे विद्वान् हुए हैं, जो अंग्रेजी के प्रकांड पंडित हुए हैं। यह सही है कि फ्रेंच भाषा फ्रांस की भाषा है। लेकिन हमें कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। मेरी पुत्री भारतीय होते हुए यहाँ अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा की शिक्षिका है।

ऊर्दू को हम पकिस्तान और इस्लाम से जोड़कर देखते हैं, जबकि सर्वविदित है कि प्रसिद्ध और अत्यंत लोकप्रिय धारावाहिक महाभारत के संस्कृतनिष्ठ पटकथा (स्क्रिप्ट) का जन्म एक भारतीय मुसलिम विद्वान् डॉ. राही मासूम रजा की लेखनी से हुआ। जिन्होंने भारत में जन्म लिया और भारत में ही सुपुर्दे खाक हुए। अब्दुल बिस्मिल्लाह की प्रसिद्ध रचना 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' से कौन हिंदी प्रेमी परिचित और प्रशंसक न होगा। इनके अलावा कई मुस्लिम लेखक और लेखिकाओं ने हिंदी साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय और सराहनीय कार्य किए हैं।

असगर वजाहत साहब की हिंदी रचनाओं का प्रशंसक कौन हिंदी पाठक न होगा। 'मेरे प्रिय कन्हैया', 'पत्थर की गली', 'औरत के लिए औरत' की लेखिका साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत नासिरा शर्मा और पद्मश्री से सम्मानित मेहरुन्निसा परवेज हिंदी में लिखती थीं। मेहरुन्निसा परवेज अपनी रचना 'अम्मा' और 'समारा' के लिए बहुत सराही गई हैं। मंजूर एहतेशाम हिंदी में लिखे अपने 'सूखा बरगद' और शानी 'काला जल' के लिए हिंदी साहित्य में अमर हैं।

ऐसे ही हिंदी को हम भारत की भाषा मानते हैं, ऐसा नहीं है। मैंने पहले उल्लेख किया है कि लोजान यूनिवर्सिटी के हिंदी विभाग के सभी शिक्षकों में एक भी हिंदुस्तानी नहीं है। पूरी की पूरी फैकल्टी स्विस है। इसी तरह से अन्य देशों के विश्वविद्यालयों में भी होगा।

हिंदी भाषा के ऐसे ही कई विदेशी विद्वानों से मिलने और हिंदी के प्रति उनके विचार जानने का अवसर मिला तो मैंने उनसे जानना चाहा कि जब हिंदी का उत्कृष्ट साहित्य विश्व की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में अनूदित है तो फिर हिंदी सीखने की क्या आवश्यकता है। इस विषय में जो उनके विचार है, उससे मैं भी इत्तेफाक रखती हूँ कि कोई भी अनुवाद उसके मूल स्वरूप से अधिक उत्कृष्ट, स्वाभाविक, बोधगम्य और प्रभावकारी नहीं होता अपितु किसी भी रचना का सही आनंद उसके मूल भाषा में अध्ययन करने से ही मिलता है। अनुवादित रचनाएँ कई बार उस बुत की तरह होती हैं, जो देखने में तो हू-ब-हू होती हैं, लेकिन उनमें जीवंतता नहीं होती। उसमें स्पंदन नहीं होता। उसमे वहाँ की मिट्टी की सोंधी सुगंध भी नहीं होती। यही वजह है कि अनुवादित रचनाएँ इतनी प्रभावकारी नहीं होतीं हैं, जबकि हम किसी रचना को उसके मूल भाषा में पढ़ते हैं तो वह अपने आप में जीवंत होती है।

उस रचना को पढ़ते समय आप वहाँ की अर्थात् उस देश और वहाँ के समाज के विभिन्न रंगों से खुद को सराबोर पाते हैं। अन्य विदेशी भाषा के हिंदी विद्वानों का मानना है कि इसी वजह से वे हिंदी सीखते हैं और पढ़ते हैं। जिस मूल भाषा में साहित्य का सृजन होता है, अकसर अनुवादित करते समय उसके प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं। कई बार भावशून्य भी हो जाते हैं। हमारा देश विभिन्नताओं से परिपूर्ण है। सभी प्रांतों की अपनी भाषाएँ हैं—तमिल, तेलुगु, उड़िया, बँगला, पंजाबी, मराठी।

इन प्रदेशों की अपनी संस्कृति है, लोकगीत हैं, परंपराएँ हैं और बहुत ही समृद्ध लोक-गाथाएँ हैं। निस्संदेह इन सभी प्रांतीय भाषाओं और लोकगाथाओं की अपनी विशेषताएँ हैं। लेकिन ये प्रांत विशेष का प्रतिनिधित्व करती हैं, किंतु समग्र भारत की आत्मा को जानना है तो उसकी जानकारी, उसका परिचय हिंदी ही करा सकती है। यही वजह है कि विदेशों में हिंदी न केवल लोगों को आकर्षित कर रही है, बल्कि लोग हिंदी से प्रेम करने लगे हैं।

Av d' yverdon 5
1004 Lausanne
Switzerland
e-mail : meera.rasguni@gmail.com

स्विट्जरलैंड में हिंदी की स्थिति

● राहुल सिद्धार्थ

स्नातक, स्नातकोत्तर तथा पी-एच.डी. (हिंदी) की शिक्षा प्राप्त राहुल सिद्धार्थ के विविध पत्रिकाओ में आलोचनात्मक लेख एवं नाट्य आलोचना पर पुस्तक प्रकाशित। इसके अलावा पाठ्यक्रम हेतु अध्ययन सामग्री का लेखन, ई.पी.जी. पाठशाला हेतु लेखन (यू.जी.सी.)। संप्रति सहायक प्राध्यापक (हिंदी) भाषा साहित्य और कला केंद्र साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय।

कोई भी व्यक्ति या विद्यार्थी किसी नई भाषा को सीखने हेतु कई कारणों से आकृष्ट होता है। यह संभव है कि संबंधित व्यक्ति/विद्यार्थी किसी देश विशेष की संस्कृति, सभ्यता, दर्शन, रीति, परंपरा, ज्ञान के क्षेत्र में उसके कुछ-न-कुछ मूल्यवान योगदान से प्रभावित होकर उस भाषा-विशेष को सीखने के प्रति आकर्षित होता है या उस भाषा की ज्ञान की परंपरा इतनी समृद्ध होती है कि उसके शोधपरक अधययन से नए तथ्य सामने आने की संभावना विद्यमान हो। यह भी संभव है कि वह भाषा व्यवसाय की दृष्टि से विद्यार्थियों को आकर्षित करती होगी।

लेकिन यहाँ मैं लुजेन विश्वविद्यालय, स्विट्जरलैंड में हिंदी के पठन-पाठन संबंधी स्थितियों पर बात कर रहा हूँ। यूरोप और विश्व के सबसे खूबसूरत माने जानेवाले देश स्विट्जरलैंड में हिंदी के प्रति विद्यार्थियों की रुचि भी खास है। ये विद्यार्थी भारत की सभ्यता और विविधतामयी संस्कृति से प्रभावित होकर इस देश की ज्ञान की परंपरा की ओर आकर्षित हो रहे हैं। हो सकता है, कारण और भी हों। सभी की रुचि केवल संस्कृति को जानने और समझने की ही नहीं होती, पर फिर भी भारत के प्रति गहरा आकर्षण है। इसमें कोई शक नहीं। इन विद्यार्थियों को शाहरुख खान की फिल्मों में रुचि है। हिंदी बॉलीवुड इन्हें अपनी ओर खींचता है। उन फिल्मों के गीतों को भी ये गुनगुनाते हैं। भले ही बोल इन्हें याद नहीं होते। हालाँकि यह बात बड़ी ही घिसी-पिटी लग सकती है, पर उसमें कोई शंका नहीं कि हिंदी भाषा और एक खास तरह की संस्कृति की समझ के निर्माण में हिंदी फिल्मों ने एक बड़ी भूमिका निभाई है। हालाँकि इसमें एक पेंच है। फिल्मों ने जिनके समक्ष एक खास तरह की तसवीर बनाई हैए उस तरह की तसवीर अब भारत में अनुपलब्ध होती जा रही है। भारत जाने पर फिल्मों से बने भारत और असली भारत की तसवीर के बीच टकराहट होती है और इसके द्वारा छवि निर्माण और छवि परिवर्तन भी होता है। एक शिक्षक के रूप में हमारी जिम्मेदारी होती है कि उन छवियों के बीच एक संतुलन निर्मित किया जा सके। एक सीमा तक यह कार्य करने की जिम्मेदारी मैंने भी निभाई। यहाँ विद्यार्थियों के भीतर जिज्ञासा की कमी नहीं है, पर उस जिज्ञासा को निभाना भी एक गहरी चुनौती है।

हिंदी की पढ़ाई तो विश्व के अनेक देशों में होती है, लेकिन स्विट्जरलैंड भी इससे अछूता नहीं है। यों तो इस देश में फ्रेंच और इटालियन बोलनेवालों की संख्या ज्यादा है और फ्रेंच ही मुख्यत: बोलचाल की भाषा से लेकर सरकारी कामकाज की भाषा है। भाषा की इन स्थितियों के बीच स्विट्जरलैंड के लूजेन विश्वविद्यालय और ज्यूरिख विश्वविद्यालय में हिंदी साहित्य और भाषा का अध्ययन-अध्यापन का कार्य चल रहा है। प्रो. माया बर्जर और डॉ. निकोला पोजा लुजैन में हिंदी के विकास में बहुत बड़ी भूमिका निभा रहे हैं।

लूजेन विश्वविद्यालय (यूनिल) जो कि स्विट्जरलैंड के लूजेन शहर में अवस्थित है, जहाँ पर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् भारत सरकार के सहयोग से हिंदी में अध्ययन/अध्यापन का कार्य चल रहा है। यहाँ भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के द्वारा 'गोर चेयर' की स्थापना की गई है, जो हिंदी के पठन-पाठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। लूजेन विश्वविद्यालय का हिंदी विभाग पी-एच. डी. (हिंदी) के साथ-साथ हिंदी भाषा एवं साहित्य के अंतर्गत तीन पाठ्यक्रमों (प्रारंभिक, मध्यवर्ती और उच्चतम) का संचालन करती है। यहाँ के छात्र जो हिंदी पढ़ते हैं, वे यूरोप के अलग-अलग देशों के होते हैं तथा भारत की सभ्यता, संस्कृति ज्ञान की पुरातन प्रणाली और दर्शन से प्रभावित होकर हिंदी भाषा और साहित्य की ओर आकर्षित होते हैं। भारत की सांस्कृतिक विविधताएँ उन्हें हिंदी भाषा को पढ़ने हेतु निश्चित ही आकर्षित करती है।

प्रांभिक स्तर के छात्र सर्वप्रथम हिंदी की वर्तनी की शुरुआत से लेकर सामान्य वाक्य के निर्माण तक के स्तर को प्राप्त करते हैं। हाँ, इन सबके बीच आवश्यक होता है कि वे हिंदी के उच्चारण पर विशेष ध्यान दें। यह हिंदी का विशेष उच्चारण या उन्हें अपनी कक्षा में अध्यापकों के साथ वार्त्तालाप के क्रम में प्राप्त होता है या कक्षा में विविध प्रकार के दृश्य-श्रव्य के अभ्यासों के माध्यम से किया जाता है। प्रारंभिक स्तर के छात्र दृश्य-श्रव्य माध्यम के सहारे सीखने की भरपूर कोशिश करते हैं, लेकिन एक नई भाषा के प्रति उनकी जिज्ञासा, लगाव, आकर्षण बनाने

का कार्य अध्यापक को बखूबी निभाना पड़ता है। ये छात्र हिंदी के अतिरिक्त अन्य विषय भी पढ़ते हैं—फ्रेंच, इटालियन, अर्थशास्त्र, उर्दू आदि। अत: विविध विषयों के भाषा की संरचना से अलग इन्हें एक नए वातावरण में हिंदी के लिए बेहतर वातावरण का निर्माण कर भाषा को सीखने में मदद करनी पड़ती है। ये छात्र मेहनती होते हैं तथा भाषा की संरचना से लेकर उच्चारण तक को आत्मसात् करने में सक्षम भी होते हैं। हाँ, प्रारंभिक स्तर के छात्र के पास हिंदी की सीमित शब्दावलियाँ होती हैं, अत: संबंधित हिंदी के प्राध्यापक को अकसर इस बात का ध्यान रखना जरूरी होता है कि वे उन शब्दावलियों का प्रयोग करें, जिनसे छात्र परिचित हो तथा जहाँ भी नए शब्द आते हैं, उन्हें ब्लैकबोर्ड पर लिखा जाना आवश्यक होता है, ताकि छात्रों का परिचय नए शब्दों के साथ होता रहे। इन पठन-पाठन के क्रम में छात्रों का मूल्यांकन लिखित एवं मौखिक रूप में निरंतर होता रहता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया कि यहाँ की मुख्य भाषा तो फ्रेंच है, अत: ये छात्र हिंदी पाठों का अनुवाद फ्रेंच में तथा फ्रेंच पाठों का अनुवाद हिंदी में करते हैं। इस विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्राध्यापक श्री निकोला पोजा के निर्देशन में ये छात्र फ्रेंच से हिंदी के अनुवाद कार्य को करते हैं और इस प्रकार विभिन्न अभ्यासों के माध्यम से हिंदी की प्रारंभिक कक्षा ये पूर्ण करते हैं। हिंदी सीखने के साथ ही ये छात्र भारत अपने पाठों के माध्यम से विभिन्न मौसमों आदि के बारे में बात करते हैं।

विश्वविद्यालय के इंटरमीडिएट (मध्यवर्ती) स्तर के छात्र हिंदी की भाषिक संरचना से लेकर उच्चारण स्तर तक बेहतर स्थिति में होते हैं। इनकी कक्षा की शुरुआत हिंदी के समाचार-पत्रों के साथ होती है। प्रत्येक विद्यार्थी समाचार-पत्र की मुख्य पंक्ति को पढ़कर उसपर अपनी राय देते हैं। समाचार पंक्ति पर अपनी राय देने का अर्थ होता है कि विद्यार्थी हिंदी की भाषिक संरचना के साथ-साथ अभिव्यक्त विचार को समझने में सक्षम हैं। इन विद्यार्थियों के लिए विशेष पाठ का निर्माण हिंदी विभाग के प्राध्यापकों ने किया है। इस पाठ को पढ़ते हुए जहाँ वे एक तरफ भारत के विविध त्योहार, शादी, खेल, मौसम आदि की जानकारी प्राप्त करते हैं तो दूसरी तरफ उन पाठों के आधार पर बने प्रश्नों का लिखित एवं मौखिक उत्तर भी देते हैं। इस कक्षा में भी हिंदी से फ्रेंच और फ्रेंच से हिंदी के अनुवाद का कार्य जारी रहता है। इसके साथ ही छात्र श्रव्य-दृश्य माध्यम के द्वारा हिंदी को समझने की कोशिश करते हैं। ये छात्र कक्षा में हिंदी फिल्म भी देखते हैं। चूँकि इनकी समझ हिंदी को लेकर बेहतर हो चुकी होती है, इसीलिए फिल्म को खंड-खंड में देखते हुए उसपर विमर्श करते हुए आगे बढ़ते हैं। भारतीय त्योहार एवं संस्कृति के प्रति इनका लगाव हिंदी भाषा को सीखने में इन्हें काफी मदद पहुँचाती है। कक्षा में ये छात्र हिंदी संगीत को सुनकर भी उसे समझने की कोशिश करते हैं। यह संगीत कभी फिल्मी तो कभी शास्त्रीय होते हैं। संगीत की विविधता में वे भाषा के अनेक रूपों से परिचित होते हैं। हाँ, इनका लिखित एवं मौखिक मूल्यांकन साथ-साथ चलता है, ताकि उन्हें समय-समय पर उचित सलाह दी जाती रहे।

फिल्म यदि किसी संस्कृति के बारे में अपनी बात कहती है तो उसके माध्यम से वे संस्कृति को समझते हैं। फिल्म के विविध चरित्रों के बारे में बात करते हुए अपनी राय रखते हैं। इस प्रकार फिल्म उन्हें एक तरफ अन्य संस्कृति का ज्ञान भी कराती है तो दूसरी तरफ वे अपनी बात उस फिल्म की विविध स्थितियों पर व्यक्त करने में सहजता भी महसूस करते हैं। इसके साथ ही ये छात्र हिंदी के विविध समाचार-पत्रों को पढ़ते हुए उस पर अपनी बात रखते हैं।

विश्वविद्यालय के छात्र जो हिंदी कक्षा के उच्चतम स्तर में होते हैं, उनके लिए अध्ययन-अध्यापन का तरीका अलग होता है। यहाँ तक आते-आते छात्रों की शब्दावली में बढ़ोतरी हो चुकी होती है। वे हिंदी भाषा की वृहत्तम भाषिक संरचना से भी परिचित होते हैं। उनके लिए कक्षा का उद्देश्य हिंदी का ज्यादा-से-ज्यादा मौखिक अभ्यास कराना होता है, छात्रों को हिंदी में बोलने और किसी विषय पर आपस में विचार विनिमय करने हेतु एक बेहतर माहौल एवं मौका प्रदान करना आवश्यक होता है। ये छात्र हिंदी फिल्म को देखते हुए अपनी बात रखते हैं। फिल्म के उद्देश्य पर अपनी बात रखते हैं। फिल्म यदि किसी संस्कृति के बारे में अपनी बात कहती है तो उसके माध्यम से वे संस्कृति को समझते हैं। फिल्म के विविध चरित्रों के बारे में बात करते हुए अपनी राय रखते हैं। इस प्रकार फिल्म उन्हें एक तरफ अन्य संस्कृति का ज्ञान भी कराती है तो दूसरी तरफ वे अपनी बात उस फिल्म की विविध स्थितियों पर व्यक्त करने में सहजता भी महसूस करते हैं। इसके साथ ही ये छात्र हिंदी के विविध समाचार-पत्रों को पढ़ते हुए उस पर अपनी बात रखते हैं। समाचार-पत्र की कोई भी महत्त्वपूर्ण खबर, चाहे राजनीतिक हो, सामाजिक हो, धार्मिक हो, खेल का हो, वे अपनी बात रखते हैं। कभी-कभी हिंदी कक्षा का माहौल एक वाद-विवाद की कक्षा में तब्दील हो जाता है, जिसमें एक ही विषय पर छात्रों द्वारा विभिन्न प्रकार के मत व्यक्त किए जाते हैं। जैसे हलाला प्रथा। इन विविध प्रकार के अभ्यासों के माध्यम से यह प्रयास किया जाता है कि ये छात्र हिंदी में ज्यादा-से-ज्यादा वार्त्तालाप कर सकें और उनके लिए हिंदी बोलने के ज्यादा-से-ज्यादा अवसर भी उपलब्ध कराए जाएँ।

इसके अतिरिक्त ये छात्र हिंदी की कहानियाँ-कविताएँ और नाटक का भी अध्ययन करते हैं। उच्चतम स्तर के विद्यार्थियों को हिंदी की विविध प्रविधियों से परिचय कराना भी उद्देश्य होता है। ये छात्र खड़ी बोली हिंदी तो पढ़ते ही हैं लेकिन ब्रजभाषा भी पढ़ते हैं। हिंदी की विविध प्रविधियों को पढ़ते हुए इन्हें हिंदी के वृहत्तम फलक से परिचय करना भी उद्देश्य होता है। इन कक्षा में अध्ययन-अध्यापन करते हुए ये छात्र भारत के किसी पर्व विशेष को भी मनाते हैं और उसपर बात करते हैं।

स्पष्ट है कि यहाँ हिंदी का शिक्षण केवल कक्षा तक ही केंद्रित नहीं है बल्कि उसे संस्कृति से जोड़कर भी पढ़ा जाता है, जिससे कि विद्यार्थियों को भाषा एवं संस्कृति की मुकम्मल जानकारी मिल सके। विदेशी छात्र भारत की संस्कृति के साथ वहाँ की भाषा पढ़ना चाहते हैं, अत: दोनों को मुकम्मल रूप से एक साथ ही पढ़ा जाना आवाश्यक होता है। भारतीय संस्कृति, धर्म, नीति, परंपराए दर्शन की रीढ़ पर ये छात्र भारतीय भाषाओं, खासकर हिंदी को पढ़ना चाहते हैं। हिंदी भाषा को पढ़ते हुए ये छात्र भारतीय संस्कृति और परंपरा को भी समझते हैं और इस परंपरा के अंतर्गत भाषा को पढ़ने में वे ज्यादा रुची दिखाते हैं।

इंटरमीडिएट (स्नातक) और उच्च श्रेणी (एम.ए.) के छात्र अनवरत रूप से ऑडियो स्टूडियो में जाकर अपने-अपने उच्चारण का अभ्यास करते हैं। ऑडियो स्टूडियो के माध्यम से विद्यार्थी हिंदी भाषा के उच्चारण में अपेक्षित सुधार करते हैं और यह सुविधा लूजेन विश्वविद्यालय अपने विद्यार्थियों को प्रदान करता है। इन विद्यार्थियों की लिखित एवं मौखिक परीक्षा के साथ-साथ उच्चारण हेतु टेस्ट तो ऑडियो स्टूडियो में ही होता है। ऑडियो स्टूडियों में निरंतर अभ्यास विद्यार्थियों को उच्चारण की दृष्टि से दक्ष बनाता है एवं उनमें हिंदी भाषा के प्रति आत्मविश्वास का विस्तार करता है।

हिंदी के सभी विद्यार्थी सेमेस्टर के अंत में हिंदी भाषा में एक नाटक का प्रदर्शन भी करते हैं। हिंदी विभाग द्वारा विशेष रूप से तैयार कराए जानेवाले इस नाटक में हिंदी विभाग के सभी विद्यार्थी शामिल होते हैं। ये छात्र पूरी मेहनत के साथ नाटक के संवाद और भाषा पर निरंतर लगभग तीन महीने तक अभ्यास करते हैं। इस नाटक की तैयारी में यहाँ भी मूल उद्देश्य हिंदी भाषा के शब्दों का उच्चारण होता है। सभी विद्यार्थी विशेष रूप से उच्चारण पर ध्यान देते हुए संवादों के सफल संप्रेषण की कोशिश करते हैं।

भारत से जानेवाले शिक्षक हर वर्ष इसमें सहयोग कर रहे हैं। यह एक सकारात्मक स्थिति है। काश भारत में भी भाषा को लेकर नई प्रविधियाँ बन सकें और भाषाओं के प्रति रुझान बढ़ सके। किसी भी देश की प्रगति में भाषाओं की बड़ी भूमिका है, स्विट्जरलैंड इस बात को समझ चुका है, हम भी समझें और आठवीं अनुसूची के साथ-साथ अन्य भाषाओं को भी स्थान दे सकें, इसकी उम्मीद ही एक बेहतर समाज की ओर एक कदम हो सकता है, स्विट्जरलैंड भारत की ओर बड़ी आशा से देख रहा है, इसकी राजनैतिक स्थितियों की ओर भी, यदि हम अपनी बेहतर तसवीर बना सकें तो उस देश के विद्यार्थी भी हमारी भाषा और संस्कृति को सीखने की इच्छा रखते हैं, कब तक हम अपनी औपनिवेशिक तस्वीर निर्मित करके ही आत्मराग और आत्मधुन से संतुष्ट रहेंगे!

इस प्रकार लूजेन विश्वविद्यालय, स्विट्जरलैंड के हिंदी के विद्यार्थी कक्षा की विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से हिंदी भाषा सीखते हैं और भारतीय साहित्य, ज्ञान, दर्शन, पर्व, त्योहार की परंपरा का सान्निध्य उन्हें इस हिंदी भाषा को सीखने में सदैव ही प्रोत्साहित करता है।

असल में भाषा और अधिगम का मसला आपस में जुड़ा हुआ है। जिस स्थान पर विद्यार्थी और शिक्षक शिक्षण में आपसी संबंध निर्मित हो जाता है, उस देश में अपनी शिक्षण प्रविधियाँ निर्मित हो जाती हैं, हो सकती हैं, स्विस विश्वविद्यालय अपनी प्रविधियाँ बनाने के लिए प्रयासरत है। भारत से जानेवाले शिक्षक हर वर्ष इसमें सहयोग कर रहे हैं। यह एक सकारात्मक स्थिति है। काश भारत में भी भाषा को लेकर नई प्रविधियाँ बन सकें और भाषाओं के प्रति रुझान बढ़ सके। किसी भी देश की प्रगति में भाषाओं की बड़ी भूमिका है, स्विट्जरलैंड इस बात को समझ चुका है, हम भी समझें और आठवीं अनुसूची के साथ-साथ अन्य भाषाओं को भी स्थान दे सकें, इसकी उम्मीद ही एक बेहतर समाज की ओर एक कदम हो सकता है, स्विट्जरलैंड भारत की ओर बड़ी आशा से देख रहा है, इसकी राजनैतिक स्थितियों की ओर भी, यदि हम अपनी बेहतर तसवीर बना सकें तो उस देश के विद्यार्थी भी हमारी भाषा और संस्कृति को सीखने की इच्छा रखते हैं, कब तक हम अपनी औपनिवेशिक तस्वीर निर्मित करके ही आत्मराग और आत्मधुन से संतुष्ट रहेंगे!

विजिटिंग प्रोफेसर
दक्षिण एशिया अध्ययन विभाग
लुजैन विश्वविद्यालय, स्विट्जरलैंड
e-mail : rahulsid77@gmail.com

हम हिंदीवालों के हृदय में किसी संप्रदाय या किसी भाषा से रंचमात्र भी ईर्ष्या, द्वेष या घृणा नहीं है।

—शिवपूजन सहाय

हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है, इसमें कोई संदेह नहीं।

—अनंत गोपाल शेवड़े

हिंदी को ही राजभाषा का आसन देना चाहिए।

—शचींद्रनाथ बख्शी

हंगरी में हिंदी की स्थिति

• प्रमोद कुमार शर्मा

भारत की धरती पर अपना पहला कदम रखनेवाला पहला ज्ञात हंगारी-व्यक्ति ज्योर्जी हुल्त्सी था, जो तुर्की सल्तनत की सेना के एक दास के रूप में भारत-भूमि पर आया था। शिक्षित व खोजी होने के कारण उसने भारत संबंधी अपने तत्कालीन अनुभवों को निरंतर कलमबद्ध किया। उसके अनुभव अभी तक अप्रकाशित हैं।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा ऐल्ते विश्वविद्यालय, बुदापैश्त, हंगरी में हिंदी पीठ में प्रतिनियुक्त होकर तीन वर्ष तक अध्यापन। गत ३७ वर्षों से केंद्रीय हिंदी संस्थान में कार्यरत। संप्रति क्षेद्धीय निदेशक, दिल्ली केंद्र। भाषा-प्रौद्योगिकी, अनुवाद पत्रकारिता के क्षेत्र में शोध व लेखन।

हंगरी में भारतीय विद्या अध्ययन-अध्यापन का प्रारंभ

हंगरी में संस्कृत या भारतीय विद्या का अध्ययन प्रारंभ होने से पहले ही हंगारी भाषा में कतिपय भारतीय रचनाओं का लैटिन भाषा में किए गए अनुवाद उपलब्ध थे। १७वीं और १८वीं शताब्दी में हंगारी में पंचतंत्र की कथाओं के तुर्की व फारसी भाषा में अनुवाद किए गए थे, पर ये अनुवाद भी सीधे संस्कृत से न थे। सत्रहवीं शताब्दी में हंगरी भाषा में इस तरह का जो पहला भारतीय अनुवाद मिलता है, उसका शीर्षक 'होरोलगियम टर्किकुम' है। इसके अनुवादक दाविद रोजन्याह थे। सन् १६३५ में स्थापित ओत्वोश लौरेंद विश्वविद्यालय के दर्शन संकाय के अंतर्गत १८७३ में 'भारोपीय अध्ययन विभाग' की स्थापना तक भारोपीय अध्ययन और अनुवाद की परंपरा को आगे बढ़ाने में इस्तवान वाल्यी, फेरेंस वेरसेज्यी, कोरोशी चोमा शांदोर, सर औरेल स्ताइन आदि अनेक हंगारी विद्वानों का योगदान रहा है।

'भारोपीय अध्ययन विभाग' की स्थापना के उपरांत ऑरेल मायर, योसेफ स्मिदत, कोजराल्ड जेरमेयी, योजेफ वेकेर्दी, लेज्लो गाल, यानोश हरमत्ता, चाबा तोत्तोशी आदि जैसे विद्वानों ने भारोपीय अध्ययन-अध्यापन की परंपरा को आगे बढ़ाया। हंगरी में भारतीय भाषाओं से अनुवाद की चर्चा करें तो करोय फियोक, यानोश अरन्य, इर्विन बक्ताय आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। हिंदी व संस्कृतेतर भाषाओं से हंगरी भाषा में हुए कुछ अनुवाद कार्य इस प्रकार हैं—हंगरी भाषा में मध्यकालीन कवियों में से मीराबाई और आनंदघन की कविताओं का अनुवाद उपलब्ध है। इसके अलावा सीताकांत महापात्र, पद्मा सचदेव, फैज, अशोक बाजपेयी, रघुवीर सहाय, उपेंद्रनाथ अश्क, गिरीश कर्नाड, भारतीय लोककथाएँ, प्रेमचंद की अनेक कहानियाँ, उपन्यास, अज्ञेय, मोहन राकेश, अमृत राय, कमलेश्वर, रेणु, भीष्म साहनी, गिरिराज किशोर, यशपाल, धर्मवीर भारती, मुल्कराज आनंद, मानिक बंद्योपाध्याय, बिभूतिभूषण बनर्जी, ए. अनंतमूर्ति, फकीरमोहन सेनापति, कमला मार्कंडेय, खुशवंत सिंह, श्रीकांत वर्मा, अमृता प्रीतम, आर.के. नारायण, करतार सिंह दुग्गल, असगर वजाहत, राजा प्रोक्टर, राजा राव कांतपुरा, चमन नाहल आदि की कविताओं, कहानियों, एकांकियों, नाटक आदि के अंग्रेजी या हिंदी भाषा से हुए अनुवाद उपलब्ध हैं।

हिंदी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा

हंगरी में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा पाँचवें दशक में प्रारंभ हुई थी। इस कार्य की शुरुआत हंगरी के भारतीय दूतावास में कार्यरत दैबरैत्सैनी आर्पाद ने की थी। उन्होंने स्वयं हिंदी सीखने के बाद विश्वविद्यालय में हिंदी अध्यापन करने का कार्य किया था। इनके अनुसंधान क्षेत्र हिंदी की क्रिया संरचना व विभिन्न शैलियाँ थीं। इन सभी पर इनके प्रपत्र विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। कुछ प्रपत्रों के शीर्षक हैं—Question of Simple and Compound Verbal forms and other Characteristics of the Hindi Verbal System, Stress and Intonation in Hindi. इनका शोध भी हिंदी में बलाघात और अनुताप विषय पर है। इन्होंने एक प्रारंभिक पाठ्य-पुस्तक (१९८३) तैयार करने, कुछ साहित्यिक रचनाओं का अनुवाद करने के साथ-साथ हिंदी-हंगेरियन कोश (अप्रकाशित) का निर्माण भी किया था। हंगरी हिंदी का पहला कोश तो भारत में हंगरी के भूतपूर्व राजदूत पेतैर कोश ने तैयार किया था, जो १९७३ में प्रकाशित हुआ था। दैबरैत्सैनी आर्पाद ने विश्व साहित्य एन्साइक्लोपीडिया में आधुनिक भारतीय लेखकों के विषय में साहित्य अकादमी की सहायता से लिखा। ऐल्ते विश्वविद्यालय में तथा हंगरी में हिंदी शिक्षण प्रारंभ करने का श्रेय इनको दिया जा सकता है।

हिंदी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा के विकास का पूरा श्रेय सुश्री मारिया नेज्यैशी को जाता है। पिछली शताब्दी के नौवें दशक में जब उन्होंने हिंदी पढ़ाना प्रारंभ किया था, तब विश्वविद्यालय में न तो हिंदी का कोई सुनिश्चित पाठ्यक्रम था, न ही पाठ्य-पुस्तकें थीं। उस समय बुडापेस्ट में हिंदी बोलनेवालों की संख्या न के बराबर थी। मारिया नेज्यैशी ने प्रारंभ में रूसी व अंग्रेजी माध्यम की हिंदी शिक्षण की पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग करके हिंदी अध्यापन का कार्य शुरू किया। इसके बाद उन्होंने स्वयं कुआँ खोदकर पानी पीने जैसा कार्य किया। वे

हर सप्ताह पढ़ाने के लिए नया पाठ तैयार करती थीं और फिर उस पाठ की सहायता से अध्यापन कार्य करती थीं। उन्होंने हिंदी का अध्ययन केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में किया। 'प्रेमचंद और मोरित्स जिगमोंद का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से शोध उपाधि प्राप्त की। इस तरह विश्वविद्यालय के स्तर पर हिंदी शिक्षण का पाठ्यक्रम बनाने का श्रेय मारिया नेज्यैशी को जाता है। इन्होंने सभी समस्याओं का न केवल सामना किया, वरन् उनका समाधान किया और हिंदी अध्ययन-अध्यापन के झंडे को बुलंद रखा। मारिया ने अनेक हंगरी कहानियों का हिंदी तथा हिंदी कहानियों का हंगारी में अनुवाद भी किया है, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं व पुस्तकों में प्रकाशित हो चुकी हैं। इन्होंने आई.सी.सी.आर. द्वारा प्रतिनियुक्त अतिथि प्राचार्यों को प्रेरित कर कुछ पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण भी करवाया है। अब इस विभाग के अध्यक्ष संस्कृत भाषा के विद्वान् आई. माते हैं।

हिंदी का विधिवत् अध्यापन प्रारंभ होने के बाद भारत सरकार और राजदूतावास के सहयोग से हिंदी की पुस्तकें ऐल्ते विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग को मिलने लगीं। इससे हिंदी अध्ययन और अध्यापन का कार्य थोड़ा सा आसान हो गया। आजकल ऐल्ते विश्वविद्यालय का हिंदी पुस्तकालय एक समृद्ध पुस्तकालय माना जाता है। मारिया नेज्यैशी अपने छात्रों को व्याकरण अनुवाद विधि से तथा हंगरी भाषा के माध्यम से हिंदी की शिक्षा देती हैं। पर इनकी कक्षाओं के छात्र पहला स्तर पूरा करने पर कामचलाऊ हिंदी का प्रयोग करने में समर्थ हो जाते हैं। छात्र भी हिंदी पाठों को समझकर हंगरी भाषा में उनका अर्थ आसानी से समझा सकते हैं।

हिंदी का विधिवत् अध्यापन प्रारंभ होने के बाद भारत सरकार और राजदूतावास के सहयोग से हिंदी की पुस्तकें ऐल्ते विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग को मिलने लगीं। इससे हिंदी अध्ययन और अध्यापन का कार्य थोड़ा सा आसान हो गया। आजकल ऐल्ते विश्वविद्यालय का हिंदी पुस्तकालय एक समृद्ध पुस्तकालय माना जाता है। मारिया नेज्यैशी अपने छात्रों को व्याकरण अनुवाद विधि से तथा हंगरी भाषा के माध्यम से हिंदी की शिक्षा देती हैं। पर इनकी कक्षाओं के छात्र पहला स्तर पूरा करने पर कामचलाऊ हिंदी का प्रयोग करने में समर्थ हो जाते हैं। छात्र भी हिंदी पाठों को समझकर हंगरी भाषा में उनका अर्थ आसानी से समझा सकते हैं।

हिंदी अध्ययन-अध्यापन के संबंध में सन् १९९२ में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की ओर से ऐल्ते विश्वविद्यालय के भारोपीय अध्ययन विभाग में हिंदी के एक अतिथि प्रोफेसर की पीठ का सृजन करना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इस पीठ पर पहली बार नियुक्त, हिंदी के एक जाने-माने साहित्यकार डॉ. असगर वजाहत ने हिंदी के साथ-साथ उर्दू पढ़ाने का कार्य प्रारंभ किया और मारिया नेज्यैशी के साथ मिलकर हिंदी अध्यापन की पाठ्य-पुस्तक की रचना की। इन्होंने छात्रों की आधुनिक साहित्य के अध्ययन में रुचि जाग्रत् की। इस परंपरा को डॉ. लक्ष्मण सिंह बिष्ट 'बटरोही', डॉ. रविप्रकाश गुप्ता, डॉ. उमाशंकर उपाध्याय, डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा, डॉ. विजय सती, और डॉ. रमा यादव ने आगे बढ़ाया। आजकल डॉ. दिलीप शाक्य इस परंपरा के तहत अध्यापन कार्य कर रहे हैं। हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार व समालोचक डॉ. बटरोही ने आधुनिक काव्य-संकलन तैयार करने के साथ-साथ उनको मध्यकालीन हिंदी कविता का अध्ययन करने के लिए भी प्रेरित किया।

डॉ. रविप्रकाश गुप्ता ने अपने कार्यकाल के दौरान माध्यमिक स्तर के छात्रों के लिए 'बोलचाल की हिंदी' नामक वार्त्तालाप पुस्तक तैयार की, जो आज भी छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होती है।

डॉ. उपाध्याय ने मध्यकालीन काव्य-संकलन का निर्माण किया, साथ ही राम व कृष्ण की कथाओं का अध्यापन कर इनके अध्ययन में छात्रों की रुचि जाग्रत् की। मध्यकालीन कविता विषय चुननेवाले छात्र अध्ययन के लिए इसी पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग करते हैं।

जनवरी २००८ में विभाग में अतिथि प्राध्यापक के रूप मे डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा ने कार्यभार सँभाला है। इन्होंने एक नए प्रयोग के तौर पर छात्रों को कंप्यूटर का हिंदी अध्ययन-अध्यापन में प्रयोग करना सिखाया। सत्र २००८-०९ के प्रथम सत्र में उच्च स्तर के छात्रों को मीडिया की भाषा की समझ विकसित करने के लिए इसे एक नए विषय के रूप में चुना। प्रयोग के तौर पर एक सत्र के लिए हंगरी से हिंदी में अनुवाद करने का नया विषय शुरू किया गया, जिसे छात्रों ने पसंद किया, के कारण दूसरे सत्र ही नहीं, वर्ष में भी जारी रखा गया। इसके अलावा हिंदी उपन्यास, नाटक, निबंध लेखन आदि विषयों का अध्यापन भी प्रारंभ किया गया।

डॉ. प्रमोद कुमार के संपादकत्व में इंटरनेट ब्लॉग व भित्ति पत्रिका 'प्रयास' प्रारंभ की गई। अब तक इस पत्रिका के चौदह अंक निकल चुके हैं। अब यह एक छमाही पत्रिका है और इसका स्वरूप भी काफी बदल गया है। इस पत्रिका के अंकों की खासियत है छात्रों द्वारा लिखी गई आधुनिक भाव-बोध की हिंदी कविताएँ। इन अंकों में अनुवाद, संस्मरण, यात्रा डायरी, कलाकृतियाँ व रेखाचित्रों को भी स्थान दिया गया है, इससे भी हंगरी भाषा के प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का छुटपुट रूप में अनुवाद होने में सहायता मिल रही है। वर्ष २००८-०९ के छात्रों ने मारिया नेज्यैशी के निर्देशन में भीष्म साहनी की अनेक कहानियों का हिंदी से हंगेरियन में अनुवाद किया। २००७-०८ के कुछ छात्रों ने ग्रीष्मावकाश के दौरान हिंदी के अन्य लेखकों की कुछ प्रसिद्ध कहानियों का अनुवाद किया; साथ ही एक छात्रा ने अपने शोध-निबंध के लिए हिंदी से जुड़े विषय का चयन किया। इससे पहले के अधिकांश निबंध प्राय: हिंदी भाषेतर विषयों को आधार बनाकर लिखे जाते थे।

भारत-विद्या का अध्ययन कर रहे छात्र जब हिंदी पढ़ते हैं तो इसके आधार पर रोजगार मिलने की संभावना कम ही होती है। पर ये छात्र

फिल्मों की स्क्रिप्ट का हंगरी भाषा में अनुवाद करके यदा-कदा कुछ धन अर्जित करते हैं। कुछ छात्रों को भारतीय या एशियाई देशों से संबद्ध संग्रहालयों में रोजगार मिलने की संभावना होती है। पर इसके लिए सिर्फ हिंदी का ही नहीं, बल्कि संग्रहालय विज्ञान विषय का भी अध्ययन करना होता है। कभी-कभी ये छात्र अनुवाद या आशु अनुवाद भी करते हैं। कभी-कभी किसी छात्र को किसी हंगेरियन परिवार का मार्ग-निर्देशक बनकर जाने का कार्य भी मिल जाता है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश छात्र भारतीय विद्या का अध्ययन, विषय का चयन 'स्वांत: सुखाय' की भावना से ही करते हैं।

भारत सरकार आई.सी.सी.आर. के माध्यम से विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए छात्रवृत्ति भी प्रदान करती है। हंगरी के एक या दो छात्र प्रतिवर्ष यह छात्रवृत्ति (अब तक लगभग ५० छात्र) प्राप्त केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में हिंदी का अध्ययन करने के लिए जाते हैं। साथ ही एक या दो छात्र सामान्य छात्रवृत्ति प्राप्त अन्य विश्वविद्यालयों में भारतीय विद्या अध्ययन (संस्कृत, मूर्तिकला, स्थापत्य कला आदि) के लिए जाते हैं। हाल ही में एक हंगारी छात्र शागी पैतेर ने महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय से हिंदी विषय में शोध-उपाधि प्राप्त की है।

विभाग के प्रतिभाशाली छात्रों में मारिया नेज्यैशी, इम्रे बंघा, फैरेस रुजा, दानियल बलोग, युदित तोरजोक, कोरत्वैयेशी तिबोर, जुजाना रेनर, दैजो चाबा, किश चाबा, शांतो पैतर, शागी पैतर, एस्तेर बेर्की आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी आजकल यूरोप के विभिन्न देशों व हंगरी के विभिन्न महत्त्वपूर्ण संस्थानों में उच्च पदों पर पदस्थ या शोधरत हैं। मारिया नेज्यैशी मई २०१८ ऐल्ते विश्व विद्यालय के हिंदी विभाग की अध्यक्षा थीं। इम्रे बंघा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा और साहित्य का अध्यापन करते हैं। इसके अलावा चीकसैरैदा (रोमानिया) के सपिऐंत्सिया विश्वविद्यालय में भी अध्यापन कार्य करते हैं। ऐल्ते विश्वविद्यालय में इम्रे बंघा के निर्देशन में एक महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य जारी है। इसमें तुलसी 'कवितावली' के पाठालोचन का कार्य किया जा रहा है। वर्ष २००७ से ऐल्ते विश्वविद्यालय में आई.सी.सी.आर. की ओर से टैगोर फैलोशिप आरंभ की गई है। हिदाश गैर्गेय, दानियल बलोघ आदि इस फैलोशिप के अंतर्गत शोध-कार्य कर चुके हैं।

ऐल्ते विश्वविद्यालय के स्नातक व स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के अलावा बुडापेस्ट में भारतीय दूतावास के सहयोग से तीन स्तरों पर हिंदी अध्यापन की नियमित कक्षाएँ चलती हैं। इनके अलावा भारतीय संस्कृति और समाज की विभिन्न विशेषताओं पर आधारित विशेष व्याख्यानमाला का भी प्रत्येक सत्र में आयोजन किया जाता है। इस व्याख्यानमाला की शोभा भारतीय व हंगरी के भारत प्रेमी बढ़ाते हैं। ये कक्षाएँ क्रमश: प्रारंभिक, माध्यमिक और उच्च, तीन स्तर के छात्रों के लिए आयोजित की जाती हैं। इन कक्षाओं में हिंदी भाषा सीखनेवाले कुछ छात्र ऐसे होते हैं, जो भारत की यात्रा करने के लिए हिंदी सीखते हैं।

पिछले २३ वर्षों से चल रही इन कक्षाओं में लगभग १८०० लोग हिंदी के साथ-साथ भारत और भारतीय संस्कृति से परिचय प्राप्त कर चुके हैं। इसके अलावा दूतावास के सहयोग से भारतीय समाज और संस्कृति से संबंधित विषयों पर व्याख्यानमाला का भी आयोजन किया जाता है। इसमें भारतीय व हंगेरियन भारतविद् भारतीय संस्कृति से संबंधित विभिन्न विषयों पर चर्चापरक व्याख्यान देते हैं। व्याख्यान के बाद श्रोता और छात्र प्रश्न पूछकर अपनी जिज्ञासाओं को शांत कर सकते हैं। व्याख्यानमाला में भारतीय दर्शन, इतिहास, समाज, कला, खान-पान, पहनावा आदि जैसे विषयों पर बल दिया जाता है। इन कक्षाओं में पढ़नेवाले छात्र प्रतिवर्ष विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर हिंदी कविताओं का पाठ करते हैं तथा लघु नाटकों का मंचन करते हैं। इन कक्षाओं के छात्र १९९५ व २०००, (२००६) में भारत की शैक्षणिक यात्राएँ भी कर चुके हैं।

विश्वविद्यालय का हिंदी पाठ्यक्रम

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि हंगरी में हिंदी का अध्ययन भारतीय अध्ययन पद्धति के अंतर्गत किया जाता है। ऐल्ते विश्वविद्यालय पिछले कई दशकों से भारतीय अध्ययन पद्धति के अंतर्गत पाँच वर्ष का पाठ्यक्रम (बी.ए. और एम.ए.) उपलब्ध है। बोलोन्या समझौते के तहत पूरे यूरोप में शिक्षण में एकरूपता लाने की दृष्टि से इसमें परिवर्तन करके क्रेडिट आधारित पाठ्यक्रम शुरू किया जा रहा है। इस सत्र तक पुराने पाठ्यक्रम के साथ-साथ बी.ए. का नया पाठ्यक्रम भी लागू हो गया। एम.ए. का पाठ्यक्रम २००८ से चल रहा है। अब तक भारत-विद्या विषय का अध्ययन भी किसी अन्य विषय के साथ मिलाकर किया जा सकता था। इस पाठ्यक्रम में भाग लेनेवाले छात्रों का भारतीय अध्ययन या संबद्ध भाषाओं का ज्ञान शून्य ही होता है। अत: इस विषय का चयन करनेवाले छात्रों को कोई प्रवेश परीक्षा नहीं देनी होती थी। हाँ, प्रथम वर्ष का अध्ययन पूरा करने के बाद छात्रों की कड़ी परीक्षा ली जाती थी, जिसे सफलतापूर्वक उत्तीर्ण करना ही आगामी वर्षों में अध्ययन करने का लाइसेंस होता था। इसी कारण सिर्फ अत्युत्तम छात्र ही इस विषय को लेकर आगे बढ़ पाते थे। प्रारंभ के दो सालों में उनको भाषा संस्कृत और हिंदी सिखाने पर बल दिया जाता था, ताकि वे आगे का अध्ययन सुमगता से कर सकें। दूसरे और तीसरे साल में उन्हें पाठ समझने और उसका विश्लेषण करने का अभ्यास करवाया जाता था। उनके मौखिक और लेखन कौशल को सुदृढ़ किया जाता था। इस दौरान उन्हें भारतीय संस्कृति से परिचित भी करवाया जाता था।

भारतीय सभ्यता का सांस्कृतिक अध्ययन चौथे वर्ष में करवाया जाता है, साथ ही उनके मौखिक व लिखित कौशल को और अधिक सुदृढ़ किया जाता है। इसके साथ ही उनका भाषावैज्ञानिक ज्ञान भी बढ़ाया जाता है। इस स्तर पर पहुँचकर छात्र अपने मनपसंद विषयों का चयन करने के लिए स्वतंत्र होते हैं। पाँचवें वर्ष के छात्र प्राय: अपना कुछ समय भारत में बिताते हैं और एक चुने हुए विषय पर शोध-निबंध लिखते हैं। इस शोध-निबंध की मौखिक परीक्षा ली जाती है।

बोलोन्या समझौता लागू होने के बाद से पूरे यूरोप में एक जैसी

शिक्षण व्यवस्था लागू होने के कारण हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में मूलभूत समानता आ गई है। पर इससे पहले ओत्वोश लोरांद विश्वविद्यालय में जो पाठ्यक्रम की व्यवस्था थी, उसकी कुछ चर्चा करना यहाँ अच्छा ही रहेगा। ओत्वोश लोरांद विश्विविद्यालय में व्यवस्थित रूप से पाँच वर्ष की शिक्षा उपलब्ध थी। इस पाठ्यक्रम में भारतीय संस्कृति या किसी भी भारतीय भाषा में रुचि रखनेवाला कोई भी छात्र प्रवेश लेकर अध्ययन कर सकता था। पूर्ववर्ती पाठ्यक्रम के प्रथम दो वर्षों में छात्रों को संस्कृत तथा हिंदी भाषा का आधारभूत ज्ञान देने के साथ-साथ इन भाषाओं का अध्ययन करवाया जाता था। इसके साथ-साथ भारोपीय तुलनात्मक भाषा विज्ञान और संस्कृत भाषा के इतिहास का गहराई से अध्ययन करवाया जाता था। ऋग्वेद तथा महान् ग्रंथों के चुनिंदा अंशों का विश्लेषण भाषा विज्ञान के आधार पर अध्ययन करवाया जाता था। यदि किसी छात्र की रुचि हो तो वह प्राकृत भाषा का ज्ञान भी प्राप्त कर सकता था। छात्रों को पंचतंत्र, हितोपदेश, कथासरित्सागर, अभिज्ञान शाकुंतलम्, अमरूकशतक, धर्मशास्त्र आदि के चुनिंदा अंशों का अध्ययन करते थे। तीसरे वर्ष में आकर छात्रों को संस्कृत और हिंदी साहित्य, साहित्य के इतिहास के अलावा भारतीय कला, धर्म और दर्शन का अध्ययन करते थे। इससे छात्र प्राचीन व आधुनिक भारत के सांस्कृतिक जीवन का आधारभूत ज्ञान प्राप्त करते थे। प्रत्येक वर्ष के छात्र के लिए मौखिक या स्थिति आधारित वार्त्तालाप विषयक पाठ्यक्रम पढ़ना आवश्यक होता था।

बोलोन्या समझौता लागू होने के बाद से पूरे यूरोप में एक जैसी शिक्षण व्यवस्था लागू होने के कारण हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में मूलभूत समानता आ गई है। पर इससे पहले ओत्वोश लोरांद विश्वविद्यालय में जो पाठ्यक्रम की व्यवस्था थी, उसकी कुछ चर्चा करना यहाँ अच्छा ही रहेगा। ओत्वोश लोरांद विश्विविद्यालय में व्यवस्थित रूप से पाँच वर्ष की शिक्षा उपलब्ध थी। इस पाठ्यक्रम में भारतीय संस्कृति या किसी भी भारतीय भाषा में रुचि रखनेवाला कोई भी छात्र प्रवेश लेकर अध्ययन कर सकता था।

छात्रों को जिस प्रकार से शिक्षा दी जाती थी, वह उन्हें वैज्ञानिक कार्य करने के लिए तैयार करती थी। इस कार्य के लिए उन्हें चौथे-पाँचवें वर्ष में एक शोध-निबंध लिखना पड़ता था। अब यह व्यवस्था समाप्त हो गई है। हिंदी साहित्य की दृष्टि से देखें तो तीसरे वर्ष से हिंदी साहित्य का अध्यापन किया जाता था। छात्र आधुनिक कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी और मध्यकालीन कविता आदि में से अपनी रुचि का विषय चुनकर उनका अध्ययन कर सकते थे। इसके अलावा हिंदी भाषा की विभिन्न शैलियों, प्रयुक्तियों व बोलियों आदि से भी उन्हें परिचित करवाया जाता था। कंप्यूटर और इंटरनेट के आ जाने के बाद से उस पर उपलब्ध दृश्य-श्रव्य सामग्री का फिल्मों तथा फिल्मी गीतों का प्रयोग हिंदी अध्यापन के लिए किया जाता है, ताकि वे सभी तरह की हिंदी से परिचित हो सकें। इस विभाग के ही एक छात्र यानोश गुयाश ने बहुत समय पहले देवनागरी से हंगेरियन लिपि में लिप्यंतरण के लिए एक सॉफ्टवेयर विकसित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।

पिछले दो दशकों से भारोपीय विद्या विभाग में अध्ययन करनेवाले पुराने विद्यार्थियों की तुलना में आजकल के छात्र संस्कृत के साथ-साथ हिंदी अध्ययन करने में अधिक रुचि लेने लगे हैं। इसका कारण यह है कि वे आधुनिक भारतीय साहित्य और समकालीन भारत के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं।

पाठ्य-पुस्तकें

दैबरैत्सैनी आर्पाद ने हिंदी की प्रारंभिक पाठ्य-पुस्तक तैयार की थी, जिसका कुछ समय तक अध्यापन के लिए प्रयोग किया जाता था। डॉ. मारिया नेज्यैशी ने जब अध्यापन कार्य शुरू किया तो उन्हें आभास हुआ कि छात्रों को हंगेरियन माध्यम से पढ़ाने की हिंदी की स्तरभेदपरक पाठ्य-पुस्तक होनी चाहिए, जो छात्रों को धीरे-धीरे हिंदी की संरचनाएँ सिखाते हुए भारतीय संस्कृति और परिवेश से भी परिचित करवाए। इस कार्य के लिए उन्होंने तत्कालीन अतिथि प्राचार्य डॉ. असगर वजाहत की सहायता से पहले एक पुस्तक की रूपरेखा तदोपरांत पुस्तक भी तैयार की। पुस्तक कुछ इस प्रकार की है कि छात्र अध्यापक की सहायता से आसानी से चरण-दर-चरण हिंदी सीख सकते हैं। इस कार्य में मारिया नेज्यैशी की लैटिन, प्राचीन यूनानी और संस्कृत अध्ययन-अध्यापन की पृष्ठभूमि ने बहुत ही सहायता की। भाषा विज्ञान की परंपरागत प्रणाली व्याकरण, अनुवाद विधि के आधार पर प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर पर छात्रों के अध्ययन-अध्यापन हेतु पाठ्य-पुस्तक निर्मित की गई। आज भी इस पुस्तक का विभाग में प्रथम दो वर्षों के छात्र हिंदी अध्ययन के लिए करते हैं। हिंदी की आधुनिक कविता का अध्ययन करने के लिए डॉ. बटरोही ने आधुनिक काव्य-संकलन 'आधुनिका' तैयार किया। इसमें अनेक आधुनिक कवियों की प्रसिद्ध कविताएँ व उनके परिचय संकलित हैं।

मध्यकालीन काव्य का अध्ययन करने के इच्छुक छात्रों के लिए डॉ. उपाध्याय ने 'माध्यमिका' नामक काव्य-संकलन का निर्माण किया, जिसमें प्रमुख मध्यकालीन कवियों की प्रसिद्ध रचनाएँ संकलित हैं। हिंदी का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद छात्रों के लिए जरूरी हो जाता है कि वे भारत में जाकर विभिन्न स्थितियों में हिंदी में बातचीत कर सकें। इस तथ्य को ध्यान में रखकर डॉ. रविप्रकाश ने बोलचाल की हिंदी की माध्यमिक स्तर की पुस्तक तैयार की। यह पुस्तक विद्यार्थियों को विभिन्न स्थितियों में बातचीत करने के साथ-साथ उनके कथनों के अनेक विकल्प भी उपलब्ध करवाती हैं। इसके अभ्यासों में किसी एक ही कथ्य को अनेक प्रकार से व्यक्त करने के अभ्यास भी शामिल हैं। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें भारत की बोलचाल की हिंदी का प्रयोग किया गया है, न कि साहित्यिक हिंदी का।

डॉ. मारिया नेज्यैशी ने विभाग में अध्ययन करनेवाले छात्रों को हिंदी की विभिन्न शैलियों व रूपों से परचित करवाने के लिए कुछ

ठोस कार्य करने के लिए पत्रकारिता, आलोचना, निबंध, संस्मरण और यात्रा-वृत्तांत जैसे काव्यरूपों और उनकी भाषा से भी विभाग के छात्रों को परिचित करवाने के लिए सामग्री विकसित करवाई है, जिसकी पूरी जानकारी अभी उपलब्ध नहीं है। विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन-अध्यापन को सत्ताईस साल हो चुके हैं। इस दौरान आधुनिक हिंदी कहानियों का अध्यापन करते-करते सहज रूप से ही एक कथा-संग्रह (अभी अप्रकाशित) तैयार हो गया है, जिसमें न केवल कहानियों का मूल पाठ है, बल्कि लेखकों का संक्षिप्त परिचय, शब्दार्थ, व्याकरणिक टिप्पणियाँ आदि भी दी गई हैं।

वर्ष २०१० में भीष्म साहनी की हंगारी भाषा में अनूदित कहानियों का एक संकलन भी तैयार किया गया था। इस तरह के कार्य निरंतर ही ऐल्ते विश्वविद्यालय के भारोपीय अध्ययन विभाग में चलते रहते हैं। हंगरी में हिंदी भाषा के अध्यापन को यदि अध्येताओं की दृष्टि से देखें तो यह उनके लिए रोजी-रोटी का साधन (कम-से-कम अभी तक) बिल्कुल भी नहीं है। यह भारत के प्रति उनका प्रेम, श्रद्धा और उत्सुकता ही है, जो उन्हें हिंदी पढ़ने के लिए प्रेरित करती है।

हंगरी में हिंदी अध्ययन-अध्यापन के कार्य में लगे एकमात्र विश्वविद्यालय व विभाग के वर्तमान हिंदी अध्यापकों का संक्षिप्त परिचय देना यहाँ अनुचित न होगा।

मारिया नेज्यैशी : सन् १९८१ से विभाग में अध्यापन कार्य कर रही हैं और २००१ से विभाग की अध्यक्ष भी हैं। इन्होंने हिंदी की विधिवत् शिक्षा केंद्रीय हिंदी संस्थान से ग्रहण की थीं और १९९७ में आगरा विश्वविद्यालय से हिंदी विषय मे शोध-उपाधि प्राप्त की है। इन्होंने अनेक हिंदी कहानियों का हंगेरियन में और हंगेरियन कहानियों का हिंदी में अनुवाद किया है। डॉ. असगर वजाहत के साथ मिलकर हंगेरियन हिंदी छात्रों के लिए पाठ्य-पुस्तक तैयार की थी, जिसका उपयोग आज भी अध्यापन के लिए किया जाता है। ये स्वयं तो अनुवाद करती ही हैं, साथ ही अपने वर्तमान व भूतपूर्व छात्रों को हिंदी से हंगरी भाषा में अनुवाद कार्य करने को प्रेरित करती हैं एवं उनकी सहायता करती हैं। इन कार्यों से हिंदी से हंगारी भाषा में अनूदित साहित्य का परिमाण निरंतर बढ़ रहा है।

इम्रै बंघा : केंद्रीय हिंदी संस्थान और शांतिनिकेतन (शोध-उपाधि) से हिंदी की शिक्षा ग्रहण करनेवाले इम्रै बंघा सन् २००४ से इस विभाग में 'मानद रीडर' के रूप में कार्यरत हैं। इन्होंने बालात्ज दैरी के साथ मिलकर मीराबाई (१९९७) और आनंदघन (१९९७) की रचनाओं का अनुवाद किया है। इनके दोनों कार्य उनकी आलोचनात्मक टिप्पणी के साथ प्रकाशित हैं। वर्ष २००३ में इन्होंने रोमानिया के चीकैत्सरदा के सैपेंतिया विश्वविद्यालय में भारतीय अध्ययन विषय का प्रारंभ किया है। इन्होंने भारत जाकर 'कवितावली' के अनेक संस्करणों का संकलन किया था। ऐल्ते विश्वविद्यालय के भारत-विद्या अध्ययन विभाग में इनके निर्देशन में 'कवितावली' का आदर्श संस्करण तैयार करने की परियोजना चल रही थी। इसमें इनके साथ विभाग के अनेक छात्र भी जुड़े थे। कुछ समय पहले इनकी पुस्तक हंगरी टाइगर व यूरोप में हिंदी (सं.) प्रकाशित हुई हैं। ऐल्ते विश्विद्यालय के अलावा पेच विश्वविद्यालय में स्वतंत्र रूप से तो नहीं, पर एक सहयोगी विषय के रूप में हिंदी का अध्यापन कार्य किया जाता है। आगे उसकी ही चर्चा की जा रही है।

पेच विश्वविद्यालय में हिंदी कक्षाएँ

हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के संबंध में हंगरी में एक और नाम आदर के साथ लिया जाता है—एवा अरादि का। इन्होंने बंबई के भारतीय विद्या भवन में हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन किया। १९७९ में बुडापेस्ट विद्यालय में प्रेमचंद के जीवन और साहित्य-विषय पर शोध-उपाधि प्राप्त की। एक वर्ष तक ऐल्ते विश्वविद्यालय में अस्थायी प्राध्यापक के रूप में भी कार्य किया था। ये पेच विश्वविद्यालय के भारत-विद्या विभाग से अवकाश प्राप्त कर चुकी हैं। इन्होंने प्रेमचंद के उपन्यास 'निर्मला' और उनकी दस कहानियों का अनुवाद हंगरी में (१९८०) किया है। इसके अलावा इन्होंने धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी की कहानियों का हंगरी भाषा में एवं कुछ हंगरी कविताओं का हिंदी में अनुवाद भी किया है। अनेक विश्व हिंदी सम्मेलनों में भाग ले सम्मान प्राप्त कर चुकी हैं।

हंगरी से हिंदी में अनुवाद

हंगरी से हिंदी भाषा में अनुवाद की परंपरा का हाल भी कुछ ऐसा ही है, जैसा कि भारतीय भाषाओं से हंगरी भाषा में अनुवाद का है। हिंदी में प्रकाशित प्रारंभिक अनुवाद सीधे हंगरी भाषा से हिंदी में न होकर अंग्रेजी से हिंदी में हुए अनुवाद थे। इस परंपरा की शुरुआत साहित्य अकादमी के प्रयासों से हुई थी।

कहानी व उपन्यास : सन् १९७४ में रघुवीर सहाय और भारतभूषण अग्रवाल ने अंग्रेजी भाषा से १२ हंगरी कहानियों का अनुवाद किया था। इसके बाद विष्णु खरे ने भी अग्रेजी से हिंदी में अत्तिल योजेफ की कहानियों व कविताओं का अनुवाद किया था, जो 'यह चाकू समय' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। अनूदित कहानी संकलनों में १९९८ में प्रकाशित 'उड़नछू गाँव व हंगरी कहानियाँ', अनुवादिका चंद्रकिरण राठी; वर्ष २००१ में प्रकाशित 'अभिनेता की मृत्यु' संपादन कोवैश मारगित, 'हंगरी लोककथाएँ', अनुवादिका इंदु मजलदान का नाम लिया जा सकता है। इंदु मजलदान द्वारा हंगरी से हिंदी में अनुवाद शुरू करने के बाद से इस दिशा में चल रहे क्रियाकलापों में कुछ तेजी आई है। ये अब तक 'चकोरी', 'नियतिहीनता' आदि उपन्यासों का अनुवाद होकर प्रकाशित हो चुकी हैं। ये प्रति वर्ष एक-दो पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद कर रही हैं।

कविता : जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि हिंदी में हंगरी की प्रथम कविताएँ हंगरी भाषा से शीघ्र अनूदित न होकर अंग्रेजी भाषा से अनूदित अतिल्ला योझेफ की कविताएँ थीं, जिनका अनुवाद विष्णु खरे ने १९८० में किया था, जो 'यह चाकू समय' के शीर्षक से १९८० में प्रकाशित हुई थी। इस क्रम में अगला प्रकाशन १९८३ 'आधुनिक हंगरी कविता', इसमें अनेक आधुनिक हंगरी कवियों की कविताओं

का गिरिधर राठी कृत अनुवाद संकलित है। फिर १९८९ में साहित्य अकादमी की पहल पर 'आधुनिक हंगरी कविता' शीर्षक से रघुवीर सहाय और मिकलोश वायेदा के संपादन में एक और संकलन प्रकाशित हुआ। इसके बाद १९९६ में इम्रे बंघा और देरी बालाश ने मिलकर मध्यकालीन कवि घनआनंद (घनानंद) की रचनाओं का अनुवाद हिंदी छंद को यथारूप रखते हुए किया है। इसके बाद १९९८ में इंदु मजालदान द्वारा अनूदित हंगारी प्रेम कविताओं का संकलन 'प्रेमराग' प्रकाशित हुआ।

नाटक : नाटक की दृष्टि से देखें तो सबसे पहले विष्णु खरे ने फैरेंस करिंथी के एक नाटक का अनुवाद 'पियानो बिकाऊ है' शीर्षक से किया था। इसके बाद १९८३ में रघुवीर सहाय ने तीन छोटे नाटकों का अनुवाद किया। इस शृंखला में एक अन्य नाटक भी 'मानव त्रासदी' (मादाच इमरे, अनुवादक राम शरण राय) शीर्षक से प्रकाशित हुआ। नाटकों के अनुवाद की परंपरा कुछ लंबी नहीं चली। इसके बाद २००८ में यानोश हाय का नाटक 'गेजो बबुआ' उनकी अन्य रचनाओं के साथ अनूदित होकर प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद कार्य मार्गित कोवैश और गिरिधर राठी ने मिलकर किया है। वर्ष २००७ में इंदु मजलदान ने 'शमाएँ खाक होने तक जलती रहीं' शीर्षक से शांदोर मारोई की कविताओं का अनुवाद किया। सन् २००८ 'दस आधुनिक हंगारी कवि' शीर्षक से गिरिधर राठी, मार्गित कोवैश, ने आधुनकि हंगारी कविताओं का अनुवाद किया। इनके अलावा हंगारी सांस्कृतिक केंद्र, दिल्ली से प्रकाशित 'हंगेरियन साहित्य का इतिहास' का उल्लेख करना यहाँ जरूरी है। इसके लेखक डॉ. इश्तवान माथोर हैं और इसका अनुवाद भँवर खुराना ने किया है। ऐल्ते विश्वविद्यालय के भूतपूर्व व वर्तमान छात्र भी हंगारी साहित्य की रचनाओं—कहानी, कविताओं आदि का छुटपुट रूप से अनुवाद करते रहते हैं। आजकल ये अनुवाद विभाग की भित्ति-पत्रिका 'प्रयास' की शोभा बढ़ाते हैं और कुछ अनुवाद भारतीय व विदेशी हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुए हैं।

सन् २००८ 'दस आधुनिक हंगारी कवि' शीर्षक से गिरिधर राठी, मार्गित कोवैश, ने आधुनकि हंगारी कविताओं का अनुवाद किया। इनके अलावा हंगारी सांस्कृतिक केंद्र, दिल्ली से प्रकाशित 'हंगेरियन साहित्य का इतिहास' का उल्लेख करना यहाँ जरूरी है। इसके लेखक डॉ. इश्तवान माथोर हैं और इसका अनुवाद भँवर खुराना ने किया है। ऐल्ते विश्वविद्यालय के भूतपूर्व व वर्तमान छात्र भी हंगारी साहित्य की रचनाओं—कहानी, कविताओं आदि का छुटपुट रूप से अनुवाद करते रहते हैं। आजकल ये अनुवाद विभाग की भित्ति-पत्रिका 'प्रयास' की शोभा बढ़ाते हैं और कुछ अनुवाद भारतीय व विदेशी हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुए हैं।

हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की इस परंपरा के अलावा कुछ और भी तथ्य ऐसे हैं, जिनका हिंदी पठन-पाठन से सीधा संबंध तो नहीं है, पर हिंदी में रुचि जाग्रत् करने की दृष्टि से महत्त्व कम नहीं है। अत: उनकी भी चर्चा यहाँ की जा रही है। हंगरी में अनेक लोग योग सीखकर इसे अपने जीवन का अनिवार्य अंग बना चुके हैं। यह प्रक्रिया निरंतर जारी है। हंगरी में योग सिखानेवाली अनेक संस्थाएँ हैं, कुछ संस्थाएँ भारतीय लोगों द्वारा संचालित हैं और कुछ संस्थाओं का संचालन स्वयं हंगरी लोग करते हैं। हंगरी लोग प्राकृतिक चिकित्सा पर बहुत विश्वास करते हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सा भी हंगरी में लोकप्रिय है। बालाटन के एक आयुर्वेदिक चिकित्सालय में दो भारतीय चिकित्सक कार्यरत हैं। कुछ हंगेरियन चिकित्सक भी आयुर्वेदिक दवाइयाँ बनाकर चिकित्सा करते हैं। ऐसी चर्चा है कि एक विश्वविद्यालय में आयुर्वेद का एक विषय के रूप में अध्यापन प्रारंभ होनेवाला है।

हंगरी के निवासियों की भारतीय नृत्य और संगीत में रुचि को ध्यान में रखकर भारतीय दूतावास समय-समय पर इस तरह के कार्यक्रमों का आयोजन करता रहता है। इनको देखनेवालों में हंगरी के लोगों की भरमार होती है। भारतीय शास्त्रीय व लोक नृत्य करनेवाली हंगरी नृत्यांगनाएँ न केवल भरत नाट्यम, कुचिपुड़ी आदि नृत्य करती हैं, वरन् स्थानीय निवासियों को नृत्य का प्रशिक्षण भी देती हैं। इनके द्वारा संचालित प्रशिक्षण केंद्रों में अनेक हंगरी लोग भारतीय शास्त्रीय नृत्य सीखते हैं। हंगरी लोगों में भारतीय व्यंजन लोकप्रिय हैं। बुडापेस्ट में अनेक भारतीय रेस्तराँ हैं। इस्कॉन का शाकाहारी भोजनालय यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनमें हंगेरियन लोगों की भरमार रहती है। बुडापेस्ट में समय-समय पर बॉलीवुड पार्टी होती है, जिसमें अनेक हंगेरियन युवक-युवतियाँ (भारतीय भी) हिंदी के लोकप्रिय हिंदी-पंजाबी फिल्मी गानों पर देर रात तक थिरकते रहते हैं।

इसी तरह बुडापेस्ट में दूतावास की कक्षाओं से जुड़ा एक हिंदी फिल्म क्लब भी है, जो प्रति माह एक हिंदी फिल्म का प्रदर्शन करता है। इसमें दर्शकों की संख्या पर्याप्त होती है। लगभग प्रतिवर्ष आयोजित होनेवाला भारतीय फिल्मोत्सव भी हंगारी लोगों में बहुत ही लोकप्रिय है। बुडापेस्ट में आयोजित होनेवाला इंडिया फेस्ट भी भारतीय संस्कृति आदि की लोकप्रियता के नए मापदंड बना रहे हैं। एक खास बात और हंगरी के ऐल्ते विश्वविद्यालय के सिनेमा, पत्रकारिता व मीडिया विभाग में बॉलीवुड का एक विषय के रूप में अध्यापन किया जाने लगा है। इस विषय का चयन करनेवाले छात्रों की संख्या अच्छी-खासी होती है। हंगेरियन दूरदर्शन पर हिंदी फिल्में डब करके व हंगरी भाषा में सब टाइटिल लिखकर दिखाने की एक लंबी परंपरा है। भारतीय फिल्में यहाँ बहुत ही पसंद की जाती हैं। यहाँ लोगों से बातचीत करने पर पता लगा कि उन्हें हिंदी फिल्मों में अंग्रेजी भाषा का मिश्रण करना या भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य प्रभाव पसंद नहीं है। हंगरी लोग भारतीय संस्कृति को इसके मूल रूप में ही देखना पसंद करते हैं। उन्हें भारतीय फिल्मों में दिखाए गए पारिवारिक मूल्य बहुत पसंद आते हैं। सा अ

क्षेत्रीय निदेशक,
केंद्रीय हिंदी संस्थान
दिल्ली

हिंदी नियुक्तियों के विविध आयाम

• हरीश नवल

चालीस साल से अधिक समय से विश्वविद्यालय में पढ़ा जा रहा हूँ। इन वर्षों में हिंदी ऑनर्स एम.ए. हिंदी तथा अन्य हिंदी पढ़नेवाले विद्यार्थियों को पास से जानने का मौका मिला है। कक्षाओं के समापन वर्षों में वे अपेक्षाकृत अधिक गंभीर और चिंतित दिखते हैं। उन्हें परीक्षा की चिंता तो होती ही है, साथ ही अपने कॅरियर और भविष्य की भी चिंता उनके सिर पर सवार रहती है। उनकी आँखों में एक भय होता है कि 'हिंदी पढ़कर कौन सा कार्य हमें मिलेगा?' ''सर, अब हम क्या करेंगे?''

विडंबना यह है कि भारत जैसे बड़े देश की राजभाषा, जिसे राष्ट्रभाषा होने का गौरव भी प्राप्त होगा, अभी भी नियुक्तियों के लिए हिंदी पढ़नेवालों के लिए चिंता का विषय है। यद्यपि बात ऐसी नहीं है। हिंदी भारत में बहुत से काम या यों कहें कि जॉब देती है और विदेश में भी। देश-विदेश में हिंदी नियुक्तियों के बेशुमार चैनल्स हैं। आइए रिमोट दबाइए और इन चैलनों को मेरे संग देखिए।

भारत के सभी सरकारी-अर्धसरकारी संगठनों में हिंदी अधिकारी होते हैं, जो उच्च श्रेणी के अधिकारी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। हिंदी अधिकारी चुने जाने के लिए एम.ए. (हिंदी) की योग्यता व अनुवाद प्रक्रिया की जानकारी अपेक्षित होती है। भारत का सर्वोच्च नियुक्ति दर्जा आई.ए.एस. है। सिविल सर्विस में हिंदी एक मुख्य विषय के रूप में लेकर परीक्षा दी जा सकती है। विगत अनेक वर्षों से परीक्षा का माध्यम हिंदी भाषा हो सकती है। यही कारण है कि उत्तर, मध्य और पश्चिम भारत के अनेकानेक युवक-युवतियाँ हिंदी माध्यम के कारण आई.ए.एस. अधिकारी चुने जाते हैं। क्षेत्रीय सिविल परीक्षाओं में भी यही प्रतिशत है।

लेखन और पत्रकारिता दूसरा बड़ा जाना-माना क्षेत्र है, जहाँ हिंदी का वर्चस्व है। देश में हिंदी के पत्र-पत्रिकाएँ सर्वाधिक हैं। सबसे अधिक रीडरशिप भी हिंदी के अखबारों की है। समाचार-लेखन, रपट-लेखन, साक्षात्कार, सर्वेक्षण आदि लेखन के विविध आयाम हैं। आजकल विज्ञापन लेखन भी आय का बड़ा साधन है, यह कॉपीराइटिंग के अंतर्गत आता है, जहाँ 'नारे', 'उप-वाक्य' या 'वाक्य' लिखने होते हैं, जिनमें बहुत पैसा अर्जित किए जाता है—'मस्ती के रंग पेप्सी के संग', 'ठंडे का तड़का', 'लाइफबॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ', 'वाह ताज', 'सौंदर्य साबुन निरमा' जैसी विज्ञापन कॉपीराइटिंग तथा नारों के उदाहरण रूप में 'सब पढ़ें सब बढ़ें', 'जागो इंडिया जागो', 'छोटा परिवार सुखी परिवार' आदि कहे जा सकते हैं। इन सबके लिए प्रत्युत्पन्नमति और लेखन-

प्रख्यात व्यंग्यकार। अब तक छह व्यंग्य-संकलन, तीन आलोचनात्मक पुस्तकें, नौ संपादित ग्रंथ और बावन ग्रंथों में सहयोगी रचनाकार के रूप में रचनाएँ प्रकाशित। एक हजार से अधिक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'बागपत के खरबूजे' पर युवा ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा तेरह राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित। अनेक व्यंग्य अंग्रेजी, बल्गारियन, मराठी, उर्दू, बँगला, पंजाबी और गुजराती में भी अनूदित।

चेतना के साथ मनोविज्ञान समझने का ज्ञान होना चाहिए।

रेडियो, टी.वी. और फिल्म लेखन भारत में एक बड़ा व्यवसाय है। स्क्रिप्ट, स्क्रीन प्ले लेखन, शूटिंग स्क्रिप्ट लेखन, संवाद लेखन और गीत लेखन की बृहत् परंपरा हिंदी के इन दृश्य मीडिया लेखन में है। धन कमाने की दृष्टि से यह एक बड़ा स्रोत है। कमलेश्वर, मनोहर श्याम जोशी, आनंद बख्शी, कादर खान, सलीम जावेद, गुलजार, कैफी आजमी, प्रदीप, नरेंद्र शर्मा आदि इसी लेखन के कारण धन और यश को प्राप्त कर सके हैं। जो मौलिक लेखन नहीं कर सकते, उनके लिए हिंदी में डबिंग लेखन है। देशी एवं विदेशी, सिनेमा व टी.वी. धारावाहिक हिंदी में डब करके अर्थात् हिंदी भाषा में रूपांतरित होकर प्रसारित होते हैं, क्योंकि भारतीय हिंदी टी.वी. १५६ देशों में देखा जाता है तथा हिंदी सिनेमा हॉलीवुड के बाद विश्व में दूसरे स्थान पर है। रूपांतर और अनुवाद एक अन्य बड़ा क्षेत्र है, जहाँ बहुत काम है। सैकड़ों भारतीय दूतावासों में हिंदी के दुभाषिए नियुक्त किए जाते हैं। हिंदी इंटरप्रेटर की भारी माँग है। यदि हिंदी के अतिरिक्त विश्व की अन्य दूसरी कोई सी भी बड़ी भाषा, जैसे अंग्रेजी, स्पेनिश, फ्रेंच, रूसी, इतालवी, जर्मनी, डच या चीनी आदि का ज्ञान हो हिंदी अध्येता के लिए कार्य-ही-कार्य है।

हिंदी वाचन एक लोकप्रिय क्षेत्र है। टी.वी., रेडियो तथा अन्य कार्यक्रमों में हिंदी उद्घोषकों, समाचार पाठकों आदि की आवश्यकता बनी रहती है। अच्छी हिंदी को अच्छी तरह बोलकर अमिताभ बच्चन, शेखर सुमन, विनोद दुआ, रजत शर्मा, मृणाल पांडेय, मनोज रघुवंशी, अशोक चक्रधर, सरला महेश्वरी, मंजरी जोशी आदि ने बड़ी साख बनाई है व अर्थोपार्जन किया है।

यह तो था देशी चैनल, अब देखते हैं हिंदी नियुक्तियों का विदेशी चैनल।

विश्व में लगभग दो सौ विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है, जहाँ भारत से भी हिंदी अध्यापकों को बुलाया जाता है। अमरीका, यूरोप

और अफ्रीका महाद्वीपों के बड़े नगरों के अतिरिक्त दक्षिणी गोलार्ध के त्रिनिडाड के अलावा छोटे-छोटे लातानी (लैटिन) देशों, जैसे बारबोडस, सैंट लूशिया आदि में भी हिंदी अध्यापन होता है। मॉरीशस के समीप रेयूनियन (फ्रैंच कंट्री) और रोड्रिंग्ज जैसे छोटे देश हैं, जहाँ हिंदी स्कूल हैं, वहाँ बँगला और हिंदी थियेटर भी हैं।

खाड़ी के देश ओमान, आबूधाबी, दुबई, शारज ाह, अलैन आदि में इंडियन स्कूल हैं, जो अमीर शेखों द्वारा संचालित हैं, इनमें नौवीं कक्षा तक हिंदी अनिवार्य है। आगे चलकर हिंदी और फ्रेंच में से एक चुननी होती है। केंद्रीय माध्यमिक बोर्ड का पाठ्यक्रम यहाँ पढ़ाया जाता है। अध्यापकों को बहुत सुविधाएँ दी जाती हैं। फर्निश्ड वातानुकूलित घर, नि:शुल्क बिजली, पानी, इनकम टैक्स की कटौती नहीं, भारत आने-जाने का किराया पूरे परिवार को दिया जाता है। पैंतीस-चालीस हजार रुपए हिंदी अध्यापक को वेतन के रूप में प्राप्त होते हैं।

हिंदी लेख, हिंदी शोध-प्रबंध, लघु शोध-प्रबंध आदि टंकण की माँग रखते हैं। यह एक बृहत् कार्यक्षेत्र है। अदालती काररवाई, जमीन-जायदाद संबंधी कार्यों में भी हिंदी टंकण की आवश्यकता होती है। यह एक पूरक व्यवसाय के रूप में भी किया जा सकता है। साधारण टंकण अब इलेक्ट्रॉनिक से कंप्यूटरीकृत हो गया है, अत: कंप्यूटर में भी सहायक सिद्ध हो जाता है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् प्राय: प्रति तीन वर्ष बाद विदेश में हिंदी पढ़ाने के लिए हिंदी के अध्यापकों का चुनाव करती है, जो अनेक देशों में जाकर हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति का प्रसार करते हैं। कहीं-कहीं ऐसे नियुक्त प्राध्यापक भारतीय दूतावासों में प्रथम या द्वितीय सचिव के रूप में भी कार्य करते हैं। कहना न होगा कि बिना भारतीय विदेश सेवा की परीक्षा उत्तीण किए भी ये हिंदी समर्थ प्राध्यापक विदेश सेवा के लाभ प्राप्त करने के हकदार सिद्ध होते हैं।

यूरोप के कई देशों में अफगान युवक व युवतियाँ (विशेषत: युवतियाँ) रेस्टोरेंटों तथा बड़े स्टोरों में, जहाँ भारत, पाकिस्तान, संयुक्त अरब अमीरात देशों के यात्री बहुतायत में आते हैं, हिंदी भाषा का प्रयोग करनेवाले कर्मचारियों के रूप में कार्यरत हैं। दिलचस्प बात यह है कि विगत दस वर्षों से अफगानिस्तान में फैली बेरोजगारी के कारण विदेश में रोजगार पाने के लिए हिंदी सीखी जाती है। ऐसी नियुक्तियाँ फ्रांस, स्विट्जरलैंड, हॉलैंड और जर्मनी में अधिक होती हैं। संयुक्त अरब अमीरात तथा खाड़ी के अन्य देशों की संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का 'हिंदुस्तानी' रूप सर्वोपरि है। बाजार में यही भाषा वहाँ चलती है।

अमरीका, कनाडा, इंग्लैंड जैसे संपन्न देशों में हिंदी के रेडियो व टी.वी. चैनल हैं तथा कुछ अन्य चैनलों में एकाध कार्यक्रम हिंदी में भी प्रसारित होता है। इन चैनलों में हिंदी उद्घोषकों व साक्षात्कर्ताओं की जरूरत रहती है। जर्मनी में दोएचे वेले, अमरीका में वॉयस ऑफ अमरीका और इंग्लैंड के बी.बी.सी. हिंदी कार्यक्रम बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। भारत से चुनकर श्रेष्ठतर हिंदी ब्रॉडकास्टरों को इन कंपनियों में भेजा जाता है। इनमें चयनित होना, अपने आपमें विशेष योग्यता है। इन महाधनाढ्य देशों में सामाजिक संस्कारकर्ताओं यथा मंदिरों के पुजारी, विवाह संस्कार के पंडित, यज्ञ, हवन विशेषज्ञों आदि की भी बहुत माँग है। वहाँ ऐसे पदों पर नियुक्त ज्ञानी बहुत सम्मान प्राप्त करते हैं।

अनेक देशों में इंडोलॉजी (भारतीयता) अध्ययन केंद्र हैं। इन केंद्रों में भारतीयता-संदर्भ के अंतर्गत जिन भाषाओं का आकलन और अध्ययन किया जाता है, उनमें हिंदी मुख्य है। बेल्जियम जैसे देश में, जहाँ फादर कामिल बुल्के ने जन्म लिया था, में इंडोलॉजी पाठ्यक्रम में पच्चीस प्रतिशत अंक हिंदी भाषा के लिये हैं। वहाँ हिंदी अध्यापन के पर्याप्त अवसर हैं। बल्गारिया में प्रख्यात हिंदी विदुषी श्रीमती योरदांका के निर्देशन में 'ईस्ट-वेस्ट इंडोलॉजिकल फाउंडेशन' मध्यकाल विषयक अध्ययन और अनुवाद संबंधी कार्य कर रही हैं। फाउंडेशन ने सोफिया विश्वविद्यालय के सहयोग से हिंदी का भाषाई और साहित्यिक अध्ययन का पाठ्यक्रम निर्मित किया है। उल्लेखनीय है कि वहाँ की कई बल्गारियन विदुषियों ने अमरीकी विश्वविद्यालयों से हिंदी में पी-एच.डी. की है।

लोकप्रिय विदेशी फिल्म और टी.वी. धारावाहिकों के हिंदी में रूपांतरित किए प्रिंट भारतीय टी.वी. चैनलों पर बड़े चाव से देखे जाते हैं। विदेशी भाषाओं विशेषत: अंग्रेजी, फ्रेंच, जापानी, चीनी और कोरियाई का हिंदी में रूपांतरण और 'डबिंग' दोनों ही अच्छी हिंदी जाननेवाले मीडियाकर्मियों के लिए विस्तृत आयाम व अवसर प्रदान करते हैं। विदेशी भाषाओं से हिंदी में अनुवाद करने वालों के लिए 'भारतीय अनुवाद परिषद्' जैसी संस्थाएँ भारत में हैं। मीडिया में दिलचस्पी लेनेवाले हिंदी ज्ञानियों के लिए विज्ञापन की दुनिया में 'कॉपीराइटिंग' धनार्जन का श्रेष्ठ माध्यम है। ध्यान रहे कि भारत से की गई हिंदी कॉपीराइंटिग ही विदेश में जहाँ-जहाँ भारतीय हैं, वहाँ-वहाँ जाती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भारत जैसे बृहत् बाजार में हिंदी के माध्यम से प्रचार का महत्त्व सिद्ध हो चुका है।

आज का युग फ्यूजन का युग है, अब किसी एक विषय, भाषा या जीवन-शैली में दक्षता अधिक काम नहीं देती। युवा वर्ग को कइयों में दक्षता हासिल करना जरूरी है। विदेश में हिंदी द्वारा नियुक्ति चाहिए तो याद रखना चाहिए कि अंग्रेजी भाषा का पर्याप्त ज्ञान परमावश्यक है। अंग्रेजी के जानकारों ने हिंदी भाषा का अभ्यास कर हिंदीवालों के लिए निर्धारित स्थानों को प्राप्त करना आरंभ कर दिया है। सजग व्यक्ति जानता है कि हिंदी और अधिक उन्नति दे सकती है, अत: वह हिंदी सीख व प्रयोग कर सामर्थ्य बढ़ा रहा है। यह तथ्य कम-से-कम मीडिया जगत् में तो भरपूर दिखाई दे रहा है। हिंदीवालों को अपना स्थान प्राप्त करने हेतु अंग्रेजीवालों से यह सीख लेने में संकोच नहीं करना चाहिए। एक बात और भी याद रखनी होती है कि आगे वही बढ़ेगा, जो अति प्रतिभावान है, सभी जगह प्रतिभा ही मूल्यांकित होती है, चाहे वह मैनेजमेंट हो, सूचना-तकनीक हो या फिर हिंदी।

६५ साक्षरा अपार्टमेंट, ए-३,
पश्चिम विहार, नई दिल्ली-११००६३
दूरभाष : ९८१८९८८२२५

वैश्विक स्तर पर हिंदी की स्वीकार्यता का आग्रह क्यों?

• गीता शर्मा

भारत एक बहुभाषी लोकतांत्रिक देश के साथ-साथ जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का दूसरा विशाल देश है। भौगोलिक क्षेत्र की दृष्टि से निश्चित ही कई देश इससे अधिक विस्तृत हैं। लेकिन कई राज्यों की जनसंख्या और कई भाषाओं के बोलनेवालों की संख्या की तुलना में यूरोप के कई देश निश्चित रूप में भारत से बहुत पीछे हैं। इस दृष्टि से हमें राष्ट्रभाषा और अंतरराष्ट्रीय भाषा के संप्रत्यय को समझने की आवश्यकता है।

संवैधानिक आधार पर भारत की बाईस भाषाओं को राजभाषा का अधिकार प्राप्त है अर्थात् राज्य प्रशासनिक कार्य अपनी-अपनी भाषाओं में करेंगे। पंद्रह वर्ष तक केंद्र के साथ हिंदी या अंग्रेजी में पत्र-व्यवहार होगा और पंद्रह वर्ष के बाद हिंदी राजभाषा होगी। इस प्रकार भविष्य में भी राष्ट्रभाषा की संभावना को भी स्वीकार नहीं किया गया। राज्यों में ऐसा हो भी रहा है। लेकिन इन तथ्यों में छिपा हुआ सत्य यह भी है कि आधिकारिक रूप से बाईस भाषाएँ होते हुए भी आज तक भारत की कोई भी भाषा राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित नहीं है। विश्व के प्रत्येक देश की अपनी-अपनी राष्ट्रभाषा है, भारत उनमें एक अपवाद है। देश की सीमा में रहते हुए हमारा ध्यान इस ओर नहीं जाता या कह सकते हैं कि ध्यान देना नहीं चाहते, लेकिन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान और कूटनीति के संदर्भ में जब कुछ प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं तो समझ में आता है कि भारत का जनमानस अपनी किसी भी समस्या को सुलझाने में कितना असमर्थ है। लोकतंत्र की आड़ में राष्ट्रीय समस्यों के मकड़जाल में फँसाकर हम अपने स्वार्थ में इतने सिद्धहस्त हो चुके हैं कि गरीब-अशिक्षित जनमानस स्वयं को असहाय पाता है। भारत के कुछ वर्ग विशेष ने लोकतंत्र को अपनी तरह से परिभाषित किया हुआ है। उनके अनुसार शक्ति प्राप्त वर्ग को कुछ भी करने की स्वतंत्रता उनका अधिकार है। यहाँ तक की राष्ट्रीयता भी उनकी सोच से बहुत छोटी सिद्ध हो जाती है। यह अनुभव अपने विदेश प्रवासों के दौरान कदम-कदम पर एहसास करवाता रहा है।

ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन १८-२० अगस्त, २०१८ तक मॉरीशस में आयोजित किया जा रहा है। सन् १९७५ में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर से शुरू होनेवाले ये सम्मेलन बयालीस वर्ष की यात्रा पूरी करके ग्यारहवें सम्मेलन के रूप में दूसरी बार मॉरीशस में

संपूर्ण शिक्षा मेरठ विश्वविद्यालय में। पहला शिक्षण अनुभव विद्या भवन अध्यापक शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालय, उदयपुर में प्रवक्ता के रूप में। चीन आने से पूर्व दिल्ली केंद्र पर तीन वर्ष तक क्षेत्रीय निदेशक। भा.सां.सं.प., न.दि. द्वारा शेनजेन वि.वि., चीन में स्थापित की गई प्रथम हिंदी पीठ पर वि.प्रो. के रूप में कार्यरत।

आयोजित होगा। अत: स्वाभाविक है कि इन बयालीस वर्षों में हिंदी के लिए हमने क्या किया और हिंदी ने क्या पाया? क्या विश्व सम्मेलन करके हिंदी को राष्ट्रभाषा का सम्मान मिल गया? क्या हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषाओं में सम्मिलित हो गई? इन प्रश्नों का सिर्फ एक ही उत्तर है—नहीं। सत्तर सालों में न तो हिंदी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकी और न ही दस विश्व सम्मेलन आयोजित करने के बाद हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषाओं में सम्मिलित हो सकी तो फिर ऐसी कमजोर भाषा के लिए ये सम्मेलन क्यों आयोजित किए जाते हैं? भारत विश्व का अकेला देश है, जो राष्ट्रभाषा के अभाव में अंतरराष्ट्रीय भाषा की कल्पना करता है।

सन् १८८० में फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता में पहली बार धर्म के आधार पर हिंदी और उर्दू भाषा का विभाजन अंग्रेजों के द्वारा भविष्य को ध्यान में रखते हुए सोची-समझी साजिश के तहत किया गया था। इस विषय में कुछ अधिक कहने की अब कोई जरूरत नहीं है। स्वतंत्रता के बाद राजनीतिज्ञों को अंग्रेजों से भाषा का एक ऐसा मुद्दा मिल गया, जिसमें उन्हें अपना भविष्य उज्ज्वल दिखाई दिया। परिणामत: हास्यास्पद कुतर्कों के आधार पर राष्ट्रभाषा नीति/सूत्र को स्वीकारा ही नहीं जा रहा। ये तर्क-कुतर्क संसद् में और मीडिया के माध्यम से देखे और सुने जा सकते हैं।

भारत के राज्यों का पुनर्गठन भाषा के आधार पर हुआ है। उत्तर भारत के नौ राज्य—उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा, उत्तरांचल, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़ और राजस्थान हिंदीभाषी हैं। दक्षिण भारत में आंध्र प्रदेश और तेलांगना तेलुगु भाषी हैं, जबकि शेष तीन राज्यों—तमिल, कर्नाटक और केरल की भाषाएँ क्रमश: तमिल, कन्नड और मलयालम हैं। दूसरी ओर पूर्वोत्तर भारत के आठ राज्यों में असमिया, बँगला, मणिपुरी भाषाएँ तथा खासी, गारो, जयंतिया,

नागामीज, मिजो प्रमुख बोलियाँ हैं। इसके अलावा भी ये आठों राज्य अनंत बोलियों के भंडार हैं और जो बोलियाँ आज भी व्यवहार में हैं। पूर्व के राज्य—उड़ीसा और प. बंगाल उड़िया और बँगला भाषी हैं तथा पश्चिम में गुजरात में गुजराती, महाराष्ट्र में मराठी भाषा हैं। पंजाब में पंजाबी है तो जम्मू-कश्मीर में उर्दू-डोगरी-कश्मीरी हैं। इन राज्यों में भी अनेक बोलियाँ व्यवहार में हैं। राज्यों के इस भाषावार विवरण को प्रस्तुत करने का उद्देश्य है कि हम तर्कों के आधार पर यह समझ सकें कि इस बहुभाषी और बहु बोलियोंवाले देश में समस्त भारतवासी किस तरह आपस में बोलते हैं।

समाजभाषा वैज्ञानिक आधार पर बहुभाषी समाज और देश में धीरे-धीरे कोई एक भाषा ऐसी विकसित हो जाती है, जिसका प्रयोग पूरा समाज/देश करने लगता है। यह नैसर्गिक प्रक्रिया है, जिसे कोई भी नहीं रोक सकता। हिंदी भी इसी नैसर्गिक प्रक्रिया के विकास का परिणाम है। यही कारण है कि संपूर्ण भारत में हिंदी संपर्क भाषा बन चुकी है और पंजाबी हिंदी, बिहारी हिंदी, हरियाणवी हिंदी, तमिल हिंदी, बंगाली हिंदी, यानि कि हर राज्य के अनुसार हिंदी बोली जाती है और समझी भी जाती है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण हिंदी फिल्म दंगल और चैन्नई एक्सप्रेस हैं। दंगल की भाषा हरियाणवी है और यह फिल्म अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय हुई है। चैन्नई एक्सप्रेस की भाषा मद्रासी हिंदी है और यह फिल्म भी लोकप्रिय हुई। कहने का अभिप्राय है कि हिंदी जनमानस की लोकप्रिय भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी है। अब यदि राजनीतिक संपर्क का विश्लेषण करें तो वहाँ भी बहुत अंतर नहीं है। संसदीय चुनाव के समय नेताओं की भाषा हिंदी होती है। आज तक किसी भी नेता को अंग्रेजी में वोट माँगते हुए नहीं देखा-सुना गया होगा। यह एक राजनीतिक सत्य है कि गैर-हिंदी क्षेत्र के प्रभावी नेता को प्रधानमंत्री के रूप में हिंदी न जानने के कारण नकार दिया जाता है। लेकिन संसद् में पहुँचने के बाद हिंदी के मुद्दे पर इन्हीं की ओर से बयान आते हैं—

'यदि कोई नेता तमिलनाडु या पश्चिम बंगाल से प्रधानमंत्री बनेगा तो हम उसे संयुक्त राष्ट्र में हिंदी में बोलने के लिए मजबूर कैसे कर सकते हैं।'

मंत्री के इस बयान पर प्रश्न उठता है कि राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री को हिंदी बोलने के लिए मजबूर क्यों नहीं किया जा सकता और इन्हें हिंदी क्यों नहीं बोलनी चाहिए? क्या राष्ट्रभाषा की समस्या को राष्ट्रहित में सुलझाना इनका दायित्व नहीं है? दूसरी ओर नेताओं के साथ-साथ ढुलमुल नौकरशाही और उनके व्यक्तिगत स्वार्थों के चलते उनके नकारात्मक दृष्टिकोण भी राष्ट्रभाषा की समस्या को सुलझाने में बाधक हैं।

स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रीय एकता के विकास को ध्यान में रखकर लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुसार ही शिक्षा नीति और भाषा नीति का निर्माण किया गया था और इसके लिए त्रिभाषा सूत्र को लागू करने की सिफारिश की गई थी। त्रिभाषा सूत्र को स्वीकार करने और लागू करने से आज भारत के अधिकांश लोग तीन भाषाएँ—हिंदी, अंग्रेजी और भारत की कोई दूसरी भाषा जानने में सक्षम होते। इतने वर्षों में हम यह नहीं समझ सके कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में इतनी सारी भाषा और बोलियों को बोलनेवाला भारत विश्व का एक अनूठा देश है। साम्यवादी पूर्व सोवियत संघ में कई भाषाएँ बोली जाती थीं, लेकिन राष्ट्रभाषा रूसी थी। परिणामत: जिनकी मातृभाषा रूसी नहीं होती थी, वे भी राष्ट्रभाषा के कारण रूसी भाषा सीखते थे। इस तरह वहाँ का हर नागरिक अपनी-अपनी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा बोलने में कुशल थे। यही कारण था कि अपने संख्या बल पर रूसी भाषा राष्ट्र संघ की भाषा में सम्मिलित है। सोवियत संघ टूटने के बाद आज रूसी बोलनेवालों की संख्या विश्व में कभी पाँचवें और कभी आठवें पायदान पर दर्शाई जाती है, जबकि हिंदी दूसरे-तीसरे पायदान पर संख्या बल के कारण खिसकती रहती है। इस बीच ऐसा नहीं हुआ कि रूसी बोलनेवालों की संख्या कम हो गई बल्कि सोवियत संघ से अलग हुए देशों की अपनी-अपनी राष्ट्रभाषाएँ घोषित हो गईं और रूसी बोलनेवालों की संख्या कागज पर कम हो गई लेकिन राष्ट्र संघ में रूसी फिर भी सम्मिलित है और दूसरे-तीसरे स्थान पर पदस्थ हिंदी अभी भी संघर्षरत है। दूसरा बहुभाषी देश है—चीन। चीन की राष्ट्रभाषा मंदारिन है और यह भाषा लंबे समय से निरंतर विश्व की सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा के पद पर स्थापित है। चीन के शक्तिशाली रूप और शासन प्रणाली को देखते हुए कहा जा सकता है कि आगे भी यह प्रथम स्थान बनाए रखेगी। मंदारिन के अलावा यहाँ और भी कई भाषाएँ बोली जाती हैं। जिनकी मातृभाषा मंदारिन नहीं है वे अपनी मातृभाषा के साथ राष्ट्रभाषा का भी प्रयोग करते हैं। इस तरह यहाँ का नागरिक दो भाषाएँ जानता है। भारतीयों के लिए यह एक बहुत बड़ा आश्चर्य होगा कि अंग्रेजी जाननेवालों की संख्या चीन में नगण्य ही है। लेकिन विकास की दृष्टि से इस देश ने अमेरिका को भी कई क्षेत्रों में पीछे किया हुआ है। भारत के बारे में सिर्फ यही कहा जा सकता है कि भारत का एक सामान्य आदमी न विकास का अर्थ समझता है और न ही राष्ट्रीयता का। इन दोनों देशों की बहुभाषिकता और इनके विकास को समझते हुए यदि भारत में त्रिभाषा सूत्र को लागू कर दिया जाता तो आज भारत की तसवीर कुछ और ही होती। सन् १८०० में हिंदी-उर्दू के बीच पैदा किया हुआ विवाद २०१८ तक आते-आते हिंदी-भारतीय भाषाएँ-अंग्रेजी के जाल में उलझकर और जटिल हो गया है। राष्ट्रभाषा की समस्या भारत की घरेलू समस्या है। इसका समाधान अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नहीं होगा। अत: राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्रसंघ की भाषाओं में हिंदी को स्थान मिलना असंभव ही है।

हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का एक ही रास्ता है कि नोटबंदी की तरह राष्ट्रहित में शिक्षा में त्रिभाषा सूत्र लागू किया जाए और राष्ट्रभाषा के संबंध में तर्कों के अभाव में प्रादेशिक भावना भड़काने वालों के विरुद्ध अनुशासनात्मक काररवाई की जाए। लोकतंत्र की आड़ में राष्ट्रवाद के साथ खिलवाड़ करना अपराध घोषित किया जाए। संयुक्त राष्ट्र संघ में मंदारिन, अंग्रेजी, स्पेनिश, रूसी, फ्रेंच और अरबी कुल छह भाषाएँ सम्मिलित हैं। ये वे भाषाएँ हैं जो अपने-अपने देशों की राष्ट्रभाषाएँ हैं,

इन्हें बोलनेवालों की संख्या सर्वाधिक है और इन भाषाओं में ज्ञान-विज्ञान के कार्य किए जाते हैं। विश्व की सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषाओं की कई सूचियाँ इंटरनेट पर उपलब्ध हैं, जिनके आधार पर वस्तुस्थिति को समझ सकते हैं—

पहली सूची के अनुसार—१. मंदारिन २. स्पेनिश ३. अंग्रेजी ४. हिंदी।

इसमें राष्ट्र संघ की तीन भाषाएँ सम्मिलित नहीं हैं, लेकिन हिंदी विश्व की चौथी सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा है।

दूसरी सूची के अनुसार—१. मंदारिन २. हिंदी/उर्दू ३. स्पेनिश ४. अंग्रेजी ५.अरबी ६. पुर्तगाली ७. बँगला ८. रूसी ९. फ्रेंच १०. जापानी/पंजाबी ११. जर्मन।

तीसरी सूची के अनुसार—१. मंदारिन २. स्पेनिश ३. अंग्रेजी ४. हिंदी ५. अरबी ६. पुर्तगाली ७. बंगाली ८. रूसी ९. जापानी १०. लाहंदा ११. जावानीज १२. जर्मन १३. कोरियन १४. फ्रेंच १५. तेलुगु १६. मराठी १७. तुर्की १८. तमिल १९. वियतनामी २०.उर्दू।

सन् २०५० तक विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली बननेवाली भाषाएँ होंगी—१. अंग्रेजी २. मंदारिन ३. स्पेनिश ४. फ्रेंच ५. अरबी ६.रूसी ७. जर्मन ८. पुर्तगाली ९. हिंदी १०. जापानी।

इंटरनेट पर विश्व की सर्वाधिक बोलनेवाली भाषाओं की कई सूचियाँ उपलब्ध हैं। प्रस्तुत शुरू की तीन सूचियों से स्पष्ट है कि मंदारिन बोलनेवालों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है। दूसरे, तीसरे और चौथे स्थान पर आगा-पीछा हिंदी-अंग्रेजी-स्पेनिश में है, लेकिन सन् २०५० में अंग्रेजी पहले स्थान पर, मंदारिन दूसरे पर और हिंदी नौवें स्थान संभावित है। ये सर्वेक्षण किस प्रकार किए जाते हैं, इस संबंध में इनकी विश्नसनीयता संदेहास्पद हो सकती है, लेकिन इतना सच है कि भारतीय भाषाओं में हिंदी बोलनेवालों की संख्या न केवल भारत में बल्कि विश्व में भी सबसे अधिक है। अत: राष्ट्रीय स्तर पर और संयुक्त राष्ट्र संघ में भारतीयों का हिंदी विरोध करना राष्ट्रीयता की भावना से खिलवाड़ करना है।

प्राय: विश्व-स्तर पर भाषाओं के क्रम का निर्धारण इन आधार पर किया जाता है—

१. भूगोल अर्थात्, भौगोलिक रूप से भाषा कहाँ-कहाँ बोली जाती है तथा उस भाषा के माध्यम से यात्रा करने की क्षमता कितनी है।

२. आर्थिक पक्ष, विश्व की कौन-कौन सी भाषाएँ व्यापार, रोजगार आदि पक्षों की प्रतिपूर्ति कर सकती हैं।

३. संप्रेषण, वैश्विक स्तर पर कौन सी भाषाएँ अधिक संप्रेषण की भूमिका में होती हैं।

ज्ञान की तरह ही कूटनीति में भी हिंदी का प्रयोग उपेक्षित है। भारत के दूतावासों में हिंदी की स्थिति (दुर्गति) किसी से छिपी नहीं है। मेरा यह व्यक्तिगत अनुभव है कि विदेशी भारतविद् अंग्रेजी न जानने के कारण केवल हिंदी के बलबूते पर दूतावास के अधिकारियों से संपर्क करने में अकसर झिझकते हैं। भारत से जानेवाले शिष्टमंडल भी हिंदी के प्रयोग से बचते हैं। इस दृष्टि से वर्तमान प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री इसका अपवाद हैं। इनके हिंदी प्रयोग से निश्चित रूप से हिंदी को अंतरराष्ट्रीय गौरव प्राप्त हो रहा है।

४. ज्ञान, विश्व की कौन-कौन सी भाषाओं में अधिकतम ज्ञान उपलब्ध है।

५. कूटनीति, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कूटनीतिक संबंध बनाने में भाषा की स्थिति।

उपर्युक्त आधारों पर हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति की समीक्षा करने से स्पष्ट है कि भूगोल, आर्थिक पक्ष और संप्रेषणात्मक दृष्टि से हिंदी की स्थिति काफी मजबूत है, लेकिन ज्ञान और कूटनीति के क्षेत्र में हिंदी की स्थिति को संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता। हिंदी में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, टी.वी धारावाहिक तो बहुत लिखे जा रहे हैं, इसके साथ ही हिंदी फिल्में और संगीत अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय हो चुके हैं। हिंदी फिल्मों के बारे में कहा जा सकता है कि आज विश्व में हिंदी को लोकप्रिय बनाने का एक बहुत बड़ा कारण हिंदी फिल्में और संगीत है। लेकिन ज्ञान-विज्ञान-तकनीकी, चिकित्सा, कानून और शिक्षा जैसे गंभीर लेखन आज भी अंग्रेजी में ही हो रहे हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है कि आज भी भारत में उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही है। उच्चस्तरीय अनुसंधान तो हिंदी में शून्य ही है। अभी तक यही स्वीकार किया जा रहा है कि गंभीर लेखन कार्य हिंदी में संभव नहीं है। दुनिया के किसी भी देश में ऐसा होना कल्पना से बाहर की बात है। चीन, रूस, फ्रांस, जर्मन, जापान, कोरिया आदि देशों में शिक्षा और अनुसंधान का माध्यम उनकी अपनी-अपनी राष्ट्रीय भाषा में होता है। अनुवाद के द्वारा यह सारा ज्ञान दुनिया में पहुँचता है। ज्ञान-प्राप्ति का यह रास्ता भारत में लगभग उपेक्षित ही है।

ज्ञान की तरह ही कूटनीति में भी हिंदी का प्रयोग उपेक्षित है। भारत के दूतावासों में हिंदी की स्थिति (दुर्गति) किसी से छिपी नहीं है। मेरा यह व्यक्तिगत अनुभव है कि विदेशी भारतविद् अंग्रेजी न जानने के कारण केवल हिंदी के बलबूते पर दूतावास के अधिकारियों से संपर्क करने में अकसर झिझकते हैं। भारत से जानेवाले शिष्टमंडल भी हिंदी के प्रयोग से बचते हैं। इस दृष्टि से वर्तमान प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री इसका अपवाद हैं। इनके हिंदी प्रयोग से निश्चित रूप से हिंदी को अंतरराष्ट्रीय गौरव प्राप्त हो रहा है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर वैश्विक स्तर पर हिंदी को स्थापित करने के लिए सबसे पहले हमें राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को स्थापित करने के प्रयास करने होंगे। संविधान में भारत की बाईस भाषाओं को राज भाषा का दर्जा प्राप्त है तथा हर राज्य अपनी-अपनी भाषा में काम कर रहा है। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने से अन्य भाषा-भाषी राज्य और वहाँ के लोगों को ऐसा लगता है कि हिंदी उनके ऊपर थोपी जा रही है। इस तथ्य को तर्कों के आधार पर या तो उन्हें सिद्ध करना चाहिए या

फिर हिंदी को स्वीकार करना चाहिए। वैसे हिंदी का राष्ट्रभाषा के रूप में विरोध करने वाले लोग संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करते हैं। जीवन में गतिशील होने के लिए अन्य भाषा का सीखना आवश्यकता है। भारत में यह आवश्यकता हिंदी से और विदेशों में अंग्रेजी से पूरी होती है, लेकिन चीन, जापान, कोरिया तथा यूरोप के कई देशों में अंग्रेजी भी कुछ नहीं कर पाती। अत: भौगोलिक स्थिति, संप्रेषणीयता, आर्थिक आधार तथा हिंदी बोलनेवालों की देश-विदेश में संख्या के आधार पर अहिंदी भाषी राज्यों और लोगों को लोकतांत्रिक व्यवस्था का सम्मान करते हुए हिंदी को सर्वसम्मति से राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना उनका नैतिक उत्तरदायित्व होगा।

दूसरा कार्य सरकार को अपने स्तर पर करना होगा। सरकार को त्रिभाषा सूत्र को स्वीकार करके लागू करना चाहिए, ताकि भाषा के आधार पर समाज में होनेवाला वर्ग-विभाजन समाप्त हो सके और समाज में ज्ञान का विकास स्वाभाविक तरह से हो सके। राष्ट्र में राष्ट्रभाषा स्वीकृत होने के बाद कूटनीति में भी हिंदी का प्रयोग नीतिगत निर्णय होगा। अभी तक हिंदी के संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषाओं में सम्मिलित न होने का सबसे बड़ा कारण हिंदी का राष्ट्रभाषा न होना है। वर्तमान में राष्ट्र संघ की छह भाषाएँ अपने-अपने देशों की राष्ट्र भाषाएँ हैं, जिनका प्रयोग उनके द्वारा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर किया जाता है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषाओं में सम्मिलित करना कोई कठिन कार्य नहीं है, क्योंकि राष्ट्र संघ में भाषा को सम्मिलित करने के लिए जनरल एसेंबली के कुल सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत प्राप्त होना चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए भारत के लिए दो-तिहाई बहुमत प्राप्त करना कोई असंभव कार्य नहीं है। विश्व भारत को उभरती हुई आर्थिक शक्ति के रूप में स्वीकार कर चुका है। हिंदी विश्व की सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषाओं में दूसरे स्थान पर है। दूसरे स्थान से हिंदी को वंचित करके दर्शाते समय हिंदी की बोलियों को हिंदी से अलग किया जाता है। यदि उसी भाषा की बोलियों को अलग करके भाषाओं के बोलने वालों की संख्या का निर्धारण किया जाएगा तो यह दृष्टिकोण विश्व की समस्त भाषाओं के बोलनेवालों की संख्या को प्रभावित करेगा।

अत: वैश्विक स्तर पर हिंदी को मान्यता दिलवाने से पहले देश को राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार करना अत्यंत आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो हमें संयुक्त राष्ट्र संघ की रेडियो वेब साइट पर प्रसारित होनेवाले हिंदी कार्यक्रमों से संतुष्ट होते रहना पड़ेगा, हिंदी प्रेमी और विद्वान् विश्व हिंदी सम्मेलनों का आयोजन करते रहेंगे और मंचों से वैश्विक स्तर पर हिंदी की स्वीकार्यता के लिए राष्ट्र संघ की भाषा बनाने का आग्रह करते रहेंगे।

विजिटिंग प्रोफेसर, हिंदी पीठ
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली
शेनजिन विश्वविद्यालय, चीन
e-mail : geetavats7@yahoo.com

पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक **साहित्य अमृत** के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 1110734393 IFSC–CBIN 0280297 में **साहित्य अमृत** के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- पत्रिका न मिलने पर १५ तारीख तक सूचित कर दें, ताकि वह अंक नए अंक के साथ भेजा जा सके।
- आपको अगर **साहित्य अमृत** का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का मई अंक काफी आकर्षक व रोचक लगा। संपादकीय में व्यक्त विचार तो सारगर्भित सामयिक और सार्थक होते ही हैं, साथ ही ज्ञानवर्धक भी। रचनाओं में राहुल सांकृत्यायन का 'अमृताश्व', नीरजा माधव का 'छोटू', राजेश सहाय का 'बाबू साहब', मालिनी गौतम का 'ईश्वर तेरी दुनिया में', गोपाल चतुर्वेदी का 'दूसरों को दोष देने की प्रतिभा', पुरु मालव का 'आँसू बनकर बह गई', मंजरी शुक्ला का 'मिड-डे-मील', रुक्मणी संगल का 'उदयपुर व आबू की यात्रा' अच्छी लगीं व संवेदनशील भी।

—ÙÎ ç·¤àææÚU çÌßæÚUè, ßæÚUæ‡æâè

'साहित्य अमृत' अपनी सुरुचिपूर्ण साहित्यिक सामग्री के कारण आज हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं में सर्वोपरि मानी जाने लगी है। सम्मान्य चतुर्वेदीजी के संपादकीय सदैव ज्वलंत मुद्दों का बड़ा ही सटीक विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। आश्चर्य होता है कि उन्हें राजनीति, साहित्य और समाज से संबंधित समस्त जानकारी प्राप्त करने के लिए पर्याप्त अध्ययन का अवकाश कैसे मिल पाता है; हमारा साधुवाद स्वीकार करें। मई की सभी कहानियाँ और लेख पठनीय हैं, किंतु राजेश सहायजी की कहानी 'बाबू साहब' ने विशेष रूप से प्रभावित किया। डॉ. श्रीधर द्विवेदी का लेख 'कुछ साहित्यिक महाविभूतियाँ' हिंदी के दिग्गज विद्वान् सर्वश्री वासुदेव शरण अग्रवाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के समग्र व्यक्तित्व की बड़ी प्रभावशाली झलक प्रस्तुत करता है। श्री हेमंत कुकरेती का श्री केदारनाथ सिंह विषयक संक्षिप्त लेख भी थोड़े में बहुत कुछ समेट सका है। नीरजा माधव की कहानी 'छोटू' बहुत ही मार्मिक और मन को उद्वेलित करनेवाली है। —§Î àæ€Üæ, Â‡æ

'साहित्य अमृत' का जुलाई अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय में आपने राजनैतिक दल कांग्रेस को आईना दिखाया है। यह उसकी असुरक्षा की भावना ही है, जो उसके नेताओं की स्तरहीन बयानबाजी से जाहिर होती है। वे तो राष्ट्रपति और सेना तथा प्रधानमंत्री तक पर अशोभनीय टिप्पणियाँ कर रहे हैं। कहानियाँ, आलेख व लघुकथाएँ पठनीय हैं। कविताएँ भावपूर्ण लगीं। लोक साहित्य में 'बरखाबहार' लेख आनंदित कर गया। अन्य स्तंभों की रचनाएँ अच्छी लगीं। —âÚUàæ Â·¤àæ àæ€ÜU, Ü¹Ùª¤

'साहित्य अमृत' के जून अंक के संपादकीय में इरफान हबीब की प्रशंसा में आधा पन्ना भर गया। इरफान हबीब के पिता भी अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय में थे। वे मुसलिम लीग के समर्थक थे। इरफान हबीब अपने को मार्क्सवादी कहते हैं, पर इनका एजेंडा हूबहू 'लीगी' है। जो तथाकथित इतिहासकार राजन्मभूमि के विरुद्ध गुट बनाकर खड़े हुए, उनमें अग्रणी इरफान हबीब थे। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में इन इतिहासकारों पर कटाक्ष किया है। अरुण शौरी ने तो अपनी पुस्तक 'Eminent Historians' में हबीब के काले कारनामे बयान किए हैं। आश्चर्य है कि फिर भी पत्रिका उनकी प्रशंसा कर रही है! —çß·¤æâ, »æçÁØæÕæÎ (©.Â.)

'साहित्य अमृत' के जून अंक के संपादकीय को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि संपादकजी जो पुस्तक पढ़ते हैं, उसे पूर्ण सत्य मान लेते हैं। अपने विवेक की कसौटी पर उनकी परख नहीं करते। कन्नौज नाम अरबों ने दिया, यह हास्यास्पद है। अरबों का पहला आक्रमण ७वीं शताब्दी में हुआ। यह सिंध तक सीमित था, इसके बाद जो आक्रमण हुए वे तुर्क, अफगान, ईरानी, तूरानी आदि द्वारा हुए। अरबों का व्यापार भी केरल तक सीमित रहा। फिर उत्तर भारत में अरबी भाषा का प्रभाव कैसे हो गया? दूसरे, ७वीं शताब्दी के पूर्व अनेक शताब्दियों से हर्ष के काल में और उसके पहले ही 'कान्यकुब्ज' प्रचलित था। यह भी विचारणीय है कि नगर बसने के बाद क्या सैकड़ों वर्षों तक उसका नाम ही न हो। यह प्रतीक्षा हो कि कोई विदेशी आकर नामकरण संस्कार करे। लगभग एक पूरा पृष्ठ इस निरर्थक वार्त्ता को देना सर्वथा अनुचित है।

—·¤. ÕræææÙÎ çÌßæÚUè, ×ÙÂÚUè (©.Â.)

'साहित्य अमृत' का जून अंक अपनी उत्कृष्ट सामग्री के कारण विशेष पठनीय है। हिंदी के प्रथम प्रयोगवादी प्रभाकर माचवे की जन्मशती के उपलक्ष्य में प्रतिस्मृति स्वरूप प्रस्तुति 'एक कुत्ते की डायरी' व्यंग्य रचना अच्छी लगी। अपने समकालीन व्यंग्यकारों में माचवेजी का एक ऊँचा स्थान था। उनके व्यंग्यों में तिलमिलाहट या चुभन नहीं, नश्तरी चीखन है। डायरीनुमा शैली में रचित प्रस्तुत व्यंग्य उत्कृष्ट कोटि का है। बालकवि बैरागी का लेख 'भगवान् श्री बदरीनाथ की आरती' गहरी आस्थापरक और धार्मिक भावना में भरा स्पृहणीय है। मदन मोहन वर्मा की कहानी 'तलाक, तलाक, तलाक' और प्रमोद कुमार सुमन की कहानी 'छुटकारा' अपने कथ्य-शिल्प में कसी हुई हैं। बैरागीजी के विरल व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अशोक चक्रधर का विश्लेषण विशिष्ट है। विश्वप्रसिद्ध जंतु विज्ञानी डॉ. रमेश बेदी : कुछ संस्मरण (प्रेमपाल शर्मा) अपनी रोचकता और भाषाई प्रवाहशीलता से विशेष पठनीय है। समग्रत: आत्मतत्त्व की प्रधानता है। अन्य रचनाएँ भी पठनीय हैं। —Çæ. ÚUæãÜU, çÎËÜè

'साहित्य अमृत' का जुलाई अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय पठनीय है। अभिमन्यु अनत का जाना हम सबके लिए दु:खद है। श्याम सिंह शशि का आलेख काफी जानकारी प्रदान करता है। अरुण होता का आलेख आलोचकों के लिए दिशा देता है। श्रीमती सुमन चौरे और डॉ. श्रीराम परिहार के आलेख तथा ओड़िया और रूसी कहानी के अनुवाद सुंदन बन पड़े हैं।

—©×àæ ·¤×æÚU çâãü, ÖæÂæÜ

'साहित्य अमृत' के जुलाई अंक में संपादकीय 'कांग्रेस में असुरक्षा की भावना क्यों' अच्छा लगा, जो आज की हकीकत है। बी.एस. जौहरी की कविता 'जोश में होश कहाँ रहता है' बहुत पसंद आई। 'साहित्य अमृत' के हर अंक में एक नाम गोपाल चतुर्वेदी का अवश्य होता है, जो पत्रिका के स्थायी लेखक हैं, वे 'राम झरोखे बैठ के' अंतर्गत कहानी लिखते हैं। यह व्यंग्य के रूप में होती है, वह काफी पसंद है। 'साहित्य अमृत' जैसी उत्कृष्ट पत्रिका शायद समस्त भारत में अन्य दूसरी नहीं है। हमें इस पत्रिका का हर एक अंक पसंद आता है तथा हर अंक की प्रतीक्षा रहती है। —ÕÁ×æãÙ ÁÙ, çÎËÜè

मैं आपकी प्रतिष्ठित पत्रिका 'साहित्य अमृत' का नियमित पाठक हूँ। इसका प्रत्येक अंक प्रबुद्ध लेखकों द्वारा लिखे गए उपयोगी व रोचक लेखों का अद्भुत संग्रह है। विद्वान् संपादक द्वारा लिखे गए संपादकीय सदैव प्रत्येक अंक में चूड़ामणि की तरह प्रतीत होते हैं। पत्रिका के संपादकीय की विषय-वस्तु समृद्ध, वस्तुनिष्ठ तथा पूर्ण रूप से विश्लेषित होती है। अति महत्त्वपूर्ण विषयों/व्यक्तियों/घटनाओं पर समय-समय पर विशेषांक निकालने का श्रेय प्रकाशक व संपादक को है। इनमें विशिष्ट व दुर्लभ ज्ञान प्राप्त होता है, जो आसानी से उपलब्ध नहीं है। इस संदर्भ में स्वामी विवेकानंद पर प्रदत्त विषय-सामग्री अत्यंत ज्ञानवर्धक व प्रभावी लेखन से ओत-प्रोत थी। पत्रिका का प्रत्येक लेख पूर्णतया अनुसंधान व चिंतन की उपज होता है। अन्य प्रशंसनीय अंक हमारे पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम पर और 'लोक संस्कृति' विशेषांक था। प्रत्येक अंक में रोचक विषयों पर तथा समसामयिक विषयों पर विशिष्ट, तथ्यपरक व गहन जानकारी प्रस्तुत करने के लिए पत्रिका परिवार को साधुवाद।

—Çè.°Ù. ¥æÙÎ (·¤‹ÙÇ Öæcæè)

वर्ग पहेली (१५५)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ अगस्त, २०१८ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते अक्तूबर २०१८ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१५३) का शुद्ध हल

१स्वा	धी	२न	ता	■	३स	४हि	ष्णु	५ता
भा	■	ग	■	६म	न्न	त	■	र
७वि	८चा	र	९शी	ल	■	१०चिं	ति	त
११क	ला	■	१२त	बा	१३ब	त	■	म्य
■	१४क	१५म	ल	■	१६र	क	१७म	■
१८आ	■	१९ह	ता	२०ह	त	■	२१ही	२२क
२३शु	चि	त्व	■	२४व	न	२५रो	प	ण
क	■	२६पू	२७ज	न	■	ग	■	क
२८वि	प	र्ण	क	■	२९न्यू	न	को	ण

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री माणक तुलसीराम गौड़**
द्वितीय तल, २४६, नौवाँ मेन
शांति निकेतन लेआउट, आरेकेरे
बेंगलुरु-५६००७६ (कर्नाटक)
दूरभाष : ८७४२९१६९५७

२. **श्री सैयद अख्तर हसन**
वन स्टोप सोल्यूशन, किला घाट मसजिद
के सामने, पो.-लालबाग,
जिला-दरभंगा-८४७००४ (बिहार)
दूरभाष : ९१२८०२१८२०

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १५३ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री सी.आर. नाहड़िया (नारनौल), फकीरचंद ढुल (कैथल), प्रभात कुमार गुप्ता (मोहाली), रुक्मणी संगल (पटियाला), अपर्णा गर्ग (ग्वालियर), मोहन जगदाले (उज्जैन), सुभाष शर्मा, पुखराज वार्ष्णेय (दिल्ली), शिवानंद सिंह 'सहयोगी' (मेरठ), विनीता सहल (मुंबई), खुशी चतुर्वेदी (लखनऊ)।

बाएँ से दाएँ—

१. बूढ़ा व्यक्ति (२,३)
४. वाणी, सरस्वती (३)
६. बुरी आदत (२)
७. फूलों का हार (२)
८. भरा हुआ, कुल (२)
१०. एक दर्जन (३)
१२. सरहद (२)
१३. परिषद्, मजलिस (२)
१५. तथ्यपूर्ण (३)
१७. सामान अवस्था का भाव (५)
१८. प्राकृतिक, सरल (३)
२०. जो पुरानी न हो (२)
२२. मिथ्या प्रतीति (२)
२३. कुरआन का कोई (३)
२५. स्वच्छ, खोट से रहित (२)
२७. शब्द वर्ग, जो विषय या क्रिया की वस्तु के रूप में कार्य कर सकता है (२)
२८. रहम (२)
३०. बल (३)
३१. देखादेखी किया गया काम (५)

ऊपर से नीचे—

१. किसी समुदाय का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति, बैल (३)
२. सेतु (२)
३. खिताब, बड़ाई (३)
४. एक अस्त्र (२)
५. (व्यंग्य में) बहुत बड़ा वीर (५)
७. महीना (२)
९. सत (२)
११. रहस्ययुक्त (५)
१२. सरल (२)
१४. बड़े भाई की पत्नी (३)
१५. आषाढ़ और भाद्रपद के बीच का महीना (३)
१६. विषमता (५)
१९. शर्म (२)
२१. गन्ना (२)
२३. आदेश (२)
२४. उसके पश्चात् (३)
२६. दशानन (३)
२७. साधु (२)
२९. तिब्बत में पाया जानेवाला एक पालतू जानवर (२)

वर्ग पहेली (१५४) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१५५)

१		२	३		■	४		५
	■	६		■	७		■	
८	९	■	१०	११		■	१२	
■	१३	१४	■		■	१५		
१६	■	१७					■	
१८	१९		■		■	२०	२१	■
२२		■	२३		२४	■	२५	२६
	■	२७		■	२८	२९	■	
३०			■	३१				

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

विमोचन कार्यक्रम संपन्न

२५ जून को सागर में श्यामलम संस्था द्वारा जे.जे. इंस्टीट्यूट में डॉ. लक्ष्मी पांडेय की अध्यक्षता में वरिष्ठ कवि श्री निर्मल चंद 'निर्मल' की १९वीं काव्य-कृति 'विविधा' का विमोचन प्रो. सुरेश आचार्य के विशिष्ट आतिथ्य में किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री शरद सिंह, वर्षा सिंह, निरंजना जैन, महेश तिवारी, उमाकांत मिश्र ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री आशीष ज्योतिषी ने किया तथा आभार श्री कपिल बैसाखिया ने व्यक्त किया। □

'अंतर्वेदना' काव्य-संग्रह विमोचित

१७ जून को मुरादाबाद के स्वतंत्रता सेनानी भवन में श्री माहेश्वर तिवारी की अध्यक्षता में डॉ. रीता सिंह के प्रथम काव्य-संग्रह 'अंतर्वेदना' का विमोचन डॉ. जय पाल सिंह 'व्यस्त' के मुख्य आतिथ्य एवं सर्वश्री मंसूर उस्मानी, सी.ए. दीपक बाबू, अशोक कुमार रुस्तगी, बीना रुस्तगी, पंकज दर्पण अग्रवाल के विशिष्ट आतिथ्य में किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री राजीव प्रखर, हेमा तिवारी भट्ट, अखिलेश वर्मा, ममता सिंह, सुगंधा अग्रवाल, टी.एस. पाल, राजेश कुमार ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. अर्चना गुप्ता ने किया। □

'गौगुंजन का' कृति लोकार्पित

विगत दिनों अयोध्या में आयोजित विराट् संत सम्मेलन में कवि श्री प्रेम किशोर 'पटाखा' की पुस्तक 'गौगुंजन का' का लोकार्पण उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ द्वारा श्रीराम जन्मभूमि न्यास के अध्यक्ष स्वामी नृत्य गोपाल दास महाराज द्वारा किया गया। □

लोकार्पण एवं सम्मान समारोह संपन्न

१७ जून को बेंगलुरु के प्रेमसुखार्पित भवन में कर्नल प्रभात कुमार की अध्यक्षता में डॉ. हरिकृष्ण सक्सेना 'परेशान' के दो ग्रंथों 'श्रीमद्भागवत : नवचिंतन' एवं 'एक और सागर मंथन' का लोकार्पण श्री चिरंजीव सिंह के मुख्य आतिथ्य एवं सर्वश्री श्यामप्रकाश देवपुरा व मृणाल शर्मा के विशिष्ट आतिथ्य में किया गया। डॉ. हरिकृष्ण सक्सेना 'परेशान' को 'भाषा ऋषि सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री श्यामप्रकाश देवपुरा, मृणाल शर्मा, प्रमिला शर्मा, सविता मिश्रा, रतिंदर कौर, सुनीता सैनी, हरि वाणी को 'साहित्य-कौस्तुभ सारस्वत सम्मान'; अशोक अश्रुजी, रामेश्वर शर्मा 'रामूभैया', भगवतसिंह मयंक को विशेष रूप से सम्मान तथा दर्शना आशुतोष चंद्रा, रोहित पाराशर, हिमांशु अग्रवाल को ग्रंथ प्रकाशन में सहयोग देने के लिए सम्मानित किया गया। संचालन डॉ. संतोष मिश्रा ने किया तथा धन्यवाद श्रीमती सरिता सक्सेना ने ज्ञापित किया। □

लोकार्पण समारोह संपन्न

विगत दिनों मधुवन, सारनाथ के परिसर में डॉ. जितेंद्र नाथ मिश्र की अध्यक्षता में एक साहित्यिक-सांस्कृतिक संध्या में डॉ. नीरजा माधव के संकलन का लोकार्पण प्रो. गेशे नवांग समतेन के मुख्य आतिथ्य में किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री इंदीवर, सौरभ देवा, अनूप वशिष्ठ, कमलेश भट्ट, ओम धीरज ने रचना पाठ किया। □

दो कृतियाँ लोकार्पित

३० जनू को नई दिल्ली के तत्त्वावधान में साहित्य अकादेमी के सभागार में माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति एवं वरिष्ठ पत्रकार श्री अच्युतानंद मिश्र की अध्यक्षता में प्रो. अरुण भगत की दो कृतियों 'आपातकालीन पत्रकारिता की संघर्ष गाथा' और 'आपातकाल की कहानियाँ' का लोकार्पण हरियाणा के राज्यपाल प्रो. कप्तान सिंह सोलंकी के मुख्य आतिथ्य एवं अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री सुनील आंबेकर के विशिष्ट आतिथ्य में संपन्न हुआ। मंचस्थ अतिथियों सहित डॉ. उदय प्रताप सिंह ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर 'आपातकाल की कहानियाँ' पुस्तक में सम्मिलित कहानीकार डॉ. वेद व्यथित को प्रो. कप्तान सिंह सोलंकी ने पुस्तक की प्रथम प्रति भेंट कर उनका अभिनंदन किया। संचालन डॉ. अशोक कुमार ज्योति ने किया तथा धन्यवाद डॉ. सुधीर रिंटन ने किया। □

'गुलमोहर' कृति लोकार्पित

विगत दिनों सागर के पं. ज्वाला प्रसाद इंस्टीट्यूट में प्रो. सुरेश आचार्य की अध्यक्षता में डॉ. चंचला देवी की प्रथम काव्य-कृति 'गुलमोहर' का लोकार्पण नगर की प्रतिष्ठित संस्था 'श्यामलम्' द्वारा श्री शुकदेव प्रसाद तिवारी के मुख्य आतिथ्य एवं डॉ. लक्ष्मी पांडेय के विशिष्ट आतिथ्य में किया गया। इस अवसर पर डॉ. देव का शॉल, श्रीफल, पुष्प-गुच्छ से अभिनंदन किया गया। डॉ. संध्या सर्वटे ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री आशीष ज्योतिषी ने किया तथा आभार डॉ. छाया चौकसे ने व्यक्त किया। □

'कारगिल के शहीद' कृति लोकार्पित

विगत दिनों मेरठ के होटल राजहंस रेजीडेंसी में कर्नल जे.वी.एस. तेवतिया की अध्यक्षता में कारगिल के शहीदों की याद में निरुपमा प्रकाशन द्वारा सुश्री ममता नौगरैया की पुस्तक 'कारगिल के शहीद' का लोकार्पण मेजर जनरल (से.नि.) बी.एस. पँवार के मुख्य आतिथ्य एवं डॉ. एस.सी. नौगरैया के विशिष्ट आतिथ्य में किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री प्रभात राय, चंद्रशेखर मयूर, सत्यपाल सत्यम, सुमनेश सुमन, मनोज कुमार 'मनोज', सुलतान सिंह 'सुल्तान', शुभम ने रचना पाठ किया। □

'सरयू से सिंधु' कृति लोकार्पित

विगत दिनों दिल्ली के इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष प्रो. डी.पी. सिंह द्वारा डॉ. रवि प्रकाश टेकचंदानी की पुस्तक 'सरयू से सिंधु' का लोकार्पण किया गया, जिसमें सर्वश्री सरल ज्ञापटे व कीर्तिकांत शर्मा ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर वेद पर आधारित 'सूक्ष्म चित्रित पांडुलिपियों की विवरण पंजिका' के पहले संस्करण का भी विमोचन किया गया। संचालन डॉ. रमेश चंद्र गौड़ ने किया तथा आभार केंद्र के सदस्य-सचिव डॉ. सच्चिदानंद जोशी ने व्यक्त किया। □

'कल्पना से अल्पना' कृति लोकार्पित

विगत दिनों इंदौर में कशीदाकारी, हस्तकला और रंगोली की वरिष्ठ कलाकार श्रीमती शरयू राशिनकर द्वारा हिंदी-अंग्रेजी के वर्णाक्षरों, गणितीय संकेतों जैसे आकारों को लेकर सृजित रचनाकार रंगोली की अभिनव कृति 'कल्पना से अल्पना' का विमोचन उनके तीन माह के पड़पोते चि. श्रेष्ठ गवली द्वारा किया गया। डॉ. वसुधा गाडगील ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन एवं आभार श्रीमती श्रीति राशिनकर ने किया। □

लोकार्पण समारोह संपन्न

२२ मई को नई दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय के सभागार में डॉ. रामशरण

गौड़ की अध्यक्षता एवं डॉ. महेश शर्मा के मुख्य आतिथ्य में डॉ. वेदप्रकाश द्वारा लिखित 'संकल्प राष्ट्र निर्माण का' पुस्तक का लोकार्पण किया गया, जिसमें डॉ. अवनिजेश अवस्थी एवं डॉ. बालमुकुंद पांडेय ने अपने विचार व्यक्त किए। धन्यवाद श्री सुरेंद्र हंस ने ज्ञापित किया। □

लोकार्पण समारोह संपन्न

२५ जून को आपातकाल की ४३वीं वर्षगाँठ के अवसर पर नई दिल्ली के विवेकानंद इंटरनेशनल फाउंडेशन के सभागार में भारत के मान. उपराष्ट्रपति श्री एम. वेंकैया नायडू ने प्रसार भारती के अध्यक्ष वरिष्ठ पत्रकार व स्तंभ लेखक श्री ए. सूर्यप्रकाश की पुस्तक 'आपातकाल' के हिंदी, कन्नड़ व तेलुगु भाषाओं में प्रकाशित संस्करणों का लोकार्पण किया। स्वागत फाउंडेशन के निदेशक डॉ. अरविंद गुप्ता ने किया। पुस्तकों का प्रकाशन मेघनिर्घोष मीडिया प्रा.लि. द्वारा किया गया है। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में बुद्धिजीवी, लेखक-पत्रकार व समाजधर्मी उपस्थित थे। □

'हिंदी साहित्य के पुरोधा' कृति लोकार्पित

३ जुलाई को नई दिल्ली के हिंदी भवन में डॉ. आरती स्मित की समालोचनात्मक कृति 'हिंदी साहित्य के पुरोधा' के लोकार्पण समारोह में सर्वश्री मधुकर गंगाधर, अनामिका, रमा, देवेंद्र शुक्ल ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री ब्रजेंद्र त्रिपाठी ने किया। आभार श्री रामकृष्ण गुप्ता एवं श्रीमती प्रेमलता गुप्ता ने व्यक्त किया। □

लोकार्पण, संगोष्ठी एवं सम्मान समारोह संपन्न

८ जुलाई को सुलतानपुर के क्षत्रिय भवन सभागार में रामानुज त्रिपाठी सृजन संस्थान द्वारा कवि श्री रामानुज त्रिपाठी की १५वीं पुण्यतिथि पर सर्वश्री रमाकांत सिंह को 'गीत साहित्य सम्मान', राहुल शिवाय को 'नवगीत साहित्य सम्मान', रविशंकर मिश्र को 'गीत साहित्य सम्मान' एवं आलम आजाद को 'हिंदी साहित्य सम्मान' से सर्वश्री चित्रेश, अवनीश त्रिपाठी, छाया त्रिपाठी ओझा द्वारा सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री ओम नीरव, रमाकांत सिंह, छाया त्रिपाठी, संजीव ओझा, राहुल शिवाय, धीरज श्रीवास्तव, शोभनाथ शुक्ल, ओंकारनाथ द्विवेदी, सुशील कुमार साहित्येंदु, कैलाशनाथ मिश्र, उमाकांत पांडेय, अवनीश त्रिपाठी, चित्रेश द्वारा सुश्री छाया त्रिपाठी ओझा के गीत-संग्रह 'अक्षर-अक्षर गीत' एवं डॉ. शोभनाथ शुक्ल द्वारा संपादित पत्रिका 'कथा समवेत' के नवीन अंक का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर मंचस्थ अतिथियों सहित सर्वश्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, सुरेश चंद्र शर्मा, उत्कर्ष सिंह, शुभम श्रीवास्तव 'ओम', रामप्यारे प्रजापति ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. शोभनाथ शुक्ल ने किया। द्वितीय सत्र में श्री आद्या प्रसाद सिंह 'प्रदीप' की अध्यक्षता में सर्वश्री प्रेमचंद्र गुप्त विशाल, अरविंद कुमार साहू, योगेंद्र मौर्य को 'बाल साहित्य सम्मान' एवं सुशील कुमार साहित्येंदु को 'हिंदी साहित्य सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री बंधु कुशावर्ती व साक्षी शुक्ला ने रचना पाठ किया। संचालन श्री ज्ञानेंद्र विक्रम सिंह ने किया। अंत में श्री मथुरा प्रसाद सिंह 'जटायु' के संचालन में काव्यपाठ हुआ, जिसमें अनेक कवियों और गीतकारों ने रचना पाठ किया। □

लोकतंत्र के सेनानियों का सम्मान

२५ जून को श्री आर.के. वर्मा की अध्यक्षता में उत्तराखंड के प्रथम मुख्यमंत्री की स्मृति में बनी 'श्री नित्यानंद स्वामी जनसेवार्थ समिति' द्वारा सर्वश्री विजय कुमार, ओमपाल सिंह, लालकृष्ण गांधी, वीरेंद्र अटल, प्रेम बड़ाकोटी को उत्तराखंड के राजस्व मंत्री श्री प्रकाश पंत के मुख्य आतिथ्य में सम्मानित किया गया। संचालन श्री योगेश अग्रवाल ने किया तथा धन्यवाद श्री गोपाल कृष्ण ने ज्ञापित किया। □

श्री रमाकांत शर्मा 'उद्भ्रांत' सम्मानित

२ जून को रायपुर में श्री बी.के.एस. रे की अध्यक्षता में आयोजित १५वें अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन में साहित्य की विविध अनुशासनों में अप्रतिम और समानांतर रचनात्मक लेखन के लिए आधुनिक हिंदी के शीर्षस्थ कवि श्री रमाकांत शर्मा 'उद्भ्रांत' द्वारा रचित व अंग्रेजी, ओड़िया सहित कई भाषाओं में अनुवाद के साथ बहुचर्चित काव्यकृति 'राधामाधव' को 'प्रथम गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर अंतरराष्ट्रीय साहित्य पुरस्कार' प्रदान किया गया। □

डॉ. हरिप्रसाद दुबे सम्मानित

विगत दिनों अमरकंटक में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय में लुप्त भाषा केंद्र एवं हिंदी विभाग के तत्त्वावधान में 'हाशिए का समाज और आदिवासी केंद्रित साहित्य' विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में डॉ. हरिप्रसाद दुबे को बैगा जनजाति की पगड़ी, प्रतीक-चिह्न प्रदान कर प्रो. दिलीप सिंह एवं प्रो. राम आह्लाद चौधरी द्वारा सारस्वत सम्मान से अलंकृत किया गया। इस अवसर पर देश के प्रतिष्ठित १५ विद्वानों ने आदिवासी साहित्य का इतिहास-बोध शोधपत्र प्रस्तुत किए। इस अवसर पर एक बहुभाषा कवि-सम्मेलन भी आयोजित किया गया। □

'बाल साहित्य सम्मान' प्रदत्त

१० जून को उत्तराखंड के गैरसैण में बाल साहित्य संस्थान, अल्मोड़ा तथा श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित तीन दिवसीय राष्ट्रीय बाल साहित्य संगोष्ठी में १८ बाल साहित्यकारों को 'बाल साहित्य सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें पत्र-पुष्प, प्रशस्ति-पत्र, प्रतीक-चिह्न, शॉल, इक्कीस सौ रुपए की राशि भेंट की गई। १८ पुस्तकों का लोकार्पण भी किया गया। □

सम्मान समारोह संपन्न

२३ जून को नई दिल्ली में डॉ. मृदुला टंडन की अध्यक्षता में विष्णु प्रभाकर के १०७वें जन्मदिवस पर विष्णु प्रभाकर प्रतिष्ठान व गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा द्वारा आयोजित विष्णु प्रभाकर स्मृति सम्मान अर्पण समारोह में सर्वश्री कुमार अनुपम, नाज खान, दीपेंद्र बाजपेई, प्रतिभा सिंह, अनीस कुमार, अजय सहाय को श्री भानु भारती के मुख्य आतिथ्य एवं सर्वश्री आर.सी. महेश्वरी व योगेश दुबे के विशिष्ट आतिथ्य में सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री इंदु शर्मा, इंदु कांडपाल, कुसुम शाह, अनीता प्रभाकर, महेश दर्पण, सविता चड्ढा ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन सर्वश्री प्रसून लतांत व किरण आर्या ने किया तथा धन्यवाद श्री केदारनाथ ने ज्ञापित किया। □

पुरस्कार घोषित

विगत दिनों नई दिल्ली में साहित्य अकादेमी ने बाल साहित्य पुरस्कारों के लिए २३ विजेताओं की घोषणा की। ये पुरस्कार १४ नवंबर को बाल दिवस के अवसर पर प्रदान किए जाएँगे। युवा पुरस्कारों के लिए अकादेमी ने कविता की दस पुस्तकों, लघुकथा की सात पुस्तकों, तीन उपन्यास और एक नाटक का चयन किया है। कविता-संग्रह सर्वश्री आस्तिक वाजपेयी (हिंदी), समरंगनी बंद्योपाध्याय (बांग्ला), ईशा डाडावाला (गुजराती), तोंगब्राम अमरजीत सिंह (मणिपुरी), दुष्यंत जोशी (राजस्थानी) और मुनि राजसुंदर

विजय (संस्कृत) को युवा पुरस्कार के लिए पुरस्कृत करने की घोषणा की गई। जुगालोचन दास (असमी), शिरशेंदु मुखोपाध्याय (बांग्ला), सीताराम बासुमातारी (बोडो), ईस्टरीन केर (अंग्रेजी), चंद्रकांत सेठ (गुजराती), दिविक रमेश (हिंदी), कंचयानी शरणप्पा शिवसंगाप्पा (कन्नड़), जरीफ अहमद जरीफ (कश्मीरी), कुमुद भीखू नायक (कोंकणी), वैद्यनथझा (मैथिली), पी.के. गोपाल (मलयालम), खांगेबाम शमुंगू (मणिपुरी), रत्नाकर मटकरी (मराठी), भीम प्रधान (नेपाली), बीरेंद्र मोहती (ओड़िया), तारसेम (पंजाबी), सीएल सांख्ला (राजस्थानी), संपदानंद मिश्रा (संस्कृत) को बाल साहित्य पुरस्कार से सम्मानित करने की घोषणा की गई। □

प्रो. शरद नारायण खरे सम्मानित

२९ मई को नोएडा में दैनिक 'वर्तमान अंकुर' द्वारा केंद्रीय संस्कृति राज्यमंत्री डॉ. महेश शर्मा के मुख्य आतिथ्य में प्रो. शरद नारायण खरे को 'राष्ट्रीय वर्तमान अंकुर साहित्य गौरव सम्मान' से सम्मानित किया गया। संचालन श्री विकास शर्मा 'दक्ष' ने किया। □

डॉ. मधुर नज्मी सम्मानित

२६ जून को हैदराबाद के नारायणगुड़ा में श्रीमती कलावती वीरेंद्र कुमार हिंदी कविता ट्रस्ट के तत्त्वावधान में डॉ. अनिरुद्ध कुमार पुरोहित की अध्यक्षता में मुख्य अतिथि डॉ. एन. गोपी द्वारा डॉ. मधुर नज्मी को 'अखिल भारतीय हिंदी कविता पुरस्कार-१८' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें दस हजार रुपए की राशि, शॉल, प्रशस्ति-पत्र, श्रीफल भेंट किए गए। इस अवसर पर सर्वश्री बृजनाथ श्रीवास्तव, नेहपाल सिंह वर्मा, लक्ष्मण ठाकुर, उर्मिला वर्मा ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री गोविंद अक्षय ने किया तथा धन्यवाद श्रीमती रत्नकला मिश्र ने ज्ञापित किया। □

कवि-सम्मेलन संपन्न

२९ जून को हैदराबाद में गीत चाँदनी के ३६वें वर्ष का ८वाँ कवि-सम्मेलन ६२० वर्षीय श्री कबीर साहेब जयंती दिवस के अवसर पर ज्येष्ठ पूर्णिमा को मठ के महंत श्री बोधप्रिय साहेब और सद्गुरु श्री कबीर विश्व शांति साध्वी आश्रम, महेश्वरम की साध्वी विजित दास के सान्निध्य में संत सम्राट् सद्गुरु श्री कबीर मठ में श्री चंद्र प्रकाश दायमा की अध्यक्षता में सर्वश्री सुरेश गुगलिया, उमेश चंद्र श्रीवास्तव, रवि वैद्य, चंद्र प्रकाश दायमा, श्रीकुमार बोहरा, विजयाबाला स्याल, सीताराम माने, सुरेश जैन, तिरंगा हैदराबादी, दीपक चिंडलिया वाल्मीकि, दुर्गाराज पटून, साध्वी ज्योति, उमा देवी सोनी, अमोही साहब ने काव्य पाठ किया। संचालन श्री गोविंद अक्षय ने किया तथा धन्यवाद श्रीमती रत्नकला मिश्र ने ज्ञापित किया। □

गोष्ठी संपन्न

विगत दिनों उज्जैन में श्रीकृष्ण 'सरल' जन्मशती वर्ष के अंतर्गत सरल काव्यांजलि द्वारा श्री प्रतापसिंह सोढ़ी की अध्यक्षता में 'शीर्षक को लेकर लघुकथाकार की जद्दोजहद' विषय पर लघुकथा गोष्ठी एवं कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री श्रीयुत श्रीराम दवे ने 'ओटला', दिलीप जैन ने 'निराधार', आशागंगा शिरढोणकर ने 'नकाबपोश', संतोष सुपेकर ने 'इस बार', प्रभाकर शर्मा ने 'इस बार कौन', राजेंद्र नागर निरंतर ने 'मदर्स डे' व 'कर्तव्य', राजेंद्र देवधरे दर्पण ने 'जब कोयल कड़वा बोली', कोमल वाधवानी 'प्रेरणा' ने 'वह भी सीखे' शीर्षकों की लघुकथाओं का पाठ किया। संचालन श्री राजेंद्र देवधरे 'दर्पण' ने किया तथा आभार डॉ. पुष्पा चौरसिया ने व्यक्त किया। □

लोकगीत एवं भोजपुरी गीत समारोह आयोजित

३० जून को कानपुर में बी.एन.एस.डी. शिक्षा निकेतन के सभागार में डॉ. गिरिराज किशोर की अध्यक्षता में भारत की प्रमुख साहित्यिक, सांस्कृतिक संस्था 'मानस संगम' के ५० वर्ष पूरे होने पर एक भव्य लोकगीत एवं भोजपुरी गीतों का कार्यक्रम न्यायमूर्ति मान. श्री अशोक कुमार के मुख्य आतिथ्य में किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री मालिनी अवस्थी व बद्री नारायण तिवारी ने अपने विचार व्यक्त किए। सुप्रसिद्ध लोकधर्मी कलाकार श्रीमती मालिनी अवस्थी को मंचस्थ अतिथियों द्वारा मानस संगम स्वर्ण जयंती विशिष्ट सम्मान (ताम्रपत्र) देकर सम्मानित किया। □

काव्य समारोह संपन्न

विगत दिनों धर्मपुर कोर्टयार्ड, मैरिस रोड, अलीगढ़ स्थित सभागार में डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ की अध्यक्षता में सर्वश्री सुनील बाजपेई 'सरल', रक्षपाल सिंह, विवेक बंसल, अशोक अंजुम ने श्री लक्ष्मण दुबे को शॉल एवं राजस्थानी पगड़ी पहनाकर सम्मानित किया। इस अवसर पर सर्वश्री भारती शर्मा, वेदप्रकाश अमिताभ, सुरेश कुमार, राजेश कुमार, प्रवीण शर्मा दुष्यंत, दिनेश चंद्र शर्मा, अर्जुन चावला, सुधांशु गोस्वामी, सुल्तान अली ने काव्य पाठ किया। संचालन श्री अशोक अंजुम ने किया। □

पाठक मंच गोष्ठी संपन्न

२ जून को साहित्य अकादमी, म.प्र. संस्कृति परिषद् भोपाल की स्थानीय इकाई द्वारा सागर पाठक मंच की ५७वीं गोष्ठी का आयोजन श्री जे.पी. पांडेय की अध्यक्षता में गोपालगंज स्थित श्यामलम् कार्यालय में किया गया, जिसमें श्रीमती नीरजा माधव के उपन्यास 'देनपा—तिब्बत की डायरी' पर समीक्षा-गोष्ठी की गई। इस अवसर पर सर्वश्री चंचला दवे, आलोक चौबे, सर्वेश्वर उपाध्याय, शुभम उपाध्याय, किरणप्रभा मिश्र, अंबिका यादव, हरी सिंह ठाकुर ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. सर्वेश्वर उपाध्याय ने किया तथा आभार श्री शुभम उपाध्याय ने व्यक्त किया। □

काव्य-गोष्ठी संपन्न

१५ जुलाई को छिंदवाड़ा में मध्य प्रदेश आंचलिक साहित्यकार परिषद् द्वारा श्री नंद कुमार दीक्षित की अध्यक्षता में 'घुमड़-घुमड़ उमड़-उमड़ बरसे काव्य बादल' विषय पर काव्य गोष्ठी आयोजित की गई। श्री रत्नाकर रतन के मुख्य आतिथ्य एवं डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव के विशिष्ट आतिथ्य में सर्वश्री केशव प्रसाद तिवारी, गुलाम मध्यप्रदेशी, विशाल शुक्ल, शिवराम विश्वकर्मा उजाला, बलराम संध्या, राकेश नामदेव, संजय सोनी, शशांक दुबे, प्रकाश शर्मा, राजेंद्र यादव, रामलाल सराठे रश्मि, कालिदास बघेल, अंकुर वाल्मीकि, रमाकांत सिंह मौर्य, रंजीत सिंह परिहार, लक्ष्मण प्रसाद डेहरिया, इंद्रजीत सिंह ठाकुर, नंदकिशोर नदीम, सहदेव कोहले, हरिओम माहोरे, किशोर बेले ने रचना पाठ किया। संचालन श्री शिवशंकर शुक्ल ने किया। □

संगोष्ठी संपन्न

१५ जुलाई को नई दिल्ली के सत्याग्रह मंडल, राजघाट में 'जनसत्ता' के संस्थापक संपादक श्री प्रभाष जोशी की जयंती पर आयोजित समारोह में 'साहित्य अमृत' के संपादक श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी की अध्यक्षता में मुख्य अतिथि पूर्व केंद्रीय मंत्री एवं सांसद डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने 'जनतंत्र और तकनीक' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने कहा कि तकनीक

जनतंत्र के आगे का रास्ता न बंद कर दे, इस दिशा में सोचने की जरूरत है। हम अंतरिक्ष और सातवें आसमान में सृष्टि के निर्माता को खोज रहे हैं कि शायद जीवन के कुछ और तत्त्व मिल जाएँ, ताकि वहाँ भी प्राकृतिक चीजों की लूट-खसोट और उपभोग कर सकें। प्रभाष परंपरा न्यास के प्रबंध न्यासी और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष श्री राम बहादुर राय ने अपने विचार व्यक्त किए। समापन प्रसिद्ध गायक श्री मधुप मुद्गल के कबीर गायन से हुआ। □

काव्य संध्या कार्यक्रम संपन्न

विगत दिनों वारासिवनी में श्री रमेश नैयर की अध्यक्षता में राष्ट्रीय काव्य सृजन संस्था के तृतीय स्थापना समारोह एवं काव्य संध्या का आयोजन श्री संजय अलंग (आई.ए.एस.) के मुख्य आतिथ्य एवं श्री नर्मदा प्रसाद मिश्र 'नरम' व श्री पंकज अग्रवाल के विशिष्ट आतिथ्य में किया गया, जिसमें सर्वश्री आशा मानव, वीणा सिंह, पल्लवी शुक्ला, सैयद हसन अली, सफदर अली सबर, विजय संवेदी, सुनील पांडे, सूर्यकांत गुप्ता, मयंक श्र्मा, सायरा बानो, प्रणय श्रीवास्तव अश्क, प्रमिला शर्मा ने काव्यपाठ किया। □

व्याख्यानमाला आयोजित

१० जुलाई को लखनऊ में श्री श्रीमाँ प्रभुदेवी विद्या मंदिर प्रतिष्ठान, शिव सिंह सरोज स्मारक समिति, अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के संयुक्त तत्त्वावधान में सी.एम.एस. सभागार में श्री आनंद वर्धन की अध्यक्षता एवं श्री केशरी नाथ त्रिपाठी के मुख्य आतिथ्य में सर्वश्री दाऊजी गुप्त को 'श्री शिव सिंह सरोज स्मृति श्रीवत्स कर्मयोगी राष्ट्र सेवी सम्मान', नीरजा माधव को 'डॉ. विद्यानिवास मिश्र स्मृति श्रीवत्स हिंदी सेवी सम्मान', रघुराज दीक्षित 'मंजु' को 'श्रीकृष्ण प्रताप सिंह स्मृति श्रीवत्स कर्मयोगी भक्ति साधना सम्मान', हनुमान प्रसाद अवस्थी को 'श्री दिल बहाल सिंह स्मृति श्रीवत्स कर्मयोगी देशभक्त सम्मान', सुरेश कुमार सिंह को 'श्री देवनारायण सिंह स्मृति श्रीवत्स कर्मयोगी मनीषी सम्मान', पद्मा गिडवानी को 'श्रीमाँ प्रभु देवी स्मृति श्रीवत्स लोक संगीत साधना सम्मान', राकेश सिंह को 'श्रीमाँ प्राण देवी स्मृति श्रीवत्स कर्मयोगी कला साधना सम्मान', आभा अवस्थी को 'प्रो. शिवमंगल सिंह स्मृति श्रीवत्स पर्यावरण संरक्षण सम्मान', अभिजित चंद्रा को 'डॉ. कुँवर यशवीर सिंह स्मृति श्रीवत्स कर्मयोगी स्वास्थ्य सेवा सम्मान' एवं मनोरमा श्रीवास्तव को 'श्री राजेंद्र प्रसाद श्रीवास्तव 'भइयाजी' स्मृति श्रीवत्स समाज सेवी सम्मान से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री जगदीश गांधी, विद्या विंदु सिंह, रमा सिंह, पवन पुत्र बादल, मालिनी अवस्थी, रवींद्र शुक्ल, अवधेंद्र प्रताप सिंह, दीपा सिंह, ज्योति सिंह, भारतीय सिंह, करुणा पांडेय, अंजलि अस्थाना, संगीता शुक्ला, अनिल मिश्र, मानसी सिंह, सुधीर पांडेय ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर 'समीक्षा के आलोक में डॉ. विद्या विंदु सिंह', 'अवधी वाचिक कथा लोक : अभिप्राय, चिंतन', 'विद्या विंदु सिंह की २१ कहानियाँ', 'संत विवेक स्मारिका-२०१८', 'अभिदेशक' त्रैमासिक पत्रिका, श्री प्रदीप कुमार अग्रवाल की पुस्तक 'मदन माधुरी' का लोकार्पण भी किया गया। संचालन सुश्री अमिता दुबे ने किया तथा धन्यवाद श्री विजय त्रिपाठी ने ज्ञापित किया। □

साहित्यिक क्षति

श्री गोपालदास 'नीरज' नहीं रहे

१९ जुलाई को सुप्रसिद्ध गीतकार और कवि श्री गोपालदास 'नीरज' का स्वर्गवास हो गया। उनका जन्म ४ जनवरी, १९२५ को ग्राम पुरावली, जिला इटावा, उत्तर प्रदेश में हुआ। भारत सरकार ने उन्हें १९९१ में 'पद्मश्री' और २००७ में 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया। फिल्मों में सर्वश्रेष्ठ गीत लेखन के लिए उन्हें लगातार तीन बार 'फिल्म फेयर पुरस्कार' भी मिला। उनके प्रकाशित काव्य-संग्रह हैं—'संघर्ष', 'अंतर्ध्वनि', 'विभावरी', 'प्राणगीत', 'दर्द दिया है', 'बादर बरस गयो', 'मुक्तकी', 'दो गीत', 'नीरज की पाती', 'गीत भी अगीत भी', 'आसावरी', 'नदी किनारे', 'लहर पुकारे', 'कारवाँ गुजर गया', 'फिर दीप जलेगा', 'तुम्हारे लिए', 'नीरज की गीतिकाएँ'।

श्री अमृतलाल वेगड़ नहीं रहे

६ जुलाई को अपना पूरा जीवन नर्मदा नदी के नाम करनेवाले प्रसिद्ध चित्रकार और साहित्यकार श्री अमृतलाल वेगड़ का निधन हो गया। वे ९० वर्ष के थे। उनका जन्म ३ अक्तूबर, १९२८ को मध्य प्रदेश के जबलपुर में हुआ था। उनके परिवार में उनकी पत्नी एवं पाँच पुत्र हैं। नर्मदा के सौंदर्य को चित्रों और शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करनेवाले वेगड़ को 'नर्मदा पुत्र' कहा जाता था। उन्होंने १९४८ से १९५३ तक गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के शांति निकेतन में कला का अध्ययन किया। जबलपुर लौटने के बाद नर्मदा के तटों पर रेखांकन करने लगे। कोलाज आर्ट में नर्मदा की लहरों को जीवंत आकार देना शुरू किया। बाद में नर्मदा की संपूर्ण परिक्रमा खंड-यात्रा के माध्यम से करने का संकल्प लिया। इस पदयात्रा का वृत्तांत हिंदी, गुजराती, मराठी, बांग्ला, अंग्रेजी और संस्कृत में नर्मदा विषयक पुस्तकों की रचना में किया। इनमें से सबसे चर्चित कृति 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' रही। पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से किए गए उनके अनुपम कार्य को स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर तक सराहा गया। उन्हें गुजराती और हिंदी में साहित्य अकादेमी जैसे 'सर्वोच्च साहित्य सम्मान' से सम्मानित किया गया। इसके बाद महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन पुरस्कार सहित अन्य कई क्षेत्रीय व राष्ट्रीय अवार्ड प्राप्त हुए।

श्री कल्पेश याग्निक नहीं रहे

१३ जुलाई को दैनिक भास्कर के समूह संपादक श्री कल्पेश याग्निक का स्वर्गवास हो गया। वे ५५ वर्ष के थे। उनका जन्म २१ जून, १९६३ को हुआ था। उनके परिवार में माँ श्रीमती प्रतिभा याग्निक, पत्नी श्रीमती भारती, बेटी सुश्री शेरना, छोटी बेटी सुश्री शौर्या, भाई श्री नीरज एवं श्री अनुराग हैं। वे प्रखर वक्ता और विख्यात पत्रकार थे। वे पैनी लेखनी के लिए जाने जाते थे। देश-विदेश और समाज में चल रहे संवेदनशील मुद्दों पर बेबाक और निष्पक्ष लिखते थे। प्रति शनिवार दैनिक भास्कर के अंक में प्रकाशित होनेवाला उनका स्तंभ 'असंभव के विरुद्ध' दुनियाभर में चर्चित है।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्माओं को भावभीनी श्रद्धांजलि।